Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शार्ङ्गदेवकृत

संगीतरत्नाकर

'सरस्वती' व्याख्या और अनुवादसहित

चतुर्थ खण्ड

व्याख्या और अनुवादकर्त्री

सुभद्रा चौधरी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१३वीं शताब्दी में लिखित शार्ङ्गदेव का 'संगीतरत्नाकर' भारतीय संगीत का अनुपम शास्त्रग्रंथ है जिसमें सिद्धांतों का ऐसा व्यवस्थित, सूक्ष्म और प्रामाणिक निरूपण हुआ है जैसा संगीत के किसी दूसरे ग्रंथ में नहीं है। यह बाद के सभी ग्रंथकारों को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला, ग्रंथरचना का आदर्श नमूना, आलोचना का पात्र और सबसे ज्यादा अध्ययन किया जाने वाला ग्रंथ रहा है।

संस्कृत में रचित संगीत के सबसे लंबे ग्रंथों में से एक, जिस पर सबसे ज्यादा टीकाएँ लिखी गईं, जिसके कई संस्करण प्रकाशित हुए, जिसका कई भाषाओं में अनुवाद हुआ और जिसके बिना संगीत के प्राचीन सिद्धांतों को समझना संभव नहीं, ऐसे संगीतरत्नाकर के व्याख्या सहित प्रामाणिक हिंदी अनुवाद की, संगीत के छात्रों, शिक्षकों और शोधार्थियों के लिए, पिछले ३७-३८ साल से जरूरत महसूस की जा रही थी जिसे प्रस्तुत ग्रंथमाला पूरा करेगी।

चार खंडों में प्रकाशित इस ग्रंथमाला का पहला खंड सन् 2000 में, दूसरा 2002 में और तीसरा 2006 में निकल चुका है। पहले खंड में पहला स्वराध्याय, दूसरे में दूसरे, तीसरे, चौथे—क्रम से रागाध्याय, प्रकीर्णकाध्याय और प्रबन्धाध्याय, तीसरे खंड में पाँचवें और छठे तालाध्याय व वाद्याध्याय तथा चौथे खंड में सातवाँ नर्तनाध्याय—मूल श्लोक, अन्वयसहित हिंदी अनुवाद और लेखिका की 'सरस्वती' व्याख्या के साथ हैं। यह चौथा और अंतिम खंड इस वर्ष २००८ में प्रकाशित होने के साथ यह पूरा कार्य संपन्न हो रहा है। यह संगीतरत्नाकर का सबसे बड़ा अध्याय है।

यों तो ये सभी अध्याय वर्तमान संगीत से सीधे संबद्ध हैं और उस पर इनका गहरा प्रभाव भी है। लेकिन पिछले अध्याय नृत्य के साथ सबसे ज्यादा जुड़े हैं क्योंकि इनमें से किसी के भी बिना नृत्य प्रायः प्रवृत्त नहीं होता। इसलिए सभी खंड संगीत की क्रिया और शास्त्र के अध्ययन में प्रवृत्त तथा रुचि रखने वाले छात्रों, शिक्षकों और अध्येताओं के लिए उपयोगी हैं।

विभिन्न प्रदेशों और अंचलों के लोक नृत्य तो विविधता से युक्त हैं ही लेकिन पूरे भारत में शास्त्रीय नृत्य शैलियों और नाट्य के जो अनेक रूप प्रचलित हैं वे नाट्यशास्त्र से संगीतरत्नाकर तक के मूल तने से कितने विविध प्ररोह विकसित हुए इसे भी उजागर करते हैं और भारतीय संस्कृति की अनेकता में एकता के प्रमाण भी देते हैं।

हमें विश्वास है कि पिछले तीन खंडों की तरह इस चौथे खंड का भी संगीत जगत् में स्वागत होगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संगीतरत्नाकर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शार्ङ्गदेवकृत

संगीतरत्नाकर

('सरस्वती' व्याख्या और अनुवादसहित)

चतुर्थ खण्ड

सातवाँ अध्याय

व्याख्या और अनुवादकर्त्री

सुभद्रा चौधरी

विक्रेता
संगीत कार्यालय
हाथरस-204101

राधा पब्लिकेशन्स

नई दिल्ली

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
© लेखिका

पहला संस्करण : २००६
ISBN 81-7487-605-7

राधा पब्लिकेशन्स
4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली- 110002
फोन नं० 23247003, 23254306

श्री नितिन गर्ग द्वारा राधा पब्लिकेशन्स, के लिए प्रकाशित तथा छाया ग्राफिक्स,
दिल्ली-6 द्वारा शब्द संयोजन होकर एशियन आफसेट प्रिंटर्स, मौजपुर, शाहदरा, दिल्ली में मुद्रित।

SANGITARATNAKARA

By : Subhadra Chaudhary

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मेरी प्राध्यापिका व

अभिन्न मित्र

और

अपने जीवनकाल के

अंतिम तीस वर्षों में मेरे हर सुख-दुःख की

सहभागिनी

स्व० डॉ० विमला मुसलगाँवकर को

समर्पित

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
१. भूमिका	(९-१३)
२. संकेत-सूची	(१४)
३. विषय-सूची	(१५-४०)
४. मूलपाठ, अन्वय, व्याख्या	१-४१३
५. संदर्भग्रंथ-सूची	(४१४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भूमिका

विश्व की अन्य संगीत पद्धतियों से भिन्न भारतीय संगीत की कुछ अलभ्य विशेषताओं का उल्लेख इस ग्रंथमाला के पिछले खंडों में किया जा चुका है। दूसरे खंड की भूमिका में राग और ताल पद्धतियों का और राग में भी अनिबद्ध विस्तार का, जिसके द्वारा हर राग का स्वतंत्र व्यक्तित्व बनता है तथा तीसरे खंड में अवनद्ध वाद्यों की अत्यंत विकसित और विविधतायुक्त वादनशैली जैसी विशेषताओं का निरूपण किया गया है। शार्ङ्गदेव द्वारा दिए गए संगीत के लक्षण 'गीतं वाद्यं तथा नृत्तं त्रयं संगीतमुच्यते' के अनुसार संगीत का तीसरा पक्ष नृत्त भी अति विशिष्ट है। शरीर के विभिन्न अंगों की अलग-अलग या सम्मिलित क्रियाओं के द्वारा विविध रसों और भावों की सृष्टि भारतीय संगीत का वैशिष्ट्य है। नाट्यशास्त्र (ना०शा०) में अंगों के व्यापारों (क्रियाओं) का अलग-अलग अध्यायों में जो सूक्ष्म और विस्तृत निरूपण हुआ है उसी से यह स्पष्ट है। उसका एकत्र, संक्षिप्त और व्यवस्थित निरूपण संगीतरत्नाकर (सं०र०) के नर्तन अध्याय में किया गया है। यह चौथा खंड, जो ग्रंथ का सबसे बड़ा अध्याय भी है, इस ग्रंथमाला का अंतिम भाग है।

प्रथम खंड की भूमिका में सं०र० को ऐसा ग्रंथ कहा गया था जिसका पाठ शुद्ध-अविकल-अखंडित रूप में मिलता है। लेकिन चौथे खंड का अध्ययन पूरा होने तक इस कथन में कुछ सुधार की गुंजाइश है। तीसरे, और विशेष रूप से चौथे खंड में ग्रंथ के मूलपाठ में दोनों टीकाकारों और भिन्न पांडुलिपियों में भेद तथा ना०शा०, अभिनवभारती (अभि०) और मानसोल्लास के आधार पर कई जगह पाठ में परिवर्तन करना ज़रूरी हो गया। इसमें डॉ० तारळेकर के सुझाव भी बहुत मददगार साबित हुए। फिर भी अन्य ग्रंथों की तुलना में सं०र० का पाठ शुद्ध, अविकल और अखंडित है इसमें अत्युक्ति नहीं है।

गीत, वाद्य, नृत्त—इस संगीतलक्षण के संदर्भ में पहले से चौथे अध्याय तक गीत यानी गायन और स्वरसंबन्धी वादन का, पाँचवें में इनसे संबद्ध ताल का, छठे में विभिन्न वर्ग के वाद्यों की निर्माण-सामग्री, नापजोख, निर्माण की प्रक्रिया, विभिन्न मतों के अनुसार उनके प्रकार, विनियोग आदि का और सातवें अध्याय में नर्तन यानी नृत्य, नृत्त और नाट्य—इन तीनों से संबन्धित शरीर के विभिन्न अंगों की क्रियाओं का विस्तार से निरूपण हुआ है। विषयवस्तु की व्यवस्था तो इस ग्रंथ की विशिष्टता है ही।

दूसरे खंड की भूमिका में नृत्त के संदर्भ में स्थाय का महत्त्व कहा जा चुका है, विशेष रूप से गौण्डली पद्धति में। स्वर, राग, स्थाय, प्रबंध, ताल, वाद्य ये सभी नृत्त से संबद्ध हैं क्योंकि ये किसी न किसी रूप में नृत्त में प्रयुक्त होते हैं। निबद्ध-अनिबद्ध के अनुपात की दृष्टि से गायन और वादन की अपेक्षा नर्तन में निबद्ध अधिक है।

नृत्त लोक में विभिन्न पर्वों-उत्सवों पर प्रयुक्त होने वाला और नटों की बाजीगरी जैसे प्रकारों को भी अपने 'विषम' आदि प्रकारों में समेटने वाला है तथा नृत्य और नाट्य में भी प्रयुक्त होकर उन्हें आधार प्रदान करने वाला है।

तीसरे खंड में अवनद्ध के वादन में वाद्य पर हाथ के रखाव को नृत्त की पताक, सर्पहस्त, अलपद्म आदि मुद्राओं से व्यक्त किया गया है। भारत की सभी शास्त्रीय नृत्य शैलियों और लोकनृत्यों में सं०र० की क्षुद्रघण्टिका (घुँघरू) का प्रयोग कम-ज़्यादा मात्रा में होता है। साथ ही कोई न कोई अवनद्ध वाद्य और प्रायः मँजीरा भी रहता है। किसी-किसी नृत्यशैली में बाँसुरी (वंशी) के रूप में सुषिर और कहीं-कहीं तंत्री वाद्य भी प्रयुक्त होता है। इस प्रकार नृत्त चारों वर्ग के वाद्यों से संबद्ध है।

शार्ङ्गदेव ने 'नर्तन' शब्द का प्रयोग किया है और उसके तीन भेद नृत्त, नृत्य और नाट्य कहे हैं। नृत्त वह प्रकार है जिसमें मुख्य रूप से लय-ताल के अनुसार केवल आंगिक क्रियाओं (गात्रविक्षेप) के द्वारा उमंग, उत्साह, उल्लास की अभिव्यक्ति

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

होती है। नृत्य में केवल भावों की अभिव्यक्ति और नाट्य में रसाभिव्यक्ति प्रधान होती है। इस प्रकार ग्रंथकार ने नृत्त, नृत्य और नाट्य तीनों का समावेश एक 'नर्तन' शब्द में किया है।

नृत्त और नृत्य दो प्रकार का कहा है—ताण्डव और लास्य। शंकर के प्रमुख गण तण्डु के द्वारा लोक में प्रतिष्ठित होने का क्रम शुरू होने से ताण्डव कहलाया जो प्रायः उद्धत था। पार्वती के द्वारा प्रादुर्भूत तथा बाणासुर की पुत्री उषा के द्वारा लोक में प्रवर्तित होने वाला नृत्य लास्य कहलाया जो सुकुमार था।

चार वेदों से तत्त्व ग्रहण करने के आधार पर नाट्यशास्त्र नाट्यवेद कहलाया। अभिनय की प्रधानता से भी इसे नाट्यवेद कहा गया और गीत की प्रधानता की दृष्टि से इसे गांधर्ववेद भी कहा गया।

नर्तन की महत्ता बताते हुए ग्रंथकार ने कहा कि यह न केवल लौकिक सुख और फल देने वाला है बल्कि ब्रह्म के साक्षात्कार से भी अधिक आनंद इसके द्वारा प्राप्त होता है। इसलिए इसे सदा देखना चाहिए और यह संभव न हो तो उत्सवकाल में अवश्य देखना चाहिए।

नाट्य के संदर्भ में रस की चर्चा करते हुए चतुर्विध अभिनय—आंगिक, वाचिक, सात्त्विक और आहार्य का लक्षण भी दिया है। चार प्रकार के अभिनय की दो प्रकार की इतिकर्तव्यता (कैसे करना) कही—लोकधर्मी और नाट्यधर्मी। जो अभिनय लोक की रीति के अनुरूप हो वह पहले प्रकार का और जो नाट्य के लिए अपेक्षित रीति के अनुसार हो वह दूसरे प्रकार का होता है। आंगिक अभिनय तीन प्रकार का कहा है—शाखा, अंकुर और सूची। हाथ की विविध प्रकार की मनोहर वर्तना (क्रिया) शाखा है। भूतवाक्य (बीते हुए वाक्य) के आश्रय से प्रवृत्त होने वाला अंकुर है और भावी वाक्य (आगे कहे जाने वाले वाक्य) के आश्रित हस्तक्रिया सूची होती है।

नृत्त के तीन प्रकार हैं—विषम, विकट और लघु। रस्सी पर चलना आदि विषम है, विरूप वेश और अंगों की क्रियाओं से विकट होता है और सीमित करणों वाला लघु माना जाता है।

अध्याय के शुरू में (श्लो० ३८-४८) जो विषयसूची दी है उसके अनुसार शरीर के अंगों का विभाजन अंग, प्रत्यंग और उपांग के रूप में किया गया है। अंग ७ (६+१) कहे हैं—सिर, हाथ, वक्ष, बाजू, कमर, पैर और कंधे। प्रत्यंग ६—गर्दन, भुजा, पीठ, पेट, जाँघ (अरु), टाँग (जंघा) और अन्य मत से ३ अतिरिक्त—कलाई (मणिबन्ध), घुटने (जानु) और भूषण होते हैं। उपांग सिर के १२ हैं—दृष्टि, भौंह, पलक (पुट), पुतलियाँ (तारा), गाल, नाक, वायु (अनिल), निचला ओठ (अधर), दाँत, जीभ, ठोडी और चेहरा (वदन) और अन्य अंगों के उपांग ये हैं—एड़ी (पार्ष्णि), टख़ने (गुल्फ) और हाथ-पैरों की अँगुलियाँ तथा पैरों के तलुए। अंगों का यह विभाजन देखने से स्पष्ट होता है कि शरीर के जिन अंगों की क्रियाएँ नर्तन में अभिव्यक्ति में विशेष रूप से सहायक होती हैं उन्हें अंग में रखा गया और उनकी अपेक्षा कम प्रयुक्त होने वाले अंगों को प्रत्यंग के अंतर्गत। अंगों में भी सिर (कपाल—सिर में बालों वाले भाग से लेकर गर्दन से ऊपर का भाग) सबसे महत्त्वपूर्ण होने से उसके अंतर्गत आने वाले अंगों को सिर के उपांग कहा।

अंगों के बाद मुखराग (चेहरे का रंग), हाथों के प्रचार तथा उनके करण और कर्म और क्षेत्र, शुद्ध और उत्प्लुति करण, रेचकों सहित अंगहार, शुद्ध और देशी चारी, स्थानक, वृत्ति, प्रविचार सहित न्याय, मण्डल, लास्यांग, रेखा, श्रम, पात्र (नर्तकी) का लक्षण, उसके गुण-दोष और सज्जा, उपाध्याय का लक्षण, संप्रदाय (नृत्त का सहयोगी गायक-वादक वृन्द), उसके गुण-दोष, उसकी शुद्ध पद्धति, गौण्डली विधि, पेरणी (पेरणी नर्तक), उसकी पद्धति, आचार्य, नट व नर्तक का लक्षण, वैतालिक और चारण, कोल्हाटिक-सभासद-सभापति, सभा का निवेश और अंत में रस और भाव का लक्षण—इतने विषयों का निरूपण ग्रंथकार ने इस अध्याय में किया है।

इनके अलावा वर्तना और चालक—इन दो महत्त्वपूर्ण धारणाओं का ग्रंथकार ने तो अत्यंत संक्षिप्त लक्षण दिया है। लेकिन कल्लिनाथ ने कोहल के किसी ग्रंथ से उद्धरण देकर इन्हें स्पष्ट किया है। यह भी उल्लेखनीय है कि करण शब्द भिन्न अर्थों में अनेक बार प्रयुक्त हुआ है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नर्तन में 'करण' पारिभाषिक शब्द है जिसका ग्रंथकार द्वारा कई अर्थों में प्रयोग हुआ है, जैसे—हस्तकरण, नृत्तकरण या करण, चारी का भेदरूप करण। सभी में करण का सामान्य अर्थ क्रिया है। हस्तकरण में करण का तात्पर्य वर्तना से है (श्लो० ५३७ ख पर कल्लि०) यानी एक करण से दूसरे करण में जाने का ढंग। नृत्तकरण में करण यानी हाथ-पैर की सम्मिलित क्रिया (श्लो० ५४७-५४८ व कल्लि०)। चारी यानी पैर, टाँग, जाँघ और कमर की एक साथ होने वाली विचित्र क्रिया। लेकिन चारी के भेदरूप करण में पादक्रिया प्रधान है। यह भेदरूप करण नृत्तकरण से अलग है (श्लो० ९००-९०१ और कल्लि०) और केवल पादक्रिया से होता है।

'वर्तना' के भेद या लक्षण ग्रंथकार ने नहीं दिए लेकिन नृत्त में इनका विशेष महत्त्व है। कल्लि० ने कोहल के ग्रंथ से २४ वर्तनाएँ उद्धृत की हैं। शार्ङ्ग० के अनुसार बाँहों के करणों का अकेले-अकेले या मिश्रण करके विभिन्न लयों के द्वारा योजना करने से हज़ारों वर्तना हो सकती हैं (श्लो० ३४८)। इस धारणा पर, अभिनवगुप्त के आधार पर डॉ० मुकुन्द लाठ ने अपने लेखसंग्रह Transformation As Creation (पृ० ८४-८६) में विचार किया है। नृत्त का विश्लेषण करने वाले विश्व के पहले आचार्य तण्डु के द्वारा नृत्य संबंधी दो महत्त्वपूर्ण धारणाएँ दी गईं—योजना और वर्तना। करण छोटे-छोटे व्यापारों (क्रियाओं—Movements) और स्थितियों (Positions) से बनी इकाई थे, छोटी-मोटी क्रियाओं के जमघट मात्र नहीं। बल्कि उनके शोभासंपन्न विन्यास (Arrangements) थे जिसके लिए योजना और वर्तना यानी उन्हें करने का ढंग (Manner) आवश्यक था। एक करण से दूसरे करण में जाने के लिए अभिनव उपयुक्त वर्तना की बात करते हुए कहते हैं कि इसमें प्रयोक्ता निष्णात होते हैं। शार्ङ्गदेव ने इसी आधार पर यह कहा कि वर्तना सहस्रों हो सकती हैं। कारण यह है कि हर प्रयोक्ता का एक करण से दूसरे करण में जाने का ढंग अलग हो सकता है और तदनुरूप हज़ारों वर्तना हो सकती हैं।

कल्लि० द्वारा कोटल के उद्धृत अंश के अनुसार वादन की मनोहारी क्रिया चालन होती है जिसके बिना नृत्त निष्प्राण शरीर जैसा रहता है (श्लो० ३४९-३५० पर कल्लि०)। यह सही है क्योंकि वादन के बिना नृत्य की कल्पना करना संभव ही नहीं है। चालन के आश्रित होने से 'चालक' संज्ञा समझी जाती है। दीप्तनर्तन में प्रयुक्त होने वाले वाद्य प्रबंधों और सालगसूड प्रबन्धों के केवल उद्धतखंडों में चालन प्रयुक्त होते हैं।

ना०शा० के बाद सभी ग्रंथकारों की रसचर्चा का आधार ना०शा० के छठे अध्याय का यह रससूत्र और उस पर अभिनव० (अभिनवगुप्त) की टीका रही है—विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः। इस संदर्भ में ना०शा० और अभि० में अनुकरण, अनुदर्शन, अनुकीर्तन, लोकधर्मी, नाट्यधर्मी, तादात्म्य, चर्वणा और वासना बड़े सार्थक शब्द आए हैं। अनुकरण अर्थात् जो पहले हो चुका है उसी को फिर से करना। उसी को फिर से देखना अनुदर्शन और उसकी बार-बार आवृत्ति करना अनुकीर्तन है, लेकिन जीवन में जैसा होता है ठीक वैसा ही नहीं, उससे कुछ भिन्न। भिन्न यों कि जैसे किसी ने किसी को डंडे से मारा और एक तीसरे व्यक्ति ने उस घटना को देखा। यह व्यक्ति किसी को यह घटना सुना कर मारने की क्रिया प्रत्यक्ष करके दिखाता है तो उतने ही बल के साथ नहीं मारता बल्कि नाट्य में कुछ कोमलता से करता है। लोकजीवन और नाट्य में यह अंतर होता है। नाट्य में जीवन ज्यों का त्यों प्रस्तुत नहीं किया जाता, अपितु दो तरह से प्रस्तुत किया जाता है। एक तो यह कि जीवन में जो होता आया है उसी का अभिनय किया जाता है, ऐसा कुछ नहीं होता जो जीवन में संभव न हो। वह लोक के अनुसार ही होता है इसलिए उसे लोकधर्मी कहा। लेकिन नाट्य की सीमाओं और विशेषताओं के कारण कुछ ऐसा भी करना ज़रूरी होता है जो लोकजीवन में इसी रूप में नहीं होता। जैसे व्यक्ति के भीतर चल रहे किसी विचार या भाव को बहुत लोगों से घिरे लोगों के बीच एक या कुछ पर ही व्यक्त करना। सामाजिकों (प्रेक्षकों) और रंगमंच पर अनेक व्यक्तियों के बीच ऐसा होने पर अभिनेता अपने गाल पर हथेली खड़ी रखकर बोले तो यह समझा जाता है कि जो कुछ कहा जाएगा उसे रंगमंच के व्यक्तिविशेष और प्रेक्षक ही सुन रहे हैं, शेष नहीं। अभिनय का यह प्रकार नाट्य की आवश्यकता है इसलिए इसे नाट्यधर्मी कहा गया।

लज्जा, भय, ईर्ष्या आदि भाव किसी कारण से उठते हैं। उठने के बाद वाणी और शरीर में कुछ कार्य होता है। लोक के कारण-कार्य के लिए रसप्रसंग में भाव को जोड़े रखकर विभाव-अनुभाव शब्द दिए। कुछ भावों का असर गहरा और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दीर्घकालिक तथा कुछ भाव जल में तरंग की तरह होते हैं। इसलिए स्थायी और संचारी शब्द आए। पूर्व अनुभवों की एक 'वास' (संस्कार) जो चित्त में स्थायी रूप से रह जाती है—'वासना'—वही स्थायी भाव है। नाट्य में लौकिक अनुभव से विलक्षणता यह है कि दुःखात्मक भाव भी आनन्दात्मक हो जाते हैं। अभिनव ने कहा—'सामाजिकानां हि हर्षैकफलं नाट्यं न शोकादि फलं' (ना०शा०, ६ अभि०, पृ० २८९)। नाट्य में लोक का अनुकरण, अनुदर्शन, अनुकीर्तन सामान्य जीवन से भिन्न अनुभव होता है। ऐसे अनुभव आस्वाद के लिए यह आवश्यक है कि प्रेक्षक निजसुखदुःख की विवशता यानी उस समय अपने लौकिक सुखदुःखों से मुक्त हो ताकि जो देखे उसके साथ 'तादात्म्य' हो सके। (जो कुछ देख-सुन रहा है उसी स्वरूप का हो जाए)। अभिनव ने कहा है कि 'पानक' (पीने वाले) रस में कई पदार्थों का मिश्रण होता है लेकिन पीते समय सबका अलग-अलग स्वाद नहीं बल्कि मिला-जुला एक नया, विलक्षण स्वाद होता है (ना०शा०, २८, अभि० पृ० ६३)। रसानुभूति में भी अनेक भावों के मिश्रण से अपूर्व आनंद होता है जो मन का व्यापार है जिसमें विभाव, अनुभाव, संचारी का संयोग होकर अनुभूति होती है। लेकिन आस्वादन रसानुभूति में रसना व्यापार नहीं, मानस व्यापार है और वह अविकल (अखंड) है; स्व-पर के विवेक से शून्य स्वाद है।

ना०शा० में रससूत्र पर दृष्टांत दिया गया कि जैसे गुड़ आदि द्रव्यों, व्यंजनों, औषधियों के संयोग से, इनके संस्कार से, 'पाक' (आग पर पकाने) से तैयार हुए व्यंजन का 'सुमनस' (अच्छे मन वाला) पुरुष चर्वणा (चबाने की क्रिया) के द्वारा रस ग्रहण करता है उसी तरह वाक् (वाजी), अंग और सत्त्व (मन) से युक्त अनेक भावों के संयोग से स्थायी भाव रस बन कर अच्छे मन वाले पुरुष के द्वारा अनुभूत होता है।

पिछले खंडों में शार्ङ्गदेव की अनेक शास्त्रों में विद्वत्ता का उल्लेख किया गया है। पूरे ग्रंथ का पुनरावलोकन करने से स्पष्ट होता है कि वे संगीतशास्त्र के विद्वान ही नहीं थे, वैणिक (वीणावादक) और वांशिक (वंशीवादक) भी थे। वेदांत, मीमांसा, व्याकरण, योग-तंत्र, काव्यशास्त्र, छन्दःशास्त्र, गणित आदि दर्शनों और शास्त्रों में निष्णात, आयुर्वेद में पारंगत और उसके अनुसार रोगनिवृत्ति में कुशल शार्ङ्गदेव देवगिरि राज्य के महालेखाकार भी थे जिसका सूचन ग्रंथ में अनेक बार अपने लिए श्रीकरणाधिपति, श्रीकरणेश्वर, श्रीकरणनाथ, श्रीकरणाग्रणी शब्दों के प्रयोग से होता है। उन्होंने काव्यशास्त्र और मीमांसा आदि दर्शनों की विशेष धारणाओं के द्वारा अपने तर्कों की पुष्टि कई जगह की है। आयुर्विधा पर उन्होंने 'अध्यात्मविवेक' नामक ग्रंथ की रचना की थी। वे परम शिवभक्त थे जो सात अध्यायों के मंगलाचरणों से और विभिन्न अध्यायों में उनके द्वारा अपने लिए शिवभक्तसूचक शिववल्लभ, महामाहेश्वर, श्रीशंकरप्रिय, हरप्रिय, शिवानुग्रहशुद्धधी, शंकरवल्लभ, शंकरानुचर, भववल्लभ, शंकरकिंकर, श्रीकण्ठवल्लभ, शंभुवल्लभ शब्दों का प्रयोग करने से सूचित होता है।

पिछले तीन खंडों की तरह इस खंड में भी 'सरस्वती' व्याख्या में टीकाकारों की व्याख्याओं की व्याख्या की है और आवश्यकतानुसार अपना मत भी दिया है। हालाँकि इस खंड में कल्लि० ने बहुत कम जगह पर व्याख्या की है लेकिन कुछ महत्त्वपूर्ण अंशों पर उनकी टीका ग्रंथकार के आशय को समझने में अत्यंत सहायक है। विशेष रूप से समकालीन नृत्त की क्रिया को समझने का जो प्रयत्न कल्लि० ने किया है वह बहुत स्पष्ट है और उसके आधार पर शार्ङ्गदेव के नृत्तकरणों को आज भी प्रयुक्त करना संभव है।

नृत्य मेरा विशेष अध्ययन का क्षेत्र न होने के कारण इस खंड का कार्य सबसे ज़्यादा कठिन, परिश्रम साध्य, चुनौती भरा और भूलों की आशंका से घिरा रहा। इसी कारण इस खंड में अपनी ओर से कोई विशेष व्याख्या संभव नहीं हुई। लेकिन एक ही व्यक्ति सब दृष्टियों से पूरा काम कर ही ले यह आवश्यक भी नहीं है। इसे पूरा करने में कम से कम दो वर्ष का समय लगने की मुझे आशा थी। लेकिन ईश्वर की कृपा से इस काम का पहला प्रारूप ६ महीने के रिकॉर्ड समय में ही पूरा हो गया। इस खंड में रही कमी का एक बड़ा कारण और भी था। पिछले चार सालों से मेरे गिरते स्वास्थ्य और उसमें होते रहे अकल्पित उतार-चढ़ावों से, जिनका तीसरे खंड की भूमिका में भी मैंने उल्लेख किया है, मुझे बराबर यह आशंका बनी रही कि कहीं यह कामं अधूरा ही न रह जाए। चारों खंडों का काम पूरा करने के संकल्प को खंडित होने से बचाने के लिए भी इस खंड में कुछ जल्दबाज़ी हुई। लेकिन मुझे आशा है कि नृत्य के सुधी पाठक मेरी इस मजबूरी को समझते हुए इस

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बात से संतुष्ट हो जाएँगे कि दोनों टीकाकारों की टीकाओं का यथासंभव उपयोग करते हुए नर्तनाध्याय का प्रामाणिक अन्वय-अनुवाद अब सरलता से उन्हें प्राप्य है। इसमें जो कमी रह गई है वे भावी शोधकर्ता और विद्वानों के कार्यों में दूर हो जाएँगी, इसका मुझे विश्वास है।

पिछले खंडों की तरह मूलग्रन्थ के पाठ के लिए आड्यार संस्करण को आधार रखा है। साथ ही आनन्दाश्रम संस्करण को भी ध्यान में लिया है। पाठसंशोधन में ना०शा०, अभि०, मान० और डॉ० तारळेकर के मराठी संस्करण से सहायता ली गई है।

विषय की स्पष्टता की दृष्टि से श्लोकों से पहले संस्कृत में और अनुवाद से पहले हिंदी में विषयानुसारी शीर्षक और उपशीर्षक दिए हैं।

ग्रंथ के चारों खंडों के पाठांतर, अन्वय, अनुवाद में विद्वान डॉ० ग०ह० तारळेकर के संगीतरत्नाकर के मराठी अनुवाद से मूल्यवान् सहायता मिली इसके लिए इस दिवंगत विद्वान के प्रति अत्यंत आभारी हूँ।

इस खंड में भी इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ के संगीतशास्त्र विभाग में प्रौफ़ेसर और विभागाध्यक्ष डॉ० अनिल बिहारी ब्योहार उपयोगी सुझाव देते रहे हैं। मैं उन्हें अधिकाधिक उत्कर्ष के लिए हार्दिक आशीर्वाद और धन्यवाद देती हूँ।

इस खंड के अन्वय और अनुवाद का परिष्कार करने में इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केंद्र की सेवानिवृत्त शोधअधिकारी और स्व० प्रो० प्रेमलता शर्मा की मौसेरी बहन अत्यंत विदुषी डॉ० उर्मिला शर्मा ने जिस लगन के साथ परिश्रम किया, उससे बहुत थोड़े समय में यह कार्य पूरा हो सका, उसके लिए उनके प्रति अत्यंत आभारी हूँ तथा उनके उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घायु की कामना करती हूँ।

प्रस्तुत कार्य के प्रकाशक राधा पब्लिकेशन्स दिल्ली के श्री नितिन गर्ग को इस खंड के सुरुचिपूर्ण प्रकाशन के लिए और श्री जयवीर सिंह, दिल्ली को शुद्ध टाइपिंग और सुंदर सैटिंग के लिए हृदय से धन्यवाद देती हूँ।

सुभद्रा चौधरी

फ़रीदाबाद (हरियाणा)
महाशिवरात्रि, फ़ाल्गुन, कृष्ण चतुर्दशी
गुरुवार, वि० संवत् २०६४
६ मार्च ई० सन् २००८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संकेत-सूची

(अ०)	'अन्वय (अन्वय और अनुवाद में)
अ०	अध्याय (संदर्भों में)
अभि०	अभिनवभारती
आड्०	आड्यार संस्करण
आनन्द०	आनन्दाश्रम संस्करण
कल्लि०	कल्लिनाथ
का०प्र०	काव्यप्रकाश
ना०शा०	नाट्यशास्त्र
पृ०	पृष्ठ
भा०प्र०	भावप्रकाशन
मान०	मानसोल्लास
शार्ङ्ग०	शार्ङ्गदेव
श्लो०	श्लोक
(सर०)	'सरस्वती' व्याख्या
सं०	संस्करण
सं०र०	संगीतरत्नाकर
सं०रा०	संगीतराज
सिंह०	सिंहभूपाल

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विषय-सूची

	श्लोकसंख्या	पृष्ठसंख्या
सातवाँ नर्तनाध्याय		१-४१३
मंगलाचरण	१	
प्रतिपाद्य विषय	२	
नर्तन	३क-३७	२-१४
नर्तन का विभाजन	३क-ख	
नर्तन की उत्पत्ति और लोक में प्रतिष्ठा	३ग-८	
नाट्यवेद की वेदों से सारसंग्रहता	९-१०ख	
नर्तन का प्रभाव और प्रयोजन	१०ग-१४ख	
नृत्त के प्रयोग के अवसर	१४ग-१६ख	
नाट्य का स्वरूप	१६ग-१९	
चार प्रकार का अभिनय और उनके लक्षण	२०-२२ख	
चतुर्विध अभिनय की दो प्रकार की इतिकर्तव्यता-लोकधर्मी, नाट्यधर्मी	२२ग-२३क	
दोनों की फिर से द्विविधता	२३ख-२४ख	
नाट्यधर्मी में कैशिकी वृत्ति	२४ग-२६ख	
नृत्य का लक्षण	२६ग-२७ख	
नृत्त का लक्षण	२७ग-२८ख	
नृत्य और नृत्त के दो अवान्तर भेद	२८ग-३०	
नृत्त के तीन भेद-विषम, विकट, लघु	३१-३२	
नाट्य	३३-३४	
आंगिक अभिनय के भेद-शाखा, अंकुर, सूची	३५-३७	
अध्याय का पदार्थसंग्रह	३८-४८	१४-१६
अंग	४९-३२९ख	१६-८७
अंग १—सिर (शिर)	४९-७८ख	
सिर के भेद—लक्षण और विनियोग	४९-७८ख	
धुत—(१)	५२-५३	
विधुत—(२)	५४	
आधूत—(३)	५५-५६ख	
अवधूत—(४)	५६ग-५७	
कंपित—(५)	५८-५९ख	

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आकंपित—(६)	५९ग-६०
उद्वाहित—(७)	६१
परिवाहित—(८)	६२-६३
अंचित—(९)	६४
निहंचित—(१०)	६५-७०ख
परावृत्त—(११)	७०ग-७१
उत्क्षिप्त—(१२)	७२
अधोमुख—(१३)	७३क-ख
लोलित—(१४)	७३ग-७४ख
शिर के अन्य प्रकार	७४ग-७८ख
तिर्यङ्नतोन्नत—(१)	७४ग-७५ख
स्कन्धानत—(२)	७५ग-७६ख
आरात्रिक—(३)	७६ग-७७ख
सम—(४)	७७ग-घ
पार्श्वाभिमुख—(५)	७८क-ख
अंग 2—हस्त	७८ग-२९६ख
हस्तभेदों का उद्देश	७८ग-९०
असंयुत हस्तों का उद्देश	७८ग-८२ख
संयुत हस्तों का उद्देश (भरत के मत से)	८२ग-८४
नृत्त हस्तों का उद्देश	८५-९०
आपत्तियाँ और निराकरण	९१-१०१
हस्तभेदों के लक्षण और विनियोग	१०२-२८६ख
(क) असंयुत हस्त	१०२-१८४
पताक—(१)	१०२-१०८
त्रिपताक—(२)	१०९-११६
अर्धचन्द्र—(३)	११७-११९ख
कर्तरीमुख—(४)	११९ग-१२१
अराल—(५)	१२२-१२८ख
मुष्टि—(६)	१२८ग-१३०ख
शिखर—(७)	१३०ग-१३१
कपित्थ—(८)	१३२-१३३
खटकामुख—(९)	१३४-१३७ख
शुकतुंड—(१०)	१३७ग-१३९
कांगूल—(११)	१४०-१४१
पद्मकोश—(१२)	१४२-१४३
अलपल्लव—(१३)	१४४-१४६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सूचीमुख—(१४)	१४७-१५१
सर्पशिरा—(१५)	१५२-१५३
चतुर—(१६)	१५४-१५८
मृगशीर्ष—(१७)	१५९-१६०
हंसास्य—(१८)	१६१-१६३ख
हंसपक्ष—(१९)	१६३ग-१६७ख
भ्रमर—(२०)	१६७ग-१६९ख
मुकुल—(२१)	१६९ग-१७३ख
ऊर्णनाभ—(२२)	१७३ग-१७५ख
संदंश—(२३)	१७५ग-१८१ख
ताम्रचूड—(२४)	१८१ग-१८४
(ख) संयुत हस्त	१८५-२१६ख
अंजलि—(१)	१८५-१८६ख
कपोत—(२)	१८६ग-१८८ख
कर्कट—(३)	१८८ग-१९२ख
स्वस्तिक—(४)	१९२ग-१९४
डोल—(५)	१९५-१९६ख
पुष्पपुट—(६)	१९६ग-१९७
उत्संग—(७)	१९८-२०१
खटकावर्धमान—(८)	२०२-२०४ख
गजदन्त—(९)	२०४ग-२०७
अवहित्थ—(१०)	२०८-२०९ख
निषध—(११)	२०९ग-२११
मकर—(१२)	२१२-२१३
वर्धमान—(१३)	२१४-२१६ख
(ग) नृत्तहस्त	२१६ग-२८६ख
चतुरश्र—(१)	२१६ग-२१७
उद्वृत्त—(२)	२१८-२२०
तलमुख—(३)	२२१-२२२ख
स्वस्तिक—(४)	२२२ग-घ
विप्रकीर्ण—(५)	२२३-२२४ख
अरालखटकामुख—(६)	२२४ग-२२९
आविद्धवक्त्र—(७)	२३०-२३१
सूच्यास्य—(८)	२३२-२३५ख
रेचित—(९)	२३५ग-२३७ख
अर्धरेचित—(१०)	२३७ग-घ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नितंब—(११)	२३८-२३९ख
पल्लव—(१२)	२३९ग-२४२ख
केशबन्ध—(१३)	२४२ग-२४३
उत्तानवंचित—(१४)	२४४-२४६ख
लताकर—(१५)	२४६ग-२४७
करिहस्त—(१६)	२४८-२५४
पक्षवंचित—(१७)	२५५क-ख
पक्षप्रद्योतक—(१८)	२५५ग-२५६
दंडपक्ष—(१९)	२५७-२५८
गरुड़पक्ष—(२०)	२५९-२६०ख
ऊर्ध्वमंडली—(२१)	२६०ग-२६२ख
पार्श्वमंडली—(२२)	२६२ग-२६४ख
उरोमंडली—(२३)	२६४ग-२६७ख
उरःपार्श्वार्धमंडल—(२४)	२६७ग-२६९
मुष्टिकस्वस्तिक—(२५)	२७०-२७१
नलिनीपद्मकोश—(२६)	२७२-२७६ख
अलपल्लव—(२७)	२७६ग-२७७ख
उल्बण—(२८)	२७७ग-२७८ख
ललित—(२९)	२७८ग-२८०ख
वलित—(३०)	२८०ग—२८२
मतान्तर से कहे गए तीन हस्त	२८३-२८६ख
निकुंचक—(१)	२८३
द्विशिखर—(२)	२८४—२८५ख
वरदाभय—(३)	२८५ग-२८६ख
हस्तों का उपसंहार	२८६ग-२८७
हस्तों की प्रधानता	२८८
अभिनयहस्तों का स्थाननियम	२८९-२९६ख
अंग ३—वक्ष	२९६ग-३०३ख
सम—(१)	२९७ग-२९८ख
आभुग्न—(२)	२९८ग-२९९
निर्भुग्न—(३)	३००-३०१ख
प्रकंपित—(४)	३०१ग-३०२ख
उद्वाहित—(५)	३०२ग-३०३ख
अंग ४—बाजू (पार्श्व)	३०३ग-३०६घ
विवर्तित—(१)	३०४ग-घ
अपसृत—(२)	३०५क-ख

प्रसारित—(३)	३०५ग-घ	
नत—(४)	३०६क-ख	
उन्नत—(५)	३०६ग-घ	
अंग ५—कमर (कटि)	३०७-३१२ख	
कंपिता—(१)	३०८	
उद्वाहिता—(२)	३०९	
छिन्ना—(३)	३१०	
विवृत्ता—(४)	३११	
रेचिता—(५)	३१२क-ख	
अंग ६—पैर (चरण)	३१२ग-३२५घ	
सम—(१)	३१५	
अंचित—(२)	३१६	
कुंचित—(३)	३१७	
सूची—(४)	३१८	
अग्रतलसंचर—(५)	३१९-३२०	
उद्घट्टित—(६)	३२१	
ताडित—(७)	३२२	
घटितोत्सेध—(८)	३२३क-ख	
घट्टित—(९)	३२३ग-घ	
मर्दित—(१०)	३२४क-ख	
अग्रग—(११)	३२४ग-घ	
पार्ष्णिग—(१२)	३२५क-ख	
पार्श्वग—(१३)	३२५ग-घ	
अंग ७—कन्धे	३२६-३२९ख	
एकोच्च—(१)	३२७क-ख	
कर्णलग्न—(२)	३२७ग-घ	
उच्छ्रित—(३)	३२८क	
स्रस्त—(४)	३२८ख-ग	
लोलित—(५)	३२८घ-३२९ख	
प्रत्यंग	३२९ग-३७७ख	८७-१०८
प्रत्यंग १—गर्दन	३२९ग-३३५ख	
गर्दन के प्रकार	३२९ग-३३५ख	
समा—(१)	३३०ग-घ	
निवृत्ता—(२)	३३१	
वलिता—(३)	३३२क-ख	
रेचिता—(४)	३३२ग-घ	

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कुंचिता—(५)	३३३क-ख
अंचिता—(६)	३३३ग-घ
त्र्यश्रा—(७)	३३४क-ख
नता—(८)	३३४ग-घ
उन्नता—(९)	३३५क-ख
प्रत्यंग (२)— बाँह	३३५ग-३५२
बाँह के प्रकार	३३५ग-३४७घ
ऊर्ध्वस्थ—(१)	३३८क-ख
अधोमुख—(२)	३३८ग
तिर्यक्—(३)	३३८घ
अपविद्ध—(४)	३३९क-ग
प्रसारित—(५)	३३९ग-घ
अंचित—(६)	३४०क-ख
मंडलगति—(७)	३४०ग-३४१ख
स्वस्तिक—(८)	३४१ग-३४२ख
उद्वेष्टित—(९)	३४२ग-३४३क
पृष्ठानुसारी—(१०)	३४३क-घ
आविद्ध—(११)	३४४क
कुंचित—(१२)	३४४ख-३४५ख
नम्र—(१३)	३४५ग-घ
सरल—(१४)	३४६
आन्दोलित—(१५)	३४७क
उत्सारित—(१६)	३४७ख-घ
वर्तना	३४८-३४९ख
चालक	३४९ग-३५२
प्रत्यंग ३, ४ — पीठ और पेट	३५३-३५६घ
क्षाम—(१)	३५४ग-घ
खल्ल—(२)	३५५
पूर्ण—(३)	३५६क-ख
रिक्तपूर्ण—(४)	३५६ग-घ
प्रत्यंग ५—जाँघ	३५७क-३६०घ
कंपित—(१)	३५७घ-३५८ख
वलित—(२)	३५८ग-घ
स्तब्ध—(३)	३५९क-ख
उद्वर्तित—(४)	३५९ग-३६०ख
निवर्तित—(५)	३६०ग-घ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रत्यंग ६—टाँग	३६१-३६८घ	
आवर्तिता—(१)	३६३	
नता—(२)	३६४क-ख	
क्षिप्ता—(३)	३६४ग-घ	
उद्वाहिता—(४)	३६५क-ख	
परिवर्तिता—(५)	३६५ग-घ	
नि:सृता—(६)	३६६क-ख	
परावृत्ता—(७)	३६६ग-३६७ख	
तिरश्चीना—(८)	३६७ग-घ	
बहिर्गता—(९)	३६८क-ख	
कंपिता—(१०)	३६८ग-घ	
प्रत्यंग ७—कलाई	३६९क-३७२ख	
निकुंच—(१)	३६९घ-३७०ख	
आकुंचित—(२)	३७०ग-घ	
चल—(३)	३७१क-ख	
भ्रामित—(४)	३७१ग-घ	
सम—(५)	३७२क-ख	
प्रत्यंग ८—घुटना	३७२ग-३७६घ	
संहत—(१)	३७३ग-घ	
कुंचित—(२)	३७४क-ख	
अर्धकुंचित—(३)	३७४ग-घ	
नत—(४)	३७५क-ख	
उन्नत—(५)	३७५ग-घ	
विवृत—(६)	३७६क-ख	
सम—(७)	३७६ग-घ	
प्रत्यंग ९—भूषण	३७७क-ख	
उपांग	३७७ग-५२६ख	१०८-१६०
सिर के उपांग	३७७ग-५१७ख	
उपांग १—दृष्टि	३७७ग-४३२ख	
(क) रसदृष्टियाँ	३८३-३९३ख	
कान्ता—(१)	३८३-३८४	
हास्य—(२)	३८५-३८६ख	
करुणा—(३)	३८६ग-३८७ख	
रौद्री—(४)	३८७ग-३८८ख	
वीरा—(५)	३८८ग-३९०ख	
भयानका—(६)	३९०ग-३९१ख	

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बीभत्सा—(७)	३९१ग-३९२ख
अद्भुता—(८)	३९२ग-३९३ख
(ख) स्थायी दृष्टियाँ	३९४क-४०२ख
स्निग्धा—(१)	३९४ग-३९५
हृष्टा—(२)	३९६
दीना—(३)	३९७
क्रुद्धा—(४)	३९८
दृप्ता—(५)	३९९क-ख
भयान्विता—(६)	३९९ग-४००ख
जुगुप्सिता—(७)	४००ग-४०१ख
विस्मिता—(८)	४०१ग-४०२ख
(ग) व्यभिचारी दृष्टियाँ	४०२ग-४३२ख
शून्या—(१)	४०३
मलिना—(२)	४०४-४०५
श्रान्ता—(३)	४०६
लज्जिता—(४)	४०७
शंकिता—(५)	४०८-४०९ख
मुकुला—(६)	४०९ग-४१०ख
अर्धमुकुला—(७)	४१०ग-४११ख
ग्लाना—(८)	४११ग-४१२ख
जिह्मा—(९)	४१२ग-४१३
कुंचिता—(१०)	४१४-४१५ख
वितर्किता—(११)	४१५ग-४१६ख
अभितप्ता—(१२)	४१६ग-४१७
विषण्णा—(१३)	४१८
ललिता—(१४)	४१९
आकेकरा—(१५)	४२०-४२१ख
विकोशा—(१६)	४२१ग-४२२
विभ्रान्ता—(१७)	४२३-४२४ख
विलुप्ता—(१८)	४२४ग-४२५ख
त्रस्ता—(१९)	४२५ग-घ
मदिरा—(२०)	४२६-४३०ख
उपांग २—भौंह	४३२ग-४३९
सहजा—(१)	४३३ग-घ
पतिता—(२)	४३४-४३५ख
उत्क्षिप्ता—(३)	४३५ग-४३६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रेचिता—(४)	४३७क-ख
निकुंचिता—(५)	४३७ग-४३८ख
भ्रुकुटी—(६)	४३८ग-घ
चतुरा—(७)	४३९
उपांग ३—पलकें	४४०-४४६ख
प्रसृत—(१)	४४१ग-घ
कुंचित—(२)	४४२क-ख
उन्मेषित, निमेषित, विवर्तित—(३, ४, ५)	४४२ग-४४३ख
स्फुरित—(६)	४४३ग-घ
पिहित—(७)	४४४
विचालित—(८)	४४५
सम—(९)	४४६क-ख
उपांग ४—पुतली	४४६ग-४६०घ
(क) स्वनिष्ठ कर्म	४४९क-४५४ख
भ्रमण—(१)	४४९क-ख
वलन—(२)	४४९ग
पात—(३)	४४९घ
चलन—(४)	४५०क
प्रवेशन—(५)	४५०ख-ग
विवर्तन—(६)	४५०घ
समुद्वृत्त—(७)	४५१क
निष्क्राम—(८)	४५१ख-ग
प्राकृत—(९)	४५१ग-घ
(ख) विषयनिष्ठ कर्म	४५४ग-४६०घ
सम—(१)	४५६ग-घ
साचि—(२)	४५७क-ख
अनुवृत्त—(३)	४५७ग-४५८ख
अवलोकित—(४)	४५८ग-घ
विलोकित—(५)	४५९क-ख
उल्लोकित—(६)	४६९ग-घ
आलोकित—(७)	४६०क-ख
प्रविलोकित—(८)	४६०ग-घ
उपांग ५—गाल	४६१ग-४६५ख
कुंचित—(१)	४६२ग-घ
कंपित—(२)	४६३क-ख
पूर्ण—(३)	४६३ग-घ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

क्षाम—(४)	४६४क-ख
फुल्ल—(५)	४६४ग-घ
सम—(६)	४६५क-ख
उपांग ६—नाक	४६५ग-४७१ख
स्वाभाविकी—(१)	४६६ग-घ
नता—(२)	४६७
मन्दा—(३)	४६८
विकृष्टा—(४)	४६९
विकूणिता—(५)	४७०क-ख
सोच्छ्वसा—(६)	४७०ग-४७१ख
उपांग ७—वायु	४७१ग-४८७
स्वस्थ—(१)	४७४ग-४७५ख
चल—(२)	४७५ग-४७६ख
प्रवृद्ध—(३)	४७६ग-४७७ख
निरस्त—(४)	४७७ग-४७८ख
उल्लासित—(५)	४७८ग-४७९ख
विमुक्त—(६)	४७९ग-४८०ख
विस्मित—(७)	४८०ग-४८१ख
स्खलित—(८)	४८१ग-४८२ख
प्रसृत—(९)	४८२ग-घ
मतान्तर से दस प्रकार की वायु	४८३-४८७
उपांग ८—ओठ	४८८-४९६ख
विवर्तित—(१)	४८९ग-४९०ख
कंपित—(२)	४९०ग-घ
विसृष्ट—(३)	४९१
विनिगूहित—(४)	४९२
संदष्टक—(५)	४९३क-ख
समुद्ग—(६)	४९३ग-४९४ख
उद्वृत्त—(७)	४९४ग-घ
विकासी—(८)	४९५क-ख
आयत—(९)	४९५ग-घ
रेचित—(१०)	४९६क-ख
उपांग ९—दन्त कर्म	४९६ग-५०२घ
कुट्टन—(१)	४९८क-ख
खंडन—(२)	४९८ग-४९९ख
छिन्न—(३)	४९९ग-५००ख

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चुक्कित—(४)	५००ग-घ
ग्रहण—(५)	५०१क-ख
सम—(६)	५०१ग-घ
दष्ट—(७)	५०२क-ख
निष्कर्षण—(८)	५०२ग-घ
उपांग १०—जीभ	५०३क-५०६घ
ऋज्वी—(१)	५०३घ-५०४ख
सृक्कानुगा—(२)	५०४ग-घ
वक्रा—(३)	५०५क-ख
उन्नता—(४)	५०५ग-घ
लोला—(५)	५०६क-ख
लेहिनी—(६)	५०६ग-घ
उपांग ११—ठोडी	५०७-५१२घ
व्यादीर्ण—(१)	५०९क-ख
श्वसित—(२)	५०९ग-घ
वक्र—(३)	५१०क-ख
संहत—(४)	५१०ग-घ
चलसंहत—(५)	५११क-ख
स्फुरित—(६)	५११ग-घ
चलित—(७)	५१२क-ख
लोल—(८)	५१२ग-घ
उपांग १२—वदन	५१३-५१७ख
व्याभुग्न—(१)	५१४
भुग्न—(२)	५१५क-ख
उद्वाहि—(३)	५१५ग-घ
विधुत—(४)	५१६क-ख
विवृत—(५)	५१६ग-घ
विनिवृत्त—(६)	५१७क-ख
अन्य उपांग	५१७ग-५२६ख
एड़ी	५१७ग-५१८
टख़ने	५१९
हाथ की उँगलियाँ	५२०-५२१ख
पैर की उँगलियाँ	५२१ग-५२५ख
अधःक्षिप्ता—(१)	५२२ग-घ
उत्क्षिप्ता—(२)	५२३क-ख
कुंचिता—(३)	५२३ग-घ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रसारिता—(४)	५२४क-ख	
संलग्ना—(५)	५२५क-ख	
मुखराग	५२६ग-५३१	१६०-१६२
मुखराग के प्रकार	५२७ग-५३०ख	
स्वाभाविक—(१)	५२८ख-घ	
प्रसन्न—(२)	५२९क-ख	
रक्त—(३)	५२९ग-घ	
श्याम—(४)	५३०क-ख	
हस्तप्रचार	५३२-५३७ख	१६२-१६३
हस्तप्रचार के प्रकार	५३२-५३३	
हस्तप्रचार के लक्षण	५३४-५३७ख	
हस्तकरण	५३७ग-५४३ख	१६३-१६६
हस्तकरण के प्रकार	५३८ग-५४३ख	
आवेष्टित—(१)	५३९ग-५४०	
उद्वेष्टित—(२)	५४१	
व्यावर्तित और परिवर्तित—(३, ४)	५४२-५४३ख	
करकर्म	५४३ग-५४५	१६६-१६७
हस्तक्षेत्र	५४६-५४७ख	१६७
नृत्तकरण	५४७ग-७४९ख	१६७-२१३
मंगलाचरण	५४७ग-५४८ख	
करणों का उद्देश	५५०-५६६ख	
करणों के लक्षण	५६६ग-७४९ख	
तलपुष्पपुट—(१)	५६८-५७१	
लीन—(२)	५७२-५७३ख	
वर्तित—(३)	५७३ग-५७६ख	
वलितोरु—(४)	५७६ग-५७८	
मंडलस्वस्तिक—(५)	५७९-५८०	
वक्षःस्वस्तिक—(६)	५८१-५८२	
आक्षिप्तरेचित—(७)	५८३-५८५ख	
अर्धस्वस्तिक—(८)	५८५ग-५८७ख	
दिक्स्वस्तिक—(९)	५८७ग-५८९ख	
पृष्ठस्वस्तिक—(१०)	५८९ग-५९२ख	
स्वस्तिक—(११)	५९२ग-५९३	
अंचित—(१२)	५९४-५९५ख	
अपविद्ध—(१३)	५९५ग-५९७	
समनख—(१४)	५९८	

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उन्मत्त—(१५)	५९९
स्वस्तिकरेचित—(१६)	६००-६०३ख
निकुट्टक—(१७)	६०३ग-६०६
अर्धनिकुट्ट—(१८)	६०७
कटीछिन्न—(१९)	६०८-६०९
कटीसम—(२०)	६१०-६१२
भुजंगत्रासित—(२१)	६१३-६१४
अलात—(२२)	६१५-६१६ख
विक्षिप्ताक्षिप्तक—(२३)	६१६ग-६२१ख
निकुंचित—(२४)	६२१ग-६२३
घूर्णित—(२५)	६२४-६२५
उर्ध्वजानु—(२६)	६२६-६२७
अर्धरेचित—(२७)	६२८-६२९
मत्तल्लि—(२८)	६३०-६३१ख
अर्धमत्तल्लि—(२९)	६३१ग-६३२
रेचकनिकुट्टक—(३०)	६३३
ललित—(३१)	६३४
वलित—(३२)	६३५-६३६ख
दण्डपक्ष—(३३)	६३६ग-६३७
पादापविद्धक—(३४)	६३८-६३९ख
नूपुर—(३५)	६३९ग-६४०
भ्रमर—(३६)	६४१-६४२
छिन्न—(३७)	६४३-६४४ख
भुजंगत्रस्तरेचित—(३८)	६४४ग-६४५ख
भुजंगांचित—(३९)	६४५ग-६४६ख
दंडरेचित—(४०)	६४६ग-६४७
चतुर—(४१)	६४८-६४९ख
कटिभ्रान्त—(४२)	६४९ग-६५२ख
व्यंसित—(४३)	६५२ग-६५४
क्रान्त—(४४)	६५५-६५७ख
वैशाखरेचित—(४५)	६५७ग-६५८ख
वृश्चिक—(४६)	६५८ग-६५९
वृश्चिककुट्टित—(४७)	६६०-६६१ख
वृश्चिकरेचित—(४८)	६६१ग-६६२ख
लतावृश्चिक—(४९)	६६२ग-६६३ख
आक्षिप्त—(५०)	६६३ग-६६४ख

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अर्गल—(५१)	६६४ग-६६६
तलविलासित—(५२)	६६७-६६८ख
ललाटतिलक—(५३)	६६८ग-६६९ख
पार्श्वनिकुट्टक—(५४)	६६९ग-६७०
चक्रमण्डल—(५५)	६७१-६७२ख
उरोमण्डल—(५६)	६७२ग-६७३ख
आवर्त—(५७)	६७३ग-६७४ख
कुंचित—(५८)	६७४ग-६७५
डोलापाद—(५९)	६७६
विवृत्त—(६०)	६७७-६७८ख
विनिवृत्त—(६१)	६७८ग-६८०ख
पार्श्वक्रान्त—(६२)	६८०ग-६८१
निशुंभित—(६३)	६८२-६८३
विद्युद्भ्रान्त—(६४)	६८४-६८५ख
अतिक्रान्त—(६५)	६८५ग-६८६ख
विक्षिप्त—(६६)	६८६ग-६८८ख
विवर्तित—(६७)	६८८ग-६८९ख
गजविक्रीडित—(६८)	६८९ग-६९०ख
गण्डसूचि—(६९)	६९०ग-६९२
गरुडप्लुत—(७०)	६९३
तलसंस्फोटित—(७१)	६९४-६९५ख
पार्श्वजानु—(७२)	६९५ग-६९६
गृध्रावलीनक—(७३)	६९७
सूचि—(७४)	६९८-६९९
अर्धसूचि—(७५)	७००क-ख
सूचीविद्ध—(७६)	७००ग-७०१
हरिणप्लुत—(७७)	७०२
परिवृत्त—(७८)	७०३
दण्डपाद—(७९)	७०४-७०५ख
मयूरललित—(८०)	७०५ग-७०६ख
प्रेंखोलित—(८१)	७०६ग-७०७ख
संनत—(८२)	७०७ग-७०८ख
सर्पित—(८३)	७०८ग-७०९
करिहस्त—(८४)	७१०-७११ख
प्रसर्पित—(८५)	७११ग-७१२
अपक्रान्त—(८६)	७१३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नितंब—(८७)	७१४-७१५	
स्खलित—(८८)	७१६	
सिंहविक्रीडित—(८९)	७१७-७१८ख	
सिंहाकर्षित—(९०)	७१८ग-७१९	
अवहित्थ—(९१)	७२०-७२३	
निवेश—(९२)	७२४	
एडकाक्रीडति—(९३)	७२५-७२६ख	
जनित—(९४)	७२६ग-७२७ख	
उपसृत—(९५)	७२७ग-७२८	
तलसंघट्टित—(९६)	७२९-७३०	
उद्वृत्त—(९७)	७३१	
विष्णुक्रान्त—(९८)	७३२	
लोलित—(९९)	७३३-७३४ख	
मदस्खलित—(१००)	७३४ग-७३५	
संभ्रान्त—(१०१)	७३६-७३७ख	
विष्कम्भ—(१०२)	७३७ग-७३९	
उद्घट्टित—(१०३)	७४०	
शकटास्य—(१०४)	७४१-७४२ख	
उरूद्वृत्त—(१०५)	७४२ग-७४३	
वृषभक्रीडित—(१०६)	७४४-७४५ख	
नागापसर्पित—(१०७)	७४५ग-७४६	
गंगावतरण—(१०८)	७४७-७४८ख	
उत्प्लुतिकरण	७४९ग-७८९ख	२१३-२२६
उत्प्लुतिकरणों का उद्देश	७५०ग-७५७ख	
उत्प्लुतिकरणों के लक्षण	७५७ग-७८९ख	
अंचित—(१)	७५७ग-घ	
एकचरणांचित—(२)	७५८क-ख	
भैरवांचित—(३)	७५८ग-घ	
दंडप्रणामांचित—(४)	७५९	
कर्तर्यंचित—(५)	७६०क-ख	
अलग—(६)	७६०ग-७६१ख	
कूर्मालग—(७)	७६१ग-घ	
ऊर्ध्वालग—(८)	७६२क-ख	
अंतरालग—(९)	७६२ग-७६३ख	
लोहडी अथवा लुठित—(१०)	७६३ग-७६४ख	
कर्तरीलोहडी—(११)	७६४ग-घ	

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एकपादलोहडी—(१२)	७६५क-ख	
दर्पसरण—(१३)	७६५ग-७६६ख	
जलशयन—(१४)	७६६ग-घ	
नागबन्ध—(१५)	७६७क-ख	
कपालचूर्णन—(१६)	७६७ग-७६८ख	
नतपृष्ठ—(१७)	७६८ग-७६९ख	
मत्स्यकरण—(१८)	७६९ग-७७०ख	
करस्पर्शन—(१९)	७७०ग-७७१ख	
एणप्लुत—(२०)	७७१ग-७७२ख	
तिर्यक्करण—(२१)	७७२ग-७७३ग	
तिर्यगंचित—(२२)	७७३ग-घ	
तिर्यक्स्वस्तिक—(२३)	७७४क-ख	
सूच्यन्त—(२४)	७७४ग-७७५ख	
बाह्यभ्रमरी—(२५)	७७५ग-७७६ख	
अन्तर्भ्रमरी—(२६)	७७६ग-घ	
छत्रभ्रमरी—(२७)	७७७	
तिरिपभ्रमरी—(२८)	७७८क-ख	
अलगभ्रमरी—(२९)	७७८ग-७७९ख	
चक्रभ्रमरी—(३०)	७७९ग-घ	
उचितभ्रमरी—(३१)	७८०	
शिरोभ्रमरी—(३२)	७८१	
दिग्भ्रमरी—(३३)	७८२	
समपादांचित—(३४)	७८३-७८४ख	
भ्रान्तपादांचित—(३५)	७८४ग-७८६ख	
स्कन्धभ्रान्त—(३६)	७८६ग-७८८ख	
अंगहार	७८९ग-८९१	२२६-२४५
अंगहार का निरुक्तिपूर्वक लक्षण	७९०ग-७९४ख	
अंगहारों का उद्देश्य-चतुरश्र, त्र्यश्र, उनका कालप्रमाण	७९४ग-८८८ख	
(क) चतुरश्र अंगहार	८०२ग-८३९ख	
स्थिरहस्त—(१)	८०२ग-८०५	
पर्यस्तक—(२)	८०६-८०७	
सूचीविद्ध—(३)	८०८-८०९	
अपराजित—(४)	८१०-८११	
वैशाखरेचित—(५)	८१२-८१४ख	
पार्श्वस्वस्तिक—(६)	८१४ग-८१६	
भ्रमर—(७)	८१७-८१८ख	

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आक्षिप्त—(८)	८१८ग-८२०ख	
परिछिन्न—(९)	८२०ग-८२२ख	
मदविलसित—(१०)	८८२ग-८२५ख	
आलीढ—(११)	८२५ग-८२७ख	
आच्छुरित—(१२)	८२७ग-८२८	
पार्श्वछेद—(१३)	८२९-८३०	
अपसर्पित—(१४)	८३१-८३३ख	
मत्ताक्रीड—(१५)	८३३ग-८३६	
विद्युद्भ्रान्त—(१६)	८३७-८३९ख	
(ख) त्र्यश्र अंगहार	८३९ग-८८८ख	
विष्कंभापसृत—(१)	८३९ग-८४१ख	
मत्तस्खलित—(२)	८४१ग-८४३ख	
गतिमंडल—(३)	८४३ग-८४५ख	
अपविद्ध—(४)	८४५ग-८४७ख	
विष्कंभ—(५)	८४७ग-८४९ख	
उद्घट्टित—(६)	८४९ग-८५०ख	
आक्षिप्तरेचित—(७)	८५०ग-८५८ख	
रेचित—(८)	८५८ग-८६५ख	
अर्धनिकुट्टक—(९)	८६५ग-८६८	
वृश्चिकापसृत—(१०)	८६९-८७०	
अलातक—(११)	८७१-८७२	
परावृत्त—(१२)	८७३-८७५ख	
परिवृत्तकरेचित—(१३)	८७५ग-८८०	
उद्वृत्त—(१४)	८८१-८८३ख	
संभ्रान्त—(१५)	८८३ग-८८६ख	
स्वस्तिकरेचित—(१६)	८८६ग-८८८ख	
रेचक	८९२-८९६ख	२४५-२४६
पादरेचक	८९३	
कररेचक	८९४-८९५ख	
कटीरेचक	८९५ग-ख	
कंठरेचक	८९६क-ख	
चारी	८९७-१०१७ख	२४७-२८१
व्यायाम और उसके भेद	८९८-९०१	
चारी के भेद	९०२क-ख	
मार्ग चारियों में भौमी का उद्देश	९०२ग-९०४	
मार्ग चारियों में आकाशिकी का उद्देश	९०५-९०७	

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

देशी चारियों में भौमी का उद्देश	९०८-९१३ख
देशी चारियों में आकाशिकी का उद्देश	९१३ग-९१६
मार्ग चारियों के लक्षण	९१७-९६५
(क) भौमी	९१७क-९४२ख
समपादा—(१)	९१७ग-९१८
स्थितावर्ता—(२)	९१९-९२०ख
शकटास्या—(३)	९२०ग-९२१
विच्यवा—(४)	९२२
अध्यर्धिका—(५)	९२३-९२४
चाषगति—(६)	९२५-९२६
एडकाक्रीडिता—(७)	९२७
समोत्सरितमत्तल्ली—(८)	९२८-९२९
मत्तल्ली—(९)	९३०-९३१ख
उत्स्पन्दिता—(१०)	९३१ ग-९३३
अड्डिता—(११)	९३४
स्पन्दिता—(१२)	९३५
अवस्पन्दिता—(१३)	९३६क-ख
बद्धा—(१४)	९३६ग-९३७
जनिता—(१५)	९३८-९३९ख
अरूद्वृत्ता—(१६)	९३९ग-९४१ख
(ख) आकाशिकी	९४२ग-९६५
अतिक्रान्ता—(१)	९४२ग-९४४ख
अपक्रान्ता—(२)	९४४ग-९४५ख
पार्श्वक्रान्ता—(३)	९४५ग-९४७
मृगप्लुता—(४)	९४८-९४९ख
ऊर्ध्वजानु—(५)	९४९ग-९५०ख
अलाता—(६)	९५०ग-९५१ख
सूची—(७)	९५१ग-९५२
नूपुरपादिका—(८)	९५३-९५४ख
डोलापादा—(९)	९५४ग-९५५ख
दंडपादा—(१०)	९५५ग--९५६
विद्युद्भ्रान्ता—(११)	९५७
भ्रमरी—(१२)	९५८-९५९ख
भुजंगत्रासिता—(१३)	९५९ग-९६१ख
आक्षिप्ता—(१४)	९६१ग-९६२
आविद्धा—(१५)	९६३-९६४ख
उद्वृत्ता—(१६)	९६४ग-९६५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चारियों का सामान्य विनियोग	९६६
हस्ताभिनय और चारियों का गौण-प्रधान संबंध	९६७-९७१
देशी-चारियाँ	९७२-१०१७ख
(क) भौमी चारियाँ	९७२-१००१ख
रथचक्रा—(१)	९७२
परावृत्ततला—(२)	९७३
नूपुरविद्धा—(३)	९७४
तिर्यङ्मुखा—(४)	९७५
मराला—(५)	९७६
करिहस्ता—(६)	९७७
कुलीरिका—(७)	९७८क-ख
विश्लिष्टा—(८)	९७८ग-९७९ख
कातरा—(९)	९७९ग-घ
पार्ष्णिरेचिता—(१०)	९८०
उरुताडिता—(११)	९८१
उरुवेणी—(१२)	९८२
तलोद्वृत्ता—(१३)	९८३
हरिणत्रासिका—(१४)	९८४
अर्धमंडलिका—(१५)	९८५
तिर्यक्कुंचिता—(१६)	९८६
मदालसा—(१७)	९८७
तिर्यक्संचारिता—(१८)	९८८
उत्कुञ्चिता—(१९)	९८९
स्तंभक्रीडनिका—(२०)	९९०
लंघितजंघिका—(२१)	९९१
स्फुरिता—(२२)	९९२क-ख
अवकुंचिता—(२३)	९९२ग-घ
संघट्टिता—(२४)	९९३
खुत्ता—(२५)	९९४क-ख
स्वस्तिका—(२६)	९९४ग-घ
तलदर्शिनी—(२७)	९९५
पुराटिका—(२८)	९९६क-ख
अर्धपुराटिका—(२९)	९९६ग-९९७ख
सरिका—(३०)	९९७ग-घ
स्फुरिका—(३१)	९९८क-ख
निकुट्टिका—(३२)	९९८ग-घ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लताक्षेप—(३३)	९९९	
अड्डुस्खलितिका—(३४)	१०००क-ख	
समस्खलितिका—(३५)	१०००ग-१००१ख	
(ख) आकाशिकी चारियाँ	१००१ग-१०१७ख	
विद्युद्भ्रान्ता—(१)	१००१ग-१००२ख	
पुरःक्षेपा—(२)	१००२ग-१००३ख	
विक्षेपा—(३)	१००३ग-१००४ख	
हरिणप्लुता—(४)	१००४ग-घ	
अपक्षेपा—(५)	१००५	
डमरी—(६)	१००६क-ख	
दंडपादा—(७)	१००६ग-१००७ख	
आंघ्रिताडिता—(८)	१००७ग-१००८ख	
जंघालंघनिका—(९)	१००८ग-१००९ख	
अलाता—(१०)	१००९ग-घ	
जंघावर्ता—(११)	१०१०	
वेष्टन—(१२)	१०११	
उद्वेष्टन—(१३)	१०१२क-ख	
उत्क्षेप—(१४)	१०१२ग-१०१३ख	
पृष्ठोत्क्षेप—(१५)	१०१३ग-घ	
सूची—(१६)	१०१४	
विद्धा—(१७)	१०१५	
प्रावृत—(१८)	१०१६	
उल्लोल—(१९)	१०१७क-ख	
स्थानक	१०१७ग-११११ख	२८१-३०४
स्थानकों का उद्देश	१०१९ग-१०२२ख	
देशी स्थानकों का उद्देश	१०२२ग-१०२६ख	
अन्य स्थानक	१०२६ग-१०३१ख	
स्थानकों के लक्षण	१०३१ग-११११ख	
पुरुषों के स्थानक	१०३१ग-१०५४	
वैष्णव—(१)	१०३१ग-१०४०	
समपाद—(२)	१०४१-१०४३ख	
वैशाख—(३)	१०४३ग-१०४५	
मंडल—(४)	१०४६-१०४८	
आलीढ—(५)	१०४९-१०५१ख	
प्रत्यालीढ—(६)	१०५२-१०५३ख	

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्त्रियों के स्थानक	१०५५-१०७३ख
आयत—(१)	१०५५-१०६२
अवहित्थ—(२)	१०६३-१०६५ख
अश्वक्रान्त—(३)	१०६५ग-१०६८
गतागत—(४)	१०६९
वलित—(५)	१०७०-१०७१ख
मोटित—(६)	१०७१ग-१०७२
विनिवर्तित—(७)	१०७३क-ख
देशी स्थानक	१०७३ग-१०९४
स्वस्तिक—(१)	१०७३ग-१०७४ख
वर्धमान—(२)	१०७४ग-घ
नन्द्यावर्त—(३)	१०७५
संहत—(४)	१०७६
समपाद—(५)	१०७७
एकपाद—(६)	१०७८
पृष्ठोत्तानतल—(७)	१०७९
चतुरश्र—(८)	१०८०
पार्ष्णिविद्ध—(९)	१०८१क-ख
पार्ष्णिपार्श्वगत—(१०)	१०८१ग-घ
एकपार्श्वगत—(११)	१०८२
एकजानुनत—(१२)	१०८३
परावृत्त—(१३)	१०८४क-ख
समसूचि—(१४)	१०८४ग-१०८५ख
विषमसूचि—(१५)	१०८५ग-१०८६
खंडसूचि—(१६)	१०८७
ब्राह्म—(१७)	१०८८
वैष्णव—(१८)	१०८९
शैव—(१९)	१०९०
गारुड—(२०)	१०९१
कूर्मासन—(२१)	१०९२
नागबन्ध—(२२)	१०९३
वृषभासन—(२३)	१०९४
बैठने के स्थानक	१०९५-११०६ख
स्वस्थ—(१)	१०९५
मदालस—(२)	१०९६-१०९७ख
क्रान्त—(३)	१०९७ग-१०९८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विष्कंभित—(४)	१०९९-११००ख	
उत्कट—(५)	११००ग-११०१ख	
स्त्रस्तालस—(६)	११०१ग-११०२	
जानुगत—(७)	११०३-११०४ख	
मुक्तजानु—(८)	११०४ग-११०५	
विमुक्त—(९)	११०६क-ख	
सोने के स्थानक	११०६ग-११११ख	
सम—(१)	११०६ग-घ	
आकुंचित—(२)	११०७	
प्रसारित—(३)	११०८	
विवर्तित—(४)	११०९क-ख	
उद्वाहित—(५)	११०९ग-१११०ख	
नत—(६)	१११०ग-११११ख	
वृत्ति	११११ग-११२८ख	३०४-३०८
वृत्ति के प्रकार	१११२-१११३	
वृत्ति के लक्षण	१११४-११२०ख	
भारती	१११४	
सात्त्वती	१११५-१११६	
आरभटी	१११७-१११८ख	
कैशिकी	१११८ग-११२०ख	
वृत्तियों के अवान्तर भेद	११२०ग-११२८ख	
न्याय	११२८ग-११४१	३०८-३१०
न्याय के प्रकार	११२९ग-११३०	
प्रविचार	११३१-११४१	
मंडल	११४२-१२०५	३१०-३२२
मंडल के भेदों का नाम सूचन एवं विनियोग	११४३-११४८	
मंडल के लक्षण	११४९-१२०५	
भौम मंडल	११४९-११७३	
भ्रमर—(१)	११४९-११५१ख	
आस्कंदित—(२)	११५१ग-११५३	
आवर्त—(३)	११५४-११५७	
शकटास्य—(४)	११५८-११५९	
अड्डित—(५)	११६०-११६३	
समोत्सरित—(६)	११६४-११६६	
अध्यर्ध—(७)	११६७-११६८	
एडकाक्रीडित—(८)	११६९-११७१खं	

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पिष्टकुट्ट—(९)	११७१ग-११७२	
चाषगत—(१०)	११७३	
आकाशिक मंडल	११७४-१२०५	
अतिक्रान्त—(१)	११७४-११७७ख	
दंडपाद—(२)	११७७ग-११८०ख	
क्रान्त—(३)	११८०ग-११८२ख	
ललितसंचर—(४)	११८२ग-११८६ख	
सूचीविद्ध—(५)	११८६ग-११८८ख	
वामविद्ध—(६)	११८८ग-११९१	
विचित्र—(७)	११९२-११९५ख	
विहृत—(८)	११९५ग-११९८	
अलात—(९)	११९९-१२०२ ख	
ललित—(१०)	१२०२ग-१२०५	
लास्यांग	१२०६-१२१५घ	३२२-३२५
लास्यांगों के लक्षण	१२०७ग-१२१५ घ	
चालि—(१)	१२०७ग-१२०९ क	
चालिवड—(२)	१२०९क-ख	
लदि—(३)	१२०९ग-१२१०ख	
सूक—(४)	१२१०ग-१२११ख	
उरोंगण—(५)	१२११ग-१२१२ख	
धसक—(६)	१२१२ग-घ	
अंगहार—(७)	१२१३	
ओयारक—(८)	१२१४क-ख	
विहसी—(९)	१२१४ग-१२१५ख	
मन—(१०)	१२१५ग-घ	
रेखा	१२१६	३२६
श्रम	१२१७-१२२३	३२६-३२७
पात्र	१२२४-१२४७ख	३२७-३३१
पात्र के प्रकार	१२२४	
पात्र के लक्षण	१२२५-१२३०	
पात्र के गुण	१२३१-१२३६	
पात्र के दोष	१२३७-१२३९ख	
पात्र के अलंकरण	१२३९ग-१२४७ख	
उपाध्याय का लक्षण	१२४७ग-१२५१	३३१-३३२
संप्रदाय	१२५२-१२५९	३३२-३३३
संप्रदाय का लक्षण	१२५२-१२५८ख	
संप्रदाय के गुण-दोष	१२५८ग-१२५९	

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संप्रदाय की शुद्ध पद्धति	१२६०-१२७३ख	३३३-३३५
गौण्डली विधि	१२७३ग-१३०१ख	३३५-३४०
पेरणी	१३०१ग-१३२५ख	३४०-३४५
पेरणी का लक्षण	१३०१ग-१३०३ख	
पेरणी के पाँच अंग	१३०३ग-१३०४	
घर्घर का लक्षण	१३०५-१३०६ख	
पडिवाट—(१)	१३०६ग-१३०७ख	
अपडप—(२)	१३०७ग-घ	
सिरिपट—(३)	१३०८	
अलगपाट—(४)	१३०९	
सिरिहिर—(५)	१३१०-१३११	
खलुहुल—(६)	१३१२-१३१४ख	
विषम आदि शेष चार अंगों के लक्षण	१३१४ग-१३१६ख	
पेरणी पद्धति	१३१६ग-१३२५ख	
आचार्य	१३२५ग-१३२६	३४५
नट	१३२७क-ख	३४५-३४६
नर्तक	१३२७ग-घ	३४६
वैतालिक	१३२८	३४६
चारण	१३२९	३४६-३४७
कोल्हाटिक	१३३०-१३३१ख	३४७
सभासद	१३३१ग-१३३३	३४७
सभापति का लक्षण	१३३४-१३४०ख	३४८-३४९
सभा का संनिवेश	१३४०ग-१३५०	३४९-३५०
रस निरूपण	१३५१-१६७१ख	३५०-४११
रस का सामान्य लक्षण	१३५१-१३५८ख	
रसों का उद्देश	१३५८ग-१३६०ख	
रस के आश्रय	१३६०ग-१३६२ख	
स्थायी भावों का उद्देश	१३६२ग-१३६७ख	
व्यभिचारी भावों का उद्देश	१३६७ग-१३७०ख	
सात्विक भावों का उद्देश	१३७०ग-१३७१ख	
रसों का परस्पर जन्य-जनक भाव	१३७१ग-१३७६	
रसों के रंग और देवता	१३७७-१३७९ख	
रस आदि के विशेष लक्षण	१३७९ग-१५२२	
श्रृंगाररस—(१)	१३८०-१४१५	
रति का लक्षण	१३८४-१३८५ख	
विभाव का सामान्य लक्षण	१३८५ग-१३८६	
श्रृंगार के विभाव	१३८७-१३९०ख	

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अनुभावों का सामान्य लक्षण	१३९०ग-१३९२ख
श्रृंगार के अनुभाव	१३९२ग
संभोग श्रृंगार के अनुभाव	१३९२ग-१३९६ख
विप्रलंभ के संचारी	१३९६ग-१४००ख
विप्रलंभ के रस होने पर आक्षेप	१४००ग-१४०५ख
करुण और विप्रलंभ में अभेद की शंका	१४०५ग-१४११ख
श्रृंगार की दस अवस्थायें	१४११ग-१४१५
हास्य रस—(२)	१४१६-१४३३
करुण रस—(३)	१४३४-१४४७
रौद्र रस—(४)	१४४८-१४६४ख
वीर रस—(५)	१४६४ग-१४७७
भयानक रस—(६)	१४७८-१४८८
बीभत्स रस—(७)	१४८९-१४९४ख
अद्भुत रस—(८)	१४९४ग-१५०४ख
शान्त रस—(९)	१५०४ग-१५१६ख
मतान्तर से अन्य रस की शंका	१५१६ग-१५१९ख
रति आदि में स्थायी और संचारी की व्यवस्था	१५१९ग-१५२२
व्यभिचारी भावों के लक्षण	१५२३क-१६४५ख
निर्वेद—(१)	१५२३ग-१५२६ख
ग्लानि—(२)	१५२६ग-१५२९
शंका—(३)	१५३०-१५३७
उग्रता—(४)	१५३८-१५३९ख
दैन्य—(५)	१५३९ग-१५४०
असूया—(६)	१५४१-१५४३ख
मद—(७)	१५४३ग-१५५१
श्रम—(८)	१५५२-१५५३ख
चिन्ता—(९)	१५५३ग-१५५५
धृति—(१०)	१५५६-१५५९ख
स्मृति—(११)	१५५९ग-१५६२ख
व्रीडा—(१२)	१५६२ग-१५६५ख
मोह—(१३)	१५६५ग-१५६९ख
आलस्य—(१४)	१५६९ग-१५७०
चपलता—(१५)	१५७१-१५७२
हर्ष—(१६)	१५७३-१५७५ख
अमर्ष—(१७)	१५७५ग-१५७७
विषाद—(१८)	१५७८-१५८१ख

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संप्रदाय की शुद्ध पद्धति	१२६०-१२७३ख	३३३-३३५
गौण्डली विधि	१२७३ग-१३०१ख	३३५-३४०
पेरणी	१३०१ग-१३२५ख	३४०-३४५
पेरणी का लक्षण	१३०१ग-१३०३ख	
पेरणी के पाँच अंग	१३०३ग-१३०४	
घर्घर का लक्षण	१३०५-१३०६ख	
पडिवाट—(१)	१३०६ग-१३०७ख	
अपडप—(२)	१३०७ग-घ	
सिरिपट—(३)	१३०८	
अलगपाट—(४)	१३०९	
सिरिहिर—(५)	१३१०-१३११	
खलुहुल—(६)	१३१२-१३१४ख	
विषम आदि शेष चार अंगों के लक्षण	१३१४ग-१३१६ख	
पेरणी पद्धति	१३१६ग-१३२५ख	
आचार्य	१३२५ग-१३२६	३४५
नट	१३२७क-ख	३४५-३४६
नर्तक	१३२७ग-घ	३४६
वैतालिक	१३२८	३४६
चारण	१३२९	३४६-३४७
कोल्हाटिक	१३३०-१३३१ख	३४७
सभासद	१३३१ग-१३३३	३४७
सभापति का लक्षण	१३३४-१३४०ख	३४८-३४९
सभा का संनिवेश	१३४०ग-१३५०	३४९-३५०
रस निरूपण	१३५१-१६७१ख	३५०-४११
रस का सामान्य लक्षण	१३५१-१३५८ख	
रसों का उद्देश	१३५८ग-१३६०ख	
रस के आश्रय	१३६०ग-१३६२ख	
स्थायी भावों का उद्देश	१३६२ग-१३६७ख	
व्यभिचारी भावों का उद्देश	१३६७ग-१३७०ख	
सात्विक भावों का उद्देश	१३७०ग-१३७१ख	
रसों का परस्पर जन्य-जनक भाव	१३७१ग-१३७६	
रसों के रंग और देवता	१३७७-१३७९ख	
रस आदि के विशेष लक्षण	१३७९ग-१५२२	
श्रृंगाररस—(१)	१३८०-१४१५	
रति का लक्षण	१३८४-१३८५ख	
विभाव का सामान्य लक्षण	१३८५ग-१३८६	
श्रृंगार के विभाव	१३८७-१३९०ख	

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अनुभावों का सामान्य लक्षण	१३९०ग-१३९२ख
श्रृंगार के अनुभाव	१३९२ग
संभोग श्रृंगार के अनुभाव	१३९२ग-१३९६ख
विप्रलंभ के संचारी	१३९६ग-१४००ख
विप्रलंभ के रस होने पर आक्षेप	१४००ग-१४०५ख
करुण और विप्रलंभ में अभेद की शंका	१४०५ग-१४११ख
श्रृंगार की दस अवस्थायें	१४११ग-१४१५
हास्य रस—(२)	१४१६-१४३३
करुण रस—(३)	१४३४-१४४७
रौद्र रस—(४)	१४४८-१४६४ख
वीर रस—(५)	१४६४ग-१४७७
भयानक रस—(६)	१४७८-१४८८
बीभत्स रस—(७)	१४८९-१४९४ख
अद्‌भुत रस—(८)	१४९४ग-१५०४ख
शान्त रस—(९)	१५०४ग-१५१६ख
मतान्तर से अन्य रस की शंका	१५१६ग-१५१९ख
रति आदि में स्थायी और संचारी की व्यवस्था	१५१९ग-१५२२
व्यभिचारी भावों के लक्षण	१५२३क-१६४५ख
निर्वेद—(१)	१५२३ग-१५२६ख
ग्लानि—(२)	१५२६ग-१५२९
शंका—(३)	१५३०-१५३७
उग्रता—(४)	१५३८-१५३९ख
दैन्य—(५)	१५३९ग-१५४०
असूया—(६)	१५४१-१५४३ख
मद—(७)	१५४३ग-१५५१
श्रम—(८)	१५५२-१५५३ख
चिन्ता—(९)	१५५३ग-१५५५
धृति—(१०)	१५५६-१५५९ख
स्मृति—(११)	१५५९ग-१५६२ख
व्रीडा—(१२)	१५६२ग-१५६५ख
मोह—(१३)	१५६५ग-१५६९ख
आलस्य—(१४)	१५६९ग-१५७०
चपलता—(१५)	१५७१-१५७२
हर्ष—(१६)	१५७३-१५७५ख
अमर्ष—(१७)	१५७५ग-१५७७
विषाद—(१८)	१५७८-१५८१ख

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अपस्मार—(१९)	१५८१ग-१५८४	
जड़ता—(२०)	१५८५-१५८७ख	
वितर्क—(२१)	१५८७ग-१५८९	
सुप्तम्—(२२)	१५९०-१५९१ख	
औत्सुक्य—(२३)	१५९१ग-१५९२	
अवहित्थ—(२४)	१५९३-१५९५ख	
मति—(२५)	१५९५ग-१५९८ख	
विबोध—(२६)	१५९८ग-१६०१ख	
व्याधि—(२७)	१६०१ग-१६०६	
उन्माद—(२८)	१६०७-१६११	
गर्व—(२९)	१६१२-१६१६ख	
आवेग—(३०)	१६१६ग-१६२८	
मरण—(३१)	१६२९-१६३६	
त्रास—(३२)	१६३७-१६३९	
निद्रा—(३३)	१६४०-१६४५ख	
सात्त्विक भावों के लक्षण	१६४५ग-१६७१	
स्तंभ—(१)	१६५५-१६५६ख	
स्वेद—(२)	१६५६ग-१६५८ख	
रोमांच—(३)	१६५८ग-१६५९	
स्वरभेद—(४)	१६६०-१६६२ख	
वेपथु—(५)	१६६२ग-१६६४ख	
वैवर्ण्य—(६)	१६६४ग-१६६५	
अश्रु—(७)	१६६६-१६६७ख	
प्रलय—(८)	१६६७ग-१६६८ख	
ग्रन्थ का उपसंहार	१६७२-१६७८	४११-४१३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्रीनिःशङ्कशार्ङ्गदेवप्रणीतः

संगीतरत्नाकरः

सप्तमो नर्तनाध्यायः

श्रीनिःशङ्कशार्ङ्गदेव-प्रणीत

संगीतरत्नाकर

सातवाँ नर्तनाध्याय

(मङ्गलाचरणम्)

आङ्गिकं भुवनं यस्य वाचिकं सर्ववाङ्मयम्।
आहार्यं चन्द्रतारादि तं नुमः सात्त्विकं शिवम्॥ १॥

मंगलाचरण

१. (अ०) **यस्य आङ्गिकं** जिसका आंगिक (अंगव्यापार) **भुवनं** (यह) जगत् (है), **वाचिकं** वाक् व्यापार **सर्ववाङ्मयं** (वेदशास्त्र आदि) सारा वाङ्मय (है), **आहार्यं** विभूषण **चन्द्रतारा-आदि** चन्द्रमा, तारे आदि (हैं) **तम्** उस **सात्त्विकं शिवं** सात्त्विक (सत्त्वगुण-प्रधान) शिव को **नुमः** (मैं) नमन करता हूँ।

(सर०) प्रस्तुत श्लोक में शार्ङ्गदेव ने अपने इष्टदेवता शिव की स्तुति की है और पिछले अध्यायों के मंगलाचरणों की तरह समासोक्ति अलंकार के द्वारा प्रस्तुत अध्याय के विषय—नर्तन—का सूचन भी किया है।

सिंह० ने टीका का आरंभ करते हुए कहा कि गीत और वाद्य कह चुकने के बाद बचे हुए (विषय) नृत्त को कहने की इच्छा वाले ग्रन्थकार उसका सूचक मंगलाचरण कर रहे हैं। सिंह० के अनुसार इस श्लोक में आये पदों के अर्थ शिव पक्ष में इस प्रकार हैं। **आङ्गिकम्** अर्थात् अंगों का समूह क्योंकि शिव अष्टमूर्तिरूप हैं (अष्टमूर्ति ये हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पाँच तत्त्व तथा सूर्य, चन्द्रमा और यज्ञ करने वाला पुरोहित)। **वाचिकं** यानी वाक्यसमूह क्योंकि ऐसी श्रुति है कि 'वेद उस (शिव) के निःश्वास हैं' (बृह० उप०, २/४/१०)। **आहार्यम्** अर्थात् कार्य, (क्योंकि वह) सारे जगत् का कर्ता यानी उसे बनाने वाला है। अथवा चन्द्रतारादि उसका आहार्य है क्योंकि शिव चन्द्रमौलि हैं। **सात्त्विकम्** अर्थात् सत्त्वगुण प्रधान। सिंह० ने ध्यान दिलाया कि पुराण आदि में परमेश्वर (शिव) तमोगुण वाले कहे गये हैं लेकिन हरि (विष्णु) और हर (शिव) का अभेद (अन्तर न होना) दिखाने की इच्छा से ऐसा कहा गया है। अथवा सत्त्व यानी सत्ता के द्वारा जो ज्ञात होता है वह सात्त्विक। तात्पर्य यह है कि भले ही तमोगुणी कहा गया है लेकिन वास्तव में परमेश्वर सात्त्विक ही हैं।

श्लिष्ट (दो अर्थों के सूचक) शब्दों का प्रयोग होने से नृत्त के पक्ष में सिंह० ने यह अर्थ किया है। सारा भुवन जिसका शिव यानी शुभ आंगिक अभिनय है। सब प्रकार के अभिनय से संबंधित वाणी से नापे जाने (अर्थात् समझे जाने) से शुभ वाचिक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अभिनय वाङ्मय है। चन्द्रतारा आदि आहार्य अभिनय है। चन्द्र शब्द से अंग उपलक्षण वाले मुख को सूचित करके, तारकायुक्त उस (मुख) के द्वारा प्रत्यंग का उपलक्षण कहा है। यानी प्रत्यंगों की क्रियारूप कम्प इत्यादि जिसका शुभ सात्त्विक अभिनय है उस नर्तन को नमन करता हूँ।

कल्लि० की टीका के अनुसार शिवपक्ष में पदों का अर्थ इस प्रकार है। अब गीत और वाद्य के उपकारी (सहायक) अभेद के अतिशय उपायभूत (यानी उनके समान साधनरूप) नर्तन का प्रतिपादन करने की इच्छा वाला शार्ङ्गदेव प्रकरण के शुरू में, वह अच्छी तरह समाप्त हो इत्यादि फल की इच्छा से, नर्तन का स्पर्श करने वाले अर्थात् नर्तन पर लागू होने वाले गुणों के रूप से समुचित इष्ट देवता की स्तुति करता है। **भुवनम्** अर्थात् दिखाई देने वाला सारा प्राणिलोक शिव का **आङ्गिकम्** अंगव्यापार है क्योंकि शिव जगत्रूप है। वेदशास्त्र आदि सारा शब्दसमूह उसका वाणी का व्यापार है। चन्द्र तारा आदि आलोकमय मंडल उसका आहार्य यानी हार, केयूर आदि आभूषण हैं। **सात्त्विकं** सत्त्वगुण की प्रधानता वाला। यहाँ शिव शब्द से कूटस्थ यानी परम अचल शिव विवक्षित है इसलिये सात्त्विक रूप उसका विरोधी नहीं है। ऐसे शिव को नमन किया है।

कल्लि० ने संक्षेप में नृत्तपक्ष में व्याख्या की है। आंगिक आदि शिव के गुणों के वाचक शिलष्ट शब्दों से प्रकरण के प्रतिपाद्य नर्तन का संकेत भी दे दिया।

(प्रतिपाद्यविषयम्)

शिवप्रसादसंप्राप्तनिःसीमज्ञानसंपदा।
तन्यते शार्ङ्गदेवेन नर्तनं तापकर्तनम्॥ २॥

प्रतिपाद्य विषय

२. (अ०) **शिवप्रसादसंप्राप्तनिःसीमज्ञानसंपदा** शिव के प्रसाद से प्राप्त असीम ज्ञान की संपत्ति (का) **शार्ङ्गदेवेन** शार्ङ्गदेव के द्वारा **तापकर्तनं नर्तनं** ताप का नाश करने वाले नर्तन को **तन्यते** विस्तारपूर्वक कहा जा रहा है।

(सर०) मंगलाचरण करने के बाद इस श्लोक में ग्रन्थकार ने इस प्रकरण का प्रतिपाद्य विषय बताया है। कल्लि० ने यह स्पष्ट किया कि इस श्लोक के द्वारा ग्रन्थकार ने प्रतिपाद्य विषय, अधिकारी, प्रयोजन और संबंध यानी अनुबन्ध-चतुष्टय बताया हैं। नर्तन विषय है। **तापकर्तनं** के द्वारा आध्यात्मिक आदि (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक) तीन प्रकार के तापों का उच्छेद (नाश) प्रयोजन है। उसकी इच्छा करने वाले को अधिकारी समझना चाहिए। तीनों तापों का उच्छेद और नर्तन का साध्य-साधनभाव संबंध है। नर्तन और ग्रन्थ का प्रतिपाद्य-प्रतिपादक भाव है।

(नर्तनविभागः)

नाट्यं नृत्यं तथा नृत्तं त्रेधा तदिति कीर्तितम्।

नर्तन का विभाजन

३ क-ख. (अ०) **तत्** वह (नर्तन) **नाट्यं नृत्यं तथा नृत्तम् इति** नाट्य, नृत्य और नृत्त यों **त्रेधा कीर्तितं** तीन प्रकार का कहा गया है।

(सर०) ग्रन्थकार ने नर्तन के तीन भेद कहे—नाट्य, नृत्य और नृत्त। इनके लक्षण आगे दिये जाने वाले हैं।

(नर्तनस्योत्पत्तिः लोके प्रतिष्ठा च)

नाट्यवेदं ददौ पूर्वं भरताय चतुर्मुखः॥ ३॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ततश्च भरतः सार्धं गन्धर्वाप्सरसां गणैः।
नाट्यं नृत्यं तथा नृत्तमग्रे शंभोः प्रयुक्तवान्॥ ४॥

प्रयोगमुद्धतं स्मृत्वा स्वप्रयुक्तं ततो हरः।
तण्डुना स्वगणाग्रण्या भरताय व्यदीदृशत्॥ ५॥

लास्यमस्याग्रतः प्रीत्या पार्वत्या समदीदृशत्।
बुद्ध्वाथ ताण्डवं तण्डोर्मर्त्येभ्यो मुनयोऽवदन्॥ ६॥

पार्वती त्वनुशास्ति स्म लास्यं बाणात्मजामुषाम्।
तया द्वारवतीगोप्यस्ताभिः सौराष्ट्रयोषितः॥ ७॥

ताभिस्तु शिक्षिता नार्यो नानाजनपदाश्रिताः।
एवं परंपराप्राप्तमेतल्लोके प्रतिष्ठितम्॥ ८॥

नर्तन की उत्पत्ति और लोक में प्रतिष्ठा

३ ग-८. (अ०) **पूर्वं** पहले **चतुर्मुखः** ब्रह्मा ने **भरताय** भरत के लिये (अर्थात् भरत को) **नाट्यवेदं** नाट्यवेद **ददौ** दिया। **ततः च** और उसके बाद **भरतः** भरत ने **गन्धर्व-अप्सरसां गणैः सार्धं** गन्धर्व और अप्सराओं के गणों के साथ **शंभोः अग्रे** शंभु (शिव) के सामने **नाट्यं नृत्यं तथा नृत्तं** नाट्य, नृत्य और नृत्त **प्रयुक्तवान्** प्रयुक्त किया। **ततः** फिर **हरः** शंकर ने **स्वप्रयुक्तम्** अपने (स्वयं के) द्वारा प्रयुक्त किये गये **उद्धतं प्रयोगं स्मृत्वा** उद्धत प्रयोग को याद करके **स्वगण-अग्रण्या तण्डुना** अपने गणों में प्रमुख तण्डु के द्वारा **भरताय** भरत के लिये (अर्थात् भरत को वह उद्धत प्रयोग) **व्यदीदृशत्** दिखाया। **अस्य अग्रतः** इसके (भरत के) सामने **पार्वत्या** पार्वती के द्वारा **प्रीत्या** प्रेमपूर्वक **लास्यं** लास्य **समदीदृशत्** दिखाया। **अथ** अब (इसके बाद) **तण्डोः ताण्डवं बुद्ध्वा** तण्डु का ताण्डव जान कर (समझ कर) **मुनयः** (भरत आदि) मुनियों ने **मर्त्येभ्यः** मनुष्यों के लिये (मनुष्यों को) **अवदन्** (वह ताण्डव) कहा (बताया)। **पार्वती तु** पार्वती ने तो **बाण-आत्मजाम् उषां** बाण की पुत्री उषा को **लास्यं** लास्य **अनुशास्ति स्म** सिखाया। **तया** उसके द्वारा **द्वारवतीगोप्यः** द्वारिका की गोपियाँ, **ताभिः** उनके द्वारा **सौराष्ट्रयोषितः** सौराष्ट्र की स्त्रियाँ, **ताभिः तु** उनके द्वारा तो **नानाजनपद-आश्रिताः** अनेक प्रदेशों के आश्रित **नार्यः** नारियाँ **शिक्षिताः** शिक्षित हुईं। **एवम्** इस प्रकार **परंपराप्राप्तम् एतत्** परंपरा से प्राप्त यह (नर्तन) **लोके** लोक में **प्रतिष्ठितं** प्रतिष्ठित हुआ।

(सर०) सिंह० के अनुसार यहाँ नर्तन और उसके तीन प्रकारों की मूल उत्पत्ति कही गई है। **नाट्यवेदं** यानी वेदतुल्य नाट्यशास्त्र। ब्रह्मा ने भरत को नाट्यवेद इसलिये दिया कि वह उसका अध्यापन करें। उसका अध्ययन करके भरत ने शंकर के सामने त्रिविध नर्तन विशेष रूप से योजित किया जिसे देख कर शंकर को अपने द्वारा पहले प्रयुक्त ताण्डव का स्मरण हो आया। ग्रन्थकार द्वारा यहाँ प्रयुक्त 'स्मृतं' का मूल भरत द्वारा प्रयुक्त 'मयापीदं स्मृतं नृत्यं' में है (ना०शा०, ४/१३ क) जो इसका सूचक है कि ताण्डव मूलतः शंभु द्वारा प्रयुक्त किया गया और उन्होंने तण्डु को ताण्डव की शिक्षा दी। तब शंकर ने अपने गणों में से प्रमुख तण्डु नामक गण के द्वारा भरत को ताण्डव दिखाया और पार्वती के द्वारा लास्य दिखाया। **बुद्ध्वा** यानी तण्डु से ताण्डव समझकर भरत आदि मुनियों ने मनुष्यों को भी सिखाया। यहाँ से लोक में नर्तन के प्रतिष्ठित होने का क्रम ग्रन्थकार द्वारा दिखाया गया है।

नाट्यवेदं की व्याख्या में कल्लि० ने वेद की 'वेद्येते अनेन धर्मार्थौ' यह व्युत्पत्ति दी जिसका अर्थ है इसके द्वारा धर्म और अर्थ (ये दो पुरुषार्थ) जाने जाते हैं। इस व्युत्पत्ति से और ऋक् आदि (ऋक्, यजु, साम और अथर्व—इन चार) वेदों में मूल होने से ब्रह्मा द्वारा दिये गये नाट्यवेद का वेदत्व सिद्ध होता है। उसके अर्थभूत यानी अनुसरण करने वाले, नाट्य के प्रतिपादक, भरत मुनि द्वारा प्रणीत, (धर्म, अर्थ आदि) चार पुरुषार्थों का फल देने वाले शास्त्र की वेदमूलकता होने से वैदिकता समझनी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चाहिए। 'सामवेद का उपवेद गान्धर्ववेद' है—इस तरह यह उपवेदों में गिना भी गया है। कल्लि० ने यह भी स्पष्ट किया कि नाट्य वेद ही है किन्तु गीत की प्रधानता कहने की इच्छा से गान्धर्ववेद कहा जाता है और अभिनय की प्रधानता से नाट्यवेद कहा जाता है। कल्लि० की व्याख्या का सार यह है कि वेदों में इस नाट्यवेद का मूल है क्योंकि चार वेदों से ही नाट्य के चार मुख्य तत्त्वों का ग्रहण किया गया है। (अगले श्लोकों में ग्रन्थकार यह बताने वाले हैं) इसलिये इसे वेद कहना उचित है। चार उपवेद ये हैं—ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्ववेद और अथर्ववेद का स्थापत्यशास्त्रवेद।

शार्ङ्गदेव ने नाट्यवेद की उत्पत्ति-संबंधी धारणा का ना०शा० (प्रथम खण्ड, १/११-१७) से ग्रहण किया है। धारणा इस प्रकार है। इन्द्र आदि देवताओं ने पितामह ब्रह्मा से निवेदन किया कि हम ऐसा 'क्रीडनीयक' (खिलौना / साधन) चाहते हैं जो दृश्य और श्रव्य हो, शूद्रों के लिये वेद का व्यवहार स्वीकृत न होने से ऐसा पाँचवाँ वेद बनाइये जो सार्ववार्णिक अर्थात् सभी वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) के प्रयोग के योग्य हो। यह सुन कर ब्रह्मा ने चारों वेदों का स्मरण करके ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय, अथर्ववेद से रस का और उपवेदों से संबद्ध अंगों का ग्रहण करके नाट्यवेद बनाया।

(नाट्यवेदस्य वेदसारसंग्रहत्वम्)

ऋग्यजुःसामवेदेभ्यो वेदाच्चाथर्वणः क्रमात्।
पाठ्यं चाभिनयान् गीतं रसान् संग्रह्य पद्मभूः॥ ९॥
व्यरीरचत्त्रयमिदं धर्मकामार्थमोक्षदम्।

नाट्यवेद की वेदों से सारसंग्रहता

९-१० ख. (अ०) **ऋक्-यजुः-सामवेदेभ्यः** ऋक्, यजुः और सामवेदों से **अथर्वणः वेदात् च** और अथर्ववेद से **क्रमात्** क्रम से **पाठ्यं** पाठ्य को, **अभिनयान्** (चतुर्विध) अभिनयों को, **गीतं** गीत को **रसान् च संग्रह्य** और रसों को संग्रहीत करके **पद्मभूः** कमल से उत्पन्न (अर्थात् ब्रह्मा) ने **धर्मकाम-अर्थमोक्षदं** धर्म, काम, अर्थ (और) मोक्ष देने वाले **इदं त्रयम्** इन तीन (नाट्य, नृत्य, नृत्त) की **व्यरीरचत्** रचना की।

(सर०) नाट्यवेद की वेदमूलकता दिखाने के लिये नाट्य के पाठ्य, गीत, अभिनय और रस—इन चार मुख्य तत्त्वों का चार वेदों से ग्रहण इस प्रकार कहा है—पाठ्य का ऋग्वेद से, अभिनय का यजुर्वेद से, गीत का सामवेद से और रस का अथर्ववेद से।

कल्लि० ने स्पष्ट किया कि वाचिक यानी वाणी से किया जाने वाला अभिनय पाठ्य होता है। ऋग्वेद मन्त्ररूप है इसलिये उसकी शब्दप्रधानता समझनी चाहिये। वाचिक अभिनय शब्दों के द्वारा होता है इसलिये ऋग्वेद से पाठ्य का ग्रहण माना गया है। यजुर्वेद से अभिनयों और पाटाक्षरों की अभिव्यक्ति ली। (नाट्य में वाचिक, आंगिक, सात्त्विक और आहार्य चार प्रकार का अभिनय माना गया है—वाचिक वाणी के द्वारा, आंगिक शरीर के विभिन्न अंगों के द्वारा होने वाला, सात्त्विक चित्त की विशेष अवस्थाओं को व्यक्त करने वाले रोमांच आदि और आहार्य वेशभूषा, अलंकार आदि से व्यक्त होने वाला।) वाद्यों से उत्पन्न होने वाले अक्षर पाट होते हैं जिन्हें वाद्याध्याय में पाटाक्षर कहा जा चुका है। सामवेद से गीत लिया क्योंकि वह नादरूप है। (ऋग्वेद के गेय मन्त्र सामवेद के अंतर्गत आते हैं।) गेय यानी नादात्मक होने के कारण नाट्य में गीत का ग्रहण उससे कहा गया है। (गीत में गीत और वाद्य दोनों का ग्रहण समझना चाहिये।) अथर्ववेद से शृंगारादि रसों का ग्रहण किया। कल्लि० ने कहा कि (अथर्ववेद) मारण (मारना), मोहन (मोहित करना) आदि अभिचारकर्म (बुरे कामों के लिये मन्त्रों का प्रयोग) का प्रतिपादक होने से अथर्ववेद रसप्रधान है, यह भाव है। धर्म, अर्थ आदि पुरुषार्थ देने का आशय यह है कि जो जिस-जिस पुरुषार्थ की इच्छा से नाट्य, नृत्य, नृत्त का प्रयोग करता है उसे वह-वह पुरुषार्थ प्राप्त होता है।

श्लोक ९ ग में 'पाठ्यं' के स्थान पर सिंह० की टीका में 'वाद्यं' पाठ है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(नर्तनस्य प्रभावः प्रयोजनञ्च)

कीर्तिप्रागल्भ्यसौभाग्यवैदग्ध्यानां प्रवर्धनम्॥ १०॥

औदार्यस्थैर्यधैर्याणां विलासस्य च कारणम्।
दुःखार्तिशोकनिर्वेदखेदविच्छेदकारणम्॥ ११॥

अपि ब्रह्मपरानन्दादिदमभ्यधिकं ध्रुवम्।
जहार नारदादीनां चित्तानि कथमन्यथा॥ १२॥

न किंचिद् दृश्यते लोके दृश्यं श्रव्यमतः परम्।
सर्वदा कृतकृत्येनाप्यक्लिष्टेष्टप्रदायके॥ १३॥

द्रष्टव्ये नाट्यनृत्ये ते पर्वकाले विशेषतः।

नर्तन का प्रभाव और प्रयोजन

१० ग-१४ ख. (अ०) कीर्ति-प्रागल्भ्य-सौभाग्यवैदग्ध्यानां कीर्ति (यश), (शास्त्रों में) प्रौढ़ता, सौभाग्य और चतुरता **प्रवर्धनं** बढ़ाने वाला (है)। **औदार्य-स्थैर्य-धैर्याणां** उदारता, स्थिरता, धैर्य **विलासस्य च कारणम्** और विलास का कारण है। **दुःख-आर्ति-शोक-निर्वेद-खेदविच्छेदकारणं** दुःख, आर्ति (वेदना), शोक, निर्वेद (चित्त की शून्यता), खिन्नता के नाश का कारण (है)। **इदं** यह **ब्रह्मपरानन्दात् अपि** श्रेष्ठ ब्रह्मानन्द से भी **अभ्यधिकं ध्रुवं** ध्रुव (रूप से, निश्चय ही) अधिक (आनन्ददायक है)। **अन्यथा** अन्यथा (यदि ऐसा न होता तो) **नारद-आदीनां चित्तानि** नारद आदि (ब्रह्मज्ञानियों) के चित्त **कथं जहार** कैसे हर लेता? **लोके** संसार में **अतः परम्** इससे अधिक **दृश्यं श्रव्यं** दर्शनीय (और) श्रवणीय **न किंचिद् दृश्यते** कुछ भी दिखाई नहीं देता। **कृतकृत्येन अपि** मुमुक्षुओं को भी **अक्लिष्ट-इष्टप्रदायके** क्लेश (दुःख) रहित इच्छित (इष्ट) देने वाले **ते नाट्यनृत्ये** वे नाट्य और नृत्य **सर्वदा** हमेशा **विशेषतः पर्वकाले** विशेष रूप से महोत्सव काल में **द्रष्टव्ये** देखने चाहियें।

(सर०) त्रिविध नर्तन पुरुषार्थ देने के अतिरिक्त कीर्ति आदि भी अवश्य देता है और विविध प्रकार के दुःखों को भी दूर करता है। ग्रन्थकार ने नर्तन की महत्ता दिखाते हुए कहा कि ब्रह्म के साक्षात्कार से प्राप्त होने वाले आनन्द से भी अधिक आनन्द इससे प्राप्त होता है। इसीलिये यह नारद आदि जैसे ज्ञानियों के चित्त का हरण करने में समर्थ हुआ। लोक में इससे ज़्यादा दर्शनीय (देखने योग्य) और श्रवणीय (सुनने योग्य) और कुछ नहीं है।

कल्लि० ने इन श्लोकों पर लम्बी और महत्त्वपूर्ण व्याख्या की है। दोनों टीकाकारों के अनुसार **धैर्य** का अर्थ हर्ष और शोक को समान समझना है। कल्लि० ने दुःख को इन्द्रियजन्य पीड़ा, आर्ति को वाचिक पीड़ा, शोक को मानसिक पीड़ा, निर्वेद को चित्त की शून्यता, खेद को शारीरिक संताप कह कर इन्हें दुःखों के भेद बताया।

अपि ब्रह्म इत्यादि के द्वारा अर्थापत्ति से नाट्य को मोक्ष का साधन सिद्ध किया गया है, ऐसा कल्लि० ने कहा। मीमांसा दर्शन में अर्थापत्ति को ज्ञान का पाँचवाँ उपाय माना गया है। जो अर्थ प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द प्रमाणों से प्राप्त न हो वह अर्थापत्ति के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। मीमांसा में इसके लिये यह उदाहरण दिया जाता है—देवदत्त दिन में भोजन नहीं करता लेकिन हृष्टपुष्ट है। भोजन किये बिना कोई हृष्टपुष्ट नहीं हो सकता इसलिये यह अर्थ निकाला गया कि वह अवश्य ही रात को भोजन करता है।

यहाँ अर्थापत्ति का कल्लि० द्वारा संदर्भ दिये जाने का आशय यह है कि नारद आदि को तो मोक्ष प्राप्त हो चुका इसलिये उन्हें तो मोक्ष में ही आनन्द प्राप्त होना चाहिये, वे नाट्य आदि में आसक्त कैसे हो सकते हैं? अर्थापत्ति से यह सिद्ध होता है कि अवश्य ही नाट्य आदि भी मोक्षस्वरूप हैं इसीलिये नारद आदि इसमें आसक्त होते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कल्लि० ने कहा कि नर्तन ने केवल नारद आदि के चित्त का ही हरण नहीं किया बल्कि सारे जगत् (के चित्त) का भी करता है, इस आशय से ग्रन्थकार ने **न किंचित् दृश्यते** कहा है। **सर्वदा** इत्यादि की टीका में कहा कि विषयों में डूबे हुए मन वाले जगत् को नाट्य आदि मनोहर लगता है इससे उसका उत्कर्ष कैसे सिद्ध हो?—यह शंका मन में रख कर इसकी श्रेष्ठता दिखाने के लिये (ग्रन्थकार ने) कहा कि विषयों से निवृत्त मन वालों को भी अनुसंधान करना चाहिये यानी देख कर परीक्षण करना चाहिये।

कृतकृत्येन पर व्याख्या करते हुए कल्लि० ने कहा कि जिसने तीन ऋणों से मुक्त होने का कार्य कर लिया हो वह कृतकृत्य होता है। कृतकृत्य का अर्थ है मुमुक्षु यानी मोक्षप्राप्ति की इच्छा रखने वाला।

भारतीय विचारधारा में ये तीन ऋण माने गये हैं जिनसे हरेक द्विज को मुक्त होना चाहिये—देवऋण, आचार्यऋण या ऋषिऋण और पितृऋण। देवताओं का ऋण—यज्ञ में उनका आवाहन करके उससे मुक्त होना; गुरुओं का ऋण—गुरु से ज्ञान प्राप्त करके दूसरों को वह ज्ञान देकर उससे मुक्त होना और पितरों का ऋण—पुत्र उत्पन्न करके वंशवृद्धि करके उससे मुक्त होना।

कल्लि० के अनुसार **अक्लिष्टेष्टप्रदायके** 'हेतुगर्भ विशेषण' है यानी इसका विशेष प्रयोजन है जिसे उसने इस प्रकार समझाया है। अक्लिष्ट इष्ट यानी क्लेशरहित इष्ट अर्थात् मोक्ष। नाट्य और नृत्य मोक्ष देते हैं इसलिये मुमुक्षुओं को भी ('अपि') इसे हमेशा देखना चाहिये। **अपि** शब्द के प्रयोग का, कल्लि० के अनुसार, अर्थ यह है कि नाट्य और नृत्य अनुकरणात्मक होने से (क्योंकि इसमें किसी पूर्वघटित परिस्थिति अथवा व्यक्ति या भावादि का अनुकरण करते हैं अर्थात् उन्हें फिर से करते हैं) अलीक (असत्य) हैं इसलिये उन्हें देखने से लोकव्यवहार की भी असत्यता समझ में आती है और सत्, चित्, आनन्द स्वभाव वाला आत्मविषयक ज्ञान (आत्मज्ञान) दृढ़ होता है। फिर विषयसुखों के अभिलाषियों (इच्छा रखने वालों) का क्या कहा जाय?

'अनुकरणं' का अर्थ है—'अनु' यानी फिर से 'करणं' यानी करना। यह अंग्रेज़ी के Immitation (नक़ल) का पर्याय नहीं है।

ग्रन्थकार के द्वारा नाट्य और नृत्य को पर्वकाल में विशेष रूप से देखने के कथन पर कल्लि० ने कहा कि सर्वदा देखना संभव न हो तो मुमुक्षुओं को उत्सवकाल में अवश्य देखना चाहिये।

सं० र० के पहले अध्याय के दूसरे—पिण्डोत्पत्ति—प्रकरण (१/२/१६४-१६७) में भुक्ति और मुक्ति की साधना के सरल उपाय के रूप में नाद की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। नाद के द्वारा संगीत का पूरा विस्तार होता है और संगीत के तीनों अंगों में गीत और वाद्य के साथ नृत्त भी है। सामान्य जन के लिये भी रंजक होने से संगीत सांसारिक सुख का भोग भी कराता है और सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि से मुक्त भी करता है। उसी संदर्भ में कल्लि० ने प्रस्तुत श्लोकों की टीका में नाट्य और नृत्य को भी मोक्षदायक कहा है।

इन श्लोकों में ग्रन्थकार ने नाट्य और नृत्य का प्रभाव और प्रयोजन कहने के साथ ही प्रयोग के समय का भी निर्देश कर दिया। अगले श्लोकों में नृत्त का प्रयोगसमय बताया है।

(नृत्तस्य प्रयोगावसराः)

नृत्तं त्वत्र नरेन्द्राणामभिषेके महोत्सवे॥ १४॥

यात्रायां देवयात्रायां विवाहे प्रियसङ्गमे।
नगराणामगाराणां प्रवेशे पुत्रजन्मनि॥ १५॥

ब्रह्मणोक्तं प्रयोक्तव्यं मङ्गल्यं सर्वकर्मसु।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नृत्त के प्रयोग के अवसर

१४ ग-१६ ख. (अ०) **अत्र नृत्तं तु** इन (नाट्य, नृत्य और नृत्त) में से नृत्त तो **नरेन्द्राणाम् अभिषेके** राजाओं के अभिषेक में, **महोत्सवे** महोत्सव में, **यात्रायां** यात्रा में, **देवयात्रायां** देवयात्रा में, **विवाहे** विवाह में, **प्रियसङ्गमे** प्रिय (व्यक्ति) के संगम में, **नगराणाम् अगाराणां प्रवेशे** नगर में और घरों में प्रवेश करते समय, **पुत्रजन्मनि** पुत्र के जन्म में **ब्रह्मणा-उक्तं** ब्रह्मा के द्वारा कहा गया **मङ्गल्यं** मंगलकारी (यह नृत्त) **सर्वकर्मसु प्रयोक्तव्यं** सारे (शुभ) कार्यों में प्रयुक्त करना चाहिये।

(सर०) अगले श्लोकों में नाट्य, नृत्य और नृत्त का स्वरूप कहा जाने वाला है। उसके अनुसार नाट्य में रसाभिव्यक्ति की प्रधानता है, नृत्य में भावाभिव्यक्ति प्रधान है और नृत्त में केवल गात्रविक्षेप है। तदनुरूप प्रस्तुत श्लोकों में नृत्त का प्रयोग ऐसे अवसरों में कहा है जिनका रस-भाव से सीधा संबंध नहीं है बल्कि शारीरिक चेष्टाओं के द्वारा उमंग, उत्साह आदि अभिव्यक्त होते हैं।

(नाट्यादीनां स्वरूपम्)

नाट्यादित्रितयस्यातः प्रपञ्चमभिदध्महे॥ १६॥

नाट्य आदि का स्वरूप

१६ ग-घ. (अ०) **अतः** यहाँ से (मैं) **नाट्य-आदित्रितयस्य** नाट्य आदि तीन का **प्रपञ्चम् अभिदध्महे** प्रपंच (लक्षण आदि विस्तार) कहता हूँ।

(तत्र नाट्यस्वरूपम्)

नाट्यशब्दो रसे मुख्यो रसाभिव्यक्तिकारणम्।
चतुर्धाभिनयोपेतं लक्षणावृत्तितो बुधैः॥ १७॥

नर्तनं नाट्यमित्युक्तं स त्वत्राभिनयो भवेत्।
काव्यबद्धं विभावादि व्यञ्जयन्यो नटे स्थितः॥ १८॥

सामाजिकानां जनयन्निर्विघ्नां रससंविदम्।
लक्षणानि विभावादेर्वक्ष्ये रसनिरूपणे॥ १९॥

नाट्य का स्वरूप

१७-१९. (अ०) **नाट्यशब्दः** नाट्य शब्द **मुख्यः रसे** मुख्य (रूप से) रस (अर्थ) में (है, अर्थात् नाट्य का मुख्य अर्थ रस है)। **रस-अभिव्यक्तिकारणं** रस की अभिव्यक्ति के कारण वाला **चतुर्धा-अभिनय-उपेतं नर्तनं** चार प्रकार के अभिनय से युक्त नर्तन **बुधैः** विद्वानों के द्वारा **लक्षणावृत्तितः** लक्षणावृत्ति से **नाट्यम् इति उक्तं** नाट्य इस प्रकार (इस नाम से) कहा गया है। **काव्यबद्धं** (कवि के द्वारा) काव्य में निबद्ध (किये गये) **विभाव-आदि व्यञ्जयन्** विभाव आदि को व्यक्त करने वाले (और) **सामाजिकानां** सामाजिकों (प्रेक्षकों) में **निर्विघ्नां रससंविदम्** अखण्डित रसानुभूति **जनयन् नटे** उत्पन्न करने वाले नट में **यः स्थितः** जो रहता है **स तु** वह तो **अत्र** यहाँ (अर्थात् नाट्य के प्रसंग में) **अभिनयः भवेत्** अभिनय होता है। **विभाव-आदेः लक्षणानि** विभाव आदि के लक्षण **रसनिरूपणे वक्ष्ये** रस के निरूपण में कहूँगा।

(सर०) कल्लि० ने कहा कि ग्रन्थकार ने नाट्य शब्द का मुख्यार्थ रस बताया लेकिन रस नर्तन का भेद होना संभव नहीं है। इसलिये (नर्तन में) रस का मुख्यार्थ के रूप में बाध होने पर उस रस से व्यंजक के रूप में संबद्ध चार प्रकार के अभिनय से युक्त विशेष प्रकार का नर्तन लक्ष्यार्थ होता है। इस अर्थ में नाट्य शब्द लाक्षणिक है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ के संदर्भ में यह जान लेना ज़रूरी है कि शब्द के अर्थ का बोध तीन प्रकार से होता है जिन्हें काव्यशास्त्र में शब्द की तीन शक्ति या वृत्ति कहा गया है—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। जो शब्द के मुख्य अर्थ (मुख्यार्थ या वाच्यार्थ) का बोध कराती है वह अभिधा होती है और मुख्य अर्थ देने वाला शब्द वाचक शब्द कहलाता है। लेकिन मुख्यार्थ लागू न होने पर मुख्यार्थ से संबद्ध किसी दूसरे अर्थ का बोध कराने वाली लक्षणा वृत्ति होती है। इससे प्राप्त अर्थ लक्ष्यार्थ और वह शब्द लक्षक होता है। इसी तरह लक्ष्यार्थ भी लागू न हो या कोई अन्य अर्थ भी अपेक्षित हो तो लक्ष्यार्थ से संबद्ध कोई अन्य अर्थ देने वाली व्यंजना शक्ति होती है। लक्षणा शक्ति के लिये काव्यशास्त्र में 'गङ्गायां घोषः' का उदाहरण दिया जाता है। इसका अर्थ है 'गंगा में ग्वालों की बस्ती'। गंगा नदी में यानी पानी के प्रवाह में बस्ती का होना संभव नहीं है। इसलिये गंगा के वाच्यार्थ—प्रवाह—का बाध हो जाने से उससे संबद्ध तट अर्थ लेकर यह समझा गया कि गंगा के तट पर ग्वालों की बस्ती है। इस प्रकार गंगा शब्द यहाँ लाक्षणिक शब्द और तट लक्ष्यार्थ हुआ। इसी तरह गंगा शब्द के द्वारा उसके प्रवाह की शीतलता और पवित्रता का वातावरण उसके तट पर बसे ग्वालों की बस्ती को प्राप्त होता है, यह कहना भी इच्छित है जो गंगा शब्द से वाच्य नहीं होता। लेकिन लक्ष्यार्थ यानी तट पर बसे होने से लक्ष्यार्थ यानी प्रवाह की शीतलता आदि वाले वातावरण की व्यंजना होती है इसलिये यह व्यंग्यार्थ है।

स तु आदि के द्वारा ग्रन्थकार ने नाट्य के विशेषण के रूप में कहे हुए चतुर्विध अभिनय का सामान्य लक्षण कहा। (विशेष लक्षण अगले श्लोकों में कहा जायगा।) सिंह० और कल्लि० दोनों ने **काव्यबद्धं** की लगभग एक सी व्याख्या में कहा कि काव्य शब्द के द्वारा नाटक आदि रूपक समझने चाहियें क्योंकि नट के अभिनय का विषय नाटकादि ही होते हैं। **विभावादि अपि** से विभाव, अनुभाव, सात्त्विक, संचारी, स्थायी भावों का ग्रहण किया जाता है। 'सामाजिक' नाट्य का पारिभाषिक शब्द है जिसका सामान्य अर्थ है प्रेक्षक यानी श्रोता-दर्शक आदि। **निर्विघ्नाम्** अर्थात् बिना किसी व्यवधान के यानी अखण्ड। **रससंविदं** यानी आनन्दानुभूति। **नटे स्थितः** यानी नट में रहता है। लेकिन कल्लि० ने कहा कि अखण्ड आनन्दानुभूति को उत्पन्न करने वाला जो अर्थ नट में रहता है वह तो अभिनय होता है। तु शब्द यहाँ 'अवधारण' यानी निश्चयबोधक है। तात्पर्य यह है कि वही (नट में स्थित वह अर्थ ही) अभिनय है, केवल आंगिक चेष्टाएँ नहीं। यहाँ विभाव आदि अभिनय के द्वारा व्यंजित होते हैं जिनके लक्षण अध्याय के अन्त में रसनिरूपण के समय कहे जायेंगे।

(चतुर्धाभिनयः तेषां लक्षणानि च)

आङ्गिको वाचिकस्तद्वदाहार्यः सात्त्विकोऽपरः।
चतुर्धाभिनयस्तत्राङ्गिकोऽङ्गैर्दर्शितो मतः॥ २०॥

वाचा विरचितः काव्यनाटकादिस्तु वाचिकः।
आहार्यो हारकेयूरकिरीटादिविभूषणम्॥ २१॥

सात्त्विकः सात्त्विकैर्भावैर्भावुकेन विभावितः।

चार प्रकार का अभिनय और उनके लक्षण

२०-२२ ख. (अ०) आङ्गिकः वाचिकः आंगिक, वाचिक **तत्-वत्** उसी तरह **आहार्यः** आहार्य **अपरः सात्त्विकः** और सात्त्विक (यह) **चतुर्धा अभिनयः** चार प्रकार का अभिनय है।

तत्र उनमें से **अङ्गैः दर्शितः** अंगों के द्वारा दिखाया गया **आङ्गिकः मतः** आंगिक (अभिनय) माना गया है। **वाचा विरचितः** वाणी (शब्दों) से रचित **काव्यनाटक-आदिः तु** काव्य नाटक आदि तो **वाचिकः** वाचिक (होता है)। **हारकेयूरकिरीट-आदिविभूषणं** हार, केयूर (बाजूबन्द), किरीट (मुकुट) आदि अलंकार **आहार्यः** आहार्य (होता है)। **भावुकेन** नट के द्वारा **सात्त्विकैः भावैः विभावितः** सात्त्विक भावों से प्रकट किया गया **सात्त्विकः** सात्त्विक (अभिनय होता है)।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) यहाँ से चार प्रकार के अभिनय का विशेष लक्षण दिया जा रहा है। कल्लि० की व्याख्या में इसे स्पष्ट किया गया है। अपनी बुद्धि से पद (शब्द) और पदार्थ (शब्दार्थ) को जिसने जान लिया है ऐसे अनुकर्ता (अनुकरण करने वाले नट) के द्वारा हाथ-पैर आदि करणों (इन्द्रियों) के द्वारा प्रदर्शित किया गया आंगिक अभिनय होता है। आशय यह है कि जिन शब्दों का उच्चारण/प्रयोग नट करता है उनके अर्थ अपनी बुद्धि से समझ कर जब वह उन अर्थों को अपने शरीर के विभिन्न अंगों की क्रिया के द्वारा प्रकट करता है तो वह आंगिक अभिनय होता है। **नाटककाव्य-आदिः तु** में तु को कल्लि० ने निश्चयबोधक कहा है यानी काव्य आदि ही वाचिक में आते हैं, केवल लोकव्यवहार यानी सामान्य जीवन की बोलचाल में प्रयोग किये जाने वाले शब्द नहीं। **हारकेयूर-आदि** अर्थात् अनुकार्य (नट जिस भूमिका का अभिनय करता है) की तरह के जो हार आदि आभूषण नट धारण करता है वह आहार्य अभिनय है। आदि में धनुष आदि शस्त्र (आयुध) और ध्वज वाले यान आदि को भी अलंकार के रूप में ग्रहण करना चाहिये क्योंकि वह भी शोभा का कारण होता है इसलिये आभूषण रूप है। आहार्य भी अनुकार्य का बोध कराता है इसलिये वह अभिनयस्वरूप है। आहार्य में वस्त्र साजसज्जा आदि आते हैं जो सामान्य दृष्टि से आभूषण नहीं हैं लेकिन वे मूलपात्र का बोध कराते हैं इसलिये आहार्य को भी अभिनय माना गया है। **सात्त्विकैः भावैः** यानी स्तंभ आदि आठ भाव जो आगे कहे जायँगे। (आठ सात्त्विक भाव ये हैं—स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभेद, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय।) **भावुकेन** भावुक अर्थात् भावनायुक्त नट और सामाजिक के द्वारा। **विभावितः** स्तंभ आदि सभी रसों में साधारण (समान) होते हैं इसलिये उनमें विवेक (अन्तर/भेद) करना कठिन होने पर भी उस-उस रस (अर्थात् रसविशेष) में विशिष्ट सात्त्विक भाव नियत किये जाने से सूक्ष्म दृष्टि उसे सात्त्विक अभिनय के रूप में ग्रहण कर लेती है।

(चतुर्विधस्याभिनयस्य द्विविधेतिकर्तव्यता)

इतिकर्तव्यता तस्य द्विविधा परिकीर्तिता॥ २२॥

लोकधर्मी नाट्यधर्मी इति,

चतुर्विध अभिनय की दो प्रकार की इतिकर्तव्यता

२२ ग-२३ क. (अ०) **तस्य** उस (चतुर्विध अभिनय) की **लोकधर्मी नाट्यधर्मी इति** लोकधर्मी और नाट्यधर्मी यह **द्विविधा इतिकर्तव्यता** दो प्रकार की इतिकर्तव्यता (प्रयोग की पद्धति) **परिकीर्तिता** कही गई है।

(सर०) **इतिकर्तव्यता** का अर्थ दोनों टीकाकारों ने 'प्रकारनियम' दिया है जिसका आशय है कि अभिनय की योजना किस तरह की होनी चाहिये इसका नियम।

लोकधर्मी और नाट्यधर्मी शब्द अन्वर्थ हैं। अभिनय के संदर्भ में धर्म का अर्थ विशेष रीति के अनुसार होने वाला अभिनय समझना चाहिये। तदनुसार लोकधर्मी यानी लोक की रीति के अनुसार किया जाने वाला अभिनय और नाट्यधर्मी अर्थात् नाट्य के लिये अपेक्षित/आवश्यक रीति के अनुसार होने वाला अभिनय।

(तयोः पुनः द्विविधत्वम्)

एते च द्विविधे पुनः।

चित्तवृत्त्यर्पिका काचिद्बाह्यवस्त्वनुकारिणी॥ २३॥

इति भेदद्वयं प्राहुर्लोकधर्म्याः पुरातनाः।

दोनों की फिर से द्विविधता

२३ ख-२४ ख. (अ०) **एते च** ये दोनों (इतिकर्तव्यता) **पुनः द्विविधे** फिर से दो प्रकार की (होती हैं)—**चित्तवृत्त्यर्पिका**

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(एक) चित्तवृत्त्यर्पिका (चित्तवृत्ति + अर्पिका, चित्त के व्यापार से स्थापित होने वाले भाव को प्रकट करने वाली) **काचित्** (और) कोई (अर्थात् दूसरी) **बाह्यवस्त्वनुकारिणी** बाह्यवस्त्वनुकारिणी (बाह्य + वस्तु + अनुकारिणी, किसी बाहरी वस्तु का अनुकरण करने वाली)। **लोकधर्म्याः** लोकधर्मी के **इति भेदद्वयं** ये दो भेद **पुरातनाः** प्राचीन (आचार्यों) ने **प्राहुः** विशेष रूप से कहे हैं।

(सर०) ये दोनों भी अन्वर्थ हैं। चित्त (मन) में स्थापित (उठे) हुए भाव को व्यक्त करने में प्रवृत्त चित्तवृत्त्यर्पिका होती है। कल्लि० ने ना०शा० से उदाहरण देते हुए कहा कि जैसे पताक हस्त के विनियोग में भरत मुनि ने कहा—'गर्व दिखाने के लिये मैं'—ऐसा कहते समय उसके ज्ञाताओं को ललाटप्रदेश तक पताक हस्त उठाते हुए (अभिनय) करना चाहिये (ना०शा०, ९/१९ ग-घ)। गर्व की चित्तवृत्ति के प्रदर्शन का यह प्रकार लोकधर्मी चित्तवृत्त्यर्पिका है। बाह्यवस्त्वनुकारिणी लोकधर्मी में कमल आदि वस्तुओं का अनुकरण किया जाता है। उसमें कमल आदि को व्यक्त करने में पद्मकोश हस्त कहा है (ना०शा०, ९/८३ ग-घ)।

आश्रित्य कैशिकीं वृत्तिमेका नाट्योपयोगिनीम्॥ २४॥

तद्योग्यां लौकिकीं शोभां करोत्यावेष्टितादिभिः।
अंशेनैवोपजीवन्ती लोकमन्या प्रवर्तते॥ २५॥

नाट्यधर्म्या अपि प्राज्ञा भेदद्वन्द्वमिदं जगुः।

२४ ग-२६ ख. (अ०) **एका** एक (नाट्यधर्मी) **नाट्य-उपयोगिनीं** नाट्य में उपयोगी होने वाली **कैशिकीं वृत्तिम् आश्रित्य** कैशिकी वृत्ति के आश्रय से **आवेष्टित-आदिभिः** आवेष्टित आदि (करणों) से **तत्-योग्यां** उसके योग्य **लौकिकीं शोभां करोति** लौकिकी शोभा उत्पन्न करती है। **अन्या** दूसरी **अंशेन एव** आंशिक रूप से ही **लोकम् उपजीवन्ती** लोक की उपजीवी (आश्रित होकर) **प्रवर्तते** प्रवृत्त होती है। **प्राज्ञाः** विद्वानों ने **इदं भेदद्वन्द्वं** ये दो भेद **नाट्यधर्म्याः अपि** नाट्यधर्मी के भी **जगुः** कहे हैं।

(सर०) ग्रन्थकार ने नाट्यधर्मी के भी ये दोनों भेद कहे। उनमें से चित्तवृत्त्यर्पिका नाट्यधर्मी कैशिकी वृत्ति के आश्रित होकर आवेष्टित आदि विशेष करणों (हाथों की क्रियाओं) के द्वारा शोभा लाती है। कल्लि० की व्याख्या का सार यह है कि अवस्था (विशेष स्थिति) के अनुकरण में इसका उपयोग है और यह कैशिकी वृत्ति के अनुसार यानी सुकुमारता के साथ काम करती है। उसने उदाहरण दिया कि लोकव्यवहार में भी किसी का अनुकरण करने में मृदुता अपेक्षित होती है। जैसे लोक में कोई व्यक्ति किसी दूसरे अहितकारी व्यक्ति को लाठी आदि से मारता है और उसे देखने वाला कोई तीसरा व्यक्ति उसका अनुकरण करता है और कहता है 'इसने इस तरह मारा' तो वह अनुकरण आरोपित होता है, सचमुच नहीं मारता इसलिये उसमें कोमलता दिखाई देती है। अतः वहाँ सुकुमार कैशिकी नाट्य के उपयोगी होती है।

ग्रन्थकार ने आगे कैशिकी वृत्ति का यह लक्षण दिया है—वाचिक और आंगिक अभिनयों में सुकुमारता से होने वाली, उल्लासयुक्त गीत और नृत्त से समृद्ध हुई, शृंगार रस से पूर्ण और केवल सौंदर्य पर ही जीवित रहने वाली कैशिकी वृत्ति होती है (७/१११८-१११९, ना०शा०, १/४४-४५)।

दूसरी बाह्यवस्त्वनुकारिणी नाट्यधर्मी आंशिक रूप में लोकजीवन का अनुसरण करती है। भरत के अनुसार त्रिपताक हस्त मध्य में करके प्रयोक्ता (नट) जनान्तिक का प्रयोग करें (ना०शा०, २५/९४)। (नाट्य में एक ओर मुँह करके बोलना जनांतिक कहलाता है जिसमें बोलते समय नट त्रिपताक हस्त बीच में योजित करके एक विशिष्ट पात्र की ओर मुँह करके बोल कर यह दिखाता है कि वह पात्र उसका कथन नहीं सुन रहा है, शेष सुन रहे हैं। इसके विपरीत अपवारितक में अन्य पात्रों की ओर मुँह करके बोल कर यह दिखाया जाता है कि वे पात्र नहीं सुन रहे बल्कि पात्रविशेष ही सुन रहा है।) भावपूर्ण होकर स्वरूपतः स्तंभ आदि दिखाना लोकधर्मी है और वही साक्षात् करने और हस्ताभिनय से दिखाने पर नाट्यधर्मी होता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चित्तवृत्त्यर्पिका आदि अवान्तर भेदों के लिये कल्लि० ने कहा कि बुद्धिमानों को उन्हें भी वाचिक आदि (अभिनयों) में यथासंभव समझ लेना चाहिये।

(नृत्यलक्षणम्)

आङ्गिकाभिनयैरेव भावानेव व्यनक्ति यत्॥ २६॥

तन्नृत्यं मार्गशब्देन प्रसिद्धं नृत्यवेदिनाम्।

नृत्य का लक्षण

२६ ग-२७ ख. (अ०) **यत्** जो (नर्तन) **आङ्गिक-अभिनयैः एव** आंगिक अभिनयों के द्वारा ही **भावान् एव व्यनक्ति** (केवल) भावों को ही व्यक्त करता है **तत् नृत्यं** वह नृत्य (है और) **नृत्यवेदिनां** नृत्य के वेत्ताओं में **मार्गशब्देन** मार्ग शब्द से **प्रसिद्धं** प्रसिद्ध है।

(सर०) यहाँ नृत्य का यह लक्षण दिया है कि केवल आंगिक अभिनयों के द्वारा जो भावों को ही व्यक्त करे नर्तन का वह प्रकार नृत्य होता है। ग्रन्थकार ने यह भी कहा कि नृत्याचार्य उसे मार्ग नाम से कहते हैं।

आङ्गिक-अभिनयैः इस बहुवचन प्रयोग पर कल्लि० ने शंका उठा कर उसका समाधान यों किया है। आंगिक के कोई अवान्तर भेद तो नहीं कहे गये अतः यह बहुवचन प्रयोग उचित प्रतीत नहीं होता इसलिये यहाँ 'आंगिक आदि अभिनयों के द्वारा' इस अर्थ का बोध होता है। लेकिन आंगिक आदि चार अभिनय हैं और 'अभिनयैः' में बहुवचन तीन संख्या का सूचक है इसलिये आंगिक, वाचिक, सात्त्विक और आहार्य—इन चार में से एक को छोड़ना पड़ेगा। वह कौन-सा हो? अगर वाचिक छोड़ा जाय तो आंगिक अभिनय का आधार ही नहीं रहता और तब आंगिक हो ही नहीं सकेगा इसलिये जहाँ आंगिक हो वहाँ वाचिक होना ही चाहिये। सात्त्विक और आहार्य में से सात्त्विक ही आंगिक के अन्तरंग स्वरूप वाला होने से वह भी आवश्यक है। इसलिये बचा हुआ और बहिरंग (बहिः + अंग = अंग से बाहर) आहार्य ही छोड़ने योग्य होता है। इस चर्चा का आशय यह है कि नृत्य में आहार्य आवश्यक नहीं है क्योंकि नृत्य मन के भावों को ही व्यक्त करता है।

भावान् एव पर कल्लि० ने कहा कि 'एव' निश्चयबोधक है यानी नृत्य भावों को ही व्यक्त करता है (और कुछ नहीं), यह निश्चय हो जाने से रस और उनका आभास भी नृत्य के क्षेत्र से निकल जाता है।

कल्लि० ने इस प्रकार स्पष्ट किया कि आहार्य को छोड़ कर आंगिक, वाचिक और सात्त्विक अभिनयों से युक्त और केवल भावनाओं को अभिव्यक्त करने वाला जो नर्तन होता है वह नृत्य है। इसकी पुष्टि में भावप्रकाश से भी उद्धरण दिया जिसका अर्थ है—नाट्यकर्म में वाक्, अंग और सत्त्व से भावों का अभिनय होता है और वाक्, अंग, सत्त्व और आहार्य—चारों के समुच्चय से रस का अभिनय होता है।

(नृत्तलक्षणम्)

गात्रविक्षेपमात्रं तु सर्वाभिनयवर्जितम्॥ २७॥

आङ्गिकोक्तप्रकारेण नृत्तं नृत्तविदो विदुः।

नृत्त का लक्षण

२७ ग- २८ ख. (अ०) **सर्व-अभिनयवर्जितं** सारे अभिनय के बिना **आङ्गिक-उक्त-प्रकारेण** आंगिक में कहे गये प्रकारों के अनुसार **गात्रविक्षेपमात्रं तु** केवल शरीर (के अवयवों) की क्रियाएँ तो **नृत्तविदः** नृत्त के आचार्य **नृत्तं विदुः** नृत्त जानते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) नर्तन के तीनों प्रकारों में आंगिक का प्रयोग होता है लेकिन नाट्य और नृत्य में क्रमशः रस और भाव की अभिव्यक्ति की जाती है जब कि नृत्त में रस-भाव अपेक्षित न होने से अभिनय नहीं होता बल्कि, आगे आंगिक में कहे जाने वाले, अंग, प्रत्यंग और उपांगों की क्रियाओं का ही प्रदर्शन होता है। तु शब्द के लिये कल्लि० ने कहा कि इसके द्वारा नाट्य और नृत्य से नृत्त की भिन्नता दिखाई गई है।

(नृत्यनृत्तयोरवान्तरभेदौ)

ताण्डवं लास्यमित्येतद् द्वयं द्वेधा निगद्यते॥ २८॥

वर्धमानासारिताद्यैर्गीतैस्तत्तद्ध्रुवायुतम्।
करणैरङ्गहारैश्च प्राधान्येन प्रवर्तितम्॥ २९॥

तण्डूक्तमुद्धतप्रायप्रयोगं ताण्डवं मतम्।
लास्यं तु सुकुमाराङ्गं मकरध्वजवर्धनम्॥ ३०॥

नृत्य और नृत्त के दो अवान्तर भेद

२८ ग-३०. (अ०) एतत् द्वयं ये दोनों (नृत्य और नृत्त) ताण्डवं लास्यम् इति ताण्डव (और) लास्य यों द्वेधा निगद्यते दो प्रकार का कहा जाता है (कहे जाते हैं)। वर्धमान-आसारित-आद्यैः गीतैः वर्धमान और आसारित आदि गीतों के द्वारा तत्-तत् ध्रुवायुतम् उस-उसकी ध्रुवा से युक्त, करणैः अङ्गहारैः च करणों तथा अंगहारों से प्राधान्येन प्रवर्तितं प्रधानता से प्रवृत्त हुआ (और) तण्डु-उक्तं तण्डु के द्वारा कहा गया उद्धतप्रायप्रयोगम् उद्धतबहुल प्रयोग वाला ताण्डवं मतं ताण्डव माना गया है। लास्यं तु लास्य तो सुकुमार-अङ्गं कोमल अंग (व्यापारों) वाला (और) मकरध्वजवर्धनं काम को बढ़ाने वाला होता है।

(सर०) एतत् द्वयं पर कल्लि० ने कहा कि 'ये दोनों' यानी संनिहित (पास-पास के) नृत्य और नृत्त ये दो।

वर्धमान, आसारित आदि गीत तालाध्याय में कहे जा चुके हैं। ध्रुवा यानी प्रावेशिकी आदि ध्रुवाएँ जिनका निरूपण 'भारतीय' यानी भरत के नाट्यशास्त्र में किया गया है। करण अर्थात् तलपुष्पपुट आदि नृत्तकरण जो आगे कहे जाने वाले हैं। अङ्गहार 'स्थिरहस्त आदि'। प्राधान्येन पर कल्लि० ने कहा कि कभी करण, अंगहारों का क्रम छोड़ कर भी किया जा सकता है। तण्डूक्तं के द्वारा ताण्डव संज्ञा की प्रवृत्ति का कारण कहा है क्योंकि तण्डु द्वारा प्रवर्तित होने से ताण्डव कहलाता है।

ना०शा० के 'ताण्डवलक्षण' नामक चौथे अध्याय में ताण्डव का विस्तार से निरूपण हुआ है जिससे प्रकट होता है कि ताण्डव का प्रयोग पहले शिव के द्वारा किया गया और फिर तण्डु ने उसे लोक में प्रचलित किया।

(नृत्तस्य भेदत्रयम्)

विषमं विकटं लघ्वित्येतद्भेदत्रयं विदुः।
नृत्तस्य तत्र विषमं स्याद्रज्जुभ्रमणादिकम्॥ ३१॥

विरूपवेषावयवव्यापारं विकटं मतम्।
उपेत करणैरल्पैरञ्चिताद्यैर्लघु स्मृतम्॥ ३२॥

नृत्त के तीन भेद

३१-३२. (अ०) विषमं विकटं लघु इति एतत् विषम, विकट और लघु यों ये नृत्तस्य नृत्त के भेदत्रयं विदुः तीन भेद जाने जाते हैं। तत्र उनमें से रज्जुभ्रमण-आदिकं रस्सी पर घूमना (चलना) आदि विषमं स्यात् विषम (नृत्त) होता है। विरूपवेश-अवयवव्यापारं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विरुद्ध वेश और अवयवों (अंगों) के व्यापार (क्रियाएँ) **विकटं मतं** विकट माना गया है। **अञ्चित-आद्यैः अल्पैः करणैः उपेतम्** अंचित आदि अल्प करणों से युक्त **लघुः स्मृतं** लघु कहा गया है।

(सर०) नृत्त के विषम, विकट और लघु—इन तीन भेदों को सिंह० ने अन्य मत का कहा है। विषम में रस्सी पर चलना आदि कहा गया है जो आज भी, ख़ास तौर पर मेलों में, देखा जा सकता है और घूम-घूम कर खेल दिखाने वाले 'बाजीगर' करते हैं। इसमें बीच में दूरी रख कर दो बाँसों या खंभों पर रस्सी बाँध दी जाती है जिस पर नट एक सिरे से दूसरे तक चल कर फिर उसी तरह वापस लौटता है। इसमें शरीर का विशेष संतुलन बनाये रखना अपेक्षित होता है अन्यथा नट नीचे गिर सकता है।

विकट का रूप विदूषक की विपरीत वेशभूषा और अंगों की क्रियाओं में देखा जा सकता है। सिंह० ने उदाहरण दिया कि जैसे पेरणी आदि में होता है। पेरणी का निरूपण ग्रन्थकार द्वारा आगे किया जाने वाला है (१३०१ ग-१३०४ ख)।

अल्पैः करणैः का उदाहरण देते हुए सिंह० ने कहा कि जैसे उत्सव आदि में गाँव की स्त्रियों के द्वारा किया जाता है (अर्थात् गाँव की स्त्रियाँ नाचते समय बहुत प्रकार की हस्तक्रियाएँ नहीं करतीं, यह लघु नृत्त का रूप है)।

आनन्द० और सिंह० की टीका में **रज्जुभ्रमणादिकं** के स्थान पर '**ऋजुभ्रमणादिकं**' पाठ है जिसका अर्थ है सरल चलना। लेकिन सरल विषम के विपरीत होता है इसलिये '**रज्जु**' ही उचित पाठ है।

नाटकस्थितवाक्यार्थपदार्थाभिनयात्मकम्।
तदाद्यभरतेनोक्तं रसभावसमन्वितम् ॥ ३३॥

नाट्यं तन्नाटकेष्वेवोपयुक्तं तद्गतानतः।
विहाय त्रीनभिनयानाङ्गिकोऽत्राभिधीयते॥ ३४॥

३३-३४. (अ०) **नाटकस्थितवाक्यार्थपदार्थ-अभिनयात्मकं** नाटक में स्थित वाक्यार्थ और पदार्थ के अभिनय के स्वरूप वाला **रसभावसमन्वितम्** और रस-भाव से युक्त **आद्यभरतेन** आद्य भरत के द्वारा **तत् नाट्यं** वह नाट्य **उक्तं** कहा गया (है)। **तत्** वह **नाटकेषु एव** नाटकों में ही **उपयुक्तम्** उपयोगी (है)। **अतः** इसलिये **तद् गतान्** उसमें रहने वाले **त्रीन् अभिनयान् विहाय** तीन अभिनयों (वाचिक, सात्त्विक और आहार्य) को छोड़ कर **अत्र** यहाँ **आङ्गिकः** आंगिक **अभिधीयते** कहा जा रहा है।

(सर०) कल्लि० ने स्पष्ट किया कि यहाँ नृत्तों में उपयोगी होने वाले आंगिक अभिनय को विस्तार से कहते हुए केवल नाटक में उपयोगी होने वाले और नृत्त में उपयोगी न होने वाले वाचिक आदि का विस्तार न करने का कारण दिखाया है। '**वाक्यार्थ के अभिनय**' का अर्थ है रसाभिनय और '**पदार्थ के अभिनय**' का अर्थ भावों का अभिनय। यहाँ '**नाटक**' शब्द, कल्लि० के अनुसार, नाटक आदि अन्य प्रकारों का उपलक्षण (सूचक) है इसलिये **नाटकेषु एव** से '**नाटक आदि में ही**' समझना चाहिये। **तद्गतान्** अर्थात् नाट्यगत वाचिक, सात्त्विक और आहार्य।

(आङ्गिकाभिनयभेदाः)

तस्य शाखाङ्कुरो नृत्तं प्रधानं त्रितयं मतम्।
तत्र शाखेति विख्याता विचित्रा करवर्तना॥ ३५॥

अङ्कुरो भूतवाक्यार्थमुपजीव्य प्रवर्तितः।
वर्तना सा भवेत्सूची भाविवाक्योपजीवनात्॥ ३६॥

करणैरङ्गहारैश्च साधितं नृत्तमुच्यते।
नात्रोपयोगिनौ सूच्यङ्कुरावुक्तौ प्रसङ्गतः॥ ३७॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आंगिक अभिनय के भेद

३५-३७. (अ०) **तस्य** उस (आंगिक अभिनय) के **शाखा-अङ्कुरः नृत्तं त्रितयं** शाखा, अंकुर (और) नृत्त (ये) तीन (भेद) **प्रधानं मतं** मुख्य माने गये (हैं)। **तत्र** उनमें से **विचित्रा करवर्तना** मनोहर हस्तक्रिया **शाखा इति विख्याता** शाखा के रूप में प्रसिद्ध (है)। **भूतवाक्यार्थम् उपजीव्य** बीते हुए (कहे जा चुके) वाक्यार्थ के आश्रित होकर **प्रवर्तितः** प्रवृत्त होने वाला **अङ्कुरः** अंकुर (है)। **भाविवाक्य-उपजीवनात्** भावी (आगे कहे जाने वाले) वाक्य के आश्रय से **सा वर्तना** वह हस्तक्रिया **सूची भवेत्** सूची होती है। **करणैः अङ्गहारैः च साधितं** करण और अंगहारों से निष्पन्न हुआ **नृत्तम् उच्यते** नृत्त कहा जाता है। **अत्र** यहाँ **सूची-अङ्कुरौ** सूची और अंकुर **न उपयोगिनौ** उपयोगी नहीं (हैं), **प्रसङ्गतः उक्तौ** प्रसंग से कहे गये हैं।

(सर०) शाखा आदि की प्रधानता पर कल्लि० ने कहा कि आंगिक अभिनय में कहे गये अन्य अंगों की अपेक्षा शाखा आदि की प्रधानता होती है, यह अर्थ है। फिर शंका उठाई कि नृत्त का लक्षण तो पहले दिया जा चुका है (२७ ग-घ) फिर दुबारा लक्षण क्यों दिया? उत्तर यह दिया कि सब प्रकार के अभिनय के बिना आंगिक अभिनय के रूप में प्रवृत्त हुआ केवल गात्रविक्षेप पहले नृत्त कहा गया था, अब तो आंगिक अभिनय आंगिक स्वरूप वाला होकर उसके बीच में प्रयुक्त होने वाले करण और अंगहारों से संपन्न होने वाला नृत्त कहा है—दोनों में यह अन्तर समझना चाहिये।

(अध्यायस्य पदार्थसंग्रहः)

अङ्गान्यत्र शिरो हस्तौ वक्षः पार्श्वे कटीतटम्।
पादाविति षडुक्तानि स्कन्धावप्यपरे जगुः॥ ३८॥

प्रत्यङ्गानि पुनर्ग्रीवा बाहू पृष्ठं तथोदरम्।
ऊरू जङ्घे षडित्याहुरपरे मणिबन्धकौ॥ ३९॥

जानुनी भूषणानीति त्रयमत्राधिकं जगुः।
दृष्टिभ्रूपुटताराश्च कपोलौ नासिकानिलः॥ ४०॥

अधरो दशना जिह्वा चिबुकं वदनं तथा।
उपाङ्गानि द्वादशेति शिरस्यङ्गान्तरेषु तु॥ ४१॥

पार्ष्णिगुल्फौ तथाङ्गुल्यः करयोः पादयोस्तले।
मुखरागश्च करयोः प्रचाराः करणानि च॥ ४२ ॥

कर्माणि पाणिक्षेत्राणि करणानि द्विधा ततः।
शुद्धान्युत्प्लुतिपूर्वाणि चाङ्गहाराः सरेचकाः॥ ४३॥

चार्य शुद्धाश्च देशीस्थाः स्थानकान्यथ वृत्तयः।
न्यायाः सप्रविचाराश्च मण्डलान्यखिलान्यपि॥ ४४॥

लास्याङ्गानि ततो रेखा श्रमः पात्रस्य लक्षणम्।
गुणदोषा मण्डनं च तस्योपाध्यायलक्षणम्॥ ४५॥

संप्रदाया गुणा दोषास्तस्य शुद्धा च पद्धतिः।
गौण्डल्याश्च विधिः सम्यग्लक्ष्म पेरणिनस्ततः॥ ४६॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तत्पद्धतिरथाचार्यो नटनर्तकलक्षणम्।
वैतालिकश्चारणश्च कोहलाटिकसभासदः॥ ४७॥

सभापतिः सभायाश्च निवेशो रसलक्षणम्।
भावलक्षणमित्यस्मिन्नध्याये ब्रूमहे क्रमात्॥ ४८॥

अध्याय का पदार्थसंग्रह

३८-४८. (अ०) **अत्र** यहाँ **शिरः** सिर, **हस्तौ** दो हाथ, **वक्षः** छाती, **पार्श्वे** दो बाजुएँ, **कटीतटं** कमर, **पादौ** दो पैर **इति ये षट् अङ्गानि उक्तानि** छह अंग कहे गये हैं। **अपरे** अन्य (आचार्यों) ने **स्कन्धौ अपि** दो कंधे भी **जगुः** कहे हैं।

पुनः फिर **ग्रीवा** गर्दन, **बाहू** दो भुजाएँ, **पृष्ठं** पीठ **तथा उदरम्** और पेट, **ऊरू** दो जाँघ, **जङ्घे** दो टाँग **इति ये षट् प्रत्यङ्गानि** छह प्रत्यंग **आहुः** कहते हैं। **अपरे** अन्य (आचार्यों) ने **मणिबन्धकौ** दो कलाई, **जानुनी** दो घुटने (और) **भूषणानि इति** भूषण ये **त्रयम् अधिकं** तीन अधिक **जगुः** कहे हैं।

दृष्टि-भ्रू-पुट-ताराः च दृष्टि, भौंहें, पलकें और (आँखों की) पुतलियाँ, **कपोलौ** दो गाल, **नासिका** नाक, **अनिलः** वायु, **अधरः** निचला ओठ, **दशनाः** दाँत, **जिह्वा** जीभ, **चिबुकं** ठोडी **तथा वदनम्** और मुख **इति द्वादश** ये बारह **शिरसि उपाङ्गानि** सिर के उपांग (हैं)। **अङ्ग-अन्तरेषु तु** (सिर को छोड़ कर) अन्य अंगों में तो **पार्ष्णि-गुल्फौ** एड़ी और टख़ने **तथा** और **करयोः पादयोः अङ्गुल्यः** हाथों और पैरों की उँगलियाँ (तथा) **तले** (पैरों के) तलुए (उपांग हैं)।

मुखरागः चेहरे का रंग, **करयोः प्रचाराः** दोनों हाथों के प्रचार **करणानि च** और करण, **कर्माणि** (उनके) कर्म, **पाणिक्षेत्राणि** हाथों के क्षेत्र, **ततः** उसके बाद **शुद्धानि उत्प्लुतिपूर्वाणि द्विधा करणानि** शुद्ध और उत्प्लुतिपूर्वक दो प्रकार के करण, **सरेचकाः अङ्गहाराः** रेचकों के सहित अंगहार, **शुद्धाः देशीस्थाः च चार्यः** शुद्ध और देशी में स्थित चारी, **स्थानकानि** स्थानक **अथ वृत्तयः** इसके बाद वृत्तियाँ **सप्रविचाराः न्यायाः च** और प्रविचार सहित न्याय **अखिलानि मण्डलानि अपि** और सारे मण्डल, **लास्य-अङ्गानि** लास्यांग, **ततः रेखा** फिर रेखा, **श्रमः** श्रम, **पात्रस्य लक्षणं** पात्र का लक्षण, **तस्य गुणदोषाः मण्डनं च** उसके गुण, दोष और सज्जा, **उपाध्यायलक्षणम्** आचार्य (गुरु) का लक्षण, **संप्रदायाः** संप्रदाय, **तस्य गुणदोषाः** उसके गुण (और) दोष **शुद्धा पद्धतिः च** और शुद्ध पद्धति, **गौण्डल्याः विधिः च** गौण्डली की विधि भी, **पेरणिनः सम्यक् लक्ष्म** पेरणी का योग्य लक्षण, **ततः** उसके बाद **तत्-पद्धतिः** उसकी पद्धति, **अथ आचार्यः** इसके बाद आचार्य, **नटनर्तकलक्षणं** नट (और) नर्तक का लक्षण, **वैतालिकः चारणः च** वैतालिक और चारण, **कोहलाटिकसभासदः सभापतिः** कोहलाटिक, सभासद (और) सभापति, **सभायाः च निवेशः** सभा की व्यवस्था (अथवा रचना), **रसलक्षणं** रस का लक्षण, **भावलक्षणं** भाव का लक्षण **इति ये क्रमात्** क्रम से **अस्मिन् अध्याये** इस अध्याय में **ब्रूमहे** कहेंगे।

(सर०) नर्तनाध्याय में निरूपित विषयों का यहाँ ग्रन्थकार ने क्रम से उद्देश (नाम गिनाना) किया है। शरीर के विभिन्न अवयवों को मुख्य रूप से तीन वर्गों में रखा है—अंग, प्रत्यंग और उपांग। अंग ६ कहे हैं—सिर, हाथ, वक्ष, बाजू, कमर और पैर। अन्य आचार्यों ने कंधा भी कहा। प्रत्यंग भी ६ हैं—गर्दन, भुजा, पीठ, पेट, जाँघ और टाँग। अन्यों ने कलाई, घुटने और भूषण भी कहे। उपांग १२ हैं—दृष्टि, भौंहें, पलकें, पुतलियाँ, गाल, नाक, वायु, ओठ, दाँत, जीभ, ठोडी और मुख। अन्य ५ उपांग भी हैं—एड़ी, टख़ने, हाथ की और पैर की उँगलियाँ और तलुए।

अङ्गान्तरेषु पर कल्लि० ने कहा कि 'सिर को छोड़ कर करणों के'। इसमें 'करण' शब्द से संगत अर्थ प्राप्त नहीं होता। सिंह० ने स्पष्टतः 'करचरणयोः' कहा है। यानी अंगान्तरों में पार्ष्णि आदि आठ कर (हाथ) और चरण के उपांग हैं।

अङ्गुल्यः करयोः पादयोस्तले को कल्लि० ने इस तरह स्पष्ट किया कि 'हाथों की उँगलियाँ' समझना चाहिये और 'तले' को संनिहित (निकटवर्ती) **पादयोः** यानी पैरों के साथ ही जोड़ना चाहिये। यानी हाथों की उँगलियाँ और पैरों के तलुए। 'करयोः

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तले' यानी हाथों के तल (हथेली) करणप्रचारों के भेदों में आगे कहे जाने वाले हैं, कल्लि० के इस कथन का आशय यह है कि हथेलियों को यहाँ नहीं जोड़ना चाहिये।

सरेचकाः का कल्लि० का स्पष्टीकरण यह है कि यहाँ स्वतन्त्र रेचकों का नहीं बल्कि अंगहारों के अंग के रूप में प्रयोग अभिप्रेत है इसलिये अंगहार का विशेषण बना कर ('सरेचक'—यों) उद्देश किया है। इसी तरह 'सप्रविचार न्याय में प्रविचार को न्याय का भाग समझना चाहिये।'

(तत्र अङ्गानि)

(अङ्गम् १—शिरः)

अथ शिरोभेदाः—

धुतं विधुतमाधूतमवधूतं च कम्पितम्।
आकम्पितोद्वाहिते च परिवाहितमञ्चितम्॥ ४९॥

निहञ्चितं परावृत्तमुत्क्षिप्ताधोमुखे तथा।
लोलितं चेति विज्ञेयं चतुर्दशविधं शिरः॥ ५०॥

तिर्यङ्नतोन्नतं स्कन्धानतमारात्रिकं समम्।
पार्श्वाभिमुखमित्यन्यान् भेदान् पञ्चापरे जगुः॥ ५१॥

अंग

अंग १—सिर

४९-५१. (अ०) अथ शिरोभेदाः अब सिर के भेद—

धुत, विधुत, आधूत, अवधूत और कंपित, आकंपित और उद्वाहित, परिवाहित और अंचित, निहंचित, परावृत्त, उत्क्षिप्त और अधोमुख तथा लोलित **इति** ये **चतुर्दशविधं शिरः विज्ञेयः** चौदह प्रकार का सिर जाना गया है (सिर के अभिनय माने गये हैं)। **अपरे** अन्य (आचार्यों) ने **तिर्यक्-नत-उन्नतं** तिर्यक्नतोन्नत, **स्कन्ध-आनतं** स्कन्धानत, **आरात्रिकम्** आरात्रिक, **समं** सम, **पार्श्व-अभिमुखं** पार्श्वाभिमुख **इति अन्यान् पञ्च भेदान्** ये अन्य पाँच भेद **जगुः** कहे हैं।

(सर०) अंग, प्रत्यंग, उपांग आदि में जो सिर आदि अवयवों के नाम आये हैं उनका आशय उनसे किये जाने वाले अभिनय के प्रकार हैं, उन अंगों के भेद नहीं समझना चाहिये।

यहाँ नामों के मूलपाठ को अलग से न दिखा कर सीधे अनुवाद के रूप में रख दिया है। आगे भी पूरे अध्याय में ऐसा ही किया जायेगा।

(तेषां लक्षणानि विनियोगश्च)

(धुतम्—१)

पर्यायेण शनैस्तिर्यग्गतमुक्तं धुतं शिरः।
शून्यस्थानस्थितस्यैव पार्श्वदेशावलोकने॥ ५२॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अनाश्वासे विस्मये च विषादेऽनीप्सिते तथा।
प्रतिषेधे च तस्योक्तः प्रयोगो भरतादिभिः॥५३॥

इति धुतम् (१)

उनके लक्षण और विनियोग

धुत—१

५२-५३. (अ०) **पर्यायेण** क्रम से **शनैः** धीरे से **तिर्यक्-गतं** आड़ी (दिशा में) गया हुआ **धुतं शिरः उक्तं** धुत (नामक) शिर कहा गया है। **शून्यस्थानस्थितस्य एव** निर्जन स्थान में स्थित (पुरुष) में ही, **पार्श्वदेश-अवलोकने** दोनों बाजुओं की ओर देखने में, **अनाश्वासे** आश्वासन न देने में, **विस्मये विषादे च** विस्मय में और विषाद में **तथा अनीप्सिते** तथा अनिच्छित में **प्रतिषेधे च** और निषेध में **भरत-आदिभिः** भरत आदि के द्वारा **तस्य प्रयोगः** उसका प्रयोग **उक्तः** कहा गया है।

(सर०) धुत शिर की व्याख्या में सिंह० ने **क्रमेण** का अर्थ क्रम से बाईं और दाहिनी ओर तथा **तिर्यक्** का अर्थ नीचे झुका हुआ (नम्रीभूतं) दिया है।

यह धुत है। (१)

(विधुतम्—२)

द्रुतगत्या तदेव स्याद्विधुतं तत्प्रचक्षते।
शीतार्ते ज्वरिते भीते सद्यः पीतासवे तथा॥५४॥

इति विधुतम् (२)

विधुत—२

५४. (अ०) **तत् एव** वही **द्रुतगत्या** द्रुत गति से (करने पर) **विधुतं स्यात्** विधुत होता है। **तत्** वह **शीत-आर्ते** सर्दी से व्याकुल हुए (व्यक्ति) में, **ज्वरिते** ज्वर (आये व्यक्ति) में, **भीते** डरे हुए में **तथा** और **सद्यः पीत-आसवे** तुरन्त मद्य पीये हुए में **प्रचक्षते** देखा जाता है।

यह विधुत है। (२)

(आधूतम्—३)

आधूतं तु सकृत्तिर्यगूर्ध्वानीतं शिरो मतम्।
गर्वेण स्वाङ्गवीक्षायां पार्श्वस्थोर्ध्वनिरीक्षणे॥५५॥

शक्तोन्वित्यभिमाने च प्रयोगस्तस्य कीर्तितः।

इत्याधूतम् (३)

आधूत—३

५५-५६ ख. (अ०) **आधूतं तु** आधूत तो **सकृत्** एक बार **तिर्यक्** आड़ा **ऊर्ध्व-आनीतम्** ऊपर (की ओर) ले जाया गया **शिरं मतं** सिर माना गया है। **गर्वेण स्व-अङ्गवीक्षायां** गर्व से अपने अंगों को देखने में, **पार्श्वस्थ-ऊर्ध्वनिरीक्षणे** बाजू

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की ओर स्थित को ऊपर की ओर देखने में **शक्तोन्विति अभिमाने च** और शक्तिसंपन्नता (अर्थात् मैं संपन्न हूँ इस) के अभिमान में **तस्य प्रयोगः** उसका प्रयोग **कीर्तितः** कहा गया है।

यह आधूत है। (३)

(अवधूतम्—४)

यदधः सकृदानीतमवधूतं तदुच्यते॥ ५६॥

स्थित्यर्थे देशनिर्देशे संज्ञावाहनयोरपि।
आलापे च प्रयोक्तव्यमिदमाहुर्मनीषिणः॥ ५७॥

इत्यवधूतम् (४)

अवधूत—४

५६ ग-५७. (अ०) **यत्** जो **सकृत्** एक बार **अधः आनीतं** नीचे ले जाया गया (हो) **तत्** वह **अवधूतम् उच्यते** अवधूत कहा जाता है। **स्थिति अर्थे** स्थिरता/प्रतिष्ठा दिखाने में, **देशनिर्देशे** देश का निर्देश करने में, **संज्ञावाहनयोः अपि** संज्ञा और आवाहन में भी **आलापे च** और बोलने (वार्तालाप करने) में **प्रयोक्तव्यं** प्रयुक्त करना चाहिये **इदं मनीषिणः आहुः** ऐसा विद्वान् कहते हैं।

(सर०) कल्लि० ने संज्ञा को गूढ़ अर्थ को सूचित करने वाली चेष्टा कहा है।

सिंह० ने **स्थिति** का अर्थ प्रतिष्ठा दिया है।

यह अवधूत है। (४)

(कम्पितम्—५)

बहुशो द्रुतमूर्ध्वाधः कम्पनात्कम्पितं शिरः।
ज्ञानेऽभ्युपगमे रोषे वितर्के तर्जने तथा॥ ५८॥

त्वरितप्रश्नवाक्ये च प्रयोक्तव्यमिदं शिरः।

इति कम्पितम् (५)

कंपित—५

५८-५९ ख. (अ०) **बहुशः** बहुत बार **ऊर्ध्व-अधः** ऊपर-नीचे **द्रुतं कम्पनात्** जल्दी (जल्दी) हिलाने से **कम्पितं शिरः** कंपित शिर (होता है)। **ज्ञाने** ज्ञान में, **अभ्युपगमे** स्वीकार में, **रोषे** रोष में, **वितर्के** संशय में **तथा तर्जने** और धमकाने (या मना करने) में **त्वरितप्रश्नवाक्ये च** तथा जल्दी किये गये प्रश्नवाक्य में **इदं शिरः** यह शिर **प्रयोक्तव्यं** योजित करना चाहिये।

यह कंपित है। (५)

(आकम्पितम्—६)

आकम्पितं तदेव स्याद् द्विःप्रयुक्तं शनैर्यदि॥ ५९॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एतत्पौरस्त्यनिर्देशप्रश्ने संज्ञोपदेशयोः।
आवाहने स्वचित्तस्थकथने च प्रयुज्यते॥ ६०॥

इत्याकम्पितम् (६)

आकंपित—६

५९ ग-६०. (अ०) तत् एव वही (कंपित ही) यदि यदि शनैः द्विप्रयुक्तं धीरे दो बार प्रयुक्त हो (तो) आकम्पितं स्यात् आकंपित होता है। एतत् यह पौरस्त्यनिर्देशप्रश्ने पूर्व की ओर (के व्यक्ति) का निर्देश करने में और प्रश्न में, संज्ञा-उपदेशयोः गूढ़ार्थ (के कथन) और उपदेश में आवाहने आवाहन में स्वचित्तस्थकथने च और अपने मन की बात कहने में प्रयुज्यते प्रयुक्त होता है।

यह आकंपित है। (६)

(उद्वाहितम्—७)

सकृदूर्ध्वं शिरो नीतमुद्वाहितमुदीरितम्।
शक्तोऽहमिति कार्येऽस्मिन्नभिमाने प्रयुज्यते॥ ६१॥

इत्युद्वाहितम् (७)

उद्वाहित—७

६१. (अ०) सकृत एक बार ऊर्ध्वं नीतं शिरः ऊपर ले जाया गया शिर उद्वाहितम् उदीरितम् उद्वाहित कहा गया है। अस्मिन् कार्ये इस काम (को करने) में अहं शक्तः मैं समर्थ हूँ अभिमाने (इस) अभिमान में प्रयुज्यते (यह) प्रयुक्त होता है।

यह उद्वाहित है। (७)

(परिवाहितम्—८)

परिमण्डलिताकारभ्रामितं परिवाहितम्।
लज्जाभरोद्भवे माने वल्लभानुकृतौ तथा॥ ६२॥

विस्मये च स्मिते हर्षामर्षयोरनुमोदने।[१]
विचारे च विचारज्ञाः कार्यमाहुरिदं शिरः॥ ६३॥

इति परिवाहितम् (८)

परिवाहित—८

६२-६३. (अ०) परिमण्डलित-आकारभ्रामितं चारों ओर गोल आकार में घुमाया हुआ परिवाहितं परिवाहित (शिर होता है)। लज्जाभर-उद्भवे बहुत लज्जा उत्पन्न होने पर, माने मान में तथा वल्लभ-अनुकृतौ और प्रिय का अनुकरण करने में, विस्मये स्मिते च विस्मय और स्मित में, हर्ष-अमर्षयोः हर्ष और क्रोध में, अनुमोदने विचारे च अनुमोदन में और विचार में इदं शिरः कार्यं यह शिर करना चाहिये (ऐसा) विचारज्ञाः आहुः विचारवान् (विद्वान्) कहते हैं।

यह परिवाहित है। (८)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(अञ्चितम्—९)

शिरः स्यादञ्चितं किंचित्पार्श्वतो नतकन्धरम्।
रुक्चिन्तामोहमूर्च्छासु तत्कार्यं हनुधारणे॥ ६४॥

इत्यञ्चितम् (९)

अंचित—९

६४. (अ०) पार्श्वतः बाजू की ओर से किंचित् नतकन्धरं कुछ झुके हुए कन्धे वाला अञ्चितं शिरः स्यात् अंचित शिर होता है। रुक्-चिन्ता-मोह-मूर्च्छासु रोग, चिन्ता, मोह और मूर्छा में, हनुधारणे ठोडी पकड़ने में तत् कार्यम् उसे करना चाहिये।

(सर०) हनुधारणे पर कल्लि० ने कहा कि रोग, चिन्ता आदि में जिस हस्त से हनुधारण हो उसमें अंचित शिर करना चाहिये।

यह अंचित है। (९)

(निहञ्चितम्—१०)

उत्क्षिप्तबाहुशिरसं मग्नग्रीवं निहञ्चितम्।
विलासे ललिते गर्वे बिब्बोके किलकिञ्चिते॥ ६५॥

मोट्टायिते कुट्टमिते माने स्तम्भे च तद्भवेत्।
विलासो गमनादिः स्याच्चेष्टाश्लिष्टाङ्गया कृता॥ ६६॥

कान्तायाः सुकुमाराङ्गोपाङ्गत्वं ललितं विदुः
बिब्बोकस्त्विष्टलाभेन जाताद्गर्वादनादरः॥ ६७॥

हर्षाद्रोदनहास्यादि प्रोच्यते किलकिञ्चितम्।
मोट्टायितं प्रियकथादृष्ट्यादौ तन्मयात्मता॥ ६८॥

केशादिग्रहजे हर्षे दुःखवद्वेदनं तु यत्।
तत्स्यात्कुट्टमितं मानो रोषः प्रणयसंभवः॥ ६९॥

स्यात्तु निष्क्रियता स्तम्भो नवोढाप्रियसङ्गमे।

इति निहञ्चितम् (१०)

निहंचित-१०

६५-७० ख. (अ०) उत्क्षिप्तबाहुशिरसं ऊँची की हुई भुजा वाला शिर (जिसमें) मग्नग्रीवं नीचे की हुई गर्दन (हो वह) निहञ्चितं निहंचित (होता है)। विलासे ललिते गर्वे विलास, ललित, गर्व बिब्बोके किलकिञ्चिते बिब्बोक, किल-किंचित, मोट्टायिते कुट्टमिते मोट्टायित, कुट्टमित, माने स्तम्भे च मान और स्तंभ में तत् भवेत् वह होता है। आश्लिष्ट-अङ्गया कृता सुंदर अंगों वाली (नारी) के द्वारा की गई गमन-आदिः चेष्टा जाना आदि क्रिया विलासः स्यात् विलास होता है। कान्तायाः लावण्यमयी रमणी का सुकुमार-अङ्ग-उपाङ्गत्वं कोमल अंग और उपांग वाला रूप ललितं विदुः ललित जानते हैं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(जाना जाता है)। **बिब्बोकः तु** बिब्बोक तो **इष्टलाभेन जातात् गर्वात्** इष्ट की प्राप्ति से आये हुए गर्व से (उत्पन्न) **अनादरः** अनादर (है)। **हर्षात्** हर्ष से **रोदनहास्य-आदिः** रोना, हँसना आदि **किलकिञ्चितं प्रोच्यते** किलकिंचित कहा जाता है। **प्रियकथादृष्टि-आदौ तन्मय-आत्मता** प्रिय के गुण (श्रवण), दर्शन आदि में मन की तन्मयता **मोट्टायितं** मोट्टायित (होती है)। **केश-आदिग्रहणे** बाल आदि पकड़ने (हाथ में लेने), **हर्षे** हर्ष में **दुःखवत्-वेदनं तु यत्** दुःख की तरह का तो जो संवेदन **तत्** वह **कुट्टमितं स्यात्** कुट्टमित होता है। **प्रणयसंभवः रोषः** प्रणय से उत्पन्न होने वाला रोष **मानः** मान (है)। **नव-ऊढाप्रियसंगमे** नवविवाहिता (रमणी) के प्रिय से संगम में **निष्क्रियता तु** निष्क्रियता तो **स्तम्भः स्यात्** स्तंभ होता है।

(सर०) सिंह० ने मोट्टायित की व्याख्या में प्रिय के चरणविन्यास (पैर रखने) की ध्वनि के सुनने आदि में तन्मयता भी कही है।

यह निहंचित है। (१०)

(परावृत्तम्—११)

पराङ्मुखीकृतं शीर्षं परावृत्तमुदाहृतम्॥ ७०॥

तत्कार्यं कोपलज्जादिकृते वक्त्रापसारणे।
परावृत्तानुकरणे पृष्ठतः प्रेक्षणे तथा॥ ७१॥

इति परावृत्तम् (११)

परावृत्त—११

७० ग-७१. (अ०) **पराङ्मुखीकृतं शीर्षं** पीछे की ओर मुख किया हुआ शिर **परावृत्तम् उदाहृतं** परावृत्त कहा गया है। **तत्** वह **कोपलज्जा-आदिकृते** कोप, लज्जा आदि किये हुए **वक्त्र-अपसारणे** चेहरे को दूर करने में, **परावृत्त-अनुकरणे** पीछे घूमे हुए का अनुकरण करने में **तथा पृष्ठतः प्रेक्षणे** और पीछे देखने में **कार्यं** (प्रयुक्त) करना चाहिये।

यह परावृत्त है। (१२)

(उत्क्षिप्तम्—१३)

ऊर्ध्ववक्त्रं शिरो ज्ञेयमुत्क्षिप्तं तत्प्रयुज्यते।
दर्शने तुङ्गवक्तूनां चन्द्रादिव्योमगामिनाम्॥ ७२॥

इत्युक्षिप्तम् (१२)

उत्क्षिप्त—१२

७२. (अ०) **ऊर्ध्ववक्त्रं शिरः** ऊपर किये हुए मुख वाला शिर **उत्क्षिप्तं ज्ञेयम्** उत्क्षिप्त जाना गया है। **तत्** वह **तुङ्गवस्तूनाम्** ऊँची वस्तुओं (और) **चन्द्र-आदिव्योमगामिनां** चन्द्रमा आदि आकाश में जाने वाले (ग्रह, नक्षत्र आदि) **दर्शने** देखने में **प्रयुज्यते** प्रयुक्त होता है।

यह उत्क्षिप्त है। (१२)

(अधोमुखम्—१३)

लज्जादुःखप्रणामेषु स्यादन्वर्थमधोमुखम्।

इत्यधोमुखम् (१३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अधोमुख—१३

७३ क-ख. (अ०) अधोमुखम् अन्वर्थम् अधोमुख (शिर) अर्थ के अनुसार नाम वाला (अर्थात् नीचे की ओर मुख वाला है) (जो) **लज्जादुःखप्रणामेषु** लज्जा, दुःख और प्रणाम में **स्यात्** (प्रयुक्त) होता है।

यह अधोमुख है। (१३)

(लोलितम्—१४)

शिरः स्याल्लोलितं सर्वदिक्कैः शिथिललोचनैः॥ ७३॥

निद्रागदग्रहावेशमदमूर्च्छासु तन्मतम्।

इति लोलितम् (१४)

इति भरतोक्तं चतुर्दशविधं शिरः

लोलित—१४

७३ ग-७४ ख. (अ०) सर्वदिक्कैः सारी दिशाओं में (घूमने वाले) **शिथिललोचनैः** शिथिल नेत्रों से **लोलितं शिरः स्यात्** लोलित शिर होता है। **तत्** वह **निद्रागदग्रह-आवेशमदमूर्च्छासु** नींद, रोग, भूत प्रेत आदि के चिपटने में, उन्माद और मूर्छा में **मतं** माना गया है।

(सर०) कल्लि० ने कहा कि अलग-अलग स्वरूप वाले शिरोभेदों में से जहाँ जिस किसी विनियोग में समानता दिखाई दे वहाँ विकल्प समझ कर किसी एक का प्रयोग करना चाहिये। आशय यह है कि हालाँकि शिर के इन भेदों का स्वरूप भिन्न है लेकिन अगर कहीं विनियोग (परिस्थिति-विशेष में प्रयोग या संयोजन) समान हो तो आवश्यकता के अनुरूप उनमें से किसी एक का प्रयोग समझ-बूझ कर किया जा सकता है।

ये भरत द्वारा कहे गये चौदह प्रकार के शिर हैं।

(अन्यशिरःप्रकाराः)

(तिर्यङ्नतोन्नतम्—१)

तिर्यङ्नतोन्नतिं प्राप्तं शिरस्तिर्यङ्नतोन्नतम्॥ ७४॥

बिब्बोकादिषु कान्तानां तत्प्रयोगं प्रचक्षते।

इति तिर्यङ्नतोन्नतम् (१)

शिर के अन्य प्रकार

तिर्यङ्नतोन्नत—१

७४ ग-७५ ख. (अ०) तिर्यक् नत-उन्नतिं प्राप्तं शिरः तिरछा (रख कर) नीचे झुका हुआ (और) ऊपर उठाया हुआ शिर **तिर्यङ्नतोन्नतं** तिर्यङ्नतोन्नत (होता है)। **कान्तानां** रमणियों के **बिब्बोक-आदिषु** बिब्बोक आदि में **तत् प्रयोगम्** उसका प्रयोग **प्रचक्षते** कहा जाता है।

(सर०) बिब्बोक का अर्थ है अभिमान के कारण प्रिय पदार्थ की ओर उदासीनता का प्रदर्शन।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सिंह० के अनुसार ये पाँच शिर अन्य मत से कहे गये हैं।

यह तिर्यङ्नतोन्नत है। (१)

(स्कन्धानतम्—२)

स्कन्धानतं तदाख्यातं स्कन्धे यन्निहितं शिरः॥ ७५॥

तन्निद्रामदमूर्च्छासु चिन्तायां तत्प्रयुज्यते।

इति स्कन्धानतम् (२)

स्कन्धानत—२

७५ ग-७६ ख. (अ०) **यत्** जो **स्कन्धे निहितं शिरः** कंधे पर रखे हुए सिर वाला (हो) **तत्** वह **स्कन्धानतम् आख्यातं** स्कन्धानत कहा गया है। **तत्** वह **निद्रामदमूर्च्छासु** नींद, उन्माद और मूर्छा में (और) **चिन्तायां** चिन्ता में (भी) **तत् प्रयुज्यते** वह प्रयुक्त होता है।

यह स्कन्धानत है। (२)

(आरात्रिकम्—३)

स्कन्धे तु किंचिदाश्लिष्य भ्रान्तमारात्रिकं स्मृतम्॥ ७६॥

विस्मये दृश्यते तच्च पराभिप्रायवेदने।

इत्यारात्रिकम् (३)

आरात्रिक—३

७६ ग-७७ ख. (अ०) **स्कन्धे तु** दोनों कंधे तो **किंचित् आश्लिष्य** कुछ भिड़ा कर **भ्रान्तं** गोल घुमाया हुआ **आरात्रिकं स्मृतम्** आरात्रिक माना गया है **तत् च** और वह **विस्मये** विस्मय में (और) **पर-अभिप्रायवेदने** दूसरे का अभिप्राय जानने में **दृश्यते** दिखाई देता है।

यह आरात्रिक है। (३)

(समम्—४)

स्वाभाविकं समं शीर्षं स्वभावाभिनये मतम्॥ ७७॥

इति समम् (४)

सम—४

७७ ग-घ. (अ०) **स्वाभाविकं** स्वाभाविक (विकाररहित) **शीर्षं** शिर **समं** सम (होता है और) **स्वभाव-अभिनये मतं** स्वाभाविक अभिनय में माना गया है।

यह सम है। (८)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(पार्श्वाभिमुखम्—५)

पार्श्वाभिमुखमन्वर्थं पार्श्वस्थस्यावलोकने।

इति पार्श्वाभिमुखम् (५)

इति पञ्च शिरः प्रकाराः।

इत्येकोनविंशतिविधं शिरः॥

पार्श्वाभिमुख—५

७८ क-ख. (अ०) **पार्श्वाभिमुखम् अन्वर्थं** पार्श्वाभिमुख अर्थ के अनुसार नाम वाला है (और) **पार्श्वस्थस्य अवलोकने** बाजू में स्थित को देखने में (प्रयुक्त होता है)।

यह पार्श्वाभिमुख है। (५)

ये सिर के (अन्य) पाँच प्रकार हैं।

उन्नीस प्रकार के शिर के भेद समाप्त

(अङ्गम् २—हस्तानि)

(हस्तभेदोद्देशः)

हस्तभेदानामुद्देशः—

पताकस्त्रिपताकोऽर्धचन्द्राख्यः कर्तरीमुखः॥ ७८॥

अरालमुष्टिशिखरकपित्थखटकामुखाः।
शुकतुण्डश्च काङ्गूलः पद्मकोशोऽलपल्लवः॥ ७९॥

सूचीमुखः सर्पशिराश्चतुरो मृगशीर्षकः।
हंसास्यो हंसपक्षश्च भ्रमरो मुकुलस्तथा॥ ८०॥

ऊर्णनाभश्च संदंशस्ताम्रचूडोऽपरः करः।
असंयुता मता हस्ताश्चतुर्विंशतिरित्यमी॥ ८१॥

अभिनेयवशादेषां संयुतत्वमपीष्यते।

अंग २—हस्त

हस्तभेदों का उद्देश

७८ ग-८२ ख. (अ०) पताक, त्रिपताक, अर्धचन्द्र, कर्तरीमुख, अराल, मुष्टि, शिखर, कपित्थ, खटकामुख, शुकतुंड, कांगूल, पद्मकोश, अलपल्लव, सूचीमुख, सर्पशिरा, चतुर, मृगशीर्षक, हंसास्य, हंसपक्ष, भ्रमर, मुकुल, ऊर्णनाभ, संदंश, ताम्रचूड **इति अमी** इस प्रकार ये **चतुर्विंशतिः** चौबीस **असंयुताः हस्ताः मताः** असंयुत हस्त माने गये हैं। **अभिनेयवशात्** अभिनय के योग्य विषय के वश से (अर्थात् अनुसार) **एषाम्** इनका **संयुतत्वम् अपि** संयुत स्वरूप भी **इष्यते** इष्ट होता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) **अभिनेयवशात्**... इष्यते की व्याख्या करते हुए कल्लि० ने कहा कि 'अभिनेय' का अर्थ है अभिनय के योग्य। उसके वश से पताक आदि चौबीस असंयुत हस्तों में संयुतत्व भी इष्ट होता है अर्थात् ये असंयुत (किसी के साथ न जुड़ने वाले यानी अकेले-अकेले) होते हुए भी अभिनय की आवश्यकता के आधार पर संयुत (जुड़ कर) भी प्रयुक्त हो सकते हैं। उदाहरण दिया कि ग्रन्थकार पताक हस्त के विनियोग में (१०८ क-ख) कहने वाले हैं कि योग्य रूप से अलग-अलग (विच्युतौ) ये दो पताक हस्त एक-दूसरे के सामने (आमने-सामने संयुत रूप में) करने चाहियें। इसकी पुष्टि में चतुर हस्त के विनियोग में भरत का श्लोक भी कल्लि० ने उद्धृत किया और कहा कि दूसरे हस्तों में भी ऐसा ही (संयुतत्व) समझना चाहिये। भरत के श्लोक में कहा गया है कि नयनों के सादृश्य (उपमा) में कमलदल (पंखुड़ियों) के अभिनय में, हिरन के कानों के निर्देश में संयुत करण के रूप में ही चतुरों के द्वारा योजित करना चाहिये। (ना०शा०, ९/९६)।

अञ्जलिश्च कपोताख्यः कर्कटः स्वस्तिकस्तथा॥ ८२॥

डोलः पुष्पपुटोत्सङ्गौ खटकावर्धमानकः।
गजदन्तोऽवहित्थश्च निषधो मकरस्तथा॥ ८३॥

वर्धमानश्चेति हस्ताः संयुताः स्युस्त्रयोदश।
एतेऽभिनयहस्ता स्युः सप्तत्रिंशन्मुनेर्मताः॥ ८४॥

८२ ग-८४. (अ०) अंजलि, कपोत, कर्कट, स्वस्तिक, डोल, पुष्पपुट, उत्संग, खटकावर्धमानक, गजदन्त, अवहित्थ, निषध, मकर और वर्धमान इति त्रयोदश ये तेरह **संयुताः हस्ताः स्युः** संयुत हस्त होते हैं। **एते सप्तत्रिंशत्** ये सैंतीस **मुनेः मताः** मुनि (भरत) के द्वारा माने गये **अभिनयहस्ताः स्युः** अभिनय हस्त होते हैं।

चतुरश्रौ तथोद्वृत्तौ हस्तौ तलमुखाभिधौ।
स्वस्तिकौ विप्रकीर्णाख्यावरालखटकामुखौ॥ ८५॥

आविद्धवक्त्रौ सूच्यास्यौ रेचितावर्धरेचितौ।
नितम्बौ पल्लवौ केशबन्धावुत्तानवञ्चितौ॥ ८६॥

लताख्यौ करिहस्तश्च पक्षवञ्चितकाभिधौ।
पक्षप्रद्योतकौ दण्डपक्षौ गरुडपक्षकौ॥ ८७॥

ऊर्ध्वमण्डलिनौ हस्तौ पार्श्वमण्डलिनावपि।
उरोमण्डलिनौ स्यातामुरःपार्श्वार्धमण्डलौ॥ ८८॥

मुष्टिकस्वस्तिकावन्यौ नलिनीपद्मकोशकौ।
अलपद्मावुल्बणौ च ललितौ वलिताविति॥ ८९॥

नृत्तहस्ता मतास्त्रिंशन्नृत्तमात्रोपयोगिनः।
एतानभिनयेऽप्याहुः शास्त्रतः संप्रदायतः॥ ९०॥

८५-९०. (अ०) **चतुरश्रौ तथा उद्वृत्तौ हस्तौ** चतुरश्र और उद्वृत्त हस्त, **तलमुख-अभिधौ** तलमुख नामक, **स्वस्तकौ** स्वस्तिक, **विप्रकीर्ण-आख्यौ** विप्रकीर्ण नामक, **अरालखटकामुखौ** अरालखटकामुख, **आविद्धवक्त्रौ** आविद्धवक्त्र, **सूच्यास्यौ** सूच्यास्य, **रेचितौ अर्धरेचितौ** रेचित, अर्धरेचित, **नितम्बौ** नितंब, **पल्लवौ** पल्लव, **केशबन्धौ** केशबन्ध, **उत्तानवञ्चितौ** उत्तानवंचित, **लता-आख्यौ** लता नाम वाले **करिहस्तः च** और करिहस्त, **पक्षवञ्चितकौ-अभिधौ** पक्षवंचित नामक, **पक्षप्रद्योतकौ**

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पक्षप्रद्योतक, **दण्डपक्षौ** दंडपक्ष, **गरुडपक्षकौ** गरुडपक्ष, **ऊर्ध्वमण्डलिनौ हस्तौ** ऊर्ध्वमंडली हस्त **पार्श्वमण्डलिनौ अपि** और पार्श्वमंडली, **उरोमण्डलिनौ** उरोमंडली, **उरःपार्श्वार्धमण्डलौ स्याताम्** उरःपार्श्वार्धमंडल होते हैं। **मुष्टिकस्वस्तिकौ** मुष्टिक-स्वस्तिक, **अन्यौ नलिनीपद्मकोशकौ** अन्य नलिनीपद्मकोश, **अलपद्मौ** अलपद्म **उल्बणौ च** और उल्बण, **ललितौ** ललित, **वलितौ** वलित **इति त्रिंशत्** ये तीस **नृत्तमात्र-उपयोगिनः** केवल नृत्त में उपयोगी **नृत्तहस्ताः मताः** नृत्तहस्त माने गये हैं। **शास्त्रतः संप्रदायतः** शास्त्र (और) संप्रदाय से (के अनुसार) **एतान्** इन्हें (आचार्य) **अभिनये अपि** अभिनय में भी **आहुः** कहते हैं।

(सर०) अंजलि आदि तेरह संयुत हस्तों के उद्देश में सारे नाम एकवचनान्त हैं लेकिन चतुरश्र आदि तीस नृत्तहस्तों के नाम द्विवचनान्त हैं यद्यपि दोनों ही समान रूप से दोनों हाथों से निष्पन्न होते हैं, ऐसा क्यों? कल्लि० ने द्विवचन निर्देश पर यह आपत्ति उठा कर यह उत्तर दिया। अंजलि आदि अभिनय हस्त होने से उनमें अर्थसूचकता निश्चित है और संयुतत्व न होने से अर्थसूचन के अभाव से संयुत आकार के कारण एकहस्तता होती है इसलिये उनका एकवचन में निर्देश ही उपपन्न होता है। चतुरश्र आदि तो नृत्तहस्त हैं इसलिये केवल शोभा में उपयोगिता होने से और एक हाथ से ही साध्य होने से प्रयोग में हरेक की अलग-अलग स्वतन्त्रता दिखाने के लिये उनमें द्विवचन प्रयोग ही उचित है। आशय यह प्रतीत होता है कि दोनों हाथों की अलग-अलग क्रियाओं से मिल कर जो हस्त होता है वह संयुत हस्त और एक-एक हाथ से यानी अलग-अलग रूप से वही हस्त करने पर असंयुत हस्त होता है। जैसे असंयुत पताक हस्त अलग-अलग हाथों से एकसाथ करने पर संयुत हो जाता है। यद्यपि दोनों ही अभिनय हस्त हैं और दोनों ही दोनों हाथों से होते हैं लेकिन दोनों हाथों की भिन्न क्रियाओं का सम्मिलित रूप से अभिनय होने से संयुत होता है और एक ही क्रिया दोनों हाथों से अलग-अलग यानी स्वतन्त्र रूप से होने पर असंयुत होता है।

फिर शंका उठाई कि नृत्त प्रस्तुत करने में अभिनय हस्तों के उद्देश और लक्षण व परीक्षण से क्या लाभ (क्योंकि नृत्त में केवल आंगिक चेष्टा होती है अर्थसूचकता नहीं और अभिनय हस्तों से अर्थबोध होता है।)?

इसका उत्तर यह दिया कि पहले (२७ ग-२८ख) कहा गया था कि आंगिक में कहे गये प्रकार से नृत्त जाना जाता है जो गात्रविक्षेप वाला और सब प्रकार के अभिनयों से रहित होता है। इसका अर्थ यह है कि आंगिक अभिनय में सिर, हस्त आदि के जो भेद अर्थबोध कराते हैं वही भेद अर्थबोधकता के बिना अगर नर्तक, अपनी इच्छा से, जहाँ जैसी शोभा हो उसके अनुसार केवल ताल और लय का अनुसरण करके प्रयुक्त करे तो नृत्त होता है। इसलिये शुरू में आंगिक अभिनय का प्रकार अवश्य कहना चाहिये। इसमें आक्षेप के योग्य कुछ नहीं है। और फिर अभिनय में नृत्त भी उपयोगी होता है। आवेष्टित आदि में अभिनय का अखण्ड आकार टूटने पर वाक्यार्थ की विश्रान्ति का अनुभव उत्पन्न होता है। इसकी पुष्टि में कल्लि० ने ना०शा० ९/१० की अभि० टीका के अंश उद्धृत करते हुए कहा कि अंजलि आदि में संयुतरूपता ही है यानी वे संयुत हस्त ही हैं लेकिन चतुरश्र आदि उभयरूप यानी संयुत और असंयुत दोनों हैं।

कल्लि० ने एक शंका और उठाई कि चतुरश्रादि (द्विवचनी) हस्तों के उद्देश के बीच में करिहस्त एकवचन क्यों दिया? और यह कह कर छोड़ दिया कि इसकी उपपत्ति ग्रन्थकार स्वयं ही आगे देने वाले हैं।

कल्लि० ने कहा कि कुछ आचार्यों के मत से ये हस्त केवल नृत्त में ही उपयोगी होते हैं लेकिन अन्य आचार्य शास्त्र और संप्रदाय के आधार पर इन्हें अभिनय में भी कहने हैं।

कल्लि० ने प्रस्तुत श्लोकों की टीका में अभि० के जो अंश उद्धृत किये हैं उनमें 'अलातचक्र' का उल्लेख हुआ है (पृ० २८, पं० २)। यह पद संस्कृत के शास्त्रग्रन्थों में इस विशिष्ट धारणा को व्यक्त करने के लिये प्रयुक्ता होता रहा है कि विविध आश्रय वाले तत्त्व एक साथ इस तरह प्रयुक्त हों कि उनकी एकरूपता होकर एक अखण्ड अनुभूति हो तो वह अलातचक्र समझा जाता है। अलात का आशय मशाल है। मशाल को धीरे-धीरे गोल घुमाने पर वह अलग-अलग जगह पर अलग-अलग दिखाई देती है लेकिन उसे ज़ोर से गोल-गोल घुमाने पर आग या प्रकाश का एक चक्र दिखाई देता है। उसी तरह अभिनयहस्त और नृत्तहस्त अलग-अलग होने पर भी संयुत रूप में प्रयुक्त होकर एक अखण्ड अनुभूति कराते हैं। ना०शा० २८/७ में प्रयुक्त अलातचक्र शब्द की टीका में अभिनव ने कहा कि गान, वाद्य और नाट्य विविध आश्रय वाले, भिन्न इन्द्रियों से ग्राह्य होने वाले, विविध क्रिया के रूप वाले हैं लेकिन इन्हें प्रयत्नपूर्वक संपादित करने पर सामाजिक को एकबुद्धिग्राह्य होते हैं यानी एक अखंड अनुभूति कराते हैं, गीत-वाद्य-नाट्य की अलग-अलग नहीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लताख्यौ हि मुनिर्वक्ति नृत्ताभिनयगोचरौ।
सूच्यन्तेऽन्ये साहचर्यात्तेनाभिनयगोचराः॥ ९१॥

९१. (अ०) **मुनिः** भरत **लता-आख्यौ हि** लता नामक (हस्त) **नृत्त-अभिनय-गोचरौ वक्ति** नृत्त और अभिनय (दोनों) में होने वाला कहता है। **तेन साहचर्यात्** उसके साहचर्य से **अन्ये** दूसरे (नृत्तहस्त भी) **अभिनयगोचराः सूच्यन्ते** अभिनय के विषय सूचित होते हैं।

(सर०) पिछले श्लोक में ग्रन्थकार ने कहा कि तीस हस्त केवल नृत्त में उपयोगी कहे गये लेकिन शास्त्र और संप्रदाय के द्वारा ये अभिनय में भी माने गये हैं। प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार ने पहले भरत के आधार पर शास्त्र की अनुज्ञा दिखाई। कल्लि० द्वारा ना०शा० से उद्धृत श्लोक से इसकी पुष्टि होती है (ना० शा०, ९/१९८)।

सूच्यन्ते इत्यादि के द्वारा संप्रदाय दिखाया गया है। कल्लि० ने इसे यों स्पष्ट किया कि नृत्तहस्तों में लता नामक अभिनयहस्तों का अभिनयविषयक होना मुनि (भरत) के वचन से शास्त्र के रूप में सिद्ध होने पर लताहस्त के साथ साहचर्य से दूसरे नृत्तहस्त अभिनय-विषयक सूचित होते हैं। यही संप्रदाय जाना जाता है। कल्लि० ने संप्रदाय का लक्षण देते हुए कहा— 'शास्त्रों में अनुक्त (जो कहा नहीं गया) होते हुए भी शास्त्र के द्वारा मान्य और शास्त्र के अविरोधी अर्थविशेष का आचार्य-शिष्य परंपरा से जो उपदेश दिया (प्रदान किया) जाता है वह संप्रदाय है, यह लक्षण दिया गया है।' कहा भी गया है—'जो जिसे सम्यक् रूप से जानता है और जो तत्त्वतः कहता है वह लोकजयी विष्णु के द्वारा संप्रदाय कहा गया है।'

युक्तितः संप्रदायाच्च लोकतोऽत्र विशेषधीः।
यथा हि करिहस्तेन हस्ती लोकेऽभिनीयते॥ ९२॥

भट्टाभिनवगुप्ताद्यैरिदमभ्युपगम्यते।

९२-९३ ख. (अ०) **अत्र** यहाँ (नृत्तहस्तों के अभिनयविषयक होने में) **युक्तितः** (प्रयोक्ता यानी नर्तक के) तर्क के अनुसार, **संप्रदायात्** संप्रदाय से **लोकतः च** अथवा लोकव्यवहार से **विशेषधीः** विशेष ज्ञान (होता है)। **यथा हि लोके** जैसे लोक में **करिहस्तेन** करिहस्त से **हस्ती अभिनीयते** हाथी का अभिनय किया जाता है। **इदं** यह **भट्ट-अभिनवगुप्त-आद्यैः** भट्ट अभिनवगुप्त आदि के द्वारा **अभ्युपगम्यते** मान्य किया जाता है।

(सर०) कल्लि० ने कहा कि नृत्तहस्त शास्त्र और संप्रदाय के द्वारा अभिनय के विषय भी मानें जाने से सामान्य रूप से उनकी अभिनयविषयता ज्ञात होने पर कहाँ, किसका, कैसे अभिनय हो इस जिज्ञासा से (ग्रन्थकार ने) **युक्तितः** आदि कहा। प्रयोक्ता की समझ परंपरा और लोकाचार में से एक, दो या तीनों से यह देखना (निर्णय करना) चाहिये। यह अभिनवगुप्त आदि ने भी अंगीकार किया है।

सर्वे च मिलिताः सन्तः सप्तषष्टिरिमे कराः॥ ९३॥

चतुःषष्टित्वमेतेषां न युक्त्यागमगोचराः।
चतुःषष्टित्वमेवं वा तेषां सूरिभिरूह्यताम्॥ ९४॥

९३ ग-९४. (अ०) **सर्वे च मिलिताः** (संयुत और असंयुत) सब मिला कर **इमे कराः** ये हस्त **सप्तषष्टिः सन्तः** सड़सठ होते हैं। **एतेषां चतुःषष्टित्वम्** इनकी चौंसठ संख्या **युक्ति-आगमगोचरः न** तर्क और शास्त्र में नहीं दिखाई देती। **एवं वा** अथवा इस प्रकार से **सूरिभिः** विद्वानों के द्वारा **तेषाम्** उनकी **चतुःषष्टित्वं** चौंसठ संख्या **ऊह्यतां** समझ लेनी चाहिये।

(सर०) **सर्वे** से आशय संयुत और असंयुत सारे नृत्तहस्त हैं। दोनों टीकाकारों की टीकाओं से यह स्पष्ट है कि कुल मिला कर सड़सठ हस्त हैं लेकिन लोक में चौंसठ ही माने जाते हैं—यह शंका मन में रख कर ग्रन्थकार ने चौंसठ संख्या

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

को अप्रामाणिक दिखाने के लिये यह कहा कि यह संख्या तर्क और शास्त्र किसी से भी सिद्ध नहीं होती। सिंह० ने शास्त्र के संदर्भ में कहा कि भरत आदि के शास्त्रों में यह संख्या दिखाई नहीं देती। कल्लि० ने कहा कि चौंसठ संख्या की लोकप्रसिद्धि किसी और तरह से उपपन्न न हाने से चौंसठ संख्या संबंधी तर्क ग्रन्थकार का अपनी बुद्धि से कल्पित है।

ना० शा० में असंयुत के २४, संयुत के १३ और नृत्तहस्तों के २९ नाम हैं (९/४-१६) जो मिला कर ६६ होते हैं। लेकिन कुल संख्या ६४ बताई है (वही, १७ क-ख)। शार्ङ्ग० ने २४, १३ और ३० यों ६७ हस्त कहे (७८ ग-९० ख)।

कर्तव्यौ स्वस्तिकौ हस्तौ विप्रकीर्णविशेषणौ।
करौ हि स्वस्तिकीभूय विच्युतौ विप्रकीर्णकौ॥ ९५॥

स्वतन्त्रयोरतो नास्ति प्रयोगो विप्रकीर्णयोः।
उरोमण्डलिनावेवं पार्श्वमण्डलिनोरिह॥ ९६॥

विशेषणे चोल्बणयोः कर्तव्यावलपल्लवौ।
विशेषणविशेष्ये च न स्यातां भिन्नगामिनी॥ ९७॥

नीलमुत्पलमित्यत्र न हीष्टं पङ्कजद्वयम्।

९५-९८ ख. (अ०) **स्वस्तिकौ हस्तौ** स्वस्तिक हस्त **विप्रकीर्णविशेषणौ कर्तव्यौ** विप्रकीर्ण के विशेषण करने चाहियें। **स्वस्तिकीभूय हि** क्योंकि स्वस्तिक होकर (हो जाने पर) ही **विच्युतौ करौ** अलग हुए हस्त **विप्रकीर्णकौ** विप्रकीर्ण (कहे जाते हैं) **अतः** इसलिये **विप्रकीर्णयोः** विप्रकीर्ण (हस्तों) का **स्वतन्त्रयोः** स्वतंत्र रूप से (स्वस्तिक से अलग) **प्रयोगः न अस्ति** प्रयोग नहीं होता। **एवम् इह** इसी तरह **उरोमण्डलिनौ** उरोमण्डली को **पार्श्वमण्डलिनोः** पार्श्वमंडली का **अलपल्लवौ च** और अलपल्लव को **उल्बणयोः** उल्बण के **विशेषणे कर्तव्यौ** विशेषण करने चाहियें। **विशेषणविशेष्ये च** विशेषण (जिसके द्वारा विशेषता दिखाई जाय) और विशेष्य (जिसकी विशेषता दिखाई जाय उस) में **भिन्नगामिनी न स्यातां** भिन्नगामिता नहीं होती (अर्थात् वे भिन्न नहीं होते)। **नीलम् उत्पलम्** (उदाहरणस्वरूप, जैसे) नीला कमल **इति अत्र** इस (विशेषण-विशेष्य) में **पङ्कजद्वयं** दो कमल **न हि इष्टम्** इष्ट नहीं (है)।

(सर०) श्लोक ८५ में 'स्वस्तिकौ' को विप्रकीर्ण कहा जा चुका है। ऐसा क्यों कहा गया इसका स्पष्टीकरण यहाँ प्राप्त होता है। जिन्हें विप्रकीर्ण कहा है वे हस्त स्वतंत्र रूप से यानी अलग-अलग नहीं बल्कि जो जिस हस्त के विशेषण हैं वे उसी के साथ मिल कर प्रयुक्त होते हैं। सिंह० ने कहा कि विशेषण विशेष्य से अलग नहीं होता। ग्रन्थकार ने उदाहरण दिया कि जैसे नील कमल कहने पर दो कमल इष्ट नहीं होते। यानी नीला और कमल अलग-अलग दो नहीं है, कमल का ही विशेषण नीला है इसलिये उसी के साथ या उसी में रहता है। इसी तरह उरोमण्डली पार्श्वमण्डली का और अलपल्लव उल्बण का विशेषण है इसलिये ये अलग नहीं है और इनका स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता।

प्रसिद्धेरुपपत्त्यर्थं युक्तिरेषा मयोदिता॥ ९८॥

आचार्याणां तु सर्वेषां पृथगुद्देशलक्षणे।
वदतां स्वस्तिकाद्येषु न विशेषणता मता॥ ९९॥

९८ ग-९९. (अ०) **प्रसिद्धेः उपपत्त्यर्थं** (लोक-)प्रसिद्धि की उपपत्ति (सही ठहराने) के लिये **मया** मेरे द्वारा **एषा युक्तिः उदिता** यह युक्ति कही गई। **सर्वेषां** सबका (सारे हस्तों का) **पृथक् उद्देश-लक्षणे** अलग-अलग उद्देश और लक्षण **वदतां** कहने वाले **आचार्याणां तु** आचार्यों का (के द्वारा) तो **स्वस्तिक-आद्येषु** स्वस्तिक आदि (हस्तों) में **विशेषणता न मता** (उनका) विशेषण होना नहीं माना गया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) कल्लि० ने कहा कि स्वस्तिक आदि को विशेषण मानने संबंधी युक्ति लोकप्रसिद्धि में (हस्तों की) चौंसठ संख्या को संगत बनाने के लिये ही ग्रन्थकार की अपनी युक्ति दी गई है, आचार्यों की संमत नहीं है, यह आशय है।

निकुञ्चकमयुक्तेषु करं द्विशिखरं पुनः।
युक्तेषु नृत्तहस्तेषु त्वधिकौ वरदाभयौ॥ १००॥

ब्रुवन्तः केचिदाचार्या हस्तसप्ततिमूचिरे।
तेषामीषद्विकारेऽपि विनियोगेष्वनन्यता॥ १०१॥

१००-१०१. (अ०) अयुक्तेषु असंयुतों में निकुञ्चकं करं निकुंचक हस्त पुनः और युक्तेषु संयुतों में द्विशिखरं द्विशिखर (और) नृत्तहस्तेषु तु नृत्तहस्तों में तो वरद-अभयौ वरद और अभय अधिकौ ब्रुवन्तः (ये तीन) अधिक कहने वाले केचित् आचार्याः कुछ आचार्यों ने हस्तसप्ततिम् ऊचिरे सत्तर हस्त कहे। तेषाम् उन (हस्तों) में ईषत् विप्रकारे अपि कुछ भिन्नता होने पर भी विनियोगेषु विनियोगों में अनन्यता अलगपन नहीं (होता)।

(क—असंयुतहस्ताः)

(पताकः—१)

अथासंयुता हस्ताः—

तर्जनीमूलसंलग्नाकुञ्चिताङ्गुष्ठको भवेत्
पताकः संहताकारः प्रसारिततलाङ्गुलिः॥ १०२॥

वस्तुस्पर्शे चपेटे च पताकालालनादिषु।
ज्वालासूर्ध्वगतास्वस्याङ्गुल्यः प्रविरलाश्चलाः॥ १०३॥

धारास्वधोगताः पक्षिपक्षे त्वस्य कटिस्थिते।
ऊर्ध्वं गच्छन्नुच्छ्रितेषु पुष्करप्रहतौ त्वधः॥ १०४॥

ऊर्ध्वं गच्छन्कटिक्षेत्रादुत्क्षेपाभिनये करः।
आभिमुख्ये मुखक्षेत्रमागच्छन्निजपार्श्वतः॥ १०५॥

स्वपार्श्वे कम्प्यमानस्तु प्रतिषेधे भवत्यसौ।
शीघ्रं घर्षन्नधिष्ठाय पताकः क्षालने परम्॥ १०६॥

पताकं तु शनैर्घर्षन् मर्दने मार्जने तथा।
उत्पाटने धारणे च शिलादिस्थूलवस्तुनः॥ १०७॥

उचितौ विच्युतौ कार्यावेतावन्योन्यसम्मुखौ।
अधोगतोच्छ्रितचलाङ्गुलिर्वायूर्मिवेगयोः॥ १०८॥

इति पताकः (१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

क—असंयुत हस्त

पताक—१

१०२-१०८. (अ०) **अथ असंयुताः हस्ताः** अब असंयुत हस्त—

तर्जनीमूलसंलग्न-आकुञ्चित-अङ्गुष्ठकः तर्जनी के मूल से लगा कर सिकोड़े हुए अँगूठे वाला **संहत-आकारः प्रसारिततल-अङ्गुलिः** (और) संहत (मिला कर जोड़ी हुई) आकार वाली फैलाई हुई हथेली और उँगलियों वाला **पताकः** पताक (हस्त होता है)। **वस्तुस्पर्शे** वस्तु को छूने में, **चपेटे** चाँटा मारने में और **पताकालालनादिषु / तालिकादिषु** ध्वज (के अभिनय) में (और) दुलारने में / ताली (देने) में (इसका विनियोग करना चाहिये)। **ऊर्ध्वगतासु ज्वालासु** ऊपर (की ओर) जाती हुई ज्वालाओं में **अस्य अङ्गुल्यः** इस (पताक) की उँगलियाँ **प्रविरलाः चलाः** अलग-अलग (और) हिलती हुई (चंचल) होती हैं। **अधोगताः** (उँगलियाँ) नीचे की ओर करने पर **धारासु** वर्षा की धारा में, **पक्षिपक्षे तु** पक्षियों के पंख (के अभिनय) में तो **अस्य** इसके **कटिस्थिते** कमर पर रखने से, **उच्छ्रितेषु** ऊपर जाने (संबंधी विषयों) में **ऊर्ध्वं गच्छन्** ऊपर जाता हुआ, **पुष्करप्रहतौ तु** मृदंग पर आघात करने में तो **अधः** नीचे (जाने से), **उत्क्षेप-अभिनये** ऊपर फेंकने के अभिनय में **कटिक्षेत्रात्** कमर से **ऊर्ध्वं गच्छन् करः** ऊपर जाता हुआ (पताक) हस्त, **निजपार्श्वतः** अपनी बाजू से **मुखक्षेत्रम् आगच्छन्** चेहरे की ओर आता हुआ **आभिमुख्ये** (किसी के) संमुख (आमने-सामने) होने में **स्वपार्श्वे कम्पमानः तु** अपनी बाजू में कंपित होता हुआ तो **असौ** यह **प्रतिषेधे भवति** निषेध (मना करने) में होता है। **पताकः अधिष्ठाय** पताक करके **परं शीघ्रं घर्षन्** अधिक शीघ्रता से घिसते हुए **क्षालने** धोने में, **शनैः घर्षन्** धीरे घिसते हुए **पताकं तु** पताक तो **मर्दने तथा मार्जने** मलने और पोंछने में, **शिला-आदिस्थूलवस्तुनः** शिला आदि बड़ी वस्तु के **उत्पाटने धारणे च** उखाड़ने और धारण करने में **एतौ उचितौ** ये दो उचित (रीति वाले, पताक हस्त) **अन्योन्यसम्मुखौ** एक-दूसरे के साथ मिल कर **विच्युतौ** (और) अलग-अलग **कार्यौ** करने चाहियें। **अधोगत-उच्छ्रितचल-अङ्गुलिः** नीचे की हुई (और) ऊपर की हुई हिलती उँगलियों वाले (पताक हस्त) **वायु-ऊर्मिवेगयोः** हवा और लहर (अथवा धारा) के वेग (को दिखाने) में (करने चाहियें)।

(सर०) कल्लि० की व्याख्या का सार यह है कि पताक आदि हस्तों में पताक आदि शब्द उनके आकार के सूचक भी हैं और वे अभिधा वृत्ति से उन शब्दों के अर्थ को भी व्यक्त करते हैं। इसलिये अगर कहीं अर्थ न भी कहे गये हों तो उन्हें अपनी ओर से समझ लेना चाहिये।

'चपेटे' पर कल्लि० ने यह कहा कि बटु, चेट (यानी लड़के, नौकर आदि के) 'अस्थान' में (जहाँ नहीं किया जाता उस स्थान पर) प्रहार को चपेट कहा जाता है।

सिंह० ने **पताकालालनादिषु** को पताका का लालन यानी फहराना कहा है। **ऊर्ध्वगतासु** का अन्वय **अङ्गुल्यः** के साथ करके ऊपर गई हुई उँगलियाँ होने पर ज्वालाओं में प्रयोग होता है—यह अर्थ किया है। लेकिन ऊर्ध्वगतासु और ज्वालासु समान विभक्ति वाले पद हैं इसलिये ऊर्ध्वगतासु ज्वालासु का विशेषण है। तदनुसार ही ऊपर अनुवाद किया गया है।

यह पताक (हस्त) है। (१)

(त्रिपताकः—२)

स एव त्रिपताकः स्याद्वक्रितानामिकाङ्गुलिः।
दध्यादिमङ्गलद्रव्यस्पर्शादौ स विधीयते॥ १०९॥

पराङ्मुखः स्यादाह्वाने लग्नद्व्यङ्गुलिकुञ्चनात्।
बहिः क्षिप्ताङ्गुलिद्वन्द्वोऽधस्तलोऽनादरोज्झिते॥ ११०॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नमस्कारे त्वसौ कार्यः शिरस्थः पार्श्वतस्तलः।
उत्तानिताङ्गुलिद्वन्द्वो वदनोन्नमने मतः॥ १११॥

संदेहे दधदङ्गुल्यौ क्रमेणैव नतोन्नते।
अधोमुखः शिरःप्रान्ते भ्रमन्नुष्णीषधारणे॥ ११२॥

तादृगेव किरीटस्य धृतौ मूर्ध्वोर्ध्वदेशगः।
अनिष्टे गन्धवाग्घोषे नासास्यश्रोत्रसंवृतिम्॥ ११३॥

अङ्गुलीभ्यां क्रमात्कुर्वन् पक्षिस्त्रोतोऽनिलेषु तु।
क्षुद्रेषूर्ध्वमधस्तिर्यक् क्रमाद्गच्छन् दधत्तथा॥ ११४॥

अधोमुखचलाङ्गुल्यौ कटिक्षेत्रगतः करः।
अस्त्रे तन्मार्जने च स्यादधो यान्तीमनामिकाम्॥ ११५॥

नेत्रक्षेत्रगतां बिभ्रत्तिलके तु ललाटगाम्।
अलकस्यापनयने दधत्तामलकान्विताम्॥ ११६॥

इति त्रिपताकः (२)

त्रिपताक—२

१०९-११६. (अ०) स एव वही (पताक) वक्रित-अनामिका-अङ्गुलिः वक्री (भीतर की ओर मोड़ी हुई) अनामिका उँगली वाला त्रिपताकः स्यात् त्रिपताक होता है। सः वह दधि-आदिमङ्गलद्रव्यस्पर्श-आदौ दही आदि मंगल वस्तु को छूने आदि में विधीयते प्रयुक्त होता है। लग्नद्वि-अङ्गुलिकुञ्चनात् (अनामिका के) साथ वाली दो उँगलियों (मध्यमा और तर्जनी) का कुंचन करने (मोड़ने) से पराङ्मुखः उल्टा किया हुआ (त्रिपताक) आह्वाने स्यात् बुलाने में (प्रयुक्त) होता है। बहिः क्षिप्त-अङ्गुलिद्वन्द्वः अधः तलः बाहर (की ओर) फेंकी हुई दो उँगलियाँ (मध्यमा और तर्जनी तथा) नीचे (उल्टी) की हुई हथेली वाला (त्रिपताक) अनादर-उज्झिते अनादर और त्याग करने में (करना चाहिये)। पार्श्वतः तलः शिरस्थः तु बाजू की ओर हथेली वाला सिर पर रखने से तो (करके) असौ यह नमस्कारे कार्यः नमस्कार में करना चाहिये। उत्तानित-अङ्गुलिद्वन्द्वः ऊपर की हुई दो उँगलियों वाला वदन-उन्नमने मतः चेहरा ऊपर उठाने में माना गया है। अङ्गुल्यौ (वे) दो उँगलियाँ क्रमेण एव क्रम से ही नत-उन्नते दधत् नीचे और ऊपर धारण करते हुए संदेहे संदेह में, अधोमुखः नीचे की ओर (उल्टा करके) शिरःप्रान्ते सिर के क्षेत्र में भ्रमन् घूमते हुए उष्णीषधारणे उष्णीष (सिर पर बाँधने का वस्त्र, पगड़ी आदि) धारण करने में, तादृक् एव उसी तरह का (वैसा ही) मूर्धा-ऊर्ध्वदेशगः मस्तक के ऊपर के भाग में घूमता हुआ किरीटस्य धृतौ मुकुट को धारण करने में, अङ्गुलीभ्यां दो (तर्जनी और मध्यमा) उँगलियों से नासा-आस्यश्रोत्रसंवृतिं कुर्वन् नाक, मुँह (और) कान बंद करके क्रमात् क्रम से अनिष्टे गन्धवाक्-घोषे अनिष्ट गंध, (अनिष्ट) शब्द (और अनिष्ट) ध्वनि (के अभिनय) में, अधोमुखचल-अङ्गुल्यौ दधत् नीचे की ओर की हुई हिलती (उन्हीं) दोनों उँगलियों को धारण करने वाला कटिक्षेत्रगतः कमर के भाग पर रखा हुआ ऊर्ध्वम् अधः तिर्यक् गच्छन् करः ऊपर, नीचे और तिरछा जाता हुआ हस्त क्रमात् क्रम से क्षुद्रेषु पक्षिस्त्रोतः-अनिलेषु तु छोटे पक्षी, प्रवाह और हवा में (होता है)। अधः यान्तीं नीचे जाती हुई नेत्रक्षेत्रगताम् अनामिकां आँख के भाग में गई हुई अनामिका (की योजना) अस्त्रे आँसू तत् मार्जने च और उसे पोंछने में स्यात् होती है। ललाटगां ललाट (माथे) पर बिभ्रत् तु धारण करने से तो तिलके तिलक (लगाने के अभिनय) में (और) अलक-अन्वितां तां बालों को अन्वित (इकट्ठा) करती हुई उस (अनामिका) को अलकस्य अपनयने बालों को दूर करने में (योजित करना चाहिये)।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) सिंह० ने 'पराङ्मुख आह्वाने च' यों पराङ्मुख और आह्वाने का एक साथ अन्वय करके पराङ्मुख और आवाहन में—इस तरह अर्थ किया है। लेकिन पराङ्मुख का संबंध विनियोग से न होकर आकुंचित लग्न दो उँगलियों वाले हस्त की स्थिति से यानी उल्टा करने से है। **बहिः क्षिप्ताङ्गुलिद्वन्द्वः** का विनियोग सिंह० ने अनादर और नमस्कार में कहा। लेकिन उँगलियों की इस स्थिति वाले हस्त का विनियोग केवल अनादर में समझना चाहिये क्योंकि मस्तक पर स्थित हथेली के द्वारा नमस्कार का अभिनय ग्रन्थकार ने अगली ही पंक्ति में कहा है। अनादर और नमस्कार परस्पर विपरीत हैं और नमस्कार की अभिव्यक्ति माथे पर हाथ लगाने से ही होती है।

उष्णीषधारणे से संबंधित ग्रन्थकार के लक्षण की व्याख्या कल्लि० ने इस प्रकार की है। उष्णीष धारण करने के अभिनय में 'नीचे चेहरे वाला और मस्तक प्रदेश में घूमने वाला' ऐसा कहा गया। उसी तरह मस्तक के ऊपर के भाग में घूमने वाला मुकुट धारण करने में योजित करना चाहिये, यह कहा गया। ऐसा कहने का अर्थ यह है। अधोमुख त्रिपताक हस्त पहले शिरप्रान्त में यानी पूरे सिर पर घुमा कर फिर सिर के ऊपर के भाग में पहले की आवृत्ति के आधे परिमाण में घुमा कर फिर उससे आधी दूरी तक घुमा कर मुकुट पहनने का अभिनय करना चाहिये, यह कहा गया।

इस व्याख्या का आशय यह है कि त्रिपताक हस्त की जिस स्थिति में पूरे सिर पर घुमा कर उष्णीष धारण करने का अभिनय किया जाता है उसी में पहले पूरे सिर पर, फिर उसके आधे भाग में और फिर उसके भी आधे भाग में हस्त को घुमाने से नीचे से ऊपर की ओर मुकुट की आकृति छोटी होती जाने की अभिव्यक्ति होती है।

सिंह० ने 'अनिष्ट' का अर्थ निषेध किया है जो संगत प्रतीत नहीं होता। 'अस्त्र' का रक्तस्राव (रक्त बहना) अर्थ करके कमर के भाग में रखी उँगलियों से रक्तस्राव और उसे पोंछने का अभिनय कहा है। वास्तव में अस्त्र का अर्थ आँसू है और उसका अन्वय **नेत्रक्षेत्रगतां** के साथ है जिससे यह संगत अर्थ प्राप्त होता है कि आँख पर रख कर उस हस्त से आँसू बहने और उसे पोंछने का अभिनय होता है। सिंह० ने नेत्रक्षेत्रगतां का अन्वय नेत्रक्षेत्र पर ले जाये गये हस्त के साथ करके तिलक लगाने का अभिनय कहा है और **ललाटगां** का अन्वय **अलकस्यापनयने** के साथ करके माथे पर आए हुए बालों को हटाने का अभिनय दिखाया है। वास्तव में तिलक लगाने की अभिव्यक्ति नेत्रों पर नहीं बल्कि ललाट पर रखे हाथ से ही होती है।

यह त्रिपताक हस्त है। (२)

(अर्धचन्द्रः—३)

एकतोऽङ्गुलिसंघाते यत्राङ्गुष्ठे स्थितेऽन्यतः।
चन्द्रलेखाकृतिर्भाति सोऽर्धचन्द्रोऽभिधीयते॥ ११७॥

उपर्युत्तानितोऽर्धेन्दावूर्ध्वगो बालपादपे।
पराङ्मुखस्तु खेदे स्यात्कपोलफलकं दधत्॥ ११८॥

प्रयोक्तव्यः कृशे मध्ये बलान्निर्वासनादिषु।

इत्यर्धचन्द्रः (३)

अर्धचन्द्र—३

११७-११९ ख. (अ०) **यत्र** जिसमें **एकतः** एक ओर **अङ्गुलिसंघाते** उँगलियों का समूह (एक साथ मिलाई हुई उँगलियाँ) होने पर **अन्यतः** दूसरी ओर **अङ्गुष्ठे स्थिते** अँगूठा स्थित होने पर **चन्द्रलेखा-आकृतिः भाति** चन्द्र की कला जैसी आकृति शोभित होती (दिखाई देती) है **सः** वह (हस्त) **अर्धचन्द्रः अभिधीयते** अर्धचन्द्र कहा जाता है। **उपरि उत्तानितः** ऊपर उठाया हुआ (अर्धचन्द्र हस्त) **अर्ध-इन्दौ** अर्धचन्द्र में, **ऊर्ध्वगः** ऊपर की ओर जाता हुआ **बालपादपे** छोटे वृक्ष (के अभिनय)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में, **पराङ्मुखः तु** उल्टा किया हुआ तो **कपोलफलकं दधत्** गाल धारण करते (पकड़ते) हुए **खेदे स्यात्** दुःख/थकान में होता है। **कृशे मध्ये** दुबले मध्य में **बलात् निर्वासन-आदिषु** बलपूर्वक बाहर निकालने में **प्रयोक्तव्यः** प्रयोग करना चाहिये।

(सर०) सिंह० ने **पराङ्मुखः खेदे स्यात्** को **कपोलफलकं** से अलग रख कर यह अर्थ किया है—नीचे किया हुआ खेद में होता है। **कपोलफलकं दधत्** का अन्वय **कृशे मध्ये** के साथ किया है। लेकिन 'कृशे मध्ये' का अर्थ न देने से आशय स्पष्ट नहीं है। कल्लि० ने अर्धचन्द्र के श्लोकों की कोई व्याख्या नहीं की है। इसलिये विनियोग के इस अंश का अर्थ स्पष्ट नहीं है। लेकिन ना०शा० के ९/४४ ग-४५ ख की टीक के आधार पर इस हस्त के **कृशे मध्ये** का अर्थ कमर की कृशता (पतलापन) और पीवरत्व यानी पुष्टता दिखाने के अभिनय में होता है।

यह अर्धचन्द्र है। (३)

(कर्तरीमुखः—४)

अश्लिष्टमध्यमा पृष्ठे संस्थिता तर्जनी यदा॥ ११९॥

त्रिपताकस्य हस्तस्य तदा स्यात्कर्तरीमुखः।
अलक्तकादिना पादरञ्जने पतने पुनः॥ १२०॥

मध्यमां तर्जनीस्थाने पुनस्तत्रैव तर्जनीम्।
दधानोऽधोगतोऽथाग्रस्थोत्ताने लेख्यवाचने॥ १२१॥

इति कर्तरीमुखः (४)

कर्तरीमुख—४

११९ ग-१२१. (अ०) **यदा** जब **त्रिपताकस्य हस्तस्य तर्जनी** त्रिपताक हस्त की तर्जनी **अश्लिष्टमध्यमा पृष्ठे संस्थिता** बिना जुड़ी हुई मध्यमा के पीछे रखी हो **तदा** तब **कर्तरीमुखः स्यात्** कर्तरीमुख (हस्त) होता है। **अलक्तक-आदिना** आलते (महावर) आदि से **पादरञ्जने** पैर रँगने में, **पुनः तर्जनीस्थाने मध्यमां** फिर तर्जनी की जगह पर मध्यमा (रख कर), **पुनः** इसके बाद (फिर से) **तत्र एव** वहीं पर **तर्जनीं दधानः** तर्जनी रखते हुए **अधोगतः** नीचे गया हुआ (हस्त) **पतने** गिरने में **अथ** और **अग्रस्थ-उत्ताने** आगे स्थित (वस्तु) को ऊपर करने में, **लेख्यवाचने** लेख (लिखे हुए) को पढ़ने में (योजित करना चाहिये)।

(सर०) **अश्लिष्टमध्यमा पृष्ठे** का अर्थ, कल्लि० के अनुसार, यह है। 'अश्लिष्टमध्यमा' और 'पृष्ठे' इन दोनों पदों का एक साथ प्रयोग होने से मध्यमा का पृष्ठ भाग यानी 'पीछे की ओर' समझना चाहिये। **मध्यमां तर्जनीस्थाने** अर्थात् मध्यमा को सामने लाने पर मध्यमा तर्जनी के स्थान पर चली जायगी यानी मध्यमा तर्जनी के पीछे आ जायगी। **पुनः तत्रैव तर्जनीं दधानः** में कल्लि० के अनुसार यह समझना चाहिये कि व्यापार (क्रिया) तर्जनी में ही होता है मध्यमा में नहीं।

यह कर्तरीमुख (हस्त) है। (४)

(अरालः—५)

तर्जन्यादिष्वङ्गुलीषु प्राच्याः प्राच्याः परा परा।
दूरस्थोच्चा मनाग्वक्रा धनुर्वक्रा तु तर्जनी॥ १२२॥

अङ्गुष्ठः कुञ्चितो यत्र तमरालं प्रचक्षते।
आशीर्वादादिषु प्रोक्तः स पुंसां हृदयस्थितः॥ १२३॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अधः स्त्रीणां केशबन्धे केशानां च विकीर्णने।
द्विस्त्रिः कार्योऽन्यपार्श्वात्तु स्वपार्श्वे वर्तुलभ्रमः॥ १२४॥

आव्रजन् जनसंघे स्यादाह्वाने पतदङ्गुलिः।
विवाहे त्वङ्गुलाग्रस्थस्वस्तिकाकारयोजितम्॥ १२५॥

प्रदक्षिणं करद्वन्द्वं स्याद्भ्रमत्केवलं पुनः।
प्रदक्षिणं भ्रमन् कार्यो देवतानां प्रदक्षिणे॥ १२६॥

कस्त्वं कोऽहं क्व संबन्ध इत्यसंबद्धभाषणे।
बहिः पुनः पुनः क्षिप्ताङ्गुलिर्भालस्थितः पुनः॥ १२७॥

भालस्वेदापनयने त्रिपताकोदितेषु च।

इत्यरालः (५)

अराल—५

१२२-१२८ ख. (अ०) **तर्जनी-आदिषु अङ्गुलीषु** तर्जनी आदि उँगलियों में **प्राच्याः प्राच्याः** पहले-पहले वाली से **परा परा** बाद-बाद वाली **दूरस्था** दूर स्थित **उच्चा** ऊँची **मनाक्** **वक्रा** कुछ मुड़ी हुई **तर्जनी तु धनुः वक्रा** तर्जनी तो धनुष की तरह मुड़ी हुई (और) **यत्र** जिसमें **अङ्गुष्ठः** अँगूठा **कुञ्चितः** सिकोड़ा हुआ (होता है) **तम्** उसे **अरालं प्रचक्षते** अराल (हस्त) कहते हैं। **पुंसां** पुरुषों में **सः** वह **हृदयस्थितः** हृदय पर रखा हुआ (होने पर) **आशीर्वाद-आदिषु** आशीर्वाद (देने) आदि में **प्रोक्तः** कहा गया है। **स्त्रीणां** स्त्रियों में **अधः** नीचे की ओर (होने पर) **केशबन्धे** बाल बाँधने में (योजित करना चाहिये) **केशानां विकीर्णने च** (और) बालों को खोलने में भी (अर्थात् खोल कर बाँधने में) **द्विः त्रिः कार्यः** दो तीन बार करना चाहिये। **अन्यपार्श्वात् तु** दूसरी बाजू से **स्वापार्श्वे वर्तुलभ्रमः आव्रजन्** अपनी ओर गोल आकार में घूमते हुए आना **जनसंघे स्यात्** मनुष्यों के समूह (के अभिनय) में होता है। **पतत् अङ्गुलिः** नीचे गिरती हुई उँगलियों वाला **आह्वाने** बुलाने में (करना चाहिये)। **विवाहे तु** विवाह में तो **अङ्गुल-अग्रस्थस्वस्तिक-आकारयोजितम्** उँगलियों की नोक स्वस्तिक के आकार में योजित करके **करद्वन्द्वं** दोनों हाथ **प्रदक्षिणं भ्रमन् स्यात्** प्रदक्षिणा घूमते हुए (अर्थात् बाएँ से दाहिनी ओर) होता है। **पुनः** फिर **केवलं प्रदक्षिणं भ्रमन्** केवल प्रदक्षिणा घूमते हुए **देवतानां प्रदक्षिणे कार्यः** देवताओं की प्रदक्षिणा में करना चाहिये। **बहिः** बाहर की ओर **पुनः पुनः** बार-बार **क्षिप्त-अङ्गुलिः** फेंकी हुई उँगलियों वाला **कः त्वं** 'कौन तू'? **कः अहं** 'कौन मैं'? **क्वः संबन्धः** 'क्या संबंध है'? **इति असंबद्धभाषणे** ऐसा असंबद्ध बोलने में **पुनः** और **भालस्थितः** ललाट पर रखा हुआ **भालस्वेद-अपनयने** ललाट के पसीने को दूर करने (पोंछने) में **त्रिपताक-उदितेषु च** और त्रिपताक (हस्त) में कहे गये (अभिनय) में भी (योजित करना चाहिये)।

(सर०) कल्लि० ने **प्राच्याः प्राच्याः परा परा** को इस प्रकार समझाया। मध्यमा की अपेक्षा तर्जनी पहले वाली, अनामिका की अपेक्षा से कनीयसी (छोटी उँगली) बाद वाली यानी कनिष्ठा की अपेक्षा अनामिका पहले वाली समझनी चाहिये। **दूरस्थाः** यानी पहले-पहले वाली से बाद-बाद वाली ज़्यादा दूरी वाली समझनी चाहिये।

केवलं प्रदक्षिणं का आशय यह है कि विवाह के अभिनय में दोनों हाथों की उँगलियों की पोर स्वस्तिक के आकार में प्रदक्षिणा के रूप में घुमाते हैं किन्तु देवताओं की प्रदक्षिणा में स्वस्तिकाकार में नहीं बल्कि केवल प्रदक्षिणा की तरह घुमाना चाहिये।

यह अराल (हस्त) है। (५)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(मुष्टिः—६)

तलमध्यस्थितैर्लग्नैरङ्गुल्यग्रैरगोपितैः॥ १२८॥

निपीड्य मध्यमां तिष्ठत्यङ्गुष्ठो मुष्टिरुच्यते।
कुन्तनिस्त्रिंशदण्डादिग्रहे विविधयोधने॥ १२९॥

धावने प्राङ्मुखाङ्गुष्ठो मल्लयुद्धे करद्वयम्।

इति मुष्टिः (६)

मुष्टि—६

१२८ ग-१३० ख. (अ०) **तलमध्यस्थितैः** तल (हथेली) के बीच में रखी हुई **लग्नैः** जुड़ी हुई **अगोपितैः** बिना छिपाई हुई (अर्थात् प्रकट या दिखाई देने वाली) **अङ्गुलि-अग्रैः** उँगलियों के अग्रों (पोर की नोकों) के द्वारा (अर्थात् ऐसे हाथ में) **अङ्गुष्ठः** अँगूठा **मध्यमां निपीड्य** मध्यमा को दबा कर **तिष्ठति** रहता है (तो उसे) **मुष्टिः उच्यते** मुष्टि (हस्त) कहते हैं। **कुन्तनिस्त्रिंशदण्ड-आदिग्रहे** (विशेष प्रकार का) भाला, तलवार, डंडे आदि को पकड़ने में **विविधयोधने** (और) अनेक प्रकार के युद्धों में, **प्राङ्मुख-अङ्गुष्ठः** सामने की ओर अँगूठे वाला **धावने** दौड़ने में (और) **करद्वयं** दोनों हाथ (से मुष्टि) **मल्लयुद्धे** मल्लयुद्ध में (प्रयुक्त करनी चाहिये)।

यह मुष्टि (हस्त) है। (६)

(शिखरः—७)

मुष्टेरूर्ध्वकृतोऽङ्गुष्ठः शिखरः संप्रयुज्यते॥ १३०॥

शक्तितोमरयोर्मोक्षे धनुर्भल्लाङ्कुशग्रहे।
अलकोत्पीडने मुष्टिः कार्यः सोऽप्यस्य लोकतः॥ १३१॥

इति शिखरः (७)

शिखर—७

१३० ग-१३१. (अ०) **मुष्टेः** मुष्टि (हस्त) का **अङ्गुष्ठः** अँगूठा **ऊर्ध्वकृतः** ऊपर (खड़ा) किया हुआ (करने पर) **शिखरः** शिखर (हस्त होता है)। **शक्तितोमरयोः मोक्षे** शक्ति (भाला) और तोमर (लोहे का डंडा) फेंकने में, **धनुः भल्ल-अङ्कुशग्रहे** धनुष, भाला और अंकुश पकड़ने में **अलक-उत्पीडने** (और) बाल दबाने (दबा कर पकड़ने) में **मुष्टिः कार्यः** मुष्टि (योजित) करनी चाहिये। **सः अपि** वह भी **अस्य लोकतः** इसका (प्रयोग) लोक के अनुसार (करना चाहिये)।

(सर०) सिंह० ने **मुष्टिः कार्यः** का अन्वय **अलकोत्पीडने** के साथ किया है तदनुसार बालों को दबाने में मुष्टि करना—यह अर्थ दिया है। कल्लि० ने '**मुष्टिः कार्यः**' को कुन्त आदि के ग्रहण के साथ जोड़ा है। **सोऽप्यस्य लोकतः** का अर्थ करते हुए **सः** यानी मुष्टि **अस्य शिखरस्य कार्ये** कहा है। विभक्ति के अनुसार इसका यह अर्थ है—इस शिखर के कार्य में—जो बहुत स्पष्ट नहीं है।

ना०शा० ९/५७-५८ की अभि० टीका से प्रकट होता है कि प्रयोक्ताओं के द्वारा मुष्टि और शिखर दोनों का या इनमें से किसी एक का शिखर में कहे गये विनियोग में प्रयोग किया जा सकता है। तदनुसार सं०र० के **सः अपि अस्य लोकतः**

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का यह आशय संभव है कि शिखर के विनियोगों में मुष्टि का प्रयोग भी किया जा सकता है जो लोक के अनुसार है। मुष्टि के विनियोग में भी कुन्त आदि के ग्रहण का उल्लेख है।

यह शिखर (हस्त) है। (७)

(कपित्थः—८)

अङ्गुष्ठाग्रेण लग्नाग्रा तर्जनी शिखरस्य चेत्।
कपित्थः स्यात्तदा, कार्यो धारणे कुन्तवज्रयोः॥ १३२॥

चक्रचापगदादेश्च शराकर्षादिकर्मणि।
अन्योन्यकार्यविषयौ कपित्थशिखरौ क्वचित्॥ १३३॥

इति कपित्थः (८)

कपित्थ—८

१३२-१३३. (अ०) शिखरस्य शिखर (हस्त) के अङ्गुष्ठ-अग्रेण अँगूठे की नोक के साथ तर्जनी लग्न-अग्रा चेत् यदि तर्जनी की नोक लगी (छूती) हो तदा तब कपित्थः स्यात् कपित्थ होता है। कुन्तवज्रयोः कुन्त और वज्र के चक्रचाप-गदा-आदेः च धारणे तथा चक्र, धनुष, गदा आदि को धारण करने में (और) शर-आकर्ष-आदिकर्मणि बाण खींचने (या तरकस में से निकालने) में कार्यः (योजित) करना चाहिये। क्वचित् कभी-कभी (अर्थात् विशेष क्रिया में) कपित्थशिखरौ कपित्थ और शिखर अन्योन्यकार्यविषयौ एक दूसरे के कार्य (विनियोग) के विषय (अर्थात् कपित्थ की जगह शिखर और शिखर की जगह पर कपित्थ का प्रयोग) (होते हैं)।

यह कपित्थ (हस्त) है। (८)

(खटकामुखः—९)

अनामिकाकनीयस्यावुत्क्षिप्ते कुटिलीकृते।
विरले चेत्कपित्थस्य तदा स्यात्खटकामुखः॥ १३४॥

उत्तानस्तुरगादेः स्याद्वल्गाचामरधारणे।
कुसुमावचये मुक्तास्त्रग्दामधारणे तथा॥ १३५॥

शरमन्थाकर्षणे च संमुखो दर्पणग्रहे।
कस्तूरिकादिवस्तूनां पेषणेऽधस्तलौ करौ॥ १३६॥

ताम्बूलवीटिकावृन्तच्छेदनादौ च स स्मृतः।

इति खटकामुखः (९)

खटकामुख—९

१३४-१३७ ख. (अ०) कपित्थस्य चेत् यदि कपित्थ (हस्त) की अनामिकाकनीयस्यौ अनामिका और कनिष्ठा उत्क्षिप्ते ऊपर उठाई हुई, कुटिलीकृते वक्र (मुड़ी हुई) विरले (और) अलग-अलग की हुई (हों) तदा तब खटकामुखः

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्यात् खटकामुख होता है। उत्तानः ऊपर उठी हुई तुरग-आदेः वल्गा घोड़े आदि की लगाम (और) चामरधारणे चँवर पकड़ने में स्यात् (विनियुक्त) होता है। तथा इसी तरह कुसुम-अवचये फूल चुनने में, मुक्तास्रक्-दामधारणे मोती, फूल की माला और रस्सी धारण करने (पकड़ने) में शरमन्थ-आकर्षणे च तथा बाण (और) मथानी खींचने में (प्रयुक्त होता है)। संमुखः (यह हस्त) सामने (होने पर) दर्पणग्रहे दर्पण पकड़ने में, अधःतलौ करौ नीचे की ओर हथेली वाले दोनों (खटकामुख) हस्त कस्तूरिका-आदिवस्तूनां पेषणे कस्तूरी आदि वस्तुओं को पीसने (चूर्ण करने) में ताम्बूलवीटिकावृन्तच्छेदन-आदौ च पान के बीड़े (को उठाने), डंठल तोड़ने आदि में भी सः स्मृतः वह (खटकामुख हस्त) माना गया है।

यह खटकामुख (हस्त) है। (९)

(शुकतुण्डः—१०)

अरालस्य यदात्यन्तवक्रे तर्जन्यनामिके॥ १३७॥

शुकतुण्डस्तदा स स्यात्प्रेमकोपे नवेर्ष्यया।
नाहं न त्वं न मे कृत्यं त्वयेति वचने तथा॥ १३८॥

द्यूताक्षपातनादौ स्यात्सावज्ञे तु विसर्जने।
आह्वाने च बहिश्चान्तः क्रमात्क्षिप्ताङ्गुलिर्भवेत्॥ १३९॥

इति शुकतुण्डः (१०)

शुकतुंड—१०

१३७ ग-१३९. (अ०) यदा जब अरालस्य अराल (हस्त) की तर्जनी-अनामिके तर्जनी और अनामिका दो (उँगलियाँ) अत्यन्तवक्रे बहुत मुड़ी हों तदा तब शुकतुण्डः शुकतुंड (हस्त होता है)। सः वह नव-ईर्ष्यया नई ईर्ष्या से (उत्पन्न) प्रेमकोपे स्यात् प्रेमकोप में होता है। न अहं 'मैं नहीं', न त्वं 'तू नहीं', त्वया मे न कृत्यं 'तेरे साथ मेरा (कोई) कर्तव्य नहीं' इति वचने ऐसा बोलने में तथा और द्यूत-अक्षपातन-आदौ जुए के पासे फेंकने आदि में स्यात् होता है (और) सावज्ञे तु विसर्जने अनादर/अपमान सहित त्यागने में बहिः अन्तः च बाहर और भीतर क्षिप्त-अङ्गुलिः क्रमात् फेंकी गई उँगलियों वाला क्रम से आह्वाने च और आवाहन (बुलाने) में भवेत् होता है।

यह शुकतुंड (हस्त) है। (१०)

(काङ्गूलः—११)

काङ्गूलेऽनामिका चक्रा भवेदूर्ध्वा कनीयसी।
ऊर्ध्वास्त्रेताग्निसंस्थानास्तर्जन्यङ्गुष्ठमध्यमाः॥ १४०॥

फलेऽल्पे च मिते ग्रासे स्याद्बिडालपदादिषु।
चिबुकग्रहणे चैव बालकानां विधीयते॥ १४१॥

इति काङ्गूलः (११)

कांगूल—११

१४०-१४१. (अ०) काङ्गूले कांगूल में अनामिका वक्रा अनामिका मुड़ी हुई (और) कनीयसी कनिष्ठा ऊर्ध्वा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भवेत् ऊपर की ओर होती है। **तर्जनी-अङ्गुष्ठमध्यमाः** तर्जनी, अँगूठा और मध्यमा **ऊर्ध्वाः** ऊपर की ओर (की हुई) **त्रेताग्नि-संस्थानाः** त्रेताग्नि (त्रिकोण) की तरह स्थिति वाली (होती हैं)। **अल्पे फले** छोटे फल में, **मिते ग्रासे** छोटे कौर में, **बिडालपद-आदिषु** बिलाव के पैर आदि में **स्यात्** होता है। **बालकानां** बालकों की **चिबुकग्रहणे च एव** ठोडी पकड़ने में भी **विधीयते** (इसका) विधान होता है।

यह कांगूल (हस्त) है। (११)

(पद्मकोशः—१२)

अङ्गुष्ठाङ्गुलयो यस्मिन्नलग्नाग्रा धनुर्नताः।
विरलाः पद्मकोशोऽसौ कार्यो देवार्चने बलौ॥ १४२॥

द्विस्त्रिर्वा विप्रकीर्णाग्रः पुष्पाणां प्रकरे करः।
फले बिल्वकपित्थादौ स्त्रीणां च कुचकुम्भयोः॥ १४३॥

इति पद्मकोशः (१२)

पद्मकोश—१२

१४२-१४३. (अ०) **यस्मिन्** जिसमें **अलग्न-अग्राः** न जुड़ी हुई नोकों वाली, **धनुः नताः** धनुष की तरह झुकी हुई, **विरलाः** अलग-अलग (हुई) **अङ्गुष्ठ-अङ्गुलयः** अँगूठा आदि उँगलियाँ (हों) **पद्मकोशः** (वह) पद्मकोश (हस्त होता है)। **असौ** यह **देव-अर्चने** देवता की पूजा में **बलौ** बलि (देने) में **कार्यः** करना चाहिये। **विप्रकीर्ण-अग्रः** बिखरी हुई नोकों वाला **करः** (यह) हस्त **द्विः त्रिः वा** दो या तीन बार (योजित करके) **पुष्पाणां प्रकरे** फूलों का ढेर (दिखाने) में, **बिल्वकपित्थ-आदौ फले** बेल, कैथ आदि फल में **स्त्रीणां च** और स्त्रियों के **कुचकुम्भयोः** पुष्ट स्तनों (के अभिनय) में (योजित करना चाहिये)।

यह पद्मकोश (हस्त) है। (१२)

(अलपल्लवः—१३)

व्यावर्तिताख्यं करणं कृत्वैव समवस्थिताः।
यस्याङ्गुल्यः करतले पार्श्वगाः सोऽलपल्लवः॥ १४४॥

अलपद्मः स एव स्यादङ्गुलीनां च केचन।
अस्य व्यावर्तितस्थाने परिवर्तितमूचिरे॥ १४५॥

कस्य त्वमिति नास्तीति वाक्ययोः प्रतिषेधने।
तुच्छायुक्तानृतत्वोक्तिष्वेव स्त्रीभिः प्रयुज्यते॥ १४६॥

इत्यलपल्लवः (१३)

अलपल्लव—१३

१४४-१४६. (अ०) **व्यावर्तित-आख्यं** व्यावर्तित नामक **करणं कृत्वा एव** करण करके ही **यस्य अङ्गुल्यः** जिसकी उँगलियाँ **करतले** हथेली में **समवस्थिताः** स्थिर होकर **पार्श्वगाः** बाजू में जाने वाली (जाती हुई) हों **सः** वह **अलपल्लवः**

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अलपल्लव (हस्त होता हैं)। **स एव** वही **अलपद्मः** अलपद्म **स्यात्** होता है। **केचन** कुछ (आचार्यों) ने **अस्य** इसके **व्यावर्तित-स्थाने** व्यावर्तित के स्थान पर **अङ्गुलीनां** उँगलियों का **परिवर्तितं च ऊचिरे** परिवर्तित (करण) भी कहा है। **कस्य त्वं** 'तू किसका (है)'? **न अस्ति** 'नहीं है' **इति वाक्ययोः** ऐसे वाक्यों में, **प्रतिषेधने** निषेध (या अस्वीकार करने) में, **स्त्रीभिः** स्त्रियों के द्वारा **तुच्छ-अयुक्त-अनृतत्व-उक्तिषु** क्षुद्र (हल्की), अनुचित और झूठी उक्तियों में **प्रयुज्यते** प्रयोग किया जाता है।

(सर०) व्यावर्तित करण का एक प्रकार है जिसका लक्षण आगे (५४२ ग-घ) दिया जाने वाला है।

यह अलपल्लव (हस्त) है। (१३)

(सूचीमुखः—१४)

ऊर्ध्वप्रसारिता यत्र खटकामुखतर्जनी।
हस्तः सूचीमुखः स स्यादभिनेयमिहोच्यते॥ १४७॥

शस्त्रे चक्राभिधे कुम्भकारोपकरणे तथा।
रथाङ्गे जनसंघाते भ्रमन्ती तर्जनी भवेत्॥ १४८॥

ऊर्ध्ववक्त्राधोमुखी च निजपार्श्वगता तथा।
पार्श्वान्तरान्निजं पार्श्वमायान्ती च क्रमाद् भवेत्॥ १४९॥

पताकायां भवेदूर्ध्वा साधुवादे च दोलिता।
एकत्वे तर्जनी चोर्ध्वा नासास्था श्वासवीक्षणे॥ १५०॥

अधस्तले पार्श्वयुक्ते संयोगे विरहे पुनः।
वियुक्ते च विधातव्ये शार्ङ्गदेवेन कीर्तिते॥ १५१॥

इति सूचीमुखः (१४)

सूचीमुख—१४

१४७-१५१. (अ०) **यत्र** जिसमें **खटकामुखतर्जनी** खटकामुख की तर्जनी **ऊर्ध्व-प्रसारिता** ऊपर फैली हुई (हो) **सः** वह **सूचीमुखः हस्तः स्यात्** सूचीमुख हस्त होता है। **इह** यहाँ **अभिनेयम् उच्यते** अभिनय कहा जा रहा है। **चक्र अभिधे शस्त्रे** चक्र नामक शस्त्र में, **कुम्भकार-उपकरणे** कुम्हार के साधन (चाक) में **तथा** और **रथ-अङ्गे** रथ के अंग में, **जनसंघाते** जनसमूह (के अभिनय) में **भ्रमन्ती तर्जनी** घूमती हुई तर्जनी **भवेत्** होती है। (इनमें) **क्रमात्** क्रम से **ऊर्ध्ववक्त्रा** ऊपर की ओर मुँह (उँगली की नोक) वाली **अधः मुखी च** और नीचे मुँह वाली **तथा** तथा **निजपार्श्वगता** अपनी बाजू की ओर गई हुई, **पार्श्व-अन्तरात्** दूसरी बाजू से **निजं पार्श्वम् आयान्ती च भवेत्** अपनी बाजू को आती हुई होती है (तर्जनी योजित की जाती है)। **पताकायां** पताका (के अभिनय) में **ऊर्ध्वा भवेत्** ऊपर की ओर **साधुवादे च** और (बहुत अच्छा किया—ऐसा कह कर) प्रशंसा करने में **दोलिता** आन्दोलित (तर्जनी वाली), **एकत्वे** एक (कहने) में **ऊर्ध्वा तर्जनी** ऊपर की ओर तर्जनी, **श्वासवीक्षणे च नासास्था** श्वास देखने (अनुभव करने) में नाक पर रखी हुई, **संयोगे** संयोग में **पार्श्वयुक्ते** दोनों (हाथों की तर्जनी) बाजू से जुड़ी हुई **अधःतले** नीचे की ओर हथेलियों वाली, **विरहे पुनः** और विरह में **वियुक्ते च** अलग की हुई **विधातव्ये** योजित करनी चाहियें **शार्ङ्गदेवेन** शार्ङ्गदेव के द्वारा **कीर्तिते** (ऐसी) कही गई हैं।

यह सूचीमुख (हस्त) है। (१४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर्पशिराः—१५)

पताको निम्नमध्यो यः स तु सर्पशिराः करः।
देवेभ्यस्तोयदानेऽसावुत्तानोऽधोमुखः पुनः॥ १५२॥

भुजङ्गमगतौ स स्यादास्फाले करिकुम्भयोः।
भुजास्फोटे च मल्लानां नियुद्धादिषु कीर्तितः॥ १५३॥

इति सर्पशिराः (१५)

सर्पशिरा—१५

१५२-१५३. (अ०) **निम्नमध्यः** बीच का भाग नीचा (ऐसा) **यः पताकः** जो पताक (हस्त) **सः तु** वह तो **सर्पशिराः करः** सर्पशिरा हस्त (होता है)। **देवेभ्यः तोयदाने** देवताओं को जल अर्पित करने में **असौ** यह **उत्तानः** ऊपर किया हुआ **भुजङ्गमगतौ पुनः** और साँप की गति में **सः** वह **अधोमुखः** नीचे किया हुआ **स्यात्** होता है। **करिकुम्भयोः** हाथी के दोनों गंडस्थलों (गालों / कनपटी) को **आस्फाले** थपथपाने में, **नियुद्ध-आदिषु** कुश्ती इत्यादि में **मल्लानां** पहलवानों के **भुजास्फोटे च** ताल ठोकने में भी **कीर्तितः** कहा गया है।

(सर०) पहलवान कुश्ती शुरू करने से पहले प्रतिद्वन्द्वी को चुनौती देने में जो अपनी बाहों पर हथेली से आघात करते हैं वह मल्लों की भाषा में 'ताल ठोकना' कहा जाता है।

यह सर्पशिरा (हस्त) है। (१५)

(चतुरः—१६)

अस्याङ्गुष्ठो मध्यमाया मध्यपर्वोदरं श्रितः।
ऊर्ध्वा कनीयसी यत्र चतुरं तं करं विदुः॥ १५४॥

अन्ये पताकाङ्गुष्ठस्य मध्यमामूलसंस्थितिम्।
ईषच्च पृष्ठतो यान्तीं कनिष्ठां च परे जगुः॥ १५५॥

नये वदनदेशस्थो युतौ द्वौ मणिबन्धयोः।
विनयेऽथ विचारे स्यात्पार्श्वगोऽथ हृदि स्थितः॥ १५६॥

ऊहापोहौ च लीलायामुद्वेष्टितयुतः करः।
कैतवेऽक्षप्रेरणे च भवेदूर्ध्वतलः समे॥ १५७॥

अङ्गुष्ठमध्यमन्योन्यबन्धनेन तु मार्दवे।
चातुर्यवचने त्वेतौ संयुतौ चतुरोदितौ॥ १५८॥

इति चतुरः (१६)

चतुर—१६

१५४-१५८. (अ०) **यत्र** जहाँ **अस्य** इस (सर्पशिर हस्त) का **अङ्गुष्ठः** अँगूठा **मध्यमाया** मध्यमा के **मध्यपर्व-उदरं श्रितः** बीच की पोर के बीच (के भाग) के आश्रित (हो) **कनीयसी ऊर्ध्वा** (और) कनिष्ठा ऊपर की ओर (हो) **तम्** उसे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चतुरं करं चतुर हस्त **विदुः** जानते हैं। **अन्ये** दूसरे (आचार्य) (इसमें) **पताक-अङ्गुष्ठस्य** पताक (हस्त) के अँगूठे की **मध्यमामूलसंस्थितिं** मध्यमा के मूल में स्थिति (मानते हैं)। **परे च** और अन्य (आचार्यों) ने **ईषत् च** थोड़ी सी **पृष्ठतः यान्तीं** पीछे की ओर जाती हुई **कनिष्ठा जगुः** कनिष्ठा कहा है। **वदनदेशस्थः** मुँह पर स्थित हुई **नये** नीतिमार्ग (का विचार करने) में, **मणिबन्धयोः** दोनों हाथों की कलाइयों में **द्वौ युतौ** दोनों हाथों के जुड़ने पर **विनये** विनय में, **अथ पार्श्वगः** फिर बाजू की ओर जाती हुई **विचारे स्यात्** विचार में होती है **अथ** और **हृदि स्थितः** हृदय पर रखी हुई **ऊह-अपोहौ** तर्क-वितर्क में **उद्वेष्टितयुतः च करः** और उद्वेष्टितयुक्त हस्त **लीलायां** लीला में, **ऊर्ध्वतलः** ऊपर की ओर हथेली वाला **कैतवे अक्षप्रेरणे समे च** धोखे / कपट में पासे फेंकने में और समान अर्थ में **भवेत्** होता है। **अङ्गुष्ठमध्यम्-अन्योन्य-बन्धनेन तु** अँगूठे और मध्यमा को परस्पर बाँधने पर तो / **अङ्गुष्ठमध्यमा-अन्योन्यमर्दनेन तु** अँगूठे और मध्यमा को परस्पर रगड़ने पर तो **मार्दवे** मृदुता में (प्रयुक्त होता है)। **चतुर-उदितौ** चतुर कहे गये **एतौ** ये दोनों (हस्त) **संयुतौ** जुड़े हुए (होने पर) **चातुर्यवचने** चतुराई से युक्त वचन (कहने) में (प्रयुक्त होते हैं)।

(सर०) श्लोक १५८ क-ख का सिंह० का पाठ **अङ्गुष्ठमध्यमन्योन्यबन्धनेन** है। आड्० में यही पाठ है। लेकिन आनन्द० में **अङ्गुष्ठमध्यमान्योन्यमर्दनेन** है (भाग २, पृ० ६४६)। हमने दोनों के अनुसार अर्थ दिया है।

यह चतुर (हस्त) है। (१६)

(मृगशीर्षः—१७)

सर्पशीर्षकरस्योर्ध्वे यदाङ्गुष्ठकनिष्ठिके।
मृगशीर्षस्तदा हस्तः स त्वधोवदनो भवेत्॥ १५९॥

अद्येहसांप्रतार्थेषूत्तानोद्यूताक्षपातने।
गण्डादिक्षेत्रसंस्थस्तु गण्डादिस्वेदमार्जने॥ १६०॥

इति मृगशीर्षः (१७)

मृगशीर्ष—१७

१५९-१६०. (अ०) **यदा** जब **सर्पशीर्षकरस्य** सर्पशिरा हस्त का **अङ्गुष्ठकनिष्ठिके** अँगूठा और कनिष्ठा (ये दोनों) **ऊर्ध्वे** ऊपर की ओर (की हुई हों) **तदा** तब **मृगशीर्षः हस्तः** मृगशीर्ष हस्त (होता है)। **सः तु** वह तो **अधः वदनः** नीचे मुँह वाला **अद्य-इह-सांप्रत-अर्थेषु** आज, यहाँ, अभी अर्थों में **भवेत्** होता है। **उत्तानः** ऊपर (की ओर) वाला **द्यूत-अक्षपातने** जुए के पासे फेंकने में (होता है)। **गण्ड-आदिक्षेत्रसंस्थः तु** गाल आदि भाग पर रखा हुआ तो **गण्ड-आदिस्वेदमार्जने** गाल आदि का पसीना पोंछने में (प्रयुक्त होता है)।

यह मृगशीर्ष (हस्त) है। (१७)

(हंसास्यः—१८)

लग्नास्त्रेताग्निसंस्थानास्तर्जन्यङ्गुष्ठमध्यमाः।
शेषे यत्रोर्ध्वविरले हंसास्यः सोऽभिधीयते॥ १६१॥

अयं मृदुनि निःसारे श्लक्ष्णेऽल्पे शिथिले लघौ।
मर्दितं मथितं क्षिप्तं दधदग्रं विधूनितम्॥ १६२॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

औचित्याच्च्युतयुक्तं तु कुसुमावचयादिषु।

इति हंसास्यः (१८)

हंसास्य—१८

१६१-१६३ ख. (अ०) **तर्जनी-अङ्गुष्ठमध्यमाः** तर्जनी, अँगूठा और मध्यमा **त्रेताग्नि-संस्थानाः** त्रेताग्नि की तरह (त्रिकोण आकार में) स्थित **लग्नाः** (और) जुड़ी हुई (हों) **शेषे** (और) शेष दो (उँगलियाँ) **यत्र** जिसमें **ऊर्ध्वविरले** ऊपर की ओर (और) अलग-अलग (हों) **सः** वह **हंसास्यः अभिधीयते** हंसास्य कहा जाता है। **अयं** यह (हंसास्य) **अग्रं** (उँगलियों की) नोक **औचित्यात्** यथायोग्य **मर्दितं दधत्** घिसती हुई रख कर **मृदुनि निःसारे** कोमल (और) सारहीन में, **मथितं** मथती हुई (मथानी की तरह गोलाकार घूमती हुई) (रख कर) **श्लक्ष्णे** स्निग्ध (भाव) में, **क्षिप्तं** फेंकी हुई (रखकर) **अल्पे** थोड़े में, **विधूनितं** काँपती हुई (नोकों से रख कर) **शिथिले लघौ** विश्रान्त (ढीले और) छोटे में (योजित होता है)। **च्युतयुक्तं तु** नीचे गिरती हुई (और) जुड़ी हुई (नोकों) वाला तो **कुसुम-अवचय-आदिषु** फूल चुनने आदि में (प्रयुक्त होता है)।

यह हंसास्य (हस्त) है। (१८)

(हंसपक्षः—१९)

यदि किंचिन्नमन्मूलं तर्जन्याद्यङ्गुलित्रयम्॥ १६३॥

पताकस्य तदा हस्तं हंसपक्षं प्रचक्षते।
अयमाचमने कार्यश्चन्दनाद्यनुलेपने॥ १६४॥

हनुदेशगतस्तु स्याद् दुःखजे हनुधारणे।
मण्डलीकृतबाहू तौ महास्तम्भप्रदर्शने॥ १६५॥

आलिङ्गने च प्रत्यक्षे परोक्षे स्वस्तिकीकृतौ।
रोमाञ्चाद्यनुभावैस्तु रसेष्वेव यथारसम्॥ १६६॥

अनुभावा रसवशात्कार्या हस्तान्तरेष्वपि।

इति हंसपक्षः (१९)

हंसपक्ष—१९

१६३ ग-१६७ ख. (अ०) **यदि** अगर **पताकस्य** पताक (हस्त) की **तर्जनी-आदि-अङ्गुलित्रयं** तर्जनी आदि तीन उँगलियाँ **किंचित् नमन्मूलं** कुछ झुके हुए (मुड़े हुए) मूल वाली (हों) **तदा** तब **हंसपक्षं हस्तं** हंसपक्ष हस्त **प्रचक्षते** कहा जाता है। **अयं** यह **आचमने** आचमन, **चन्दन-आदि-अनुलेपने** चंदन आदि का लेप करने में **कार्यः** (योजित) करना चाहिये। **हनुदेशगतः तु** ठोडी पर गया हुआ (रखा हुआ) तो **दुःखजे** दुःख से उत्पन्न (अर्थात् दुःख) में **हनुधारणे** ठोडी पकड़ने में (करना चाहिये)। **मण्डलीकृतबाहू तौ** गोलाकार भुजाओं वाली (अर्थात् भुजाएँ गोलाकार रखने से) वे **महास्तम्भप्रदर्शने** बड़ा खंभा प्रदर्शित करने में **प्रत्यक्षे आलिङ्गने च** और प्रत्यक्ष आलिंगन में (योजित करना चाहिये)। **परोक्षे** अप्रत्यक्ष (आलिंगन) में **स्वस्तिकीकृतौ** स्वस्तिक के आकार में (करना चाहिये)। **रसेषु तु** रसों में तो **यथारसम्** उस-उस रस के अनुसार **रोमाञ्च-आदि-अनुभावैः** रोमांच आदि अनुभावों से (योजित करना चाहिये)। **रसवशात्** रस के वश (आधार) से **हस्त-अन्तरेषु अपि** दूसरे हस्तों में भी **अनुभावाः कार्याः** अनुभाव करने चाहियें।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) सिंह० ने **हनुदेशगतः** को चन्दन आदि के अनुलेपन के साथ अन्वित किया है। लेकिन **दुःखजे हनुधारणे** के साथ ही '**हनुदेशगतः**' का अन्वय संगत है, तदनुसार ही ऊपर अर्थ किया है।

रोमाञ्चादि-अनुभावैः पर कल्लि० ने कहा कि यद्यपि रोमांच आदि सात्त्विक भाव हैं लेकिन 'अनु' यानी बाद में 'भवति' यानी 'होता है'— इस व्युत्पत्ति से उनका अनुभावत्व (अनुभाव स्वरूप) सही ठहरता है। रोमांच के साथ जुड़े 'आदि' शब्द से अनुभाव के रूप में प्रसिद्ध कटाक्षपूर्वक देखना, बाहुओं का आक्षेप आदि विलास समझने चाहियें।

यह हंसपक्ष (हस्त) है। (१९)

(भ्रमरः—२०)

अङ्गुष्ठमध्यमाङ्गुल्यौ श्लिष्टाग्रे तर्जनी नता॥ १६७॥

यत्रोर्ध्वविरले शेषे स करो भ्रमरो भवेत्।
ग्रहणे दीर्घनालानां पुष्पाणामयमिष्यते॥ १६८॥

कर्णपूरे तालपत्रे कण्टकोद्धरणादिषु।

इति भ्रमरः (२०)

भ्रमर—२०

१६७ ग-१६९ ख. (अ०) **यत्र** जिसमें **श्लिष्ट-अग्रे** जुड़े हुए नोकों वाला **अङ्गुष्ठमध्यमा-अङ्गुल्यौ** अँगूठा और मध्यमा उँगली, **तर्जनी नता** तर्जनी मुड़ी हुई **शेषे** अन्य दो (उँगलियाँ) **ऊर्ध्वविरले** ऊपर की ओर तथा अलग-अलग (हों) **सः** वह **भ्रमरः करः भवेत्** भ्रमर हस्त होता है। **अयं** यह **दीर्घनालानां पुष्पाणां** लंबी डंडियों वाले फूलों के **ग्रहणे** ग्रहण (पकड़ने) में, **कर्णपूरे** कान की बाली (और) **तालपत्रे** कान के (विशेष प्रकार के) आभूषण (को पहनने) में, **कण्टक-उद्धरण-आदिषु** काँटा बाहर निकालने आदि में **इष्यते** इच्छित (प्रयुक्त) होता है।

यह भ्रमर (हस्त) है। (२०)

(मुकुलः—२१)

यत्राङ्गुष्ठाग्रलग्नाश्च संहताङ्गुलयोऽखिलाः॥ १६९॥

ऊर्ध्वाश्च मुकुलः स स्यात्पद्मादिमुकुलाकृतौ।
बलिकर्मणि देवानां पूजने भोजनादिषु॥ १७०॥

मुहुर्विकास्य प्रकृतिं नीतो दाने त्वरान्विते।
मुखचुम्बे तु कान्तानां संनिधौ विटचुम्बने॥ १७१॥

कुचकक्षादिदेशस्थः स्यादाच्छुरितके करः।
यदाङ्गुलीपञ्चकेन सशब्दं नखलेखनम्॥ १७२॥

कुचादौ कामसूत्रज्ञास्तदाच्छुरितकं विदुः।

इति मुकुलः (२१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुकुल—२१

१६९ ग-१७३ ख. (अ०) **यत्र** जिसमें **अङ्गुष्ठ-अग्रलग्ना:** अँगूठे की नोक से लगी हुई **अखिला: संहत-अङ्गुलय:** सारी उँगलियाँ इकट्ठी की हुई **ऊर्ध्वा: च** और ऊपर की ओर (हों) **स:** वह **मुकुल: स्यात्** मुकुल (हस्त) होता है। **पद्म-आदिमुकुल-आकृतौ** कमल आदि की कली की आकृति में **बलिकर्मणि** बलि कार्य (अर्थात् अर्पण) में **देवानां पूजने** देवताओं की पूजा में, **भोजन-आदिषु** भोजन आदि में, **मुहु: विकास्य** कुछ विकसित करके **प्रकृतिं नीत:** स्वभाव (मूल रूप) को ले जाया गया **त्वरा-अन्विते दाने** जल्दी से युक्त (अर्थात् जल्दी में दिये गये) दान में (प्रयोग करना चाहिये)। **कान्तानां संनिधौ तु** प्रिया के सामीप्य में **मुखचुम्बने** मुख के चुंबन में, **विटचुम्बने** विट (उपप्रेमी) के चुंबन में (प्रयुक्त करना चाहिये)। **कुचकक्षा-आदिदेशस्थ:** स्तन, काँख आदि भागों में रखने पर **कर:** (यह) हस्त **आच्छुरितके** आच्छुरित में **स्यात्** होता है। **यदा** जब **कुच-आदौ** स्तन आदि में **अङ्गुलीपञ्चकेन** उँगलियों के पाँच के समूह (अर्थात् पाँचों उँगलियों) से **सशब्दं नखलेखनं** ध्वनि के साथ नखों से लेखन (हो, अर्थात् ज़ोर से खुजाया जाय) **तदा** तो (उसे) **कामसूत्रज्ञा:** कामसूत्र के ज्ञाता **आच्छुरितकं विदु:** आच्छुरित जानते हैं।

यह मुकुल (हस्त) है। (२१)

(ऊर्णनाभ:—२२)

पद्मकोशस्य यत्र स्युरङ्गुल्य: पञ्च कुञ्चिता:॥ १७३॥

ऊर्णनाभ: स चौर्येण ग्रहे केशग्रहादिषु।
शिर: कण्डूयने कार्यश्चिबुकक्षेत्रगौ च तौ॥ १७४॥

कार्यौ सस्वस्तिकौ सिंहव्याघ्रादिनखरायुधे।

इत्यूर्णनाभ: (२२)

ऊर्णनाभ—२२

१७३ ग-१७५ ख. (अ०) **यत्र** जिसमें **पद्मकोशस्य** पद्मकोश (हस्त) की **पञ्च अङ्गुल्य:** पाँच उँगलियाँ **कुञ्चिता: स्यु:** कुंचित होती हैं **स:** वह **ऊर्णनाभ:** ऊर्णनाभ (हस्त होता है)। **चौर्येण ग्रहे** चोरी से पकड़ने (अथवा लेने) में, **केशग्रह-आदिषु** बाल पकड़ने आदि में, **शिर: कण्डूयने कार्य:** सिर खुजाने में करना चाहिये **सस्वस्तिकौ तौ च** और स्वस्तिकयुक्त वे दोनों (हस्त) **चिबुकक्षेत्रगौ** ठोडी के भाग पर गये हुए (रखे हुए) **सिंहव्याघ्र-आदिनखर-आयुधे** सिंह, बाघ आदि के (पैने) नख (रूपी) शस्त्रों (के अभिनय) में (योजित करने चाहियें)।

(सर०) सिंह० ने **चौर्येण ग्रहे केशग्रहादिषु** का एक साथ अन्वय करके 'चोरी से बाल आदि के ग्रहण में' अर्थ किया है। लेकिन इस अर्थ में **ग्रहे** का अर्थ छूट गया है इसलिये 'चौर्येण ग्रहे' और 'केशग्रहादिषु' को अलग रख कर अर्थ करना संगत प्रतीत होता है।

यह ऊर्णनाभ (हस्त) है। (२२)

(संदंश:—२३)

अरालाङ्गुष्ठतर्जन्यौ लग्नाग्रे निम्नतां गते॥ १७५॥

किंचिच्चेत्तलमध्यस्थे तदा संदंश उच्यते।
स त्रेधा स्यादग्रजश्च मुखज: पार्श्वज: क्रमात्॥ १७६॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्राङ्मुखः संमुखः पार्श्वमुख इत्यस्य लक्षणम्।
कण्टकोद्धरणे सूक्ष्मकुसुमावचयादिषु॥ १७७॥

प्रयोक्तव्योऽग्रसंदंशो धिगित्युक्तौ तु रोषतः।
वृन्तात्पुष्पोद्धृतौ वर्तिशलाकाञ्जनपूरणे॥ १७८॥

कर्तव्यो मुखसंदंशः संदंशः पार्श्वजः पुनः।
गुणनिक्षेपणे मुक्ताफलानां वेधने तथा॥ १७९॥

निरूपणे च तत्त्वस्य सद्वितीयोऽथ भाषणे।
सरोषे वामहस्तेन किंचिदग्रविवर्तनात्॥ १८०॥

अलक्तकादिनिष्पेषेऽप्येष श्रीशार्ङ्गिणोदितः।

इति संदंशः (२३)

संदंश—२३

१७५ ग-१८१ ख. (अ०) **अराल-अङ्गुष्ठतर्जन्यौ** अराल (हस्त) का अँगूठा और तर्जनी (ये) दोनों **लग्न-अग्रे** जुड़ी नोक वाली (और) **निम्नतां गते** नीचे की ओर गई हुई **किंचित् तलमध्यस्थे स्यात् चेत्** यदि कुछ हथेली के बीच में स्थित हों **तदा** तब **संदंशः उच्यते** संदंश कहा जाता है। **सः** वह **अग्रजः मुखजः पार्श्वजः च** अग्रज, मुखज और पार्श्वज (यों) **त्रेधा स्यात्** तीन प्रकार का होता है। **क्रमात्** क्रम से **प्राङ्मुखः** पीछे मुँह (नोक) वाला, **संमुखः** सामने (नोक) वाला, **पार्श्वमुखः** बाजू (की ओर नोक) वाला **इति** ये **अस्य लक्षणम्** इस (के तीन प्रकारों) का लक्षण है। **कण्टक-उद्धरणे** काँटा ऊपर (बाहर) निकालने में, **सूक्ष्म-कुसुम-अवचय-आदिषु** छोटे फूल चुनने आदि में **अग्रसंदंशः प्रयोक्तव्यः** अग्रसंदंश प्रयोग करना चाहिये। **रोषतः** रोष के साथ **धिक् इति उक्तौ** 'धिक्कार है'—ऐसा कहने में, **वृन्तात् पुष्प-उद्धृतौ** डंडी से फूल (तोड़ कर) उठा कर लेने में, **वर्तिशलाका-अञ्जनपूरणे** गोल सलाई (सींक) से काजल लगाने में **मुखसंदंशः कर्तव्यः** मुखसंदंश करना चाहिये। **पुनः पार्श्वजः संदंशः** और पार्श्वज संदंश **मुक्ताफलानां** मोतियों का (में) **गुणनिक्षेपणे** धागा डालने में **तथा वेधने** और उनमें छेद करने में **तत्त्वस्य निरूपणे च** और तत्त्व के निरूपण में **सद्वितीयः** दूसरे (संदंश हस्त) के साथ (प्रयुक्त करना चाहिये)। **अथ वामहस्तेन** और बायें हाथ से **किंचित् अग्रविवर्तनात्** नोक कुछ घुमाते हुए **सरोषे भाषणे** रोष के साथ बोलने में (योजित करना चाहिये)। **श्रीशार्ङ्गिणा** श्रीशार्ङ्गदेव के द्वारा **एष** यह **अलक्तक-आदिनिष्पेषे अपि** अलता आदि पीसने में भी **उदितः** कहा गया है।

(सर०) सिंह० ने 'निम्नतां गतः' और 'तलमध्यस्थः' के स्थान पर क्रमशः 'निम्नतां गते' और 'तलमध्यस्थे' पाठ मानकर **अङ्गुष्ठ-तर्जन्यौ** के विशेषण के रूप में अन्वय किया है, जो उचित प्रतीत होता है। तदनुसार मूल में भी 'निम्नतां गतः' के स्थान पर **निम्नतां गते** तथा 'तलमध्यस्थः' के स्थान पर **तलमध्यस्थे** पाठ अधिक संगत होने से यहाँ मूल में यही पाठ रखा है।

यह संदंश (हस्त) है। (२३)

(ताम्रचूडः—२४)

भ्रमरस्य तलस्थे चेत्कनिष्ठोपकनिष्ठिके॥ १८१॥

ताम्रचूडस्तदा हस्तो बालाऽह्वानेऽथ भर्त्सने।
गीतादितालमाने च शैघ्र्यविश्वासनादिषु॥ १८२॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सशब्दच्युतसंदंशः कार्योऽसौ छोटिकोच्यते।
प्रसारितकनिष्ठस्य मुष्टेर्यत्ताम्रचूडताम्॥ १८३॥

विनियोगं सहस्त्रादिसंख्यानिर्देशनेऽस्य च।
केऽप्यूचुस्तत्तु निःशङ्को नैच्छल्लक्ष्येष्वदर्शनात्॥ १८४॥

इति ताम्रचूडः (२४)

इति चतुर्विंशतिरसंयुतहस्ताः

ताम्रचूड—२४

१८१ ग-१८४. (अ०) **भ्रमरस्य** भ्रमर (हस्त) की **कनिष्ठा-उपकनिष्ठिके** कनिष्ठा और कनिष्ठा के पास वाली (अनामिका) ये दो **तलस्थे चेत्** यदि हथेली में स्थित हों **तदा** तो **ताम्रचूडः हस्तः** ताम्रचूड हस्त (होता है)। **बाल-आह्वाने** बालकों को बुलाने में, **भर्त्सने** भर्त्सना करने में, **गीत-आदितालमाने** गीत आदि के ताल को मापने में, **शैघ्र्य-विश्वासन-आदिषु** शीघ्रता, विश्वास आदि में, **सशब्दच्युतसंदंशः** ध्वनि सहित च्युतसंदंश **कार्यः** करना चाहिये। **असौ** यह **छोटिका** चुटकी **उच्यते** कहा जाता है। **के अपि** किन्हीं (आचार्यों) ने **प्रसारितकनिष्ठस्य मुष्टेः** फैलाई हुई कनिष्ठा के (वाले) मुष्टि (हस्त) की **यत्** जो **ताम्रचूडतां** ताम्रचूड स्वरूपता **अस्य च** और इसका **सहस्त्र-आदिसंख्यानिर्देशने** सहस्त्र (हज़ार) आदि संख्या दिखाने में **विनियोगम् उचुः** विनियोग कहा **तत् तु** वह तो **लक्ष्येषु अदर्शनात्** लक्ष्य में दिखाई न देने से **निःशङ्कः** निःशंक (शार्ङ्गदेव) **न ऐच्छत्** नहीं मानता।

(सर०) विनियोग के संबन्ध में सिंह० ने टीका में यह स्पष्ट किया कि यद्यपि महाराष्ट्र में सहस्त्र आदि संख्या का निर्देश करने में ताम्रचूड हस्त का प्रयोग दिखाई देता है लेकिन अन्यत्र लक्ष्य में ऐसा दिखाई न देने से शार्ङ्गदेव ने इसे स्वीकार नहीं किया।

यह ताम्रचूड (हस्त) है। (२४)

ये चौबीस असंयुत हस्त हैं।

(ख—संयुतहस्ताः)

(अञ्जलिः—१)

अथ संयुतहस्ताः—

पताकहस्ततलयोः संश्लेषादञ्जलिर्मतः।
देवतागुरुविप्राणां नमस्कारेष्वयं क्रमात्॥ १८५॥

कार्यः शिरोमुखोरस्थो नृभिः स्त्रीभिर्यथेष्टतः।

इत्यञ्जलिः (१)

ख—संयुतहस्त

अंजलि—१

१८५-१८६ ख. (अ०) **अथ संयुतहस्ताः** अब संयुत हस्त—

पताकहस्ततलयोः पताक हस्त की दोनों हथेलियों को **संश्लेषात्** जोड़ने से **अञ्जलिः मतः** अंजलि (हस्त) माना गया

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

है। **अयं नृभिः** यह पुरुषों के द्वारा **देवतागुरुविप्राणां नमस्कारेषु** देवता, गुरु और ब्राह्मणों को नमस्कार करने में **क्रमात्** क्रम से **शिरोमुख-उरस्थः** सिर, मुँह (और) हृदय पर स्थित **कार्यः** करना चाहिये। **स्त्रीभिः** स्त्रियों के द्वारा **यथा-इष्टतः** इच्छा के अनुसार (प्रयोग करना चाहिये)।

(सर०) असंयुत हस्तों के लक्षण देने के बाद यहाँ से ग्रन्थकार ने संयुत हस्तों के लक्षण शुरू किये हैं।

यह अंजलि (हस्त) है।

(कपोतः—२)

कपोतोऽसौ करौ यत्र श्लिष्टमूलाग्रपार्श्वकौ॥ १८६॥

अस्य कूर्मक इत्यन्यां संज्ञां हस्तविदो विदुः।
प्रणामे गुरुसंभाषे विनयाङ्गीकृतौ त्वयम्॥ १८७॥

प्राङ्मुखः सशिरःकम्पः स्त्रीकापुरुषयोर्भवेत्।

इति कपोतः (२)

कपोत—२

१८६ ग-१८८ ख. (अ०) **यत्र** जिसमें **करौ श्लिष्टमूल-अग्रपार्श्वकौ** दोनों हाथ मूल और नोक बाजू की ओर मुड़े हुए हों **असौ** यह (ऐसा) **कपोतः** कपोत (हस्त होता है)। **हस्तविदः** हस्तों के वेत्ता **अस्य** इसका **कूर्मकः** कूर्मक **इति** यह **अन्यां संज्ञां** दूसरा नाम **विदुः** जानते हैं। **प्रणामे** प्रणाम में, **गुरुसंभाषे** गुरु के साथ बात करने में, **विनय-अङ्गीकृतौ तु** विनय के साथ स्वीकार करने में तो **अयं** यह **प्राङ्मुखः** मुख सामने वाला (और) **सशिरः कम्पः** सिर के कंपन के साथ **स्त्रीकापुरुषयोः भवेत्** स्त्री और कायर/तुच्छ पुरुष में होता है।

(सर०) कल्लि० ने कहा कि **श्लिष्टमूलाग्रपार्श्वकौ** इस विशेष कथन से यह समझ आता है कि हथेलियाँ जुड़ी न हों। इसके द्वारा अंजलि हस्त से यह इसकी भिन्नता समझनी चाहिये।

यह कपोत (हस्त) है। (२)

(कर्कटः—३)

अन्योन्यस्यान्तरैर्यत्राङ्गुल्यो निःसृत्य हस्तयोः॥ १८८॥

अन्तर्बहिश्च दृश्यन्ते कर्कटः सोऽभिधीयते।
अन्तःस्थिताङ्गुलिः कार्यश्चिन्तायामथ मर्षणे॥ १८९॥

ऊर्ध्वं पार्श्वेऽग्रतो वा स्यात्पराङ्मुखतलाङ्गुलिः।
अङ्गानां मोटने, चाथ बृहद्देहे स्वसंमुखः॥ १९०॥

जठरक्षेत्रगः पृष्ठे त्वङ्गुलीनां हनुं दधत्।
खेदे च संकुचत्किंचिदन्योन्याभिमुखाङ्गुलिः॥ १९१॥

शङ्खस्य धारणे सोऽयं जृम्भादौ बहिरङ्गुलिः।

इति कर्कटः (३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कर्कट—३

१८८ ग-१९२ ख. (अ०) **यत्र** जिसमें **हस्तयोः** दोनों हाथों की **अङ्गुल्यः** उँगलियाँ **अन्योन्यस्य अन्तरैः** एक दूसरे के बीच से **निःसृत्य** बाहर निकल कर **अन्तः बहिः च** अन्दर और बाहर की ओर **दृश्यन्ते** दिखाई देती हैं **सः** वह **कर्कटः** कर्कट (हस्त) **अभिधीयते** कहा जाता है। **अन्तःस्थित-अङ्गुलिः** उँगलियाँ भीतर की ओर होने पर **चिन्तायाम् अथ मर्षणे** चिन्ता में और सहन करने में **कार्यः** करना चाहिये। **ऊर्ध्वं पार्श्वे अग्रतः वा** ऊपर, बाजू या सामने (की हुई) **पराङ्मुखतल-अङ्गुलिः** हथेली (और) उँगली पीछे की ओर (मुड़ी हुई) **अङ्गानां मोटने** अंगों को मरोड़ने **अथ च** और **स्वसंमुखः** अपने सामने (रखने पर) **बृहत्-देहे** बड़े शरीर (के अभिनय) में **स्यात्** होता है। **जठरक्षेत्रगः** पेट के भाग पर रखकर **अङ्गुलीनां पृष्ठे तु** उँगलियों के पीछे तो **हनुं दधत्** ठोडी धारण करते हुए **खेदे** खेद में, **संकुचत् किंचित्-अन्योन्य-अभिमुख-अङ्गुलिः च** संकुचित और कुछ एक दूसरी के आमने-सामने उँगली वाला **शङ्खस्य धारणे** शंख पकड़ने में (और) **बहिः अङ्गुलिः** बाहर की ओर उँगली वाला **सः अयं** वह ऐसा **जृम्भ-आदौ** जँभाई आदि में (करना चाहिये)।

(सर०) कल्लि० ने **पराङ्मुखतलाङ्गुलिः** की व्याख्या यह की है कि दोनों हाथों की हथेलियाँ और उँगलियाँ पराङ्मुख होना परस्पर और अभिनेता की अपेक्षा से देखना चाहिये। इसका आशय यह है कि हथेली और उँगलियाँ परस्पर भी पीछे मुड़ी हुई हों और अभिनेता की ओर भी पीछे मुड़ी हुई रहें। **स्वसंमुखः** में **स्व** शब्द 'अभिनेता के सामने'—इस अर्थ का सूचक है।

यह कर्कट (हस्त) है। (३)

(स्वस्तिकः—४)

एकस्य मणिबन्धेऽन्यमणिबन्धस्थितौ करौ॥ १९२॥

देहस्य वामपार्श्वस्थावुत्तानौ स्वस्तिको मतः।
अत्रारालौ पताकौ वाभिनेयवशगौ करौ॥ १९३॥

विच्युतः स्वस्तिकः स्त्रीभिरेवमस्तीति भाषणे।
गगने सागरादौ च विस्तीर्णे संप्रयुज्यते॥ १९४॥

इति स्वस्तिकः (४)

स्वस्तिक—४

१९२ ग-१९४. (अ०) **एकस्य मणिबन्धे** एक (हाथ) की कलाई पर **अन्यमणिबन्धस्थितौ** दूसरी कलाई रखे हुए **करौ** दोनों हाथ **देहस्य वामपार्श्वस्थौ उत्तानौ** शरीर की बाईं बाजू की ओर रखे हुए (और) ऊपर की ओर (योजित होने पर) **स्वस्तिकः मतः** स्वस्तिक (हस्त) माना गया है। **अत्र** इसमें **अभिनेयवशगौ करौ** अभिनय के विषय के अनुसार दोनों हाथ **अरालौ पताकौ वा** अराल या पताक (हो सकते हैं)। **विच्युतः स्वस्तिकः** (दोनों हाथ) अलग-अलग (रख कर) स्वस्तिक **स्त्रीभिः** स्त्रियों के द्वारा **एवम् अस्ति** 'ऐसा है' **इति भाषणे** यह कहने में (और) **गगने** आकाश, **विस्तीर्णे सागर-आदौ** विशाल समुद्र आदि (के अभिनय) में **संप्रयुज्यते** प्रयुक्त किया जाता है।

(सर०) आड्० में **वाभिनये वशगौ** पाठ है जिसकी सिंह० ने 'अभिनेतव्यवशात्' व्याख्या की है। आनन्द० में भी **वाऽभिनये** पाठ है। लेकिन पादटिप्पणी में तीन पाण्डुलिपियों के अनुसार **वाभिनेयवशगौ** पाठ दिया है (द्वितीय भाग, पृ० ६५०)। इससे 'अभिनेयवशगौ' 'करौ' का विशेषण बन जाने से वही संगत अर्थ प्राप्त होता है जो सिंह० ने दिया है। इसलिये हमने मूल में यही पाठ रखा है।

यह स्वस्तिक (हस्त) है। (४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(डोलः—५)

लम्बमानौ पताकौ तु श्लथांसौ शिथिलाङ्गुली।
डोलो भवेदसौ व्याधौ विषादे मदमूर्छयोः॥ १९५॥

संभ्रमादौ यथायोगं स्तब्धो वा पार्श्वडोलितः।

इति डोलः (५)

डोल—५

१९५-१९६ ख. (अ०) श्लथ-अंसौ ढीले कंधे, शिथिल-अङ्गुली शिथिल उँगलियों वाले लम्बमानौ लंबाकार पताकौ तु दो पताक (हस्त) तो डोलः भवेत् डोल (हस्त) होता है। असौ यह व्याधौ रोग में, विषादे विषाद में, मदमूर्छयोः मद और मूर्छा में (प्रयुक्त होता है)। संभ्रम आदौ संभ्रम आदि में यथायोगं परिस्थिति के अनुसार स्तब्धः निश्चल पार्श्वडोलितः वा बाजू की ओर हिलता हुआ (योजित करना चाहिये)।

यह डोल (हस्त) है। (५)

(पुष्पपुटः—६)

सर्पशीर्षो मिलद्बाह्यपार्श्वः पुष्पपुटो भवेत्॥ १९६॥

धान्यपुष्पफलादीनामपां च ग्रहणेऽर्पणे।
कार्यः पुष्पाञ्जलौ चैष प्रोक्तः सोढलसूनुना॥ १९७॥

इति पुष्पपुटः (६)

पुष्पपुट—६

१९६ ग-१९७. (अ०) मिलत् बाह्यपार्श्वः जुड़ी हुई बाहर की बाजू वाला सर्पशीर्षः (दो) सर्पशीर्ष (हस्त) पुष्पपुटः भवेत् पुष्पपुट (हस्त) होता है। धान्यपुष्पफल-आदीनां अन्न, फूल, फल आदि का अपां च ग्रहणे और पानी ग्रहण करने में अर्पणे अर्पण करने में कार्यः करना चाहिये। सोढलसूनुना सोढल के पुत्र (शार्ङ्गदेव) ने पुष्प-अञ्जलौ च फूलों की अंजलि में भी एष प्रोक्तः यह (हस्त) कहा है।

यह पुष्पपुट (हस्त) है। (६)

(उत्सङ्गः—७)

अन्योन्यस्कन्धदेशस्थावरालौ स्वस्तिकीकृतौ।
स्वसंमुखौ च विततावुत्सङ्गो गीयते करः॥ १९८॥

देहदक्षिणभागस्थं स्वस्तिकं केचिदूचिरे।
अधस्तलत्वमप्यन्येऽन्योन्यकक्षानुवंशिनीः॥ १९९॥

अङ्गुलीः करयोः पृष्ठद्वयं पार्श्वमुखं विदुः
करावरालयोः स्थाने सर्पशीर्षावितीतरे॥ २००॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अतिप्रयत्नसाध्येऽर्थे शीतालिङ्गनयोरपि।
प्रसाधनानङ्गीकारे लज्जादौ चैव योषिताम्॥ २०१॥

इत्युत्सङ्गः (७)

उत्संग—७

१९८-२०१. (अ०) **स्वस्तिकीकृतौ** स्वस्तिक किये हुए, **अन्योन्यस्कन्धदेशस्थौ** एक दूसरे के कंधे पर रखे हुए, **स्वसंमुखौ** अपनी ओर (हथेली) किये हुए **विततौ च** और फैलाये हुए **अरालौ** दो अराल (हस्त होने पर) **उत्सङ्गः करः** उत्संग हस्त **गीयते** कहा जाता है। **केचित्** कुछ (आचार्यों) ने **देहदक्षिणभागस्थं स्वस्तिकं** शरीर के दाहिने भाग पर रखा हुआ स्वस्तिक **ऊचिरे** कहा है। **अन्ये** दूसरे (आचार्यों) ने **अधः तलत्वं अपि** नीचे की ओर हथेली होना भी (कहा)। **करयोः** (अन्य आचार्य) दोनों हाथों की **अन्योन्यकक्ष-अनुवेशिनीः अङ्गुलीः** एक दूसरे की काँख में प्रवेश करने वाली उँगलियाँ **पृष्ठद्वयं पार्श्वमुखं** दोनों (हाथों) के बाजू की ओर (की हुई) **विदुः** (उत्संग हस्त) जानते हैं। **इतरे** अन्य (आचार्य) **अरालयोः स्थाने** अराल (हस्तों) के स्थान पर **सर्पशीर्षौ करौ इति** दो सर्पशीर्ष हस्त—यों (कहते हैं)। **अतिप्रयत्नसाध्ये अर्थे** बड़े प्रयत्न से साध्य होने वाले अर्थों में **शीत-आलिङ्गनयोः अपि** तथा ठंड और आलिंगन में, **प्रसाधन-अनङ्गीकारे** प्रसाधन (अलंकार, वेशभूषा आदि) अस्वीकार करने में **योषितां च** और स्त्रियों में **लज्जा-आदौ च एव** लज्जा आदि में भी (योजित होता है)।

यह उत्संग (हस्त) है। (७)

(खटकावर्धमानः—८)

खटकामुखयोः पाण्योः स्वस्तिके मणिबन्धने।
अन्योन्याभिमुखत्वे वा खटकावर्धमानकः॥ २०२॥

ताम्बूलग्रहणादौ स्यात्कामिनां प्रथमे मते।
पुष्पाणां ग्रथने सत्यभाषणादौ मतान्तरे॥ २०३॥

कुमुदोत्पलकुन्तानां रूपणे शङ्खधारणे।

इति खटकावर्धमानकः (८)

खटकावर्धमान—८

२०२-२०४ ख. (अ०) **खटकामुखयोः पाण्योः** दो खटकामुख हस्त **मणिबन्धने स्वस्तिके** मणिबन्ध पर स्वस्तिक करने पर **अन्योन्य-अभिमुखत्वे वा** अथवा एक-दूसरे के सामने होने पर **खटकावर्धमानकः** खटकावर्धमान (हस्त होता है)। **प्रथमे मते** (विनियोग संबंधी दो मतों में से) पहले मत में **कामिनां** प्रेमी के **ताम्बूलग्रहण-आदौ** पान ग्रहण करने आदि में, **पुष्पाणां ग्रथने** फूलों को गूँथने में (और) **मत-अन्तरे** दूसरे मत में **सत्यभाषण-आदौ** सच बोलने आदि में, **कुमुद-उत्पलकुन्तानां रूपणे** कुमुद, नील कमल, भाले आदि के अभिनय में **शङ्खधारणे** (और) शंख पकड़ने में **स्यात्** होता है।

(सर०) खटकावर्धमान का लक्षण और विनियोग दो मतों से दिया गया है। पहले में मणिबन्ध पर स्वस्तिक होता है जिसका विनियोग प्रेमी द्वारा पान ग्रहण करने आदि शृंगार रस संबंधी विषयों में होता है। दूसरे में एक दूसरे के सामने रखे हुए हस्त का विनियोग फूलों को गूँथने आदि में होता है।

आड्० में सिंह० की टीका के आधार पर '*प्रथमे रसे*' पाठ है और आनन्द० में कल्लि० के अनुसार '*प्रथमे मते*'। सिंह०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ने शृंगार रस के प्रयोजक—इस अर्थ में 'रसे' कहा है और पहले मत में ही फूल गूँथने का विनियोग भी दिया है। दूसरे मत में सत्यभाषण आदि को रखा है। अर्थसंगति की दृष्टि से **प्रथमे मते** उचित प्रतीत होता है।

'कुमुदोत्पलकुन्तेषु रूपणे' की व्याख्या सिंह० ने '··· उत्पलानां कुन्तानां च रूपणे'—यों कुन्तानां में षष्ठी लगाकर की है जिससे यह अर्थ प्राप्त होता है—'··· उत्पल, भाले के अभिनय में'। यह अर्थ संगत होने से, सिंह० के आधार पर, हमने मूल में **कुमुदोत्पलकुन्तानां रूपणे** पाठ रखा है।

यह खटकावर्धमान (हस्त) है। (८)

(गजदन्तः—९)

स्कन्धकूर्परयोर्मध्यमन्योन्यस्य यदा करौ॥ २०४॥

दधाते सर्पशिरसौ गजदन्तस्तदोदितः।
आकुञ्चत्कूर्परौ स्कन्धदेशस्थौ सर्पशीर्षकौ॥ २०५॥

अन्योन्याभिमुखौ लक्ष्म गजदन्ते जगुः परे।
एष शैलशिलोत्पाटे गतागतयुतः करः॥ २०६॥

विवाहस्थानननयने स्याद्वधूवरयोरयम्।
स्तम्भग्रहेऽतिभारे च श्रीसोढलसुतोदितः॥ २०७॥

इति गजदन्तः (९)

गजदन्त—९

२०४ ग-२०७. (अ०) यदा जब **सर्पशिरसौ करौ** दोनों सर्पशीर्ष हस्त **अन्योन्यस्य** एक-दूसरे के **स्कन्धकूर्परयोः मध्यं दधाते** कंधे और कोहनी के बीच (के भाग) में रखे जाते हैं **तदा** तो **गजदन्तः उदितः** गजदन्त (हस्त) कहा गया है। **परे** अन्य (आचार्यों) ने **आकुञ्चत्-कूर्परौ** मुड़ी हुई कोहनियों वाले **स्कन्धदेशस्थौ** कंधे की जगह पर रखे हुए **अन्योन्य-अभिमुखौ** एक-दूसरे के सामने मुँह वाले **सर्पशीर्षकौ** दो सर्पशीर्ष (हस्त) **गजदन्ते** गजदन्त (हस्त) में **लक्ष्म जगुः** लक्षण कहा है। **एष करः** यह (गजदन्त) हस्त **गत-आगतयुतः** आगे-पीछे जाते आते **शैलशिला-उत्पाटे** पर्वत से शिला उखाड़ने में, **वधूवरयोः** वधू और वर के **विवाहस्थानननयने** विवाह की जगह पर ले जाने (के अभिनय) में **स्यात्** (प्रयुक्त) होता है। **अयं** यह **स्तम्भग्रहे** खंभा पकड़ने में **अतिभारे च** और बहुत बोझा (उठाने / ले जाने) में **श्रीसोढलसुत-उदितः** श्रीसोढल के पुत्र (शार्ङ्गदेव) के द्वारा कहा गया है।

(सर०) विनियोग संबंधी व्याख्या में कल्लि० ने कहा कि एष गजदन्त के पहले लक्षण का निर्देश करता है इसलिये शैलशिला-उत्पाट आदि में उसी का विनियोग जानना चाहिये। भरत आदि के द्वारा कहा गया अभिनयहस्तों का पूरा विनियोग यहाँ न देना नृत्त में अभिनय हस्तों की प्रधानता नहीं है यह दिखाने के लिये है। चतुरश्र आदि नृत्त हस्तादि की भी 'स्रगाद्याकर्षणात्' (माला आदि खींचने) से अभिनय की दिशा दिखाई है। 'सूच्यन्तेऽन्ये साहचर्यात्' (७/९१) (अर्थात् दूसरे के साहचर्य से सूचित किया जाता है) यह पहले कहे गये अर्थ के निर्वाह के लिये और अभिनय में नृत्त का संनिपत्य-उपकारक अंगत्व दिखाने के लिये है, ऐसा आशय समझना चाहिये।

'संनिपत्योपकारक' मीमांसाशास्त्र का शब्द है जिसका आशय उन कर्मों से है जो मुख्य यज्ञ में सहायक रूप से अंग होते

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हैं। यहाँ कल्लि० ने इस शब्द का प्रयोग इस संदर्भ में किया है कि अभिनय में अभिनयहस्तों का स्वरूप प्रधान होता है और नृत्त में अप्रधान यानी गौण अंग के रूप में होता है।

यह गजदन्त (हस्त) है। (९)

(अवहित्थः—१०)

वक्षसोऽभिमुखौ सन्तौ शुकतुण्डावधोमुखौ।
कृत्वा नीतावधो यत्र सोऽवहित्थोऽभिधीयते॥ २०८॥

दौर्बल्यौत्सुक्यनिःश्वासगात्रकार्श्येष्वसौ भवेत्।

इत्यवहित्थः (१०)

अवहित्थ—१०

२०८-२०९ ख. (अ०) **यत्र** जिसमें **शुकतुण्डौ** दो शुकतुंड (हस्त) **वक्षसः अभिमुखौ** छाती के सामने किये हुए **अधोमुखौ कृत्वा** नीचे की ओर करके **अधः नीतौ** नीचे ले जाए हुए (हों) **सः** वह **अवहित्थः अभिधीयते** अवहित्थ कहा जाता है। **असौ** यह **दौर्बल्य-औत्सुक्यनिःश्वासगात्रकार्श्ये भवेत्** दुर्बलता, उत्सुकता, निःश्वास (और) शरीर के दुबलेपन (के अभिनय) में होता है।

यह अवहित्थ (हस्त) है। (१०)

(निषधः—११)

मुकुलस्य कपित्थेन वेष्टनान्निषधो भवेत्॥ २०९।

शास्त्रार्थसम्यग्ग्रहणे स स्यान्निष्पेषणे तथा।
सम्यक्च स्थापिते तथ्यमिदमित्यभिभाषणे॥ २१०॥

प्रथमं गजदन्तं तु निषधं केचिदूचिरे।
स शौर्यधैर्यगाम्भीर्यगर्वादिषु मतस्तथा॥ २११॥

इति निषधः (११)

निषध—११

२०९ ग-२११. (अ०) **कपित्थेन** कपित्थ (हस्त) से **मुकुलस्य वेष्टनात्** मुकुल (हस्त) को लपेटने से **निषधः भवेत्** निषध (हस्त) होता है। **सः** वह **शास्त्रार्थसम्यक्-ग्रहणे** शास्त्रार्थ को अच्छी तरह ग्रहण करने **तथा निष्पेषणे** और पीसने (चूरा करने) में **सम्यक् च स्थापिते** और सम्यक् स्थापना (करने) में (और) **इदं तथ्यं** 'यह यथार्थ है' **इति अभिभाषणे** ऐसा कहने में (प्रयुक्त) होता है। **केचित्** किन्हीं (आचार्यों) ने **प्रथमं गजदन्तं तु** पहले (प्रकार के) गजदन्त को तो **निषधम् ऊचिरे** निषध कहा है **तथा सः** और वह **शौर्यधैर्यगाम्भीर्यगर्व-आदिषु** शौर्य, धैर्य, गांभीर्य, गर्व आदि में **मतः** माना गया है।

यह निषध (हस्त) है। (११)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(मकरः—१२)

उपर्युपरि विन्यस्तौ यत्रान्योन्यमधोमुखौ।
ऊर्ध्वाङ्गुष्ठौ पताकाख्यौ करौ स मकरः स्मृतः॥ २१२॥

स नक्रमकरादीनां क्रव्यादद्वीपिनामपि।
सिंहादीनामभिनये नदीपूरस्य चेष्यते॥ २१३॥

इति मकरः (१२)

मकर—१२

२१२-२१३. (अ०) यत्र जहाँ अन्योन्यम् अधोमुखौ ऊर्ध्व-अङ्गुष्ठौ परस्पर नीचे किये हुए (और) ऊपर की ओर अँगूठे वाले पताक-आख्यौ करौ दो पताक नामक हस्त उपरि-उपरि विन्यस्तौ ऊपर-ऊपर (एक के ऊपर दूसरा) रखे हुए हों सः वह मकरः स्मृतः मकर (हस्त) माना गया है। सः वह नक्रमकर-आदीनां ग्राह (जलचर विशेष) मगर आदि के, क्रव्यादद्वीपिनां कच्चा माँस खाने वाले बाघ, चीते के सिंह-आदीनाम् अपि और सिंह आदि के नदीपूरस्य अभिनये च और नदी की बाढ़ के अभिनय में भी इष्यते इष्ट होता है।

यह मकर (हस्त) है। (१२)

(वर्धमानः—१३)

हंसपक्षौ स्वस्तिकत्वं प्राप्तौ यदि पराङ्मुखौ।
वर्धमानस्तदा हस्तः कपाटोद्घाटने भवेत्॥ २१४॥

विच्युतः स्वस्तिकस्तद्वद्वक्षःस्थलविदारणे।
सर्पशीर्षो हंसपक्षस्थानेऽस्मिन्नपरे जगुः॥ २१५॥

अपरेऽभ्युपजग्मुस्तं स्वस्तिकेन विना कृतम्।

इति वर्धमानः (१३)

इति त्रयोदशसंयुतहस्ताः।

वर्धमान—१३

२१४-२१६ ख. (अ०) यदि अगर पराङ्मुखौ पीछे की दिशा की ओर हंसपक्षौ दोनों हंसपक्ष (हस्त) स्वस्तिकत्वं प्राप्तौ स्वस्तिक (हस्त) का स्वरूप प्राप्त किये हुए हों तदा तो वर्धमानः हस्तः वर्धमान हस्त (होता है)। कपाट-उद्घाटने (वह) द्वार खोलने में (होता है)। तत्-वत् ऐसा (वर्धमान) स्वस्तिकः विच्युतः स्वस्तिक (के) विच्युत होने पर वक्षःस्थलविदारणे छाती पीटने (अथवा फाड़ने) में (प्रयुक्त होता है) अपरे अन्य (आचार्यों) ने अस्मिन् इस (वर्धमान) में हंसपक्षस्थाने हंसपक्ष (हस्त) के स्थान पर सर्पशीर्षः सर्पशिरा जगुः कहा है। अपरे अन्य (आचार्यों) ने तम् उसे स्वस्तिकेन विना कृतं स्वस्तिक के बिना किया हुआ अभि-उपजग्मुः स्वीकार किया है।

यह वर्धमान (हस्त) है। (१३)

ये तेरह संयुत हस्त हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(ग—नृत्तहस्ताः)

(चतुरश्रौ—१)

पुरोमुखौ समस्कन्धकूर्परौ खटकामुखौ॥ २१६॥

स्थितौ वक्षःपुरोदेशे वक्षसोऽष्टाङ्गुलान्तरे।
चतुरश्राविति प्रोक्तौ स्रगाद्याकर्षणे करौ॥ २१७॥

इति चतुरश्रौ (१)

ग—नृत्तहस्त

चतुरश्र—१

२१६ ग-२१७. (अ०) समस्कन्धकूर्परौ दोनों कंधे और कोहनियाँ सम स्थिति में (रख कर) खटकामुखौ दोनों खटकामुख (हस्त) पुरोमुखौ (हथेलियाँ) सामने (किये हुए) वक्षःपुरोदेशे छाती के सामने, वक्षसः अष्ट-अङ्गुल-अन्तरे छाती से आठ अंगुल की दूरी पर स्थितौ रखे हुए चतुरश्रौ इति करौ चतुरश्र हस्त स्रक्-आदि-आकर्षणे माला आदि को खींचने (के अभिनय) में प्रोक्तौ कहे गये हैं।

(सर०) कल्लि० ने पुरोमुखौ पर यह स्पष्टीकरण दिया है कि प्रयोक्ता (नर्तक) जिस दिशा की ओर मुँह किये हुए हो दोनों हाथ भी उसी दिशा की ओर (हथेलियाँ) होना ही 'पुरोमुखत्व' समझना चाहिये, न कि 'इन्द्रदिशा' (पूर्वदिशा) या प्रयोक्ता के सामने होना।

ये चतुरश्र हस्त हैं। (१)

(उद्वृत्तौ—२)

चतुरश्रीकृत्य पाण्योः कृतयोर्हंसपक्षयोः।
उत्तानोऽधो व्रजत्येको वक्षोऽन्यो यात्यधोमुखः॥ २१८॥

यदा स्यातां तदोद्वृत्तौ तालवृन्तनिरूपणे।
तावेव तालवृन्ताख्याववदन् नृत्तकोविदाः॥ २१९॥

प्राङ्मुखौ हंसपक्षाख्यौ व्यावृत्तिपरिवर्तितौ।
जयशब्दे प्रयोक्तव्यावुद्वृत्तौ मेनिरे परे॥ २२०॥

इत्युद्वृत्तौ (२)

उद्वृत्त—२

२१८-२२०. (अ०) चतुरश्रीकृत्य चतुरश्र करके पाण्योः हंसपक्षयोः कृतयोः दोनों हाथ हंसपक्ष किये हुए होने पर यदा जब एकः (उनमें से) एक उत्तानः ऊपर किया हुआ (अर्थात् ऊपर करके) अधः व्रजति नीचे जाता है (और) अन्यः दूसरा अधोमुखः नीचे की ओर (हथेली) वाला वक्षः याति छाती पर जाता है तदा तब उद्वृत्तौ स्याताम् उद्वृत्त (हस्त) होते हैं। तालवृन्तनिरूपणे पंखे के अभिनय में तौ एव उन्हीं को नृत्तकोविदाः नृत्त के निष्णात (आचार्यों) ने तालवृन्त-आख्यौ अवदन् तालवृन्त नाम से कहा है। परे अन्यों ने प्राङ्मुखौ सामने (हथेलियाँ) किये हुए हंसपक्ष-आख्यौ हंसपक्ष नाम

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वाले (हस्त) **व्यावृत्तिपरिवर्तितौ** व्यावृत्त और परिवर्तित (करणों से युक्त) **उद्वृत्तौ मेनिरे** उद्वृत्त (हस्त) माने हैं। (वे) **जयशब्दे** 'जय' शब्द में **प्रयोक्तव्यौ** प्रयुक्त करने चाहियें।

(सर०) कल्लि० ने कहा कि व्यावृत्त का अर्थ 'अन्तर्वर्तित' यानी भीतर की ओर घूमा हुआ है और परिवर्तित का अर्थ बाहर की ओर घूमा हुआ समझना चाहिये।

ये उद्वृत्त (हस्त) हैं। (२)

(तलमुखौ—३)

भूत्वोद्वृत्तौ स्थितौ त्र्यश्रौ हंसपक्षौ स्वपार्श्वयोः।
जातौ मिथः संमुखस्थतलौ तलमुखौ मतौ॥ २२१॥

बुधैरभिदधाते तौ मधुरे मर्दलध्वनौ।

इति तलमुखौ (३)

तलमुख—३

२२१-२२२ ख. (अ०) **उद्वृत्तौ भूत्वा** उद्वृत्त होकर **हंसपक्षौ** दोनों हंसपक्ष **स्वपार्श्वयोः** अपनी बाजू में **त्र्यश्रौ स्थितौ** विषम स्थित हुए **मिथः संमुखस्थतलौ जातौ** परस्पर आमने-सामने हथेलियाँ किये हुए **तलमुखौ मतौ** तलमुख (हस्त) माने गये हैं। **बुधैः** बुद्धिमानों के द्वारा **तौ** वे **मधुरे मर्दलध्वनौ** मधुर मृदंग नाद में **अभिदधाते** माने गये हैं।

ये तलमुख (हस्त) हैं। (३)

(स्वस्तिकौ—४)

अश्लिष्टहंसपक्षाभ्यां स्वस्तिकः स्वस्तिकौ करौ॥ २२२॥

इति स्वस्तिकौ (४)

स्वस्तिक—४

२२२ ग-घ. (अ०) **अश्लिष्टहंसपक्षाभ्यां** बिना जुड़े दो हंसपक्ष हस्तों से **स्वस्तिकः** स्वस्तिक (करने पर) **स्वस्तिकौ करौ** स्वस्तिक हस्त (होते हैं)।

ये स्वस्तिक (हस्त) हैं। (४)

(विप्रकीर्णौ—५)

विप्रकीर्णौ तु तावेव सहसा स्वस्तिकौ च्युते।
नीचाग्रावुन्नताग्रौ वा कुचाभ्यां पुरतः स्थितौ॥ २२३॥

पराङ्मुखौ हंसपक्षौ विप्रकीर्णौ जगुः परे।

इति विप्रकीर्णौ (५)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विप्रकीर्ण—५

२२३-२२४ ख. (अ०) **तौ एव स्वस्तिकौ सहसा च्युते** वही दोनों स्वस्तिक (हस्त) सहसा नीचे होने पर **विप्रकीर्णौ** विप्रकीर्ण (हस्त होते हैं)। **परे** दूसरे (आचार्यों) ने **नीच-अग्रौ उन्नत-अग्रौ वा** (उँगलियों की) नीचे नोक वाले या ऊपर नोक वाले, **कुचाभ्यां पुरतः स्थितः** स्तनों के सामने रहे हुए (और) **पराङ्मुखौ हंसपक्षौ** पीछे की ओर (हथेलियों वाले) दो हंसपक्ष (हस्त) **विप्रकीर्णौ जगुः** विप्रकीर्ण कहा है।

(सर०) यहाँ दो स्वस्तिक हस्तों को (द्विवचनान्त) 'विप्रकीर्णौ' कहा गया है। इसलिये सप्तमी 'स्वस्तिके' के स्थान पर द्विवचन स्वस्तिकौ ही उचित है। सिंह० की टीका में 'स्वस्तिकौ' ही है। इस आधार पर हमने इसी का ग्रहण किया है।

ये विप्रकीर्ण (हस्त) हैं। (५)

(अरालखटकामुखौ—६)

पताकस्वस्तिकं कृत्वा व्यावृत्तिपरिवर्तने॥ २२४॥

ऊर्ध्वास्यौ पद्मकोशौ च व्यावृत्तिपरिवर्तने।
क्रमात्कृत्वा यत्र वाममुत्तानारालमाचरेत्॥ २२५॥

खटकामुखमन्यं वाधोमुखं चतुरश्रतः।
स्वस्तिकेनाथवा यद्वा कृत्वारालौ करावुभौ॥ २२६॥

खटकामुखसंज्ञौ तावरालखटकामुखौ।
वणिजां सचिवादीनां वितर्केऽसौ प्रयुज्यते॥ २२७॥

अन्ये त्वाहुरुरोग्रस्थः प्राङ्मुखः खटकामुखः।
अरालः प्रोन्नताग्रोऽन्यस्तिर्यगीषत्प्रसारितः॥ २२८॥

पार्श्वव्यत्ययतो यद्वा स्वपार्श्वे चेत्करौ स्थितौ।
तालान्तरौ तदा स्यातामरालखटकामुखौ॥ २२९॥

इत्यरालखटकामुखौ (६)

अरालखटकामुख—६

२२४ ग-२२९. (अ०) **पताकस्वस्तिकं कृत्वा** पताक (हस्त) का (कलाई से किया हुआ) स्वस्तिक करके, **व्यावृत्तिपरिवर्तने** व्यावृत्ति और परिवर्तन (करके) **ऊर्ध्व-आस्यौ पद्मकोशौ च** फिर ऊपर की ओर मुँह (अर्थात् हथेलियाँ ऊपर) वाले दो पद्मकोश (हस्त) **व्यावृत्तिपरिवर्तने क्रमात् कृत्वा** व्यावृत्ति और परिवर्तन के क्रम से करके **यत्र** जिसमें **वामं** बायाँ (हाथ) **उत्तान-अरालम् आचरेत्** ऊपर की ओर वाला अराल (हस्त) करता है **अन्यं वा** और दूसरा (हाथ) **अधोमुखं खटकामुखं** नीचे की ओर (अर्थात् उल्टा) खटकामुख (करता है), **चतुरश्रतः** (फिर) चतुरश्र करके **अथवा स्वस्तिकेन** या स्वस्तिक से **यत् वा** अथवा **उभौ करौ** दोनों हाथ **अरालौ कृत्वा** अराल करके **खटकामुखसंज्ञौ** खटकामुख नामक (करते हैं) **तौ** वे दोनों **अराल-खटकामुखौ** अरालखटकामुख (होते हैं)। **असौ** यह **वणिजां सचिव-आदीनां** व्यापारियों, सचिवों आदि के **वितर्के प्रयुज्यते** वितर्क में प्रयुक्त होता है। **अन्ये तु आहुः** दूसरे (आचार्य) तो कहते हैं (कि) **उरोग्रस्थः** (उरस् अग्रस्थः) छाती के अग्र पर रखा हुआ **प्राङ्मुखः खटकामुखः** (एक हाथ) सामने हथेली वाला खटकामुख (है) **अन्यः** (और) दूसरा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्र-उन्नत-अग्रः ऊपर की ओर अग्र वाला **ईषत् तिर्यक् प्रसारितः** थोड़ा तिरछा फैलाया हुआ **अरालः** अराल (है)। **करौ पार्श्वव्यत्ययतः** दोनों हाथ के बाजुओं के बदलने से **यत् वा** अथवा **स्वपार्श्वे** अपनी-अपनी बाजुओं की ओर **ताल-अन्तरौ स्थितौ चेत्** यदि ताल अन्तर पर रखकर (प्रयुक्त किया जाय) **तदा** तो **अरालखटकामुखौ स्याताम्** अरालखटकामुख (हस्त) होते हैं।

(सर०) दोनों संस्करणों में **तलान्तरौ** पाठ है जिसे सिंह० ने आगे कहा जाने वाला तलान्तर कहा है। किन्तु आगे तलान्तर नहीं है। तल के निकट का 'ताल' शब्द नाप की दृष्टि से 'वितस्ति' (बित्ता) वाद्याध्याय में आ चुका है। यह **तालान्तरौ** पाठ ज़्यादा संगत प्रतीत होता है। उसके अनुसार 'वितस्ति के अन्तर पर' अर्थ निकलता है। मान० में 'तालमानतः' पाठ है भी। (भाग ३, पृ० १४६, श्लो० १२४४ घ)।

ये अरालखटकामुख हस्त हैं। (६)

(आविद्धवक्त्रौ—७)

भुजाग्रयोः कूर्परयोरंसयोः सविलासयोः।
सतोः पताकौ व्यावृत्तिं विधाय भवतो द्रुतम्॥ २३०॥

अधस्तलौ चेदाविद्धवक्त्रौ हस्तौ तदोदितौ।
विक्षेपवलने प्राहुः प्रयोगं कृतिनस्तयोः॥ २३१॥

इत्याविद्धवक्त्रौ (७)

आविद्धवक्त्र—७

२३०-२३१. (अ०) **भुजा-अग्रयोः** (दोनों) बाहुओं के सिरे, **कूर्परयोः अंसयोः** कोहनियाँ और कंधे **सविलासयोः सतोः** विलासयुक्त होकर **पताकौ व्यावृत्तिं विधाय** पताक (हस्त) व्यावृत्ति का विधान करके **द्रुतं भवतः** द्रुत होते हुए **अधः तलौ चेत्** यदि नीचे की ओर हथेली वाले हों **तदा** तब **आविद्धवक्त्रौ हस्तौ** आविद्धवक्त्र हस्त **उदितौ** कहे गये हैं। **कृतिनः** नृत्तज्ञ **तयोः प्रयोगम्** उनका प्रयोग **विक्षेपवलने प्राहुः** हड़बड़ी से टेढ़ामेढ़ा चलने में कहते हैं।

(सर०) सिंह० ने **विक्षेप** का अर्थ 'संभ्रम से काम की व्यग्रता से' दिया है। कल्लि० ने **वलनं** को 'वक्रता से गमन' अर्थात् टेढ़ामेढ़ा चलना कहा है।

ये आविद्धवक्त्र (हस्त) हैं। (७)

(सूच्यास्यौ—८)

मध्यमासंगताङ्गुष्ठौ चतुरश्रप्रदेशगौ।
सर्पशीर्षौ क्रमात्तिर्यक्प्रसरन्तौ प्रदेशिनीम्॥ २३२॥

बहिः प्रसारितां धत्तो यदा सूचीमुखौ तदा।
पताकौ प्रथमं कार्यौ व्यावृत्तपरिवर्तितौ॥ २३३॥

भ्रान्त्वा प्रसारणं चात्र विशेषं केचिदूचिरे।
मध्यप्रसारिताङ्गुष्ठौ सर्पशीर्षाकृती करौ॥ २३४॥

रेचितस्वस्तिकौ केचिदूचुः सूच्यास्यलक्षणम्।

इति सूच्यास्यौ (८)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सूच्यास्य—८

२३२-२३५ ख. (अ०) **यदा** जब **मध्यमासंगत-अङ्गुष्ठौ** मध्यमा से अँगूठे जुड़े हुए, **चतुरश्रप्रदेशगौ** चतुरश्र के क्षेत्र पर गये हुए **सर्पशीर्षौ** दो सर्पशीर्ष (हस्त) **क्रमात् तिर्यक् प्रसरन्तौ** क्रम से तिरछे फैले हुए, **प्रदेशिनीं** तर्जनी को **बहिः प्रसारितां धत्तः** बाहर की ओर फैलाई हुई धारण करता है (करते हैं) **तदा** तब **सूचीमुखौ** सूचीमुख (अर्थात् सूच्यास्य हस्त होते हैं)। **केचित्** किन्हीं (आचार्यों) ने **अत्र** इसमें (सूचास्य में) **प्रथमं पताकौ** पहले दो पताक (हस्त) **व्यावृत्तपरिवर्तितौ** व्यावृत्त और परिवर्तित (युक्त) **कार्यौ** करने चाहिये **भ्रान्त्वा प्रसारणं च** घुमाकर फैलाव भी (अर्थात् फैलाकर रखे हुए) **विशेषम् ऊचिरे** (ऐसा) विशेष कहा है। **केचित्** कोई **मध्यप्रसारित-अङ्गुष्ठौ** बीच में फैलाये हुए अँगूठे वाले **सर्पशीर्ष आकृती करौ** सर्पशीर्ष की आकृति वाले हाथ **रेचितस्वस्तिकौ** रेचित और स्वस्तिक (योजित करें ऐसा) **सूच्यास्यलक्षणम् ऊचुः** सूच्यास्य का लक्षण कहते हैं।

(सर०) कल्लि० ने ध्यान दिलाया कि चतुरश्र के प्रदेश का अर्थ यह है कि छाती से आठ अंगुल की दूरी पर छाती के सामने हो। जब सर्पशीर्ष हस्त क्रमशः अपने आप तिरछे फैलते हुए बाहर की ओर फैलाई हुई प्रदेशिनी को धारण करता है तब सूचीमुख होता है, यह अन्वय करना चाहिये।

ये सूच्यास्य (हस्त) हैं। (८)

(रेचितौ—९)

प्रसारितोत्तानतलावुच्येते रेचितौ करौ॥ २३५॥

अथवा रेचितौ प्रोक्तौ हंसपक्षौ द्रुतभ्रमौ।
यद्वा रेचितयोर्लक्ष्म लक्षणे मिलिते इमे॥ २३६॥

प्रयोज्यौ तौ नृसिंहस्य दैत्यवक्षोविदारणे।

इति रेचितौ (९)

रेचित—९

२३५ ग-२३७ ख. (अ०) **प्रसारित-उत्तानतलौ करौ इति** फैलाये हुए ऊपर की ओर हथेलियों वाले दो हाथ **रेचितौ उच्येते** रेचित कहे जाते हैं। **अथवा** या **द्रुतभ्रमौ** जल्दी घुमाये हुए **हंसपक्षौ** दोनों हंसपक्ष (हस्त) **रेचितौ प्रोक्तौ** रेचित कहे गये हैं। **यत् वा** अथवा **इमे लक्षणे मिलिते** ये (अभी कहे गए) दो लक्षण मिला कर **रेचितयोः लक्ष्म** रेचितों का लक्षण (होता है)। **तौ** वे (रेचित) **नृसिंहस्य दैत्यवक्षोविदारणे** नृसिंह का (के द्वारा) दैत्य की छाती फाड़ने में **प्रयोज्यौ** प्रयुक्त करने चाहियें।

(सर०) कल्लि० ने कहा कि दो लक्षण मिलाने से रेचित वाला लक्षण तीसरा लक्षण है। नृसिंह द्वारा दैत्य की छाती फाड़ने में उसी का विनियोग कहा है।

ये रेचित (हस्त) हैं। (९)

(अर्धरेचितौ—१०)

एकेन चतुरश्रेण तौ स्यातामर्धरेचितौ॥ २३७॥

इत्यर्धरेचितौ (१०)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अर्धरेचित—१०

२३७ ग-घ. (अ०) एकेन चतुरश्रेण (पहले कहे गये चतुरश्र में से) एक (हाथ से किये गये) चतुरश्र से तौ अर्धरेचितौ वे अर्धरेचित (हस्त) स्यातां होते हैं।

ये अर्धरेचित (हस्त) हैं। (१०)

(नितम्बौ—११)

उत्तानाधोमुखत्वाभ्यां क्रमेण स्कन्धदेशतः।
पताकौ यदि निष्क्रम्य नितम्बक्षेत्रवर्तिनौ॥ २३८॥

रेचकं कुरुतौ हस्तौ नितम्बावुदितौ तदा।

इति नितम्बौ (११)

नितंब—११

२३८-२३९ ख. (अ०) यदि पताकौ यदि दो पताक (हस्त) क्रमेण क्रम से उत्तान-अधोमुखत्वाभ्यां ऊपर और नीचे की ओर गये हुए स्कन्धदेशतः कंधे के भाग से निष्क्रम्य बाहर जाकर नितम्बक्षेत्रवर्तिनौ नितंब के भाग पर आये हुए रेचकं कुरुतौ रेचक (हस्त) करते हैं तदा तौ नितम्बौ हस्तौ नितंब हस्त उदितौ कहे गये हैं।

(सर०) कल्लि० ने ग्रन्थकार द्वारा प्रयुक्त क्रमेण पद की सार्थकता इस प्रकार स्पष्ट की है। उत्तान और अधोमुख क्रम से होता है, एक साथ नहीं। अन्यथा दोनों का उत्तानत्व और दोनों का अधोमुखत्व कहने से 'क्रमेण' पद निरर्थक हो जाता क्योंकि दोनों हाथों का वैसा होना क्रम के बिना संभव होता। इसलिये सार्थकता इस प्रकार होती है। पहले जिसका उत्तानत्व होता है उसका अधोमुखत्व और जिसका अधोमुखत्व उसका उत्तानत्व ऐसा समझने पर उत्तान और अधोमुख क्रम से हो सकते हैं। लेकिन दोनों हाथों से एक साथ मान लेने पर इस शब्द की सार्थकता नहीं रहती। और फिर क्रिया के उक्त वैचित्र्य से अत्यधिक शोभा का लाभ भी होता है।

ये नितंब (हस्त) हैं। (११)

(पल्लवौ—१२)

बाहू व्यावर्तितेनोर्ध्वं प्रसार्य परिवर्तितः॥ २३९॥

स्वस्तिकाकृतितां नीतौ पताकौ पल्लवौ मतौ।
शिथिलौ त्रिपताकौ तु केचिदत्र प्रचक्षते॥ २४०॥

नतोन्नतौ पद्मकोशौ शिथिलौ मणिबन्धयोः।
स्वपार्श्वयोः पुरस्ताद्वा पल्लवाववदन्परे॥ २४१॥

पद्मकोशकरस्थाने पताकावपरे जगुः।

इति पल्लवौ (१२)

पल्लव—१२

२३९ ग-२४२ ख. (अ०) व्यावर्तितेन व्यावर्तित से बाहू दोनों भुजाएँ ऊर्ध्वं प्रसार्य ऊपर फैलाकर परिवर्तितः परिवर्तित

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(से) **स्वस्तिक-आकृतितां नीतौ** स्वस्तिक की आकृति में ले जाए गये (किये हुए) **पताकौ** पताक (हस्त) **पल्लवौ मतौ** पल्लव (हस्त) माने गये हैं। **केचित् तु** कोई आचार्य तो **अत्र** इसमें **शिथिलौ त्रिपताकौ** शिथिल त्रिपताक **प्रचक्षते** कहते हैं। **परे** अन्यों ने **नत-उन्नतौ** नीचे (मोड़े हुए) और ऊपर किये हुए **शिथिलौ मणिबन्धयोः** शिथिल कलाइयों वाले (और) **स्वपार्श्वयोः पुरस्तात् वा** अपनी बाजू की ओर या सामने (ऐसे) **पद्मकोशौ** दो पद्मकोश (हस्त) **पल्लवौ अवदन्** पल्लव (हस्त) कहे हैं। **अपरे** अन्य (आचार्यों) ने **पद्मकोशकरस्थाने** पद्मकोश हस्त के स्थान पर **पताकौ जगुः** दो पताक कहा है।

ये पल्लव (हस्त) हैं। (१२)

(केशबन्धौ—१३)

पार्श्वदेशोत्थितौ पार्श्वमस्पृशन्तौ गतौ शिरः॥ २४२॥

नितम्बवत्केशदेशान्निष्क्रम्य च पुनः पुनः।
पृथग्गतागतौ यौ तौ केशबन्धौ करौ मतौ॥ २४३॥

इति केशबन्धौ (१३)

केशबन्ध—१३

२४२ ग-२४३. (अ०) **पार्श्वदेश-उत्थितौ** बाजू के भाग से ऊपर उठाये गये, **पार्श्वम् अस्पृशन्तौ** बाजू को न छूते हुए **शिरः गतौ** सिर तक गये हुए, **नितम्बवत्** नितंब (हस्त) की तरह **केशदेशात् निष्क्रम्य** बालों के भाग से बाहर जाकर **पुनः पुनः च** और बार-बार **पृथक्** गत-आगतौ अलग-अलग गये और आये हुए **यौ करौ** जो दो हस्त **तौ** वे **केशबन्धौ मतौ** केशबन्ध (हस्त) माने गये हैं।

(सर०) कल्लि० ने नितंबवत् की यह व्याख्या की है—'नितंबवत् की तरह', इस अतिदेश के द्वारा यहाँ भी बाजू की ओर से सिर तक क्रम से उत्तान-अधोमुखों के द्वारा—यों जोड़कर समझना चाहिये। जब एक हाथ केशभाग से बाहर जाय तब दूसरा केशों की ओर आये। इस तरह बार-बार और अलग-अलग गये हुए और आये हुए हस्त केशबन्ध होते हैं।

ये केशबन्ध (हस्त) हैं। (१३)

(उत्तानवञ्चितौ—१४)

कपोलांसललाटानां क्षेत्रे त्वन्यतमे स्थितौ।
त्रिपताकौ करौ किंचित्तिर्यञ्चौ संमुखौ मिथौ॥ २४४॥

असंकूर्परयोः किंचिच्चलतोरूर्ध्वतस्तलौ।
क्षणं भूत्वा प्रचलितौ ज्ञेयावुत्तानवञ्चितौ॥ २४५॥

अंसकूर्परयोः किंचित्पतनं मन्वते परे।

इत्युत्तानवञ्चितौ (१४)

उत्तानवंचित—१४

२४४-२४६ ख. (अ०) **कपोल-अंसललाटानां** गाल, कंधे और ललाट में से **अन्यतमे तु क्षेत्रे** किसी एक जगह पर रखे हुए, **किंचित् तिर्यञ्चौ** कुछ तिरछे, **मिथः संमुखौ** परस्पर आमने-सामने, **अंसकूर्परयोः** कंधे और कोहनियाँ **किंचित्**

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चलत् कुछ हिलती हुई (और) क्षणं ऊर्ध्वतः भूत्वा तलौ क्षण भर ऊपर हुई हथेलियों वाले प्रचलितौ विशेष रूप से हिलने वाले त्रिपताकौ करौ दो त्रिपताक हस्त उत्तानवञ्चितौ ज्ञेयौ उत्तानवंचित (हस्त) जाने गये हैं। परे दूसरे (आचार्य) अंसकूर्परयोः कंधे और कोहनियों का किंचित् पतनं कुछ गिरना (झुकना) मन्वते मानते हैं।

(सर०) कल्लि० ने स्पष्ट किया कि ऊर्ध्वतस्तलौ को उत्तानत्व और प्रचलितौ को वञ्चितत्व समझना चाहिये।

ये उत्तानवंचित (हस्त) हैं। (१४)

(लताकरौ—१५)

पताकौ डोलितौ तिर्यक्प्रसृतौ तौ लताकरौ॥ २४६॥

अनयोः करयोः केशबन्धयोश्च नितम्बयोः।
त्रिपताकाकृतिं केचिदाचार्याः प्रतिजानते॥ २४७॥

इति लताकरौ (१५)

लताकर—१५

२४६ ग-२४७. (अ०) तिर्यक् प्रसृतौ डोलितौ पताकौ तिरछे फैले हुए हिलते हुए दो पताक (हस्त) तौ वे लताकरौ लताकर (होते हैं)। केचित् आचार्याः कुछ आचार्य अनयोः करयोः इन हस्तों (तथा) केशबन्धयोः नितम्बयोः केशबन्ध और नितंब (हस्तों) की त्रिपताक-आकृतिं त्रिपताक की आकृति (अर्थात् स्वरूप) प्रतिजानते जानते हैं।

ये लताकर (लताहस्त) हैं। (१५)

(करिहस्तः—१६)

स्पृशत्करिकराकारः पार्श्वयोश्चेल्लताकरः।
उन्नतो दोलितोऽन्यस्तु कर्णस्थः खटकामुखः॥ २४८॥

त्रिपताकोऽथवा यत्र करिहस्तममुं विदुः।
नन्वन्यहस्तवत्कस्मान्नात्र द्विवचनं कृतम्॥ २४९॥

ब्रूमो यत्रैकशब्देन सजातीयावुभौ करौ।
उक्तौ तत्र द्विवचनं घटवच्चतुरस्रवत्॥ २५०॥

भिन्नशब्दौ विजातीयौ यौ वा द्विवचनं तयोः।
यथा घटपटौ स्यातामरालखटकामुखौ॥ २५१॥

करिहस्ताकृतिस्त्वेको दृश्यतेऽत्र लताकरः।
इतिकर्तव्यता त्वन्या स्यादेकवचनं ततः॥ २५२॥

न चात्र करिहस्तत्वमेकैकत्र घटत्ववत्।
न चात्रैकः करीहस्तशब्दवाच्योऽपरः करः॥ २५३॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नैकशेषो न च द्वन्द्वो यतो द्विवचनं भवेत्।
आश्रितं चैकवचनं मुनिना सर्वदर्शिना॥ २५४॥

इति करिहस्तः (१६)

करिहस्त—१६

२४८-२५४. (अ०) **करिकर-आकारः** हाथी की सूँड जैसे आकार वाला **पार्श्वयोः स्पृशत्** दोनों बाजुओं का स्पर्श करने वाला, **उन्नतः** ऊपर गया हुआ **दोलितः** आन्दोलित **लताकरः** एक लताहस्त **अन्यः तु** और दूसरा **कर्णस्थः खटकामुखः** कान पर रखा हुआ खटकामुख **अथवा त्रिपताकः** या त्रिपताक (हस्त) **यत्र** जिसमें (हो) **अमुम्** इसे (ऐसे हस्त को) **करिहस्तं विदुः** करिहस्त (के रूप में) जानते हैं।

ननु (यहाँ यह) आक्षेप है कि **अन्यहस्तवत्** दूसरे हस्तों की तरह **अत्र** यहाँ **द्विवचनं** द्विवचन (का प्रयोग) **कस्मात् न कृतं** क्यों नहीं किया? **ब्रूमः** (इसका उत्तर) कहते हैं। **यत्र** जहाँ **एकशब्देन** एक शब्द से **सजातीयौ** एक जाति वाले **उभौ करौ उक्तौ** दो हस्त कहे गये **तत्र** वहाँ **घटवत् चतुरस्त्रवत्** घट की तरह (या) चतुरश्र की तरह **द्विवचनं** द्विवचन (उपयुक्त है)। **विजातीयौ वा** अथवा भिन्न जातियों वाले **यौ भिन्नशब्दौ** जो दो अलग-अलग शब्द **तयोः** उनमें **घटपटौ** घटपटौ (घट और पट ये दो) **अरालखटकामुखौ** (अथवा) अरालखटकामुखौ (अराल और खटकामुख ये दो यों) **द्विवचनं स्यातां** द्विवचन (उपयुक्त) होते हैं।

अत्र इसमें **एकः लताकरः तु** एक लताहस्त तो **करिहस्त-आकृतिः दृश्यते** हाथी की सूँड जैसा दिखाई देता है (और) **अन्याः तु** दूसरी (दूसरे हाथ की क्रिया) तो **इतिकर्तव्यता** इतिकर्तव्यता (ऐसे किया जाना चाहिये) (के रूप में सहायक ही) **स्यात्** होती है (अर्थात् वह स्वतंत्र क्रिया नहीं बल्कि पहले हाथ की ही अंगरूप सहायक क्रिया है)। **ततः** इसलिये **एकवचनम्** एकवचन (प्रयोग किया है)।

अत्र च और यहाँ **करिहस्तत्वं** हाथी की सूँड का स्वरूप **एक-एकत्र** एक-एक में (अर्थात् प्रत्येक हाथ में) **घटत्ववत् न** घटत्व (जाति) के समान नहीं (होता)। **न च अत्र** और न ही यहाँ **अपरः करः** दूसरा हाथ **करीहस्तशब्दवाच्यः** करीहस्त शब्द का वाच्य (है)। **न एकशेषः** (यहाँ) एकशेष (समास) नहीं (है) **न च द्वन्द्वः** और द्वन्द्व भी नहीं (है) **यतः** जिससे **द्विवचनं भवेत्** द्विवचन हो (जाय)। **सर्वदर्शिना मुनिना च** सर्वदर्शी मुनि (भरत) ने भी **एकवचनम् आश्रितम्** एकवचन का ही आश्रयण (प्रयोग) किया है।

(सर०) नृत्तहस्तों के उद्देश में केवल करिहस्त एकवचन में था शेष सब द्विवचन पद थे (८७ क)। कल्लि० ने इस पर आपत्ति उठा कर यह कहा था कि आगे चल कर ग्रन्थकार स्वयं ही इसका समाधान करने वाले हैं। करिहस्त के लक्षण में यहाँ ग्रन्थकार द्वारा उठाई गई शंका और उसके समाधान की कल्लि० की लम्बी व्याख्या को यहाँ विस्तार से स्पष्ट किया जा रहा है।

करि अर्थात् हाथी और **करः** यानी सूँड—यह 'करिकरः' है। 'करिकरः' में बहुव्रीहि समास है इसलिये 'स्पर्श करती हुई हाथी की सूँड' 'करिकरः' (और) 'उसके जैसा आकार जिसका है' वह **स्पृशत्करिकरः** है। हाथी द्वारा अपनी सूँड से दोनों ओर के वृक्ष आदि को छूते समय सूँड का जैसा आकार होता है उसका अनुकरण यहाँ हस्त में भी होता है। चतुरश्रादि हस्तों में 'चतुरश्रौ' (दो चतुरश्र हस्त) यों द्विवचन का प्रयोग हुआ। लेकिन करिहस्त में **करिहस्तः** यों एकवचन क्यों किया गया, 'करिहस्तौ' क्यों नहीं? इस अभिप्राय से ग्रन्थकार ने प्रश्न उठाया **नन्वन्यहस्तवत्कस्मान्नात्र द्विवचनं कृतं?**

यहाँ 'चतुरश्रौ' यानी 'दो चतुरश्र' में एकसे स्वरूप के दो हस्त सजातीय अर्थ के सूचक हैं जैसे एक घट और एक घट यों समान स्वरूप के वाचक दो शब्दों (घटों) का रूप 'घटौ' होता है। इसलिये 'चतुरश्रौ' में द्विवचन एकशेष (जिसमें एक ही पद शेष रहे) कारण के रूप में है। भिन्न स्वरूप वाले विजातीय अर्थ के सूचक दो अलग-अलग शब्दों में द्विवचन द्वन्द्व समास होता है जैसे घट और पट के लिये 'घटपटौ' प्रयोग होता है। अराल और खटकामुख विजातीय शब्दों में द्विवचन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'अरालखटकामुखौ' यों कारण के रूप में द्वन्द्व समास है। 'करिहस्तः' में न तो सजातीय अर्थ के सूचक दो हस्त हैं और न विजातीय अर्थ के सूचक दो अलग-अलग पद हैं इसलिये इसमें एकशेष भी नहीं है और द्वन्द्व भी नहीं माना जा सकता। इसलिये एकवचन रूप है।

करिहस्त के लक्षण में एक हाथ की सूँड जैसा योजित होता है यह कहा। फिर दूसरे हाथ का क्या उपयोग—इस आकांक्षा की दृष्टि से ग्रन्थकार ने **इतिकर्तव्यता** के द्वारा यह व्यक्त किया कि **अन्या** स्त्रीलिंग शब्द है जो यहाँ क्रिया के लिये प्रयुक्त हुआ है यानी अरालखटकामुख या त्रिपताक हस्त के द्वारा कान के पास हाथ रख कर हाथी के कान का अनुकरण करने से करिहस्त हस्त के सहायक के रूप में दूसरे हाथ की क्रिया का अंगत्व होता है (वह स्वतंत्र क्रिया नहीं है) इसलिये करिहस्त में एकवचन प्रयोग किया गया है।

इस हस्त में स्थिति यह है। जब एक हाथ सूँड जैसी आकृति में है तब दूसरा खटकामुख या त्रिपताक होते हुए भी कान के पास रहते हुए करिहस्त का ही अनुकरण करता हुआ उसी का उपकारक (वैसा ही करता हुआ उस करिहस्त को अधिक व्यक्त होने में सहायक) होने से उसी का अंग (गौण) बना रहता है, दूसरे हाथ की क्रिया की यहाँ प्रधानता नहीं, इसलिये 'लताकर' एकवचन में कहा गया।

'करिहस्त'-रूप होना यहाँ हर घट में विद्यमान 'घटत्व' (जाति) के समान नहीं, न ही दूसरा एक हाथ यहाँ करिहस्त कहलाता है, न ही यहाँ एकशेष द्वन्द्व (दो शब्दों को एक में ही समेट कर दोनों का अर्थ देने वाला द्वन्द्व समास—'मातापितरौ' के अर्थ में केवल 'पितरौ' रहने के समान) है, इसलिये द्विवचन प्राप्त नहीं होता।

दोनों टीकाकारों की टीकाओं से यह स्पष्ट होता है कि एक हाथ ही हाथी की सूँड की तरह ऊँचा उठा कर डोलता हुआ दोनों तरफ़ छूता रहता है, दूसरा तो कान पर ही टिका हुआ खटकामुख या त्रिपताक रूप में रहता है। इस संपूर्ण स्थिति (मुद्रा) को 'करिहस्त' कहते हैं। 'लताकर' होने में वह एक ही हाथ हाथी की सूँड की तरह डोल रहा है, भिन्न आकृति वाले दूसरे हाथ का योग केवल 'इतिकर्तव्यता' (जैसा होना चाहिये वैसी आकृति में रहना-)मात्र के लिये है। दोनों हाथों में एक साथ समान भाव से 'लताकर' संज्ञा का निमित्त होना नहीं है इसलिये एकवचन का उपयोग ही उचित और न्यायसंगत है। समस्त स्थिति (सब कुछ) को देखने वाले मुनि (भरत) ने इसीलिये एकवचन का प्रयोग किया है।

यह करिहस्त (हस्त) है। (१६)

(पक्षवञ्चितौ—१७)

त्रिपताकौ कटीशीर्षे न्यस्ताग्रौ पक्षवञ्चितौ।

इति पक्षवञ्चितौ (१७)

पक्षवंचित—१७

२५५ क-ख. (अ०) **कटीशीर्षे न्यस्त-अग्रौ** दोनों (ओर) कमर के ऊपर सिरे रखे हुए **त्रिपताकौ** दोनों त्रिपताक (हस्त) **पक्षवञ्चितौ** पक्षवंचित (होते हैं)।

(सर०) सिंह० ने एक हाथ की नोक कमर पर और दूसरा हाथ बाजू पर नोक रखा हुआ कहा है।

ये पक्षवंचित (हस्त) हैं। (१७)

(पक्षप्रद्योतकौ—१८)

तौ पार्श्वाभिमुखाग्रौ तु पक्षप्रद्योतकौ मतौ॥ २५५॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उत्तानौ केचिदन्ये तूर्ध्वाङ्गुली च पराङ्मुखौ।
हस्तौ भणन्ति शोभेते चेतौ प्राग्भ्यामनन्तरम्॥ २५६॥

इति पक्षप्रद्योतकौ (१८)

पक्षप्रद्योतक—१८

२५५ ग-२५६. (अ०) **तौ तु** वे (पक्षवंचित) ही **पार्श्व-अभिमुख-अग्रौ** बाजू की ओर घूमे हुए सिरे वाले **पक्षप्रद्योतकौ मतौ** पक्षप्रद्योतक माने गये हैं। **केचित्** कुछ (आचार्य) **उत्तानौ** ऊपर किये हुए, **अन्ये तु** दूसरे (आचार्य) तो **ऊर्ध्व-अङ्गुली** ऊपर की ओर उँगली **पराङ्मुखौ च** और पीछे की ओर घूमे हुए **हस्तौ भणन्ति** दोनों हाथ वाले कहते हैं। **प्राग्भ्याम् अनन्तरं च** और पहले वाले दो के बाद **एतौ** ये (अर्थात् दो ऊर्ध्व उँगली वाले और पराङ्मुखी) **शोभेते** शोभित होते हैं।

(सर०) **शोभेते चेतौ प्राग्भ्यामनन्तरं** का आशय, कल्लि० की टीका के अनुसार, यह है। **एतौ** तीसरे पक्ष का सूचक है यानी ऊपर उँगलियाँ और पराङ्मुखी हस्तों वाले मत के अनुसार है। **प्राग्भ्यां** दोनों हस्त उत्तान स्थिति वाले दूसरे मत को सूचित करते हैं। **प्राग्भ्यां** के साथ चकार (च) पहले दो पक्षों में कही गई हस्तस्थिति का समुच्चय दिखाने वाला है। इसलिये यह अर्थ निकलता है कि कमर के ऊपर रखे हुए दोनों हाथ वाले त्रिपताक हस्त पहले पार्श्वाभिमुखाग्र करके उसके बाद उत्तान करके और उसके बाद ऊर्ध्व-अंगुली और पराङ्मुख करने से अतिशय शोभा हीती है।

ये पक्षप्रद्योतक (हस्त) हैं। (१८)

(दण्डपक्षौ—१९)

उपवक्षस्थलं हंसपक्षे गच्छति पार्श्वतः।
सविलासोऽपरस्तिर्यक्प्रसृतश्चेल्लताकरः॥ २५७॥

क्रमादङ्गान्तरेणैवं दण्डपक्षौ तदा करौ।
हस्तप्रसारणं त्वत्र युगपन्मेनिरेऽपरे॥ २५८॥

इति दण्डपक्षौ (१९)

दंडपक्ष—१९

२५७-२५८. (अ०) **हंसपक्षे** हंसपक्ष (हस्त) में (से एक हाथ) **पार्श्वतः** बाजू की ओर से **उपवक्षस्थलं गच्छति** छाती के पास जाता है (और) **अपरः** दूसरा (हाथ) **सविलासः** विलास के साथ **तिर्यक् प्रसृतः चेत्** यदि तिरछा फैलता है (और) **एवं क्रमात्** इसी क्रम से **अङ्ग-अन्तरेण** दूसरे अंग से (हो) **तदा** तब **दण्डपक्षौ करौ** दंडपक्ष हस्त (होते हैं)। **अपरे तु** दूसरे (आचार्यों) ने तो **अत्र** इसमें **हस्तप्रसारणं** हाथों को फैलाना **युगपत् मेनिरे** एक साथ माना है।

ये दंडपक्ष (हस्त) हैं। (१९)

(गरुडपक्षकौ—२०)

अधोमुखौ कटिक्षेत्रे स्थित्वा न्यञ्चितकूर्परौ।
पताकौ तिर्यगूर्ध्वं द्रागगतौ गरुडपक्षकौ॥ २५९॥

त्रिपताकाविमौ कैश्चिदुक्तौ न तु मुनेर्मतौ।

इति गरुडपक्षकौ (२०)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गरुडपक्ष—२०

२५९-२६० ख. (अ०) **अधोमुखौ** नीचे की ओर हथेली वाले **कटिक्षेत्रे स्थित्वा** कमर पर स्थित होकर **न्यञ्चितकूर्परौ** झुकी हुई कोहनियों वाले **पताकौ** दो पताक (हस्त) **तिर्यक् ऊर्ध्वं** तिरछे, ऊपर **द्राक् गतौ** जल्दी से गये हुए **गरुडपक्षकौ** गरुडपक्ष (हस्त होते हैं)। **कैश्चित्** किन्हीं (आचार्यों) ने **इमौ** ये (अर्थात् पताक के स्थान पर) **त्रिपताकौ** दो त्रिपताक (हस्त) **उक्तौ** कहे हैं। (लेकिन वे) **मुनेः मतौ तु न** (भरत) मुनि के माने हुए तो नहीं (हैं)।

ये गरुडपक्ष (हस्त) हैं। (२०)

(ऊर्ध्वमण्डलिनौ—२१)

भालस्थलमुरोदेशात्प्राप्य तत्पार्श्वमागतौ॥ २६०॥

मण्डलभ्रान्तिवितताषूर्ध्वमण्डलिनौ करौ।
ललाटप्राप्तिपर्यन्तमन्ये लक्ष्मानयोर्जगुः॥ २६१॥

चक्रवर्तनिकेत्येतौ प्रसिद्धौ नृत्तवेदिनाम्।

इत्यूर्ध्वमण्डलिनौ (२१)

ऊर्ध्वमंडली—२१

२६० ग-२६२ ख. (अ०) **उरोदेशात्** छाती के भाग से **तत् पार्श्वम् आगतौ** उस(-उस) बाजू को आये हुए (आकर) **भालस्थलं प्राप्य** ललाट को प्राप्त करके (अर्थात् ललाट पर आकार) **मण्डलभ्रान्तिविततौ** गोलाकार घूम कर फैले हुए **करौ** दोनों हाथ **ऊर्ध्वमण्डलिनौ** ऊर्ध्वमंडली (होते हैं)। **अन्ये** अन्य (आचार्यों) ने **ललाट प्राप्तिपर्यन्तं** ललाट पर आने तक **अनयोः लक्ष्म** इनके लक्षण **जगुः** कहा है (कहे हैं)। **नृत्तवेदिनां** नृत्त के वेत्ताओं में **एतौ** ये **चक्रवर्तनिका इति** चक्रवर्तनिका इस प्रकार (इस नाम से) **प्रसिद्धौ** प्रसिद्ध हैं।

(सर०) सिंह० ने 'उरोदेशात् भालस्थलम् आगत्य भालस्थलपार्श्वतां गतौ मण्डलाकार स्थितौ विस्तृतौ च'—यों अन्वय किया है। इसके अनुसार 'छाती से भाल पर जाकर भाल की बाजुओं में गया हुआ गोलाकार में स्थित और फैला हुआ'—यह अर्थ होता है। कल्लि० के 'उरोदेशात्पार्श्वं प्राप्य भालस्थलमागतौ' अन्वय के द्वारा 'छाती से पार्श्व को जाकर फिर ललाट पर आना' अर्थ निकलता है। गोलाकार में स्थित और फैला हुआ उसके अनुसार अन्यों का मत है जिसका अभिप्राय यह है कि गोलाकार और फैलना ही ऊर्ध्वमण्डली का स्वरूप है।

ये ऊर्ध्वमंडली (हस्त) हैं। (२१)

(पार्श्वमण्डलिनौ—२२)

तौ पताकाकृती पार्श्वन्यस्तावन्योन्यसंमुखौ॥ २६२॥

पार्श्वमण्डलिनावुक्तावन्ये त्वाहुः स्वपार्श्वयोः।
आविद्धभ्रामितभुजौ पार्श्वमण्डलिनाविति॥ २६३॥

कक्षवर्तनिकेत्येतौ मन्वते नृत्तवेदिनः।

इति पार्श्वमण्डलिनौ (२२)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पार्श्वमंडली—२२

२६२ ग-२६४ ख. (अ०) **तौ** वही **पताकाकृती** पताक आकार के **पार्श्वन्यस्तौ** बाजू की ओर रखे हुए **अन्योन्यसंमुखौ** एक दूसरे के सामने (की स्थिति में) **पार्श्वमण्डलिनौ इति उक्तौ** पार्श्वमंडली कहे गये हैं। **अन्ये तु** दूसरे तो **स्वपार्श्वयोः** अपनी (-अपनी) बाजुओं की ओर **आविद्धभ्रामितभुजौ** आविद्ध के द्वारा गोलाकार घुमाई हुई दोनों भुजाओं वाले **पार्श्वमण्डलिनौ इति आहुः** पार्श्वमंडली कहते हैं। **नृत्तवेदिनः** नृत्त के वेत्ता **एतौ** ये (इन्हें) **कक्षवर्तनिका इति मन्वते** कक्षवर्तनिका मानते हैं।

(सर०) कल्लि० ने **आविद्ध** शब्द का आशय आवेष्टित करणयुक्त वर्तना कहा है। अपनी-अपनी भुजा की ओर गोलाकार घुमाई हुई—इस लक्षण के द्वारा पार्श्वमण्डली की अन्वर्थता दिखाई गई है।

पार्श्व यानी बाजू और मण्डली यानी गोलाकार इसलिये पार्श्वमंडली का अर्थ है अपनी बाजू की ओर भुजा को गोलाकार घुमाना।

ये पार्श्वमंडली (हस्त) हैं। (२२)

(उरोमण्डलिनौ—२३)

युगपत्करणे कृत्वोद्वेष्टितं चापवेष्टितम्॥ २६४॥

यातौ स्वपार्श्वे वक्षस्तो भ्रान्त्या मण्डलवत्क्रमात्।
वक्षोऽभिव्युत्क्रमात्प्राप्तावुरोमण्डलिनौ करौ॥ २६५॥

अनयोर्भ्रमणं प्राहुरन्ये वक्षस्थलस्थयोः।
उरोवर्तनिकात्वेन प्रसिद्धौ तद्विदामिमौ॥ २६६॥

हंसपक्षौ परे प्राहुरूर्ध्वमण्डलिषु त्रिषु।

इत्युरोमण्डलिनौ (२३)

उरोमंडली—२३

२६४ ग-२६७ ख. (अ०) **उद्वेष्टितं च अपवेष्टितं करणे** उद्वेष्टित और अपवेष्टित करण **युगपत् कृत्वा** एक साथ करके **मण्डलवत् भ्रान्त्या** मंडल की तरह (गोलाकार) घुमाव (घुमाने) से **क्रमात्** क्रम से **वक्षस्तः** छाती से **अभिव्युत्क्रमात्** (और) उल्टे क्रम से **वक्षः प्राप्तौ** छाती प्राप्त किये हुए (अर्थात् छाती पर गए हुए) **उरोमण्डलिनौ करौ** उरोमंडली हस्त (होते हैं)। **अन्ये** अन्य (आचार्य) **अनयोः वक्षस्थलयोः भ्रमणं** इनका छाती की ओर (आकर) गोलाकार घूमना **प्राहुः** कहते हैं। **तत् विदाम्** उनके वेत्ताओं में **उरोवर्तनिकात्वेन** उरोवर्तनिका के रूप में **इमौ** ये दोनों **प्रसिद्धौ** प्रसिद्ध (हैं)। **परे** दूसरे (आचार्य) **ऊर्ध्वमण्डलिषु त्रिषु** ऊर्ध्वमंडली (आदि) तीन में **हंसपक्षौ प्राहुः** हंसपक्ष (हस्त) कहते हैं।

(सर०) **युगपत्** पर कल्लि० की व्याख्या यह है। एक हाथ से उद्वेष्टित और दूसरे से अपवेष्टित करने पर दो करणों का युगपत् अर्थात् एक साथ प्रयोग होता है। उसी तरह एक हाथ के आने के समय दूसरे हाथ के जाने से अलग-अलग रूपों की वर्तनाओं से छाती से अपनी बाजू की ओर और बाजू से उल्टे मंडल की तरह छाती की ओर गया हुआ—इसका अर्थ यह है। उद्वेष्टित से शुरू करके बाजू की ओर गया हुआ हाथ आवेष्टित से छाती पर आता है। उसी तरह आवेष्टित से शुरू करके बाजू की ओर गया हुआ हाथ उद्वेष्टित से छाती पर आता है। आशय यह है कि एक साथ विपरीत दिशाओं में दोनों हाथ जाएँ तो युगपत् प्रयोग होता है।

कल्लि० ने यह भी स्पष्ट किया कि हंसपक्ष के प्रयोग का अर्थ यह है कि शुरू में पताक हस्त करना चाहिये।

ये उरोमंडली (हस्त) हैं। (२३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(उरःपार्श्वार्धमण्डलौ—२४)

एकत्रोरःस्थितोत्ताने‌ऽन्यस्मिन्पार्श्वप्रसारिते॥ २६७॥

व्यावर्तितेनालपद्मीकृत्वोरस्थो यदा करः।
स्वपार्श्वं नीयतेऽन्यस्तूद्वेष्टितक्रियया करः॥ २६८॥

तदैवारालतां प्राप्य यात्युरौ मण्डलाकृतिः।
अन्योऽप्येवं कराभ्यासादुरःपार्श्वार्धमण्डलौ॥ २६९॥

इत्युरःपार्श्वार्धमण्डलौ (२४)

उरःपार्श्वार्धमंडल—२४

२६७ ग-२६९. (अ०) **एकत्र** एक (हाथ) में **उरःस्थित-उत्ताने** छाती पर ऊपर की ओर किये हुए रख कर **अन्यस्मिन् पार्श्वप्रसारिते** (और) दूसरा (हाथ) बाजू की ओर फैलाया हुआ (होता है), **उरस्थः करः** छाती पर रखा हुआ हाथ **यदा** जब **व्यावर्तितेन** व्यावर्तित से **अलपद्मीकृत्वा** अलपद्म करके **स्वपार्श्वं नीयते** अपनी बाजू को ले जाया जाता है **तदा एव** उसी समय **अन्यः करः तु** दूसरा हाथ तो **उद्वेष्टितक्रियया** उद्वेष्टित क्रिया से **आरालतां प्राप्य** अराल का स्वरूप प्राप्त करके **मण्डल-आकृतिः** गोलाकार (घूम कर) **उरः याति** छाती पर जाता है **अन्यः अपि** और अन्य (अर्थात् पहला हाथ) भी (इसी तरह प्रयुक्त होता है) **एवं कर-अभ्यासात्** इस प्रकार हाथों को बार-बार करने से **उरःपार्श्वार्धमण्डलौ** उरःपार्श्वार्धमंडल (हस्त होते हैं)।

यह उरःपार्श्वार्धमंडल (हस्त) हैं।

(मुष्टिकस्वस्तिकौ—२५)

एकं वर्तनयारालं तथान्यमलपल्लवम्।
हस्तं मुहुः क्रमात्कृत्वा क्रियेते स्वस्तिकाकृती॥ २७०॥

खटकामुखहस्तौ चेन्मुष्टिकस्वस्तिकौ तदा।
कपित्थौ शिखरौ मुष्टी चाथ वा स्वस्तिकाकृती॥ २७१॥

इति मुष्टिकस्वस्तिकौ (२५)

मुष्टिकस्वस्तिक—२५

२७०-२७१. (अ०) **एकम्** एक (हाथ) **वर्तनया** वर्तना के द्वारा **अरालम्** अराल को **तथा अन्यं हस्तम्** और दूसरा हाथ **क्रमात्** क्रम से **मुहुः अलपल्लवं कृत्वा** बार-बार अलपल्लव करके **खटकामुखौ हस्तौ** दोनों खटकामुख हस्त **स्वस्तिकाकृती क्रियेते चेत्** यदि स्वस्तिकाकार किये जाते हैं **तदा** तो **मुष्टिकस्वस्तिकौ** मुष्टिकस्वस्तिक (हस्त होते हैं)। **अथ वा च** या **कपित्थौ शिखरौ मुष्टी** दोनों कपित्थ, शिखर या मुष्टि (हस्त) **स्वस्तिकाकृती** स्वस्तिकाकार (योजित होते हैं)।

(सर०) कल्लि० के अनुसार **वर्तनया** का अर्थ है 'कलाई के आकुंचन से उत्पन्न होने वाली आवेष्टित वर्तना के द्वारा'। अराल करण के साथ उसका स्वरूप संगत होता है। **तथा** यानी उसके योग्य वर्तना। यहाँ अलपल्लव के साथ संगत कलाई के आकुंचन से उत्पन्न उद्वेष्टित वर्तना समझनी चाहिये। खटकामुख आदि परंपरा से मुष्टि से उत्पन्न होने से यहाँ उनमें से किसी एक के प्रयोग से भी मुष्टिकस्वस्तिक नाम को उसके वेत्ता सार्थक मानते हैं।

ये मुष्टिकस्वस्तिक (हस्त) हैं। (२५)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(नलिनीपद्मकोशौ—२६)

अश्लिष्टस्वस्तिकौ सन्तौ व्यावृत्तक्रियया करौ।
मिथः पराङ्मुखौ कृत्वा यौ कृतौ पद्मकोशकौ॥ २७२॥

नलिनीपद्मकोशौ तावपरे त्वन्यथा जगुः।
अन्योन्यसंमुखौ सन्तौ संश्लिष्टमणिबन्धकौ॥ २७३॥

पद्मकोशौ पृथक्प्राप्तौ व्यावृत्तिपरिवर्तने।
नलिनीपद्मकोशौ स्तः केऽप्याहुः पद्मकोशयोः॥ २७४॥

व्यावृत्त्या परिवृत्त्या च जान्वन्तिकगताविमौ।
स्कन्धयोः स्तनयोर्यद्वा जानुनोर्निकटं गतौ॥ २७५॥

विवर्तितौ पद्मकोशौ तल्लक्ष्मेत्यवदन् परे।

इति नलिनीपद्मकोशौ (२६)

नलिनीपद्मकोश—२६

२७२-२७६ ख. (अ०) **अश्लिष्टस्वस्तिकौ सन्तौ करौ** असंयुक्त (अलग-अलग) हुए दोनों स्वस्तिक हाथ **व्यावृत्तक्रियया** व्यावृत्तक्रिया (करण) के द्वारा **मिथः पराङ्मुखौ कृत्वा** परस्पर पराङ्मुख करके **यौ पद्मकोशकौ कृतौ** जो दो पद्मकोश किये गये हों **नलिनीपद्मकोशकौ** (वे) नलिनीपद्मकोश (हस्त होते हैं)। **अपरे तु** दूसरे (आचार्यों) ने तो **तौ** उन दोनों को **अन्यथा जगुः** अलग तरह से कहा है (कि) **अन्योन्यसंमुखौ सन्तौ** एक दूसरे के आमने-सामने रहते हुए **संश्लिष्टमणिबन्धकौ** जुड़ी हुई दोनों कलाइयों वाले **पद्मकोशौ** पद्मकोश (हस्त) **व्यावृत्तिपरिवर्तने** व्यावृत्ति और परिवर्तन से **पृथक् प्राप्तौ** अलग-अलग (योजित) हुए **नलिनीपद्मकोशौ स्तः** नलिनीपद्मकोश (हस्त) होते हैं। **के अपि** कुछ (आचार्य) **व्यावृत्त्या परिवृत्त्या च** व्यावृत्ति और परिवृत्ति से **जानु-अन्तिकगतौ** घुटने के पास गये हुए **पद्मकोशयोः** दो पद्मकोश **इमौ** ये (नलिनीपद्मकोश हस्त कहते हैं)। **परे** अन्य (आचार्यों) ने **स्कन्धयोः स्तनयोः** कंधों, स्तनों **यत् वा** अथवा **जानुनोः निकटं गतौ** घुटनों के पास गये हुए **विवर्तितौ पद्मकोशौ** विवर्तित पद्मकोश **इति तत् लक्ष्म अवदन्** ये उनके लक्षण कहे।

(सर०) सिंह० ने पहले लक्षण में पद्मकोश के बजाय अलपल्लव कहे हैं।

कल्लि० ने **पृथक्प्राप्तौ** की व्याख्या में कहा कि एक पद्मकोश हस्त में व्यावृत्ति और दूसरे में परिवर्तन एक साथ अलग-अलग करना चाहिये—यह अर्थ है।

ये नलिनीपद्मकोश (हस्त) हैं। (२६)

(अलपल्लवौ—२७)

उद्वेष्टितक्रियौ वक्षःक्षेत्रस्थावलपल्लवौ॥ २७६॥

स्कन्धान्तिकमथोपेत्य प्रसृतावलपद्मकौ।

इत्यलपल्लवौ (२७)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अलपल्लव—२७

२७६ ग-२७७ ख. (अ०) उद्वेष्टितक्रियौ उद्वेष्टित करण वाले वक्षःक्षेत्रस्थौ छाती के पास स्थित (आये हुए) अलपल्लवौ दो अलपल्लव अथ फिर स्कन्ध-अन्तिकम् उपेत्य कंधे पर जाकर प्रसृतौ फैले हुए अलपद्मकौ अलपद्मक (अलपल्लव हस्त होते हैं)।

(सर०) यहाँ अलपल्लव और अलपद्मक पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

ये अलपल्लव (हस्त) हैं। (२७)

उल्बणौ—२८

प्रसार्य स्कन्धयोः स्कन्धाभिमुखप्रचलाङ्गुली॥ २७७॥

वर्तितावलपद्मौ चेदुल्बणौ भणितौ तदा।

इत्युल्बणौ (२८)

उल्बण—२८

२७७ ग-२७८ ख. (अ०) स्कन्ध-अभिमुखप्रचल-अङ्गुली कंधे के सामने की हुई चंचल उँगली वाले (हाथ) स्कन्धयोः प्रसार्य दोनों कंधों पर फैला कर वर्तितौ अलपद्मौ चेत् यदि मोड़े हुए अलपद्म (हस्त हों) तदा तो (वे) उल्बणौ भणितौ उल्बण (हस्त) कहे गये हैं।

ये उल्बण (हस्त) हैं। (२८)

(ललितौ—२९)

पल्लवौ शीर्षदेशस्थौ ललितौ कलितौ बुधैः॥ २७८॥

चतुरश्रीमभञ्जन्तौ शिरस्थावचलौ करौ।
ललितावपरे प्राहुरन्ये तु खटकामुखौ॥ २७९॥

शनैः प्राप्य शिरोऽन्योन्यलग्नाग्रौ ललितौ विदुः।

इति ललितौ (२९)

ललित—२९

२७८ ग-२८० ख. (अ०) शीर्षदेशस्थौ पल्लवौ माथे के प्रदेश पर स्थित दो पल्लव (हस्त) बुधैः बुद्धिमानों के द्वारा ललितौ कलितौ ललित (हस्त) माने गये हैं। चतुरश्रीम् अभञ्जन्तौ चतुरश्र स्वरूप न तोड़ने वाले (चतुरश्र के आश्रित रहने वाले) शिरस्थौ मस्तक पर रखे हुए अचलौ करौ दो स्थिर हस्त ललितौ ललित (हस्त) होते हैं अपरे प्राहुः (ऐसा) इतर (आचार्य) कहते हैं। अन्ये तु दूसरे (आचार्य) तो खटकामुखौ दो खटकामुख (हस्त) शनैः धीरे-धीरे शिरः प्राप्य मस्तक प्राप्त करके (मस्तक पर जाकर) अन्योन्यलग्न-अग्रौ एक-दूसरे से जुड़े हुए सिरे वाले ललितौ विदुः ललित (हस्त के रूप में) जानते हैं।

(सर०) सिंह० का पाठ अभञ्जन्तौ के बजाय 'अभजन्तौ' है और उसके अनुरूप उसने 'अनाश्रयन्तौ' (आश्रय न करने वाले) अर्थ दिया है। लेकिन ना०शा० (९/२० क-ख) की व्याख्या में अभिनव ने 'चातुरश्र्येण' यानी 'चतुरश्र स्वरूप के आश्रय

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

`से' कहा है। इसके आधार पर **अभञ्जन्तौ** पाठ ही संगत है और यही सं०र० के दोनों संस्करणों में दिया गया है।

ये ललित (हस्त) हैं। (२९)

(वलितौ—३०)

कूर्परस्वस्तिकयुतौ लताख्यौ वलितौ मतौ॥ २८०॥

मुष्टिकस्वस्तिकौ मूर्ध्नि विवृत्तौ तौ परे विदुः।
अन्ये त्वाचक्षतेऽन्योन्यलग्नाग्रौ खटकामुखौ॥ २८१॥

ऊर्ध्वगौ पृष्ठतो नम्रकूर्परौ वलितौ मतौ।
नृत्तहस्तौ क्रमेणापि प्रयोज्यौ सूरयो विदुः॥ २८२॥

इति वलितौ (३०)

इति त्रिंशन्नृत्तहस्ताः

वलित—३०

२८० ग-२८२. (अ०) **कूर्परस्वस्तिकयुतौ लताख्यौ** स्वस्तिकयुक्त कोहनियों पर लता नामक (हस्त) **वलितौ मतौ** वलित (हस्त) माने गये हैं। **परे** दूसरे (आचार्य) **मूर्ध्नि विवृत्तौ** मस्तक पर फैलाये हुए **मुष्टिकस्वस्तिकौ** दो मुष्टिकस्वस्तिक (हस्त) **तौ** वे (वलित हस्त) **विदुः** जानते हैं। **अन्ये तु** इतर (आचार्य) तो **आचक्षते** कहते हैं (कि) **अन्योन्यलग्न-अग्रौ** एक-दूसरे से जुड़े हुए सिरे वाले, **ऊर्ध्वगौ** ऊपर की ओर जाने वाले **पृष्ठतः** पीछे की ओर से **नम्रकूर्परौ** नीचे झुकी हुई कोहनियों वाले **खटकामुखौ** दो खटकामुख **वलितौ मतौ** वलित (हस्त) माने गये हैं। **नृत्तहस्तौ** नृत्तहस्त **क्रमेण अपि प्रयोज्यौ** क्रम से भी योजित होते हैं **सूरयो विदुः** विद्वान् (ऐसा) जानते हैं।

ये वलित (हस्त) हैं। (३०)

ये तीस नृत्तहस्त हैं।

(मतान्तरोक्तास्त्रयो हस्ताः)

(निकुञ्चकः—१)

पताको मध्यमामूललग्नाङ्गुष्ठौ निकुञ्चकः।
स स्वल्पाभिनये वेदाध्ययने च प्रयुज्यते॥ २८३॥

इति निकुञ्चकः (१)

मतान्तर से कहे गये तीन हस्त

निकुंचक—१

२८३. (अ०) **मध्यमामूललग्नौ अङ्गुष्ठौ** मध्यमा (उँगली) के मूल में लगे हुए अँगूठों वाला **पताकः** पताक (हस्त) **निकुञ्चकः** निकुंचक (होता है)। **सः** वह **स्वल्प-अभिनये** 'थोड़ा' के अभिनय में **वेद-अध्ययने च** और वेद के अध्ययन (के अभिनय) में **प्रयुज्यते** प्रयुक्त होता है।

यह निकुंचक (हस्त) है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(द्विशिखरः—२)

शिखरद्वन्द्वसंयोगात्करो द्विशिखरो मतः।
शयनार्थेऽङ्गुलिस्फोटे स्त्रीणामनुनये तथा॥ २८४॥
नास्तीत्यर्थेऽपि संयुज्य वियुक्तं शिखरद्वयम्।

इति द्विशिखरः (२)

द्विशिखर—२

२८४-२८५ ख. (अ०) **शिखरद्वन्द्वसंयोगात्** दो शिखर (हस्तों) के संयोग से **द्विशिखरः मतः** द्विशिखर (हस्त) माना गया है। **शयनार्थे** सोने में, **अङ्गुलिस्फोटे** चुटकी में **स्त्रीणाम् अनुनये** स्त्रियों के अनुनय (करने) में **तथा** और **संयुज्य** जोड़ कर **वियुक्तं** अलग किये हुए **शिखरद्वयं** दो शिखर (हस्त) **न अस्ति इति अर्थे अपि** 'नहीं है' इस अर्थ (के अभिनय) में भी (संयोजित किये जाते हैं)।

यह द्विशिखर (हस्त) है। (२)

(वरदाभयौ—३)

पृथग्दक्षिणवामौ चेद्वरदाभयदौ करौ॥ २८५॥
अरालौ कटिपार्श्वस्थौ तदोक्तौ वरदाभयौ।

इति वरदाभयौ (३)

इति मतान्तरोक्तास्त्रयो हस्ताः

वरदाभय—३

२८५ ग-२८६ ख. (अ०) **पृथक् दक्षिणवामौ चेत्** यदि अलग-अलग दाहिनी और बाईं ओर (योजित हों तो) **वरदाभयदौ करौ** वरदाभय हस्त (होते हैं)। **कटिपार्श्वस्थौ** कमर और बाजुओं पर स्थित **अरालौ** दो अराल (हस्त हों) **तदा** तब **वरदाभयदौ उक्तौ** (वे भी) वरदाभय कहे गये हैं।

ये वरदाभय (हस्त) हैं। (३)

ये अन्य मतानुसार कहे गये तीन हस्त हैं।

(हस्तानामुपसंहारः)

प्रदर्शनार्थमुक्तेयं हस्तानां सप्ततिर्मया॥ २८६॥
आनन्त्यादभिनेयानां सन्त्यनन्ताः परे कराः।
लोकवृत्तानुसारात्तेऽप्यूह्यन्तामनया दिशा॥ २८७॥

हस्तों का उपसंहार

२८६ ग-२८७. (अ०) **इयं हस्तानां सप्ततिः** ये हस्तों की सत्तर की संख्या **मया** मेरे द्वारा **प्रदर्शन-अर्थम् उक्ता** (अभिनय

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के) दिशासूचन के लिये कही गई। **अभिनेयानाम् आनन्त्यात्** अभिनय के विषयों की अनंतता (होने) से **परे** दूसरे **अनन्ताः कराः सन्ति** अनन्त हस्त होते हैं। **लोकवृत्त-अनुसारात्** लोक व्यवहार के अनुसार **ते अपि** वे भी **अनया दिशा** इसी तरह **ऊह्यन्तां** समझ लेने चाहियें।

(सर०) **प्रदर्शनार्थं** को स्पष्ट करते हुए कल्लि० ने कहा कि अभिनय के दिशासूचन के लिये ये सत्तर हस्त कहे गये— इस कथन से ऐसा लगता है कि हस्तों की कुल संख्या नहीं बताई। इस असाकल्य से तो यह आकांक्षा उत्पन्न होती है कि हस्त कितने हैं? इसलिये **सन्त्यनन्ताः परे कराः** कहा। हस्तों की अनन्तता का कारण अभिनेयों की अनन्तता ही है।

अभिनेयानां की व्याख्या में कल्लि० ने शास्त्रकारों द्वारा कहे गये चार प्रकार के पदार्थों का उल्लेख किया है—जाति, क्रिया, गुण और द्रव्य। (जाति यानी जातिवाचक, जैसे—मनुष्य, पशु आदि। क्रिया यानी क्रिया के सूचक, जैसे—तैरना, हँसना आदि। गुण यानी विशेषण, जैसे—सौम्य, श्वेत आदि और द्रव्य यानी नामवाचक (संज्ञा), जैसे—राम, अशोक आदि।) इन सबका अभिनय किया जा सकता है और ये अनन्त हैं। ग्रन्थकार ने अभिनेय की अनन्तता को हस्तों की अनन्तता का हेतु बताया है क्योंकि अर्थ की भिन्नता दिखाने के लिये हस्त भी भिन्न हो सकता है।

कल्लि० ने शंका उठाई कि अगर ऐसा ही है तो भरतादि ने अनेक अर्थों का सूचीमुख आदि एक-एक ही हस्त से अभिनय कैसे दिखाया? उत्तर का सार यह है कि उन्हें भी अनेक विषय दिखाने के लिये एक ही सूचीमुख आदि मान्य नहीं हैं, क्रियाभेद से भिन्न होने वाले प्रत्येक अर्थ के लिये भिन्न-भिन्न हस्त ही स्वीकार्य हैं। किन्तु व्यवहार में संक्षिप्तता के लिये, जैसे वृक्ष आदि शब्दों में प्रत्ययभेद से अर्थभेद होने पर भी सादृश्य के आधार पर वृक्ष एक ही होना मान लिया जाता है उसी तरह हस्तों में भी मूल रूप के आधार पर एकत्व का व्यवहार कर लिया जाता है। हस्तों की संख्या सत्तर बताने में भी संक्षेप ही समझना चाहिये।

अभि० के संयुत हस्तों के उपसंहार से उद्धृत करके कल्लि० ने इसकी पुष्टि दिखाई है जिसमें कहा गया है कि ये वस्तुतः (सचमुच) असंयुत हस्त होते हैं। लेकिन ये केवल असंयुत ही नहीं हैं और न केवल यही असंयुत हैं क्योंकि कोहल आदि ने अन्यों का भी (असंयुतत्व) दिखाया है। यों शुरू करते हुए आगे अभिनव ने उदाहरण दिया है कि कोहनी पर रखे हुए त्रिपताक से और बाजू की ओर रखे हुए खटकामुख से स्त्रियों का अभिनय; कान के सिरे तक आये हुए खटक हस्त से और बायें हाथ से कपित्थ और मुष्टि में से किसी एक से बाण छोड़ने का अभिनय किया जाय। केवल किसी एक हस्त से नहीं बल्कि दोनों के संनिवेश से युक्त एक हस्त से करना चाहिये। आशय यह है कि विशेष पदार्थ के अभिनय में एक से ज़्यादा हस्तों का प्रयोग होना संभव है इसलिये यह कहना उचित नहीं है कि एक ही हस्त से एक पदार्थ का अभिनय हो सकता है या एक हस्त एक ही पदार्थ को व्यक्त करता है।

लोकवृत्तानुसारात् पर कल्लि० की टीका महत्त्वपूर्ण है। उसने कहा कि इस तरह हस्तों की अनन्तता सिद्ध होने पर अप्रसिद्ध हस्तों के पूरे ज्ञान में लोक ही प्रमाण होता है यह दिखाने के लिए ग्रन्थकार ने 'लोकवृत्तानुसारात्' कहा है। भरत ने कहा भी है—मैंने यहाँ जो हस्त नहीं कहे वे बुधों को लोक से ग्रहण कर लेने चाहियें। लोक, वेद और अध्यात्म—इन तीन प्रमाणों में से नाट्यप्रयोग में लोक प्रमाण माना जाता है। (ना०शा०, चौखम्बा, २६, १११-११२ व ११३ ग-घ)

कल्लि० के अनुसार इसका आशय यह है कि अभिनेय की अनन्तता से हस्तों की अनन्तता में अपनी बुद्धि से या लोक के आधार पर अनुक्त हस्तों की कल्पना में करण, प्रचार आदि के द्वारा संयुत-असंयुत स्वरूप से विशेष संनिवेश की ही कल्पना करनी चाहिये, पताक आदि हस्तों से भिन्न हस्तों की नहीं। उक्त रीति से कल्पित होने पर उतने ही दूसरे हस्त सिद्ध हो जाते हैं और कोई भी अर्थ जिस किसी तरह दोनों धर्मियों के आश्रय से जैसे शोभा हो उस तरह अभिनय करने पर अन्त में उस हस्त का पताक आदि में से किसी एक हस्त में पर्यवसान होता है। प्रश्न उठता है कि कभी एक ही अर्थ के लिये कई हस्त संभव होते हैं वहाँ किस हस्त से अभिनय किया जाय? इसका उत्तर यह है कि प्रयोग में पूर्व (पहले) और अपर (बाद वाले)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हस्त के साथ जो हस्त सुसंगत होकर शोभादायक हो उसी से अभिनय करना चाहिये। कल्लि० ने इसकी पुष्टि भरत के इस श्लोक से की है—

अर्थस्यैकस्य भूयांसः सम्भवन्ति यदा कराः।
शोभाकारी तदा तत्र करः कार्यः प्रयोक्तृभिः॥

(हस्तानां प्राधान्यम्)

नेत्रभ्रूमुखरागाद्यैरुपाङ्गैरुपबृंहिताः।
प्रत्यङ्गैश्च कराः कार्या रसभावप्रदर्शकाः॥ २८८॥

हस्तों की प्रधानता

२८८. (अ०) **नेत्रभ्रूमुखराग-आद्यैः उपाङ्गैः** आँख, भौंह, मुखराग आदि उपांगों **प्रत्यङ्गैः च** और प्रत्यंगों से **उपबृंहिताः** परिपुष्ट हुए **रसभावप्रदर्शकाः कराः** रस और भाव प्रदर्शित करने वाले हस्त **कार्याः** (योजित) करने चाहियें।

(सर०) कल्लि० के अनुसार, ग्रन्थकार ने प्रस्तुत श्लोक में यह दिखाया है कि अभिनय में तो अन्य अंगों की अपेक्षा हस्तों की ही प्रधानता होती है। **आद्यैः** के द्वारा आँखों के तारे, पलक आदि दूसरे उपांग समझे जाते हैं। मुख में राग का उपांगत्व न होने पर भी नेत्र आदि अंगों के साहचर्य से उसका गौण अर्थ में उपांगत्व होता है। **प्रत्यङ्गैः च** में 'च'कार से अंग भी समाविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार अभिनय में सिर, चरण आदि अंग भी हस्तों के पोषक होकर सहायक होते हैं। उपांग आदि से पुष्ट होकर ही हस्त भी रसभाव को प्रदर्शित करते हैं, अकेले नहीं।

कार्याः के द्वारा प्रयोक्ता यानी नर्तकसंबंधी नियमविधि समझनी चाहिये।

(अभिनयहस्तानां स्थाननियमम्)

उत्तमेष्वभिनेयेषु ललाटक्षेत्रचारिणः।
वक्षःस्था मध्यमेषु स्युरधमेषु त्वधो मताः॥ २८९॥

अभिनयहस्तों का स्थाननियम

२८९. (अ०) **उत्तमेषु अभिनेयेषु** उत्तम (प्रकार के) अभिनेय (अभिनय के विषयों) में **ललाटक्षेत्रचारिणः** (हस्त) ललाट प्रदेश में चालन करने वाले (होते हैं अर्थात् चालन करते हैं)। **मध्यमेषु** मध्यम (विषयों) में **वक्षःस्थाः स्युः** छाती पर स्थित होते हैं (और) **अधमेषु तु** अधमों में तो **अधः मताः** नीचे माने गये हैं।

(सर०) कल्लि० ने कहा कि उत्तम यानी सोना (सुवर्ण) आदि संबंधी विषयों में हस्तों द्वारा ललाट प्रदेश में, मध्यम यानी फूल, फल आदि अर्थों के अभिनेयों में छाती पर और अधम अर्थात् तिल आदि वस्तुओं की खल (पिण्याक) में हस्त नीचे की ओर रखकर अभिनय करना चाहिये।

अन्यैरुक्ता व्यवस्थेयमुत्तमाद्यभिनेतृषु।
उत्तमे संनिकृष्टाः स्युर्मध्यमे मध्यसंस्थिताः॥ २९०॥

अधमे त्वभिनेये स्युर्विप्रकृष्टचराः कराः।

२९०-२९१ ख. (अ०) **अन्यैः** दूसरे (आचार्यों) के द्वारा **इयं व्यवस्था** यह व्यवस्था **उत्तम आदि अभिनेतृषु** उत्तम आदि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(प्रकृति के) अभिनेताओं (पात्रों के लिये) **उक्ता** कही गई है। **उत्तमे** उत्तमों में **संनिकृष्टाः स्युः** (हाथ) पास-पास होते हैं, **मध्यमे** मध्यमों में **मध्यसंस्थिताः** बीच में स्थित (होते हैं और) **अधमे अभिनेये तु** अधम के अभिनय में तो **कराः विप्रकृष्टचराः स्युः** हस्त दूर चालन करने वाले होते हैं।

(सर०) कल्लि० के अनुसार अन्य आचार्य यह अर्थानुसारी व्यवस्था अभिनेता के लिये कहते हैं। उत्तमादि यानी राजा, देवी आदि उत्तम (प्रकृति के) अभिनेता, 'आदि' के द्वारा मध्यम यानी सेनापति, पुरोहित आदि और अधम यानी द्वारपाल, सेवक आदि की भूमिका करने वाले अभिनेताओं का ग्रहण किया जाता है।

अल्पो हस्तप्रचारः स्यात्प्रत्यक्षे भूरिसात्त्विके॥ २९१॥

परोक्षे प्रचुरः स स्यान्मध्यमे मध्यमो मतः।
कार्याः सुव्यक्तलक्ष्माणः पात्रैरुत्तममध्यमैः॥ २९२॥

ससौष्ठवाश्च नीचैस्तु पाणयस्तद्विलक्षणाः।

२९१ ग-२९३ ख. (अ०) **प्रत्यक्षे** प्रत्यक्ष (विषय) में (अथवा) **भूरिसात्त्विके** बहुत सात्त्विक भावों में **अल्पः हस्तप्रचारः स्यात्** थोड़ा हस्तचालन होता है। **परोक्षे** अप्रत्यक्ष (विषय) में **सः** वह (हस्तप्रचार) **प्रचुरः स्यात्** बहुत होता है (और) **मध्यमे** मध्यम (विषयों) में **मध्यमः मतः** मध्यम माना गया है। **उत्तममध्यमैः पात्रैः** उत्तम और मध्यम पात्रों के द्वारा **सुव्यक्तलक्ष्माणः** (शास्त्रोक्त) लक्षणों को अच्छी तरह स्पष्ट करने वाले **ससौष्ठवाः च** और सौष्ठवयुक्त (हस्त योजित करने चाहियें)। **नीचैः तु** नीच (पात्रों) के द्वारा तो **तत्-विलक्षणाः पाणयः** उनसे भिन्न (अर्थात् लक्षण स्पष्ट न करने वाले और सौष्ठवरहित) हस्त **कार्याः** (योजित) करने चाहियें।

(सर०) ग्रन्थकार के श्लोकों के आशय को कल्लि० ने स्पष्ट करते हुए कहा कि अब ग्रन्थकार हस्तप्रचार की कम, प्रचुर और मध्यम रूप वाली व्यवस्था को विषय के भेद के द्वारा दिखा रहे हैं। **प्रत्यक्षे** का अर्थ है प्रत्यक्ष रूप से अनुभव में आने वाले अर्थों में **भूरिसात्त्विके** यानी बहुत सात्त्विक भाव के अभिनेता को हस्तप्रचार कम करना चाहिये। **परोक्षे** यानी अप्रत्यक्ष अर्थ के अभिनेता को और **मध्यमे** अर्थात् कुछ प्रत्यक्ष और कुछ अप्रत्यक्ष अर्थ के अभिनेता को मध्यम यानी न अल्प न प्रचुर प्रचार करना चाहिये।

कार्याः सुव्यक्तलक्ष्माणः का आशय यह है कि शास्त्र में जिस हस्त का जो लक्षण कहा गया हो उसके अनुसार सम्यक् रूप से करने पर सुव्यक्त होता है। आगे (श्लो० १०३७) दिये जाने वाले सौष्ठव के लक्षण के अनुसार जहाँ कमर घुटने के सम, कोहनी कंधे और सिर सम तथा छाती अच्छी तरह उन्नत होकर शरीर सन्न (स्थिर) हो वह सौष्ठव होता है।

विषण्णे व्याकुले भीते मूर्छिते तन्द्रयान्विते॥ २९३॥

जुगुप्साशोकसंतप्ते सुप्ते ग्लाने जरार्दिते।
रोगशीतार्तनिश्चेष्टसंचितेष्वपि तापसे॥ २९४॥

मत्तोन्मत्तप्रमत्तेषु न हस्ताभिनयो भवेत्।
सूचयन्त्यान्तरं भावं ये कराः कर्कटादयः॥ २९५॥

विषण्णादिष्वपि प्रायः प्रयोज्यास्ते सतां मताः।

इति हस्तप्रकरणम्

२९३ ग-२९६ ख. (अ०) **विषण्णे व्याकुले भीते** खिन्न, व्याकुल, डरे हुए, **मूर्छिते तन्द्रया अन्विते** मूर्छित, नींद से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

घिरे हुए **जुगुप्साशोकसंतप्ते** घृणा और शोक से संतप्त, **सुप्ते** सोये हुए, **ग्लाने** ग्लानियुक्त, **जरा-अर्दिते** बुढ़ापे से दुःखी हुए, **रोगशीत-आर्तनिश्चेष्टसंचितेषु अपि** रोग और ठंड से पीड़ित, निश्चेष्ट, बाधित (अर्थ) में भी, **तापसे** संन्यासी, **मत्त-उन्मत्तप्रमत्तेषु** (मद्यपान से) मत्त, पागल, असावधान अथवा नशे में चूर (अर्थ) में **हस्त-अभिनयः न भवेत्** हस्ताभिनय नहीं होता। ये जो **कर्कट-आदयः कराः** कर्कट आदि हस्त **आन्तरं भावं सूचयन्ति** आन्तर (अन्दर के) भाव प्रकट करते हैं **ते** वे **विषण्ण-आदिषु अपि** खिन्न इत्यादि में भी **प्रायः प्रयोज्याः** प्रायः प्रयुक्त करने चाहिये **सतां मताः** (ऐसा) सज्जनों ने माना है।

(सर०) हस्तों के प्रयोग संबंधी विभिन्न नियम बताने के बाद ग्रन्थकार ने यह बताया कि किन परिस्थितियों में हस्तों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। अन्त में मन में यह शंका रखकर कि उक्त परिस्थितियों में सर्वत्र ही अभिनय नहीं करना चाहिये क्या—इस बारे में भी यह कह दिया कि इनमें भी किया जा सकता है। आशय यह है कि आवश्यकता हो तो उनमें भी हस्ताभिनय हो सकता है जिनमें निषेध किया है।

कल्लि० ने 'प्रतिप्रसव' शब्द का प्रयोग करके **सूचयन्ति** के आशय को प्रकट किया है। प्रतिप्रसव के द्वारा अपवाद का अपवाद करना सूचित किया जाता है। ग्रन्थकार ने हस्तप्रयोग के नियम देकर पहले तो **विषण्णे** आदि के द्वारा यह अपवाद दिखाया कि कहाँ हस्तों की योजना नहीं करनी चाहिये और फिर उन्हीं में कहाँ हस्तों का प्रयोग किया जा सकता है यह दिखाया। इस प्रकार अपवाद में भी अपवाद दिया यह प्रतिप्रसव है।

हस्त प्रकरण समाप्त

(अङ्गम् ३—वक्षः)

अथ वक्षोभेदाः—

स्याद्वक्षः सममाभुग्नं निर्भुग्नं च प्रकम्पितम्॥ २९६॥
उद्वाहितं पञ्चधेति तेषां लक्ष्माभिदध्महे।

अंग ३—वक्ष के भेद

२९६ ग-२९७ ख. (अ०) **अथ वक्षोभेदाः** अब वक्ष (छाती) के भेद—

वक्ष छाती **समम् आभुग्नं निर्भुग्नं प्रकम्पितम् उद्वाहितं च इति** सम, आभुग्न, निर्भुग्न, प्रकंपित और उद्वाहित यों **पञ्चधा स्यात्** पाँच प्रकार की होती है। **तेषां लक्ष्म** उनके लक्षण **अभिदध्महे** कहते हैं।

(समम्—१)

सौष्ठवाधिष्ठितं वक्षश्चतुरश्राङ्गसंश्रयम्॥ २९७॥
प्रकृतिस्थं समं प्राहुः स्वभावाभिनये च तत्।

इति समम् (१)

सम—१

२९७ ग-२९८ ख. (अ०) **सौष्ठव-अधिष्ठितं** सौष्ठव से युक्त, **चतुरश्र-अङ्गसंश्रयं** चतुरश्र से संयुत अंगविन्यास (और) **प्रकृतिस्थं** स्वाभाविक (स्थिति वाली) **वक्षः** छाती (को) **समं प्राहुः** सम कहते हैं **तत् च** और वह **स्वभाव-अभिनये** स्वाभाविक अभिनय में (प्रयुक्त होती है)।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) चतुरश्र का लक्षण आगे दिया जाने वाला है (श्लो० ६४८)। सिंह० ने चतुरश्राङ्ग का अर्थ आयत और उन्नत अंग दिया है।

यह सम है (१)

(आभुग्नम्—२)

निम्नं शिथिलमाभुग्नं वक्षः स्याद्गर्वलज्जयोः॥ २९८॥

शीतहृच्छल्ययोः शोके मूर्छाभीसंभ्रमेषु च।
कार्यं व्याधौ विषादे च ब्रूते शंकरकिंकरः॥ २९९॥

इत्याभुग्नम् (२)

आभुग्न—२

२९८ ग-२९९. (अ०) **निम्नं** नीची (नीचे झुकी हुई), **शिथिलं** ढीली **वक्षः** छाती **आभुग्नम्** आभुग्न (होती है)। **गर्वलज्जयोः स्यात्** गर्व और लज्जा में (योजित) होती है। **शीतहृत्-शल्ययोः** ठंड और हृदय में चुभन में, **शोके** शोक में, **मूर्छाभीसंभ्रमेषु च** मूर्छा, भय और संभ्रम में, **व्याधौ विषादे च** व्याधि और विषाद में **कार्यं** (योजित) करना चाहिये **शंकरकिंकरः** शंकर का सेवक (शार्ङ्गदेव) **ब्रूते** (ऐसा) कहता है।

(सर०) **निम्नं** का अर्थ सिंह० ने उन्नत दिया है।

यह आभुग्न है। (२)

(निर्भुग्नम्—३)

निर्भुग्नं निम्नपृष्ठत्वादुन्नतं स्तब्धमप्युरः।
माने च सत्यवचने स्तम्भे विस्मयवीक्षिते॥ ३००॥

प्रकृष्टभाषणे/प्रहर्षभाषणे गर्वोत्सेके चेदं प्रयुज्यते।

इति निर्भुग्नम् (३)

निर्भुग्न—३

३००-३०१ ख. (अ०) **निम्नपृष्ठत्वात् उन्नतं** पीठ नीचे की हुई होने से ऊँची उठाई हुई **स्तब्धम् अपि उरः** और गतिहीन छाती **निर्भुग्नं** निर्भुग्न (होती है)। **माने** मान, **सत्यवचने** सत्यवचन, **स्तम्भे** स्तंभ, **विस्मयवीक्षिते** विस्मय दृष्टि, **प्रकृष्टभाषणे/प्रहर्षभाषणे** उत्कर्ष/हर्षयुक्त भाषण **गर्व-उत्सेके च** और गर्व के आधिक्य में **इदं प्रयुज्यते** यह प्रयुक्त होता है।

(सर०) आड्० में **प्रकृष्टभाषणे** और आनन्द० में प्रहर्षभाषणे पाठ है। दोनों ही संगत हैं इसलिये अन्वय-अनुवाद दोनों के आधार पर किया है।

यह निर्भुग्न है। (३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(प्रकम्पितम्—४)

प्रकम्पितं कम्पितं स्यादूर्ध्वक्षेपैर्निरन्तरैः॥ ३०१॥

स्याद्भीहासश्रमश्वासकासहिक्कासु रोदने।

इति प्रकम्पितम् (४)

प्रकंपित—४

३०१ ग-३०२ ख. (अ०) निरन्तरैः ऊर्ध्वक्षेपैः कम्पितं लगातार ऊपर की ओर उछालने से कंपित (हुई छाती) प्रकम्पितं स्यात् प्रकंपित होती है। भीहासश्रमश्वासकासहिक्कासु भय, हास्य, श्रम, श्‍वास, खाँसी, हिचकी में रोदने स्यात् (और) रोने में (योजित) होती है।

यह प्रकंपित है। (४)

(उद्वाहितम्—५)

अकम्पं सरलोत्क्षिप्तमुद्वाहितमुदीरितम्॥ ३०२॥

दीर्घोच्छ्वासे च जृम्भायामुतुङ्गालोकने च तत्।

इत्युद्वाहितम् (५)

इति पञ्चविधं वक्षः

उद्वाहित—५

३०२ ग-३०३ ख. (अ०) अकम्पं कंपरहित, सरलं सरल, उत्क्षिप्तम् ऊँची उठी हुई (छाती) उद्वाहितम् उदीरितम् उद्वाहित कही गई है। दीर्घ-उच्छ्वासे लंबा साँस छोड़ने में जृम्भायां च और जमुहाई में उत्तुङ्ग-आलोकने च तथा बहुत ऊँचा (पदार्थ) देखने में तत् वह (योजित की जाती है)।

यह उद्वाहित है। (५)

ये पाँच प्रकार के वक्ष हैं।

(अङ्गम् ४—पार्श्वम्)

अथ पार्श्वभेदाः—

विवर्तितं चापसृतं प्रसारितमथो नतम्॥ ३०३॥

उन्नतं चेति संचख्युः पार्श्वं पञ्चविधं बुधाः।

अंग ४—बाजू

३०३ ग-३०४ ख. (अ०) अथ पार्श्वभेदाः अब बाजू के भेद—

विवर्तितम् अपसृतं च विवर्तित और अपसृत, प्रसारितं प्रसारित अथ नतम् इसके बाद नत उन्नतं च और उन्नत इति पञ्चविधं पार्श्वं ये पाँच प्रकार की बाजू बुधाः संचख्युः बुधजनों ने कही हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(विवर्तितम्—१)

विवर्तनात् त्रिकस्य स्यात्परावृत्तौ विवर्तितम्॥ ३०४॥

इति विवर्तितम् (१)

विवर्तित—१

३०४ ग-घ. (अ०) **त्रिकस्य** कमर के नीचे के भाग के **विवर्तनात्** पूरी तरह घूम जाने से **विवर्तितं** विवर्तित (बाजू) होती है। **परावृत्तौ स्यात्** (वह) पीछे (की ओर) घूमने में (योजित) होती है।

यह विवर्तित है। (१)

(अपसृतम्—२)

तन्निवृत्त्या त्वपसृतं भवेत्पार्श्वविवर्तने।

इत्यपसृतम् (२)

अपसृत—२

३०५ क-ख. (अ०) **तत् निवृत्त्या तु** उस (त्रिक) के निवृत्त होने (वापस लौटने) से तो **अपसृतम्** अपसृत (होती है)। **पार्श्वविवर्तने भवेत्** बाजू की ओर घूमने में (योजित) होती है।

यह अपसृत है। (२)

(प्रसारितम्—३)

प्रसारितं तूभयतो विस्तारात्स्यान्मुदादिषु॥ ३०५॥

इति प्रसारितम् (३)

प्रसारित—३

३०५ ग-घ. (अ०) **प्रसारितं तु** प्रसारित तो **उभयतः विस्तारात्** दोनों ओर विस्तार करने से (होती है)। **मुदा-आदिषु** आनंद आदि में **स्यात्** (योजित) होती है।

यह प्रसारित है। (३)

(नतम्—४)

न्यञ्चितांसं नितम्बं तु नतं स्यादपसर्पणे।

इति नतम् (४)

नत—४

३०६ क-ख. (अ०) **न्यञ्चित-अंसं नितम्बं तु** पूरी तरह झुके हुए कंधे (और) नितंब वाली तो **नतं** नत (होती है)। **अपसर्पणे स्यात्** (वह) दूर जाने में (योजित) होती है।

यह नत है। (४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(उन्नतम्—५)

पार्श्वं तद्विपरीतं तून्नतं स्यादुपसर्पणे॥ ३०६॥

इत्युन्नतम् (५)

इति पञ्चविधं पार्श्वम्

उन्नत—५

३०६ ग-घ. (अ०) तत् विपरीतं पार्श्वं तु उस (नत) के विपरीत (बाजू) तो उन्नतम् उन्नत (है)। उपसर्पणे स्यात् समीप आने में (प्रयुक्त) होती है।

यह उन्नत है। (५)

ये पाँच प्रकार की बाजू हैं।

(अङ्गम् ५—कटी)

अथ कटीभेदाः—

कम्पितोद्वाहिता छिन्ना विवृत्ता रेचिता तथा।
कटी पञ्चविधेत्युक्ता तल्लक्ष्म व्याहरेऽधुना॥ ३०७॥

अंग ५—कमर

३०७. (अ०) कम्पिता-उद्वाहिता छिन्ना विवृत्ता तथा रेचिता कंपिता, उद्वाहिता, छिन्ना, विवृत्ता और रेचिता इति पञ्चविधा ये पाँच प्रकार की कटी उक्ता कमर कही गई है। अधुना अब तत् लक्ष्म उसका लक्षण व्याहरे कहता हूँ।

(कम्पिता—१)

द्रुतं गतागते पार्श्वे दधती कम्पिता मता।
तां कुब्जवामनादीनां गमने च प्रयोजयेत्॥ ३०८॥

इति कम्पिता (१)

कंपिता—१

३०८. (अ०) द्रुतं जल्दी(-जल्दी) गत-आगते (आगे-पीछे) जाती-आती हुई पार्श्वे दधती बाजुओं को धारण करने वाली कम्पिता मता कंपिता मानी गई है। ताम् उसे कुब्जवामन-आदीनां च गमने कुबड़े और बौने के जाने में प्रयोजयेत् प्रयुक्त करना चाहिये।

यह कंपिता है। (१)

(उद्वाहिता—२)

शनैरुच्चलिता पार्श्वद्वयेनोद्वाहिता कटी।
स्त्रीणां लीलागतेष्वेषा पीनाङ्गानां गतावपि॥ ३०९॥

इत्युद्वाहिता (२)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उद्वाहिता—२

३०९. (अ०) **पार्श्वद्वयेन** दोनों बाजुओं से (अर्थात् जिसकी दोनों बाजू) **शनैः उच्चलिता** धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठती हुई (हों वह) **उद्वाहिता कटी** उद्वाहिता कमर (होती है)। **एषा** यह **स्त्रीणां लीलागतेषु** स्त्रियों की लीलायुक्त गति में **पीन-अङ्गानां गतौ अपि** (और) स्थूल शरीर वालों की गति में भी (योजित होती है)।

यह उद्वाहिता है। (२)

(छिन्ना—३)

छिन्ना तिर्यङ्मुखे पार्श्वे मध्यस्य वलनात्कटी।
व्यायामे संभ्रमे चैषा व्यावृत्तप्रेक्षणादिषु॥ ३१०॥

इति च्छिन्ना (३)

छिन्ना—३

३१०. (अ०) **तिर्यङ्मुखे पार्श्वे** तिरछे हुए पार्श्व (वाली) **मध्यस्य वलनात्** बीच के भाग के मुड़ने से **छिन्ना कटी** छिन्ना कमर (होती है)। **एषा** यह **व्यायामे** व्यायाम, **संभ्रमे** संभ्रम (घबराहट) **व्यावृत्त-प्रेक्षण-आदिषु च** और मुड़कर देखने आदि में (योजित होती है)।

(सर०) आगे कहा जाने वाला है कि चारी को व्यायाम कहा जाता है। (श्लो० ८९९ ख)

यह छिन्ना है। (३)

(विवृत्ता—४)

पराङ्मुखेन पार्श्वेणाभिमुखं या विवर्तिता।
विवृत्ता सा कटी प्रोक्ता विनियोज्या विवर्तने॥ ३११॥

इति विवृत्ता (४)

विवृत्ता—४

३११. (अ०) **या** जो **पार्श्वेण पराङ्मुखेन** बाजू से पीछे (की ओर) मुड़ी हुई (मुड़कर) **अभिमुखं विवर्तिता** सामने (की ओर) घूमी हो **सा** वह **विवृत्ता कटी** विवृत्ता कटि **प्रोक्ता** कही गई है। **विवर्तने विनियोज्या** वह मुड़ने में विनियुक्त करनी चाहिये।

यह विवृत्ता है। (४)

(रेचिता—५)

सर्वतो भ्रमणादुक्ता रेचिता भ्रमणे भवेत्।

इति रेचिता

इति पञ्चविधा कटी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रेचिता—५

३१२ क-ख. (अ०) **सर्वतः भ्रमणात्** चारों ओर घूमने से रेचिता **उक्ता** रेचिता कही गई है। **भ्रमणे भवेत्** वह भ्रमण (गोलाकार घूमने) में (योजित) होती है।

यह रेचिता है। (५)

यह पाँच प्रकार की कटि है। (५)

(अङ्गम् ६—चरणः)

अथ चरणभेदाः—

समोऽञ्चितः कुञ्चितश्च सूच्यग्रतलसंचरः॥ ३१२॥

उद्घट्टितश्चेति मुनेः षड्विधश्चरणो मतः।
ताडितो घटितोत्सेधो घट्टितो मर्दितस्तथा॥ ३१३॥

अग्रगः पार्ष्णिगः पादः पार्श्वगश्चापरः परैः।
इति सप्तापरे प्रोक्ताः पादास्तल्लक्षणं ब्रुवे॥ ३१४॥

अंग ६—पैर

३१२ ग-३१४. (अ०) **अथ चरणभेदाः** अब पैर के भेद—

समः अञ्चितः कुञ्चितः च सम, अंचित और कुंचित, **सूची-अग्रतलसंचरः** सूची, अग्रतलसंचर **उद्घट्टितः च** और उद्घट्टित **इति षड्विधः चरणः** यह छः प्रकार का पैर **मुनेः मतः** (भरत) मुनि ने माना है। **ताडितः घटितोत्सेधः** ताडित, घटितोत्सेध, **घट्टितः तथा मर्दितः** घट्टित और मर्दित, **अग्रगः पार्ष्णिगः पादः** अग्रग, पार्ष्णिग पैर **अपरः पार्श्वगः च** और अन्य पार्श्वग **इति अपरे सप्त पादाः** ये अन्य सात (प्रकार के) पैर **परैः प्रोक्ताः** दूसरे (आचार्यों) के द्वारा कहे गये हैं। **तत् लक्षणं ब्रुवे** (अब) इसका लक्षण कहता हूँ।

(समः—१)

स्वभावेन स्थितो भूमौ समः पादोऽभिधीयते।
स्वभावाभिनये कार्यः स्थिरोऽसौ रेचके चलः॥ ३१५॥

इति समः (१)

सम—१

३१५. (अ०) **स्वभावेन** स्वाभाविक रूप से **भूमौ स्थितः पादः** भूमि पर रखा हुआ पैर **समः अभिधीयते** सम कहा जाता है। **असौ** यह **स्वभाव-अभिनये** स्वाभाविक अभिनय में **स्थिरः** स्थिर **रेचके** (और) रेचक में **चलः कार्यः** चल (हिलता हुआ योजित) करना चाहिये।

यह सम है। (१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(अञ्चितः—२)

भूस्थपार्ष्णिः समुत्क्षिप्ताग्रतलः प्रसृताङ्गुलिः।
अञ्चितः स भवेत् पादाहतिभ्रमरकादिषु॥ ३१६॥

इत्यञ्चितः (२)

अंचित—२

३१६. (अ०) भूस्थपार्ष्णिः भूमि पर एड़ी टिकी हुई **सम्-उत्क्षिप्त-अग्रतलः** तलुए का आगे का भाग भलीभाँति ऊपर उठा हुआ (और) **प्रसृत-अङ्गुलिः** फैली हुई उँगलियों वाला **अञ्चितः** अंचित (होता है)। **सः** वह **पाद-आहतिभ्रमरक-आदिषु** पैर के आघात और भ्रमरक आदि (करणों) में **भवेत्** (योजित) होता है।

(सर०) सिंह० की टीका के 'हस्तभ्रमरकादिषु' पाठ के आधार पर आड्० में यही पाठ रखा गया है। लेकिन अर्थ की दृष्टि से 'हस्त' की संगति नहीं है। आनन्द० में 'पादाहतिभ्रमणकादिषु' पाठ है। उसमें 'भ्रमणकं' की संगति नहीं है। आनन्द की पादटिप्पणी में 'भ्रमरकादिषु' पाठ दिया है। भ्रमरक एक करण है जिसका उल्लेख सिंह० ने किया है। इन सबके आधार पर **पादाहतिभ्रमरकादिषु** सुसंगत पाठ बनता है। हमने इसी का ग्रहण किया है।

यह अंचित है। (२)

(कुञ्चितः—३)

कुञ्चिताङ्गुलिरुत्क्षिप्तपार्ष्णिर्मध्ये च कुञ्चितः।
कुञ्चितः स्यादतिश्रान्तगतौ तुङ्गस्य च ग्रहे॥ ३१७॥

इति कुञ्चितः (३)

कुंचित—३

३१७. (अ०) कुञ्चित-अङ्गुलिः सिकुड़ी हुई उँगलियों, **उत्क्षिप्तपार्ष्णिः** एड़ी ऊँची उठी हुई **मध्ये च कुञ्चितः** और बीच से कुंचित (स्थिति वाला पैर) **कुञ्चितः स्यात्** कुंचित होता है। **अतिश्रान्तगतौ** बहुत थके हुए (व्यक्ति) के चलने में **तुङ्गस्य ग्रहे च** और ऊँची (वस्तु) को पकड़ने में (योजित होता है)।

(सर०) **अतिश्रान्तगतौ** की सिंह० की व्याख्या 'बहुत रास्ता चलने से थके हुए की गति में' है।

यह कुंचित है। (३)

(सूची—४)

वामः स्वाभाविकोऽन्यस्तु भुव्यङ्गुष्ठाग्रसंस्थितः।
उत्क्षिप्तेतरभागोऽसौ सूची नूपुरबन्धने॥ ३१८॥

इति सूची (४)

सूची—४

३१८. (अ०) वामः स्वाभाविकः बायाँ पैर स्वाभाविक (स्थिति में), **अन्यः तु** दूसरा (दाहिना) तो **भुवि-अङ्गुष्ठ-**

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अग्रसंस्थितः भूमि पर अँगूठे की नोक पर टिका हुआ (और) **उत्क्षिप्त-इतरभागः** अन्य हिस्सा ऊपर उठा हुआ (हो) **असौ** यह (ऐसा पैर) **सूची** सूची (होता है)। **नुपूरबन्धने** (यह) घुँघरू (या पैंजनी) बाँधने में (योजित होता है)।

यह सूची है (४)

(अग्रतलसंचरः—५)

यस्योत्क्षिप्ता भवेत्पार्ष्णिरङ्गुष्ठः प्रसृतस्तथा।
अङ्गुल्यो न्यञ्चिताः स स्यात्पादोऽग्रतलसंचरः॥ ३१९॥

प्रेरणे कुट्टने स्थाने पीडने भूमिताडने।
भूस्थापसारणे स स्याद्रेचके भ्रमणे मदे॥ ३२०॥

इत्यग्रतलसंचरः (५)

अग्रतलसंचर—५

३१९-३२०. (अ०) **यस्य पार्ष्णिः** जिसकी एड़ी **उत्क्षिप्ता भवेत्** ऊँची उठी हुई हो, **अङ्गुष्ठः प्रसृतः** अँगूठा फैला हुआ तथा **अङ्गुल्यः न्यञ्चिताः** उँगलियाँ सिकुड़ी हुई (हों) **सः** वह **अग्रतलसंचरः पादः स्यात्** अग्रतलसंचर पैर होता है। **प्रेरणे** प्रेरित करने, **कुट्टने** कूटने, **स्थाने** स्थिर रहने, **पीडने** दबाने, **भूमिताडने** भूमि पर प्रहार करने, **भूस्थ अपसारणे** भूमि पर रखी (वस्तु) को दूर करने, **रेचके** रेचक (निकालने), **भ्रमणे** घूमने **मदे** (और) मद में **सः स्यात्** वह (योजित) होता है।

यह अग्रतलसंचर है। (५)

(उद्घट्टितः—६)

यदि पादतलाग्रेण स्थित्वा भूमौ निपात्यते।
असकृद्वा सकृत्पार्ष्णिर्भवेदुद्घट्टितस्तदा॥ ३२१॥

इत्युद्घट्टितः (६)

उद्घट्टित—६

३२१. (अ०) **यदि** यदि **पादतल-अग्रेण** पैर के तलुए के आगे के सिरे से (पर) **स्थित्वा** खड़े होकर **पार्ष्णिः** एड़ी **सकृत् असकृत् वा** एक या कई बार **भूमौ निपात्यते** भूमि पर गिराई (पटकी) जाती है **तदा** तो **उदघट्टितः भवेत्** उद्घट्टित होता है।

यह उद्घट्टित है। (६)

(ताडितः—७)

पाष्र्ण्या धरामवष्टभ्य तामग्रेण निहन्ति यः।
ताडितश्चरणः स स्यात्प्रयोज्यः क्रोधगर्वयोः॥ ३२२॥

इति ताडितः (७)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ताडित—७

३२२. (अ०) **यः** जो **धरां** भूमि को (पर) **पार्ष्ण्याम् अवष्टभ्य** एड़ी से दबा कर **ताम्** उस (भूमि) को **अग्रेण निहन्ति** (एड़ी की) नोक से प्रहार करता है **सः** वह **ताडितः चरणः स्यात्** ताडित पैर होता है। **क्रोधगर्वयोः** (वह) क्रोध और गर्व में **प्रयोज्यः** प्रयुक्त करना चाहिये।

यह ताडित है। (७)

(घटितोत्सेधः—८)

घ्नन्मुहुर्घटितोत्सेधोऽग्रपार्ष्णिभ्यां भुवं क्रमात्।

इति घटितोत्सेधः (८)

घटितोत्सेध—८

३२३. क-ख. (अ०) **क्रमात्** क्रम से **अग्रपार्ष्णिभ्याम्** आगे के सिरे और एड़ी से **भुवं** भूमि को (भूमि पर) **मुहुः घ्नन्** बार-बार प्रहार करते हुए (अर्थात् करने पर) **घटितोत्सेधः** घटितोत्सेध (होता है)।

यह घटितोत्सेध है। (८)

(घट्टितः—९)

घट्टितः क्षितिघाती स्यात्पार्ष्ण्याङ्घ्रिः प्रेरणे च सः॥ ३२३॥

इति घट्टितः (९)

घट्टित—९

३२३ ग-घ. (अ०) **क्षितिघाती** भूमि पर आघात करने वाला **पार्ष्ण्या अङ्घ्रिः** एड़ी सहित पैर **घट्टितः स्यात्** घट्टित होता है **सः च प्रेरणे** और वह (घोड़े आदि को) प्रेरित करने में (योजित होता है)।

(सर०) आड्० में 'प्रेरणेन सः' पाठ है और सिंह० ने उसकी व्याख्या 'पार्ष्ण्यङ्घ्रेः प्रेरणेन'—यों की है जिसका अर्थ है 'एड़ी सहित पैर की प्रेरणा से' (भूमि पर आघात करने वाला घट्टित है)।

मान० (खण्ड ३, पृ० १५१) में 'अश्वादिप्रेरणे' यानी 'घोड़े आदि को प्रेरित करने में' यह विनियोग दिया है। आनन्द० में **प्रेरणे च सः** पाठ है जिसके द्वारा यह विनियोग का सूचक अंश समझ में आता है इसलिये हमने यही रखा है। '**पार्ष्ण्यङ्घ्रिः**' के स्थान पर **पार्ष्ण्याङ्घ्रिः** से प्राप्त 'एड़ी सहित पैर' अर्थ अधिक सार्थक है इसलिये डॉ० तारळेकर का सुझाया हुआ यह पाठ (सं०र०, भाग ३, पृ० ८५) रख लिया है।

यह घट्टित है। (९)

(मर्दितः—१०)

यस्तिरश्चा तलेनोर्वीं प्रमृद्गाति स मर्दितः।

इति मर्दितः (१०)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मर्दित—१०

३२४ क-ख. (अ०) यः जो **तिरश्चा तलेन** तिरछे तलुए से **उर्वीं** भूमि को **प्रमृद्गाति** रगड़ता है **सः मर्दितः** वह मर्दित (पैर है)।

यह मर्दित है। (१०)

(अग्रगः—११)

अग्रगोऽग्रे द्रुतं सर्पन् प्रयोज्यः पङ्किलक्षितौ॥ ३२४॥

इत्यग्रगः (११)

अग्रग—११

३२४ ग-घ. (अ०) अग्रे द्रुतं सर्पन् सामने जल्दी जाता हुआ **अग्रगः** अग्रग (पैर है)। **पङ्किलक्षितौ प्रयोज्यः** (वह) कीचड़ वाली चिकनी भूमि (पर चलने के अभिनय) में प्रयुक्त करना चाहिये।

यह अग्रग है। (११)

(पार्ष्णिगः—१२)

पृष्ठतोऽपसरन्पार्ष्ण्या पार्ष्णिगः पाद उच्यते।

इति पार्ष्णिगः (१२)

पार्ष्णिग—१२

३२५ क-ख. (अ०) पार्ष्ण्या एड़ी से **पृष्ठतः अपसरन् पादः** पीछे की ओर जाता हुआ पैर **पार्ष्णिगः उच्यते** पार्ष्णिग कहा जाता है।

यह पार्ष्णिग है। (१२)

(पार्श्वगः—१३)

स्थितः पार्श्वेऽथवा पार्श्वं व्रजन्पार्श्वग इष्यते॥ ३२५॥

इति पार्श्वगः (१३)

इति त्रयोदश चरणभेदाः

पार्श्वग—१३

३२५ ग-घ. (अ०) पार्श्वे स्थितः बाजू में स्थित **अथवा पार्श्वं व्रजन्** या बाजू की ओर जाता हुआ **पार्श्वगः इष्यते** पार्श्वग इष्ट होता (माना जाता) है।

यह पार्श्वग है। (१३)

ये पैर के तेरह प्रकार हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(अङ्गम् ७—स्कन्धौ)

अथ स्कन्धभेदाः—

एकोच्चौ कर्णलग्नौ चोच्छ्रितौ स्रस्तौ च लोलितौ।
इत्युक्तौ पञ्चधा स्कन्धौ नाम्नाभिव्यक्तलक्षणौ॥ ३२६॥

अंग ७—कन्धे

३२६. (अ०) एकोच्च और कर्णलग्न, उच्छ्रित, स्रस्त और लोलित इति ये **नाम्ना अभिव्यक्तलक्षणौ** नाम से (ही) प्रकट लक्षण वाले **पञ्चधा स्कन्धौ** पाँच प्रकार के कन्धे **उक्तौ** कहे गये हैं।

(सर०) अलग-अलग दो कन्धे होने से इनके नाम द्विवचन में दिये गये हैं। नाम अन्वर्थ हैं इसलिये नाम-शब्दों से ही लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं। **एकोच्चौ** यानी एक कंधा ऊपर उठा हुआ (एक + उच्चौ), **कर्णलग्नौ** अर्थात् कान से लगे हुए दोनों कंधे, **उच्छ्रितौ** यानी दोनों ऊपर उठे हुए, **स्रस्तौ** यानी ढीले पड़कर लटके हुए और **लोलितौ** यानी चंचल (झूमते हुए)।

(एकोच्चौ—१)

एकोच्चौ कथितौ स्कन्धौ मुष्टिकुन्तप्रहारयोः।

(इत्येकोच्चौ—१)

एकोच्च—१

३२७ क-ख. (अ०) **एकोच्चौ स्कन्धौ** एकोच्च कंधे **मुष्टिकुन्तप्रहारयोः** मुट्ठी और भाले से प्रहार करने में **कथितौ** कहे गये हैं।

ये एकोच्च हैं। (१)

(कर्णलग्नौ—२)

आश्लेषे शिशिरे चांसौ कर्णलग्नौ मतौ सताम्॥ ३२७॥

(इति कर्णलग्नौ—२)

कर्णलग्न—२

३२७ ग-घ. (सर०) **सतां** सज्जनों में (अर्थात् सज्जनों के द्वारा) **कर्णलग्नौ अंसौ** कर्णलग्न कंधे **आश्लेषे** आलिंगन **शिशिरे च** और शिशिर (ऋतु यानी अत्यधिक ठंड के अभिनय) में **मतौ** माने गये हैं।

ये कर्णलग्न हैं। (२)

(उच्छ्रितौ—३)

उच्छ्रितौ हर्षगर्वादौ,

(इत्युच्छ्रितौ—३)

उच्छ्रित—३

३२८ क. (अ०) **उच्छ्रितौ हर्षगर्व-आदौ** उच्छ्रित (कंधे) हर्ष और गर्व आदि में (योजित होते हैं)।

ये उच्छ्रित हैं। (३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(स्रस्तौ—४)

स्रस्तौ दुःखे श्रमे मदे।
मूर्छायां चाथ कर्तव्यौ,

(इति स्रस्तौ—४)

स्रस्त—४

३२८ ख-ग. (अ०) स्रस्तौ स्रस्त (कंधे) दुःखे श्रमे मदे दुःख, श्रम, मद मूर्छायां च और मूर्छा में कर्तव्यौ (प्रयुक्त) करने चाहियें।

ये स्रस्त हैं। (४)

(लोलितौ—५)

लोलितौ विटनर्तने॥ ३२८॥
नृत्तज्ञैर्गदितौ हास्ये हुडुक्कावाद्यवादने।

(इति लोलितौ—५)

इति पञ्चधा स्कन्धौ

इति सप्ताङ्गानि

लोलित—५

३२८ घ-३२९ ख. (अ०) नृत्तज्ञैः नृत्त के ज्ञाताओं के द्वारा लोलितौ लोलित (झूमते और चंचल कंधे) विटनर्तने विट के नर्तन, हास्ये हास्य (और) हुडुक्कावाद्यवादने हुडुक्का वाद्य को बजाने में गदितौ कहे गये हैं।

ये लोलित हैं। (५)

ये पाँच प्रकार के कंधे हैं।

सात अंग समाप्त

(प्रत्यङ्गानि)

(प्रत्यङ्गम् १—ग्रीवा)

अथ ग्रीवाभेदाः—

समा निवृत्ता वलिता रेचिता कुञ्चिताञ्चिता॥ ३२९॥
त्र्यश्रा नतोन्नता चेति ग्रीवा नवविधा भवेत्।

प्रत्यंग १—गर्दन

३२९ ग-३३० ख. (अ०) अथ ग्रीवाभेदाः अब गर्दन के प्रकार—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

समा, निवृत्ता, वलिता, रेचिता, कुंचिता, अंचिता, त्र्यश्रा, नता और उन्नता इति इस प्रकार ग्रीवा गर्दन नवविधा भवेत् नौ प्रकार की होती है।

(समा—१)

समा स्वाभाविकी ध्याने जपे कार्ये स्वभावजे॥ ३३०॥

इति समा (१)

समा—१

३३० ग-घ. (अ०) **समा स्वाभाविकी** समा स्वाभाविक (स्थिति वाली) (गर्दन होती है)। **ध्याने जपे** ध्यान, जप **स्वभावजे कार्ये** (और) स्वाभाविक काम में (योजित करनी चाहिये)।

यह समा है। (१)

(निवृत्ता—२)

ग्रीवा त्वभिमुखीभूय निवर्तेत यदा तदा।
निवृत्तेत्युच्यते सा स्यात्स्वस्थानाभिमुखादिषु॥ ३३१॥

इति निवृत्ता (२)

निवृत्ता—२

३३१. (अ०) **यदा** जब **ग्रीवा** गर्दन **अभिमुखीभूय तु** सामने की ओर होकर तो **निवर्तेत** पीछे मुड़ती है **तदा** तो **निवृत्ता इति उच्यते** निवृत्ता यों (इस नाम से) कही जाती है। **सा** वह **स्वस्थान-अभिमुख-आदिषु** अपने स्थान से सामने की ओर जाने आदि में **स्यात्** (योजित) होती है।

यह निवृत्ता है। (२)

(वलिता—३)

पार्श्वोन्मुखी तु वलिता ग्रीवा भङ्गे तथेक्षणे।

इति वलिता (३)

वलिता—३

३३२ क-ख. (अ०) **पार्श्व-उन्मुखी तु वलिता ग्रीवा** बाजू की ओर मुड़ी हुई तो वलिता गर्दन (होती है)। **भङ्गे तथा ईक्षणे** अस्वीकार करने और (एक ओर) देखने में (प्रयुक्त होती है)।

यह वलिता है। (३)

(रेचिता—४)

रेचिता विधुतभ्रान्ता वर्तुले मथने तथा॥ ३३२॥

इति रेचिता (४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रेचिता—४

३३२ ग-घ. (अ०) **रेचिता** रेचिता (गर्दन) **विधुतभ्रान्ता** गोल घूमती हुई (होती है)। **वर्तुले तथा मथने** गोल और मथने (के अभिनय) में (प्रयुक्त होती है)।

यह रेचिता है। (४)

(कुञ्चिता—५)

आकुञ्चिता कुञ्चिता स्यान्मूर्धभारे स्वगोपने।

इति कुञ्चिता (५)

कुंचिता—५

३३३ क-ख. (अ०) **आकुञ्चिता** सब ओर से सिकोड़ी हुई **कुञ्चिता स्यात्** कुंचिता (गर्दन) होती है। **मूर्धभारे** सिर पर बोझा (उठाने) में (और) **स्वगोपने** अपने को बचाने (अपनी रक्षा करने) में (योजित होती है)।

यह कुंचिता है। (५)

(अञ्चिता—६)

अञ्चिता प्रसृता लोला केशाकर्षेऽर्धवीक्षणे॥ ३३३॥

इत्यञ्चिता (६)

अंचिता—६

३३३ ग-घ. (अ०) **अञ्चिता** अंचिता (गर्दन) **प्रसृता** फैली हुई (और) **लोला** चंचल (होती है)। **केश-आकर्षे** बाल खींचने (बाल खींचे जाने में और) **अर्धवीक्षणे** आधा देखने में (कटाक्ष यानी आधी आँखों से देखने में) (प्रयुक्त होती है)।

यह अंचिता है। (६)

(त्र्यश्रा—७)

त्र्यश्रा पार्श्वगता खेदे पार्श्वेक्षास्कन्धभारयोः।

इति त्र्यश्रा (७)

त्र्यश्रा—७

३३४ क-ख. (अ०) **त्र्यश्रा** त्र्यश्रा (गर्दन) **पार्श्वगता** बाजू की ओर गई (मुड़ी) हुई (होती है)। **खेदे** (वह) थकान, **पार्श्व-ईक्षास्कन्धभारयोः** बाजू की ओर देखने और कंधे पर भार (उठाने) में (योजित होती है)।

यह त्र्यश्रा है। (७)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(नता—८)

नतावनम्रालंकारबन्धे कण्ठावलम्बने॥ ३३४॥

इति नता (८)

नता—८

३३४ ग-घ. (अ०) **नता अवनम्रा** नता नीचे झुकी हुई (होती है)। **अलंकारबन्धे** आभूषण बाँधने में (और) **कण्ठ-अवलम्बने** गले का सहारा लेने या गला झुकाने में (प्रयुक्त होती है)।

यह नता है। (८)

(उन्नता—९)

उन्नतोर्ध्वानता ग्रीवालंकारोर्ध्वप्रदर्शने।

इत्युन्नता (९)

(इति नवविधा ग्रीवा)

उन्नता—९

३३५ क-ख. (अ०) **ऊर्ध्व-आनता ग्रीवा** ऊपर की हुई गर्दन **उन्नता** उन्नता (होती है)। **अलंकार-ऊर्ध्वप्रदर्शने** (वह) आभूषण (धारण करते समय) ऊपर देखने (या दिखाने) में (प्रयुक्त होती है)।

यह उन्नता है।

ये गर्दन के नौ प्रकार हैं।

(प्रत्यङ्गम् २—बाहुः)

अथ बाहुभेदाः—

ऊर्ध्वस्थोऽधोमुखस्तिर्यगपविद्धः प्रसारितः॥ ३३५॥

अञ्चितो मण्डलगतिः स्वस्तिकोद्वेष्टितावपि।
पृष्ठानुसारीत्युदितो बाहुर्दशविधो बुधैः॥ ३३६॥

आविद्धः कुञ्चितो नम्रः सरलान्दोलितावपि।
उत्सारित इति प्राहुर्बाहूंन्षडपरान्परे॥ ३३७॥

प्रत्यंग २—बाँह

३३५ ग-३३७. (अ०) **ऊर्ध्वस्थ, अधोमुख, तिर्यक्, अपविद्ध, प्रसारित, अंचित, मंडलगति, स्वस्तिक, उद्वेष्टित, पृष्ठानुसारी इति दशविधः बाहुः** ये दस प्रकार की बाँह **बुधैः उदितः** बुधजनों के द्वारा कही गई है। **परे** अन्य (आचार्य) **आविद्ध, कुंचित, नम्र, सरल, आन्दोलित और उत्सारित इति** ये **अपरान् षट् बाहून्** अन्य छः बाँह **प्राहुः** कहते हैं।

(सर०) संस्कृत में बाहु पुल्लिंग शब्द है, हिन्दी में बाहु स्त्रीलिंग शब्द माना जाता है। अनुवाद हिन्दी के अनुसार किया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(ऊर्ध्वस्थः—१)

शीर्षादूर्ध्वं व्रजन्बाहुरूर्ध्वस्थस्तुङ्गदर्शने।

इत्यूर्ध्वस्थः (१)

ऊर्ध्वस्थ—१

३३८ क-ख. (अ०) **शीर्षात्** सिर से **ऊर्ध्वं व्रजन् बाहुः** ऊपर जाती हुई बाँह **ऊर्ध्वस्थः** ऊर्ध्वस्थ (होती है)। **तुङ्गदर्शने** ऊँची वस्तु को देखने में (योजित होती है)।

यह ऊर्ध्वस्थ है। (१)

(अधोमुखः—२)

अधोमुखो महीश्लेषी,

इत्यधोमुखः (२)

अधोमुख—२

३३८ ग. (अ०) **अधोमुखः महीश्लेषी** अधोमुख भूमि से लगी हुई (होती है)।

यह अधोमुख है। (२)

(तिर्यग्गतः—३)

तिर्यक्पार्श्वगतो भवेत्॥ ३३८॥

इति तिर्यग्गतः (३)

तिर्यक्—३

३३८ घ. (अ०) **तिर्यक्** तिर्यक् (बाँह) **पार्श्वगतः भवेत्** बाजू की ओर गई हुई होती है।

यह तिर्यक् है। (३)

(अपविद्धः—४)

बाहुर्मण्डलवद्गत्या वक्षःक्षेत्राद्विनिर्गतः।
अपविद्धः,

इत्यपविद्धः (४)

अपविद्ध—४

३३९ क-ग. (अ०) **मण्डलवत्-गत्या** मंडल की तरह (गोलाकार) गति के द्वारा **वक्षः-क्षेत्रात्** छाती के भाग से (अर्थात् छाती से) **विनिर्गतः** बाहर (की ओर) गई हुई **अपविद्धः** अपविद्ध (बाँह होती है)।

(सर०) कल्लि० ने पाणिनीय अष्टाध्यायी के आधार पर मण्डलवत्-गत्या का पुल्लिंग रूप इस प्रकार सिद्ध किया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इसका मण्डल है इसलिये मण्डलवती यह स्त्रीलिंग हुआ। वह मण्डलवती गति—यह कर्मधारय समास हुआ। अष्टाध्यायी के सूत्र 'पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु' (६/३/४२) के द्वारा पुल्लिंगवत् भाव हो जाने से 'मण्डलवद्गतिः' रूप बना। मण्डलवती स्त्रीलिंग शब्द मण्डलवत् पुल्लिंग होकर अपविद्ध पुल्लिंग के साथ मिल कर 'मण्डलवत्-गतिः' यों पुल्लिंग हो गया जिसका तृतीया एकवचन रूप 'मण्डलवत्-गत्या' है।

यह अपविद्ध है। (४)

(प्रसारितः—५)

अथाग्रदेशमनुधावन्प्रसारितः ॥ ३३९ ॥

इति प्रसारितः (५)

प्रसारित—५

३३९ ग-घ. (अ०) **अथ** और **अग्रदेशम् अनुधावन्** सामने के भाग को जाती हुई **प्रसारितः** प्रसारित (बाँह है)।

(सर०) सिंह० ने प्रसारित की टीका 'अपसारितं लक्षयति' कहकर शुरू की है और 'अग्रदेशं' के स्थान पर उसका पाठ 'ऊर्ध्वदेशं' है।

यह प्रसारित है। (५)

(अञ्चितः—६)

वक्षःक्षेत्राद्विनिर्गत्य वक्षःप्रत्यागतोऽञ्चितः।

इत्यञ्चितः (६)

अंचित—६

३४० क-ख. (अ०) **वक्षःक्षेत्रात् विनिर्गत्य** छाती के भाग से बाहर जाकर **वक्षःप्रति-आगतः** छाती के पास वापस आई हुई **अञ्चितः** अंचित (है)।

यह अंचित है। (६)

(मण्डलगतिः—७)

उच्यते मण्डलगतिः सर्वतो भ्रमणाद्भुजः ॥ ३४० ॥

खड्गादिभ्रामणे चास्य विनियोगं प्रचक्षते।

इति मण्डलगतिः (७)

मंडलगति—७

३४० ग-३४१ ख. (अ०) **सर्वतः भ्रमणात्** चारों ओर गोलाकार घूमने से **भुजः** बाँह **मण्डलगतिः उच्यते** मंडलगति कही जाती है **खड्ग-आदि भ्रामणे च** और तलवार आदि घुमाने में **अस्य विनियोगम्** इसका विनियोग **प्रचक्षते** कहते हैं।

यह मंडलगति है। (७)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(स्वस्तिकः—८)

स्वस्तिको लग्नयोर्बाह्वोः पार्श्वव्यत्यासतः स्थितौ॥ ३४१॥

स प्स्याद्भानोरुपस्थाने परिरम्भेऽभिवादने।

इति स्वस्तिकः (८)

स्वस्तिक—८

३४१ ग-३४२ ख. (अ०) **लग्नयोः बाह्वोः** (एक-दूसरे से) लगी हुई बाँह का **पार्श्वव्यत्यासतः स्थितौ** बाजू उलटा हुआ (एक-दूसरे पर विपरीत गति से चढ़ा हुआ अर्थात् बायाँ दाहिनी ओर, दाहिना बाईं ओर) स्थित होने पर **स्वस्तिकः** स्वस्तिक (बाँह होती है)। **सः** वह **भानोः उपस्थाने** सूर्य की पूजा में, **परिरम्भे** आलिंगन में **अभिवादने** (और) अभिवादन में **स्यात्** (योजित) होती है।

(सर०) कल्लि० ने इस ओर ध्यान दिलाया कि स्वस्तिक बाँह के विनियोग में कोई विशेष हस्तप्रचार नहीं कहा गया फिर भी लोक में सूर्य की पूजा आदि में जो इसका विनियोग दिया है वह योग्य ही समझना चाहिये। जैसे—सूर्य की पूजा में स्वस्तिक के आकार में रखी हुई हथेलियाँ, ऊँची की हुई बाँहें लोक में प्रसिद्ध हैं। आलिंगन में अपने सामने रखी हुई हथेलियाँ अपनी ओर से दूसरी ओर गई हुई बाँहें प्रसिद्ध हैं। अभिवादन में उसी तरह से नीचे की ओर हुई हथेलियों वाली बाँहें प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार अभिनय आदि में हस्त इत्यादि का प्रचार न कहे जाने पर भी विनियोग विशेष रूप से समझ लेना चाहिये।

यह स्वस्तिक है। (८)

(उद्वेष्टितः—९)

निष्क्रामन्मणिबन्धस्थवर्तनामाश्रितो भुजः॥ ३४२॥

उद्वेष्टितो भवेत्,

इत्युद्वेष्टितः (९)

उद्वेष्टित—९

३४२ ग-३४३ क. (अ०) **मणिबन्धस्थवर्तनाम् आश्रितः** कलाई की वर्तना के आश्रित होकर **निष्क्रामन् भुजः** बाहर जाने वाली बाँह **उद्वेष्टितः भवेत्** उद्वेष्टित होती है।

यह उद्वेष्टित है। (९)

(पृष्ठानुसारी—१०)

पृष्ठानुसारी पृष्ठतो गतः।

भवेत्तूणशराकर्षे वीटिकाग्रहणे च सः॥ ३४३॥

इति पृष्ठानुसारी (१०)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पृष्ठानुसारी—१०

३४३ क-घ. (अ०) **पृष्ठतः गतः** पीछे की ओर गई हुई **पृष्ठानुसारी** पृष्ठानुसारी (बाँह होती है)। **सः** वह **तूणशर-आकर्षे** तरकस में से बाण निकालने **वीटिकाग्रहणे च** और पान ग्रहण करने में **भवेत्** (योजित) होती है।

यह पृष्ठानुसारी है। (१०)

(आविद्धः—११)

आविद्धोऽभ्यन्तराक्षिप्तः,

इत्याविद्धः (११)

आविद्ध—११

३४४ क. (अ०) **अभ्यन्तर-आक्षिप्तः** अन्दर की ओर फेंकी हुई (अर्थात् ले जाई गई) **आविद्धः** आविद्ध (बाँह होती है)।

यह आविद्ध है। (११)

(कुञ्चितः—१२)

कुञ्चितस्तु स उच्यते।
यस्तीक्ष्णकूर्परं वक्रीकृतः खड्गादिधारणे॥ ३४४॥
प्रहारे भोजने पाने प्रोक्तो निःशङ्कसूरिणा।

इति कुञ्चितः (१२)

कुंचित—१२

३४४ ख-३४५ ख. (अ०) **यः** जो **वक्रीकृतः तीक्ष्णकूर्परं** मोड़ी हुई (होने से) तीखी हुई कोहनी वाली (बाँह) **कुञ्चितः उच्यते** (उसे) कुंचित कहा जाता है। **खड्ग-आदिधारणे** तलवार आदि धारण करने, **प्रहारे** प्रहार करने, **भोजने** भोजन **पाने** (और) पीने में **निःशङ्कसूरिणा** निःशंकविद्वान् (शार्ङ्गदेव) के द्वारा **प्रोक्तः** कही गई है।

यह कुंचित है। (१२)

(नम्रः—१३)

ईषद्वक्रस्तु नम्रोऽसौ स्तुतौ माल्यस्य धारणे॥ ३४५॥

इति नम्रः (१३)

नम्र—१३

३४५ ग-घ. (अ०) **ईषत् वक्रः तु** थोड़ी मुड़ी हुई तो **नम्रः** नम्र (बाँह) होती है। **असौ** यह **स्तुतौ** स्तुति में (और) **माल्यस्य धारणे** (फूलों की) माला को धारण करने में (योजित होती है)।

यह नम्र है। (१३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सरलः—१४)

सरलः पार्श्वयोरूर्ध्वमधस्ताच्च प्रसारितः।
स्यात्पक्षानुकृतौ माने भूस्थनिर्देशने क्रमात्॥ ३४६॥

इति सरलः (१४)

सरल—१४

३४६. (अ०) **पार्श्वयोः** बाजू की ओर, **ऊर्ध्वम् अधस्तात् च प्रसारितः** ऊपर और नीचे फैलाई हुई **सरलः** सरल (बाँह होती है)। **पक्ष-अनुकृतौ** पंख के अनुकरण में, **माने** मान में (और) **भूस्थनिर्देशने** भूमि के ऊपर की वस्तु को दिखाने में **क्रमात्** क्रम से **स्यात्** होती है।

(सर०) कल्लि० ने **क्रमात्** को लेकर यह स्पष्ट किया कि यहाँ तीन लक्षण दिये गये हैं—पार्श्व की ओर फैलाई हुई सरल, ऊर्ध्व फैलाई हुई सरल और नीचे की ओर फैलाई हुई सरल। इन्हें पूरा एक लक्षण मान लेने पर ग्रन्थकार का 'क्रमात्' यानी क्रम से विनियोग भेद न कहा जाता। आशय यह है कि पंख के अनुकरण में पार्श्व की ओर फैलाई हुई, मान में ऊपर की ओर फैलाई हुई और भूमि पर किसी वस्तु को दिखाने में नीचे फैलाई हुई सरल बाँह योजित होती हैं।

सिंह० की टीका में 'पक्षानुकृतौ' के स्थान पर 'प्रज्ञाकृते' है। उसके आधार पर पादटिप्पणी में 'स स्यात्प्रज्ञाकृते माने' पाठ सुझाया गया है।

यह सरल है। (१४)

(आन्दोलितः—१५)

गतावान्दोलितोऽन्वर्थः,

इत्यान्दोलितः (१५)

आन्दोलित—१५

३४७ क. (अ०) **गतौ** चलते हुए (चलते समय आगे-पीछे आती-जाती हुई) **आन्दोलितः** आन्दोलित **अन्वर्थः** अन्वर्थ (है)।

यह आन्दोलित है। (१५)

(उत्सारितः—१६)

बाहुरुत्सारितः पुनः।
स्वपार्श्वमन्यतो गच्छञ्जनतोत्सारणे भवेत्॥ ३४७॥

इत्युत्सारितः (१६)

इति षोडशविधो बाहुः

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उत्सारित—१६

३४७ ख-घ. (अ०) उत्सारितः बाहुः पुनः और उत्सारित बाँह **अन्यतः स्वपार्श्वं गच्छन्** दूसरी (बाजू की ओर) से अपनी बाजू की ओर जाने वाली (होती है)। **जनता उत्सारणे** लोगों को हटाने में **भवेत्** (प्रयुक्त) होती है।

यह उत्सारित है। (१६)

ये बाँह के सोलह भेद हैं।

(वर्तनाः)

अथ वर्तनाः—

बाहूनां करणेनाथ समस्तव्यस्तयोजनात्।
क्रमाद्द्रुतादिवैचित्र्याज्जायन्तेऽत्र सहस्त्रशः॥ ३४८॥

वर्तनाश्चतुरैरूह्यास्ताः शोभाभरसंभृताः।

वर्तना

३४८-३४९ ख. (अ०) अथ वर्तनाः अब वर्तनाएँ—

बाहूनां बाँहों की **करणेन अथ** करण के साथ **समस्तव्यस्तयोजनात्** मिलकर या अलग-अलग (एक-एक की) योजना से, **क्रमात्** क्रम से, **द्रुत-आदिवैचित्र्यात्** द्रुत आदि (लयों) के वैचित्र्य से **अत्र** यहाँ (नर्तन में) **सहस्त्रशः वर्तनाः** हज़ारों वर्तनाएँ **जायन्ते** उत्पन्न होती हैं। **चतुरैः** चतुरों के द्वारा **शोभाभरसंभृताः ताः** अत्यधिक शोभासंपन्न वे (वर्तनाएँ) **ऊह्याः** अनुमान (अथवा युक्ति) द्वारा समझ लेनी चाहियें।

(सर०) कल्लि० ने स्पष्ट किया कि सोलह प्रकार की बाहुओं को करणों यानी आवेष्टित आदि व्यापारों के साथ अकेले-अकेले या अनेक मिलकर यानी मिश्रण से, द्रुत आदि लयों के वैचित्र्य यानी यतियों (समा, स्रोतोगता आदि) के प्रयोग से सहस्त्रों वर्तना उत्पन्न हो जाती हैं। प्रयोक्ता को समझ लेनी चाहियें—इससे ग्रन्थकार का आशय, कल्लि० के अनुसार, यह है कि शार्ङ्गदेव ने इनका निरूपण नहीं किया, प्रयोक्ता पर छोड़ दिया।

ग्रन्थकार ने वर्तना के प्रकारों का निरूपण तो नहीं किया लेकिन प्रत्यंगों के निरूपण में बाहु और जठर प्रत्यंगों के बीच वर्तना का महत्त्वपूर्ण उल्लेख अवश्य किया है (जो अभि० से प्रभावित है) क्योंकि वह नर्तन की महत्त्वपूर्ण धारणा और प्रयोग की वस्तु थी।

एक करण से दूसरे करण में जाने का ढंग हर प्रयोक्ता का अपना-अपना हो सकता है और तदनुरूप सहस्त्रों वर्तना हो सकती हैं। इसीलिये ग्रन्थकार ने उनके भेद या लक्षण नहीं कहे। लेकिन टीकाकार के रूप में कल्लि० ने पूर्वाचार्य कोहल के ग्रन्थ से चौबीस प्रकार की वर्तनाओं के लक्षण उद्धृत किये हैं।

ते रेखामनतिक्रम्य भूरिभङ्गिभृतो भुजाः॥ ३४९॥

रेच्यन्ते यदि लक्ष्यज्ञैश्चालकाः कीर्तितास्तदा।

३४९ ग-३५० ख. (अ०) ते भुजाः वे (सोलह) बाँह **रेखाम् अनतिक्रम्य** शोभा का अतिक्रमण न करते हुए (अर्थात् शोभासंपन्न रहकर) **यदि भूरिभङ्गिभृतः** यदि अनेक भंगियों से भरी हुई **रेच्यन्ते** (चलनात्मक होकर) रेचित होती हैं (अलग-अलग की जाती हैं) **तदा** तो (वे) **लक्ष्यज्ञैः** लक्ष्य के ज्ञाताओं के द्वारा **चालकाः कीर्तिताः** चालक कहे गये हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) **रेच्यन्ते** को कल्लि० ने 'चलनात्मक होकर अलग-अलग की जाती हैं'—यों चालन के आश्रित होने के कारण चालक संज्ञा मानी जाती है यह कहा। वे लक्ष्य में प्रसिद्ध हैं इसलिये वहाँ से समझ लेना चाहिये—इस आशय से ग्रन्थकार ने उनका यहाँ निरूपण नहीं किया। शार्दूल मुनि द्वारा पूछने पर कोहल ने उत्तर में चालकों का जो निरूपण किया उसे कल्लि० ने 'संगीतमेरु' नामक ग्रन्थ से उद्धृत किया है। उसके शुरू में ही कहा गया है कि वाद्य (यानी वादन) में होने वाली मनोहारी क्रिया चालन कही जाती है जिसके बिना नृत्त निष्प्राण शरीर जैसा होता है, यह निश्चित है।

ओतावत्सरिगोणीनां पदस्य मलपस्य च॥ ३५०॥

गजरोपशमस्यान्ते खण्डेऽप्येलादिगामिनि।
सालगस्थध्रुवाद्यन्ते यच्च प्रहरणं भवेत्॥ ३५१॥

तदन्तखण्डेऽन्यत्रापि प्रोद्धते तुण्डकैशिके।
कवितेऽपि प्रयोज्यास्ते नान्यत्रेत्यूचिरे परे॥ ३५२॥

(इति वर्तनाः चालकाश्च)

इति बाहुप्रकरणम्

३५० ग-३५२. (अ०) **ओतावत्** ओता की तरह **स-रिगोणीनां** रिगोणी सहित **पदस्य मलपस्य च** पद और मलप के, **गजर-उपशमस्य अन्ते खण्डे** गजर (और) उपशम के अन्तिम खंड में, **एला-आदिगामिनि अपि** एला आदि में जाने (रहने) वाले (अंतिम खंडों) में भी, **सालगस्थध्रुव-आदि अन्ते** सालग में स्थित ध्रुव आदि (सूड प्रबन्धों) के अन्त (अन्तिम खंड) में **यत् च प्रहरणं भवेत्** और जो प्रहरण (वाद्यप्रबन्ध) होता है **तत् अन्तखण्डे** उसके अन्तिम खंड में **ते** वे (चालक, योजित होते हैं)।

परे दूसरे (आचार्यों ने) **ऊचिरे** कहा है (कि) **अन्यत्र अपि** अन्यत्र भी (अर्थात् ध्रुव आदि के अंतिम खंड के अतिरिक्त) **तुण्डकैशिके** तुंडकैशिक (तुंड अर्थात् मुख यानी आरंभ, कैशिक अर्थात् सुकुमार) यानी सुकुमार आरंभ में **प्र-उद्धते** (और बाद में) उद्धत (गीतखंड) में **कविते अपि** और कवित (वाद्यप्रबंध) में **प्रयोज्याः** प्रयोग करने चाहियें, **न अन्यत्र** अन्यत्र नहीं (अर्थात् सुकुमार अंश में नहीं)।

(सर०) ग्रन्थकार ने इन श्लोकों में यह निर्देश किया है कि चालकों का प्रयोग कहाँ करना चाहिये और कहाँ नहीं।

ओता, रिगोणी, पद, मलप, गजर, उपशम, प्रहरण, कवित्त आदि अवनद्ध वाद्यों के प्रबन्ध (बँधी हुई रचनाएँ) हैं जिनका निरूपण सं०र० के तीसरे खण्ड में वाद्याध्याय के अन्तर्गत वाद्यप्रबन्धों में किया जा चुका है। एलादि (गेय) शुद्ध सूडप्रबन्ध हैं। उनका और ध्रुव आदि सालगसूड प्रबन्धों का निरूपण सं०र० के दूसरे खण्ड में प्रबन्धाध्याय में हो चुका है। इन वाद्यप्रबन्धों और गीतप्रबन्धों के अन्तिम खण्डों में ही चालक प्रयुक्त होते हैं क्योंकि चालकों का सीधा संबंध उद्धत वादन और उद्धत नृत्त से है।

तुण्डकैशिके और **प्रोद्धते** पर कल्लि० की टीका के अनुसार 'तुण्ड' का अर्थ है मुख और यहाँ आशय गीत के शुरू के खण्ड से है। 'कैशिक' का अर्थ सुकुमार है और उद्धत यानी ज़ोरदार। कल्लि० ने यह स्पष्ट किया कि **प्रोद्धते तुण्डकैशिके** से यह समझना चाहिये कि गीत के सुकुमार खण्ड को छोड़कर उद्धत खण्ड में ही चालकों का प्रयोग किया जाना चाहिये, ग्रन्थकार का यह आशय है। टीकाकार के अनुसार किसी गीत में शुरू का खण्ड सुकुमार और अंतिम खण्ड उद्धत होता है और किसी में मुख की पहली आवृत्ति सुकुमार होती है और क्रम से अंतिम आवृत्ति उद्धत होती है। इन दोनों ही स्थितियों में चालक उद्धत भाग में ही प्रयुक्त करने चाहियें। इस प्रकार चालक दीप्त नर्तन का ही विषय है।

(ये वर्तना और चालक हैं)।

बाहु प्रकरण समाप्त

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(प्रत्यङ्गे ३, ४—पृष्ठं जठरश्च)

पृष्ठं तु जठरोक्ताभिर्वर्तनाभिर्विवर्तते।
अतो न तत्पृथग्वाच्यं जठरं तूच्यतेऽधुना॥ ३५३॥

क्षामं खल्लं तथा पूर्णं त्रेधा जठरमिष्यते।

प्रत्यंग ३, ४—पीठ और पेट

३५३-३५४ ख. (अ०) पृष्ठं तु पीठ तो जठर-उक्ताभिः वर्तनाभिः पेट के लिये कही गई वर्तनाओं से (ही) विवर्तते विशेष रूप में (पेट की वर्तनाओं को ही उलटने से) प्राप्त हो जाती हैं। अतः इसलिये तत् वह पृथक् न वाच्यम् अलग से नहीं कहते (कहने की आवश्यकता नहीं है)। जठरं तु पेट तो अधुना उच्यते अब कहता हूँ। क्षाम, खल्ल और पूर्ण जठरं त्रेधा इष्यते पेट तीन प्रकार का माना जाता है।

(क्षामम्—१)

क्षामं स्यान्नमनाज्जृम्भाहास्यनिश्वासरोदने॥ ३५४॥

इति क्षामम् (१)

क्षाम—१

३५४ ग-घ. (अ०) क्षामं क्षाम नमनात् स्यात् झुकने से होता है। जृम्भाहास्य-निश्वासरोदने जम्हाई, हास्य, निःश्वास और रोने में (योजित होता है)।

यह क्षाम है। (१)

(खल्लम्—२)

निम्नं खल्लं क्षुधार्ते स्यादातुरे श्रमकर्शिते।
वेतालभृङ्गिरिट्यादिजठराकारधारि तत्॥ ३५५॥

इति खल्लम् (२)

खल्ल—२

३५५. (अ०) निम्नं खल्लं नीचा (नीचे झुका हुआ पेट) खल्ल (होता है)। तत् वह क्षुधा-आर्ते भूख से पीड़ित, आतुरे रोगी (अथवा दुर्बल), श्रमकर्शिते श्रम से थके हुए में स्यात् (योजित) होता है। वेतालभृङ्गिरिटि-आदिजठर-आकारधारि वेताल, भृङ्गिरिटि (शिवजी के एक कुरूप गण) आदि के पेट का आकार धारण करने वाले में (योजित होता है)।

यह खल्ल है। (२)

(पूर्णम्—३)

पूर्णं स्थूलं व्याधिते स्यात्तुन्दिलेऽत्यशिते तथा।

इति पूर्णम् (३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पूर्ण—३

३५६ क-ख. (अ०) स्थूलं स्थूल (पेट) पूर्णं पूर्ण होता है। व्याधिते (वह) रोग से ग्रस्त, तुन्दिले बड़े पेट वाले तथा अति-अशिते और बहुत खाये हुए (की अभिव्यक्ति) में स्यात् (योजित) होता है।

यह पूर्ण है। (३)

(रिक्तपूर्णम्—४)

अन्येऽन्वर्थं रिक्तपूर्णं श्वासरोगेऽपरं जगुः॥ ३५६॥

इति रिक्तपूर्णम् (४)

इति चतुर्धोदरम्

रिक्तपूर्ण—४

३५६ ग-घ. (अ०) अन्ये अन्य (आचार्य) अन्वर्थम् अर्थ के अनुसार (नाम वाला) अपरम् एक और (पेट) रिक्तपूर्णं रिक्तपूर्ण श्वासरोगे श्वास रोग में जगुः कहते हैं।

(सर०) कल्लि० ने श्लोक ३५३ ख में आये विवर्तते का आशय पेट के इन चार प्रकारों के संदर्भ में इस तरह समझाया है। यदि पेट क्षाम हो तो पीठ अपने आप अक्षाम होती है, यदि पेट खल्ल हो तो पीठ पूर्ण होती है, अगर पेट पूर्ण हो तो पीठ खल्ल होती है और पेट रिक्तपूर्ण होने की स्थिति में पीठ की पूर्ण रिक्तता होती है।

यह रिक्तपूर्ण है। (४)

यह चार प्रकार का पेट है।

(प्रत्यङ्गम् ५—ऊरुः)

कम्पितो वलितः स्तब्धोद्वर्तितौ च निवर्तितः।
इत्यूरुः पञ्चधा,

प्रत्यंग ५—जाँघ

३५७ क-ग. (अ०) कंपित, वलित, स्तब्ध, उद्वर्तित और निवर्तित इति यों पञ्चधा ऊरुः पाँच प्रकार की जाँघ (होती है)।

(सर०) ऊरुः संस्कृत में पुल्लिंग शब्द है। लेकिन जाँघ हिन्दी में स्त्रीलिंग है इसलिये तदनुसार अनुवाद किया है।

(कम्पितः—१)

तत्र मुहुः पार्श्वे नतोन्नते॥ ३५७॥
यस्यासौ कम्पितो ज्ञेयोऽधमानां गमने च सः।

इति कम्पितः (१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कंपित—१

३५७ घ-३५८ ख. (अ०) तत्र उनमें से यस्य पार्श्वे जिसकी दोनों बाजुएँ मुहुः बार-बार नत-उन्नते नीचे-ऊपर (होती हों) असौ यह (वह) कम्पितः ज्ञेयः कंपित (जाँघ) जानी जाती है सः च और वह अधमानां गमने अधम (पात्रों) के चलने में (योजित होती है)।

यह कंपित है। (१)

(वलितः—२)

वलितोऽन्तर्गते जानुन्यूरुः स्वैरगतौ स्त्रियाः॥ ३५८॥

इति वलितः (२)

वलित—२

३५८ ग-घ. (अ०) अन्तर्गते जानुः भीतर (की ओर) गया हुआ (मुड़ा हुआ) घुटना (होने पर) वलितः ऊरुः वलित जाँघ (है)। स्त्रियाः स्वैरगतौ स्त्रियों की स्वच्छन्द गति में (योजित होती है)।

यह वलित है। (२)

(स्तब्धः—३)

स्तब्धस्तु निष्क्रियः स स्याद्विषादे साध्वसे तथा।

इति स्तब्धः (३)

स्तब्ध—३

३५९ क-ख. (अ०) स्तब्धः तु स्तब्ध तो निष्क्रियः क्रियारहित (निश्चेष्ट होती है)। सः वह विषादे विषाद तथा साध्वसे स्यात् और भय में (योजित) होती है।

यह स्तब्ध है। (३)

(उद्वर्तितः—४)

पार्ष्णोरन्तर्बहिःक्षेपात्क्षेपादग्रतलस्य च॥ ३५९॥

मुहुरुद्वर्तितः स स्याद्व्यायामे ताण्डवे तथा।

इत्युद्वर्तितः (४)

उद्वर्तित—४

३५९ ग-३६० ख. (अ०) पार्ष्णोः एड़ी के मुहुः बार-बार अन्तः बहिः क्षेपात् अन्दर (और) बाहर आने-जाने अग्रतलस्य क्षेपात् च और तलुए के आगे के भाग के क्षेप से उद्वर्तितः उद्वर्तित (जाँघ) होती है। सः वह व्यायामे तथा ताण्डवे व्यायाम में और तांडव (नृत्य) में स्यात् (योजित) होती है।

यह उद्वर्तित है। (४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(निवर्तितः—५)

निवर्तितोऽन्तर्गतया पार्ष्ण्या स्यात्संभ्रमे श्रमे॥ ३६०॥

इति निवर्तितः (५)

इति पञ्चधोरुः

निवर्तित—५

३६० ग-घ. (अ०) अन्तर्गतया पार्ष्ण्या भीतर (की ओर) मुड़ी हुई एड़ी से निवर्तितः निवर्तित (जाँघ होती है)। संभ्रमे श्रमे स्यात् संभ्रम और श्रम में (योजित) होती है।

यह निवर्तित है। (५)

ये जाँघ के पाँच प्रकार हैं।

(प्रत्यङ्गम् ६—जङ्घा)

आवर्तिता नता क्षिप्तोद्वाहिता परिवर्तिता।
इति पञ्चविधा जङ्घा शार्ङ्गदेवेन कीर्तिता॥ ३६१॥

निःसृता च परावृत्ता तिरश्चीना बहिर्मता।
कम्पितेत्यपराः पञ्च जङ्घाः संचक्षते परे॥ ३६२॥

प्रत्यंग ६—टाँग

३६१-३६२. (अ०) आवर्तिता, नता, क्षिप्ता, उद्वाहिता (और) परिवर्तिता इति पञ्चविधा जङ्घा ये पाँच प्रकार की टाँग शार्ङ्गदेवेन कीर्तिता शार्ङ्गदेव के द्वारा कही गई हैं। परे दूसरे (आचार्य) निःसृता, परावृत्ता, तिरश्चीना, बहिर्गता और कंपिता इति ये अपराः पञ्च जङ्घाः अन्य पाँच (प्रकार की) टाँग संचक्षते कहते हैं।

(आवर्तिता—१)

वामे दक्षिणतः पादे दक्षिणे वामतः कृते।
मुहुरावर्तिता प्रोक्ता विदूषकपरिक्रमे॥ ३६३॥

इत्यावर्तिता (१)

आवर्तिता—१

३६३. (अ०) वामे पादे दक्षिणतः बायाँ पैर दाहिनी ओर (और) दक्षिणे वामतः दाहिना बाईं ओर मुहुः कृते बार-बार करने पर आवर्तिता प्रोक्ता आवर्तिता (टाँग) कही गई है। विदूषकपरिक्रमे (वह) विदूषक की परिक्रमा (इधर-उधर चलने) में (योजित करनी चाहिये)।

यह आवर्तिता है। (१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(नता—२)

नमज्जानुर्नता जङ्घा स्थानासनगतादिषु।

इति नता (२)

नता—२

३६४ क-ख. (अ०) नमत् जानुः झुके हुए घुटने वाली नता जङ्घा नता (टाँग) है। स्थान-आसनगत-आदिषु (वह) स्थान, आसन, गमन आदि में (योजित करनी चाहिये)।

यह नता है। (२)

(क्षिप्ता—३)

बहिर्विक्षेपतः क्षिप्ता व्यायामे ताण्डवे च सा॥ ३६४॥

इति क्षिप्ता (३)

क्षिप्ता—३

३६४ ग-घ. (अ०) बहिः विक्षेपतः बाहर फेंकने से क्षिप्ता क्षिप्ता (होती है) सा च और वह व्यायामे ताण्डवे व्यायाम और ताण्डव में (योजित करनी चाहिये)।

यह क्षिप्ता है। (३)

(उद्वाहिता—४)

ऊर्ध्वं नीतोद्वाहिता स्यादाविष्टगमनादिषु।

इत्युद्वाहिता (४)

उद्वाहिता—४

३६५ क-ख. (अ०) ऊर्ध्वं नीता ऊपर ले जाई गई उद्वाहिता उद्वाहिता (है)। आविष्ट-गमन-आदिषु (भूत-प्रेत आदि से) घिरे हुए के चलने आदि में स्यात् होती है।

(सर०) सिंह० की टीका में 'आविष्टगमनादिषु' के बजाय 'कुपितगमनादिषु' दिया है जिसका अर्थ है कुपित हुए की गति आदि में।

यह उद्वाहिता है। (४)

(परिवर्तिता—५)

प्रतीपं गच्छतो जङ्घा ताण्डवे परिवर्तिता॥ ३६५॥

इति परिवर्तिता (५)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परिवर्तिता—५

३६५ ग-घ. (अ०) प्रतीपं गच्छतः जङ्घा विपरीत जाने वाली टाँग परिवर्तिता परिवर्तिता (होती है)। ताण्डवे (वह) ताण्डव में (योजित होती है)।

यह परिवर्तिता है। (५)

(निःसृता—६)

पुरः प्रसारिता जङ्घा निःसृता परिकीर्तिता।

इति निःसृता (६)

निःसृता—६

३६६ क-ख. (अ०) पुरः प्रसारिता जङ्घा सामने फैलाई हुई टाँग निःसृता परिकीर्तिता निःसृता कही गई है।

यह निःसृता है। (६)

(परावृत्ता—७)

पश्चाद्‌गता परावृत्ता भूमिलग्नेन जानुना॥ ३६६॥

वामेन पितृकार्ये स्यादन्येन सुरकर्मणि।

इति परावृत्ता (७)

परावृत्ता—७

३६६ ग-३६७ ख. (अ०) भूमिलग्नेन जानुना भूमि से लगे हुए (टिकाए हुए) घुटने से (घुटना टिका कर बैठ कर) पश्चात्-गता पीछे मुड़ी हुई परावृत्ता परावृत्ता (होती है)। वामेन बायें से (बायाँ टिका कर बैठने से) पितृकार्ये पितरों के (लिये किये जाने वाले) कार्य में (और) अन्येन दूसरे (दाहिना टिका कर बैठने) से सुरकर्मणि देवताओं के कार्य में स्यात् (योजित) होती है।

यह परावृत्ता है। (७)

(तिरश्चीना—८)

भूमिलग्नबहिःपार्श्वा तिरश्चीनासने मता॥ ३६७॥

इति तिरश्चीना (८)

तिरश्चीना—८

३६७ ग-घ. (अ०) भूमिलग्नबहिःपार्श्वा भूमि से लगी हुई बाहरी बाजू वाली तिरश्चीना तिरश्चीना (होती है)। आसने मता (वह) आसन में मानी गई है।

यह तिरश्चीना है। (८)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(बहिर्गता—९)

बहिर्गता मता जङ्घा नृत्ते पार्श्वप्रसारिता।

इति बहिर्गता (९)

बहिर्गता—९

३६८ क-ख. (अ०) **पार्श्वप्रसारिता जङ्घा** बाजू की ओर फैलाई हुई टाँग **बहिर्गता मता** बहिर्गता मानी गई है। **नृत्ते** (वह) नृत्त में (योजित होती है)।

यह बहिर्गता है। (९)

(कम्पिता—१०)

कम्पनात्कम्पिता भीतौ कार्या घर्घरिकाध्वनौ॥ ३६८॥

इति कम्पिता (१०)

इति दशधा जङ्घा

कंपिता—१०

३६८ ग-घ. (अ०) **कम्पनात् कम्पिता** कंपन से (अर्थात् कंपित होती हुई) कंपिता (होती है)। **भीतौ** (वह) डर में **घर्घरिकाध्वनौ** (और) घुँघरू की ध्वनि (निकालने) में **कार्या** (योजित) करनी चाहिये।

यह कंपिता है। (१०)

ये टाँग के दस प्रकार हैं।

(प्रत्यङ्गम् ७—मणिबन्धः)

पञ्चधा मणिबन्धः स्यान्निकुञ्चाकुञ्चितौ चलः।
भ्रामितः सम इति,

प्रत्यंग ७—कलाई

३६९ क-ग. (अ०) निकुंच, आकुंचित, चल, भ्रामित (और) सम इति यह **पञ्चधा मणिबन्धः स्यात्** पाँच प्रकार की कलाई होती है।

(सर०) संस्कृत मणिबन्ध पुल्लिंग है, कलाई स्त्रीलिंग है। अनुवाद हिन्दी के अनुसार किया है।

(निकुञ्चः—१)

अत्र निकुञ्चस्तु स उच्यते॥ ३६९॥

यो बहिर्निम्नतां नीतः स दानाभयदानयोः।

इति निकुञ्चः (१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

निकुंच—१

३६९ घ-३७० ख. (अ०) **निकुञ्चः** तु निकुंच तो **सः** उच्यते वह कहा जाता है **यः** जो **बहिः** बाहर की ओर **निम्नतां नीतः** नीचे गया हुआ हो (किया हुआ हो)। **सः** वह **दान-अभयदानयोः** दान और अभयदान में (योजित होता है)।

यह निकुंच है। (१)

(आकुञ्चितः—२)

आकुञ्चितोऽन्तर्निम्नोऽसौ कार्योऽपसरणे बुधैः॥ ३७०॥

इत्याकुञ्चितः (२)

आकुंचित—२

३७० ग-घ. (अ०) **अन्तः निम्नः** भीतर की ओर नीची **आकुञ्चितः** आकुंचित (कलाई होती है)। **बुधैः** बुधजनों के द्वारा **असौ** यह **अपसरणे कार्यः** आगे जाने में (योजित) करनी चाहिये।

यह आकुंचित है। (२)

(चलः—३)

निकुञ्चाकुञ्चिताभ्यासाच्चलमावाहने विदुः।

इति चलः (३)

चल—३

३७१ क-ख. (अ०) **निकुञ्च-आकुञ्चित-अभ्यासात्** निकुंच और आकुंचित बार-बार करने से **चलः** चल (कलाई होती है)। **आवाहने विदुः** आवाहन में जानी जाती है।

यह चल है। (३)

(भ्रामितः—४)

भ्रामितो भ्रमणात्खड्गच्छुरिकाभ्रामणादिषु॥ ३७१॥

इति भ्रामितः (४)

भ्रामित—४

३७१ ग-घ. (अ०) **भ्रमणात्** गोलाकार घूमने से **भ्रामितः** भ्रामित (कलाई होती है)। **खड्ग-छुरिकाभ्रामण-आदिषु** (वह) तलवार, छुरी घुमाने आदि में (योजित होती है)।

यह भ्रामित है। (४)

(समः—५)

ऋजुः समः पुस्तकस्य धारणे च प्रतिग्रहे।

इति समः (५)

इति पञ्चधा मणिबन्धः

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सम—५

३७२ क-ख. (अ०) **ऋजुः** सरल (सीधी रहने वाली) **समः** सम (कलाई होती है)। **पुस्तकस्य धारणे** पुस्तक धारण करने **प्रतिग्रहे च** और (वस्तु) स्वीकार करने में (योजित होती है)।

यह सम है। (५)

ये कलाई के पाँच प्रकार हैं।

(प्रत्यङ्गम् ८—जानु)

संहतं कुञ्चितं चार्धकुञ्चितं नतमुन्नतम्॥ ३७२॥
विवृतं सममित्यूचे जानु सप्तविधं बुधैः।

प्रत्यंग ८—घुटना

३७२ ग-३७३ ख. (अ०) संहत, कुंचित, अर्धकुंचित, नत, उन्नत, विवृत और सम **इति सप्तविधं जानु** यह सात प्रकार का घुटना **बुधैः** बुद्धिमानों के द्वारा **ऊचे** कहा गया है।

(संहतम्—१)

श्लिष्टान्यज्जानु जानूक्तं ह्रीरोषेर्ष्यासु संहतम्॥ ३७३॥

इति संहतम् (१)

संहत—१

३७३ ग-घ. (अ०) **श्लिष्ट-अन्यत्-जानु** दूसरे घुटने से जुड़ा हुआ **संहतं जानु** संहत घुटना **उक्तं** कहा गया है। **ह्री-रोष-ईर्ष्यासु** लज्जा, रोष और ईर्ष्या में (योजित होता है)।

यह संहत है। (१)

(कुञ्चितम्—२)

जानु लग्नोरुजङ्घं तु भवेत्कुञ्चितमासने।

इति कुञ्चितम् (२)

कुंचित—२

३७४ क-ख. (अ०) **लग्न-ऊरुजङ्घं तु** जाँघ और टाँग (एक दूसरे से) लगी (होने पर) तो **कुञ्चितं जानु भवेत्** कुंचित घुटना होता है। **आसने** (वह) आसन (डाल कर बैठने) में (प्रयुक्त होता है)।

यह कुंचित है। (२)

(अर्धकुञ्चितम्—३)

नितम्बनमनाज्जानु त्वर्धकुञ्चितमुच्यते॥ ३७४॥

इत्यर्धकुञ्चितम् (३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अर्धकुंचित—३

३७४ ग-घ. (अ०) **नितम्बनमनात्** नितंब झुकने से (होने वाला) **जानु तु** घुटना तो **अर्धकुञ्चितम् उच्यते** अर्धकुंचित कहा जाता है।

यह अर्धकुंचित है। (३)

(नतम्—४)

महीगतं नतं जानु मतं पाते नमस्कृतौ।

इति नतम् (४)

नत—४

३७५ क-ख. (अ०) **महीगतं जानु** भूमि पर टिकाया हुआ घुटना **नतं मतं** नत माना गया है। **पाते नमस्कृतौ** गिरने और नमस्कार करने में (योजित होता है)।

यह नत है। (४)

(उन्नतम्—५)

स्तनक्षेत्रगतं जानून्नतं शैलाधिरोहणे॥ ३७५॥

इत्युन्नतम् (५)

उन्नत—५

३७५ ग-घ. (अ०) **स्तनक्षेत्रगतं जानु** स्तनक्षेत्र में गया हुआ घुटना **उन्नतम्** उन्नत (माना गया है)। **शैल-अधिरोहणे** पर्वत पर चढ़ने में (योजित होता है)।

यह उन्नत है। (५)

(विवृतम्—६)

गजारोहे तु विवृतं जानुद्वन्द्वं बहिर्गतम्।

इति विवृतम् (६)

विवृत-६

३७६ क-ख. (अ०) **जानुद्वन्द्वं** दोनों घुटने **बहिर्गतं** बाहर (की ओर) गये हुए (हों तो) **विवृतं** विवृत (होता है)। **गज-आरोहे** हाथी पर चढ़ने में (बैठने में) (योजित होता है)।

यह विवृत है। (६)

(समम्—७)

समं स्वाभाविकं जानु स्वभावावस्थितौ भवेत्॥ ३७६॥

इति समम् (७)

इति सप्तविधं जानु

इति जानु प्रकरणम्

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सम—७

३७६ ग-घ. (अ०) **स्वाभाविकं जानु** स्वाभाविक (स्थिति में रहा हुआ) घुटना **समं** सम (होता है)। **स्वभाव-अवस्थितौ भवेत्** स्वाभाविक अवस्था में (योजित) होता है।

यह सम है। (७)

ये घुटने के सात प्रकार हैं।

जानु प्रकरण समाप्त

(प्रत्यङ्गम् ९—भूषणम्)

तत्तद्वेषजुषो भूषा भूषणानीति मन्वते।

इति भूषणम् (९)

इति नव प्रत्यङ्गानि

प्रत्यंग ९—भूषण

३७७ क-ख. (अ०) **तत् तत्वेशजुषः भूषा** उस-उस वेश के अनुकूल भूषा (अलंकरण) **भूषणानि इति मन्वते** भूषण के रूप में मानते हैं।

यह भूषण है। (९)

नौ प्रत्यंग समाप्त

(उपाङ्गानि)

(तत्र शिरसः उपाङ्गानि)

(उपाङ्गम् १—दृष्टिः)

कान्ता हास्या च करुणा रौद्री वीरा भयानका॥ ३७७॥

बीभत्सा चाद्भुतेत्यष्टौ द्रष्टव्या रसदृष्टयः।
स्निग्धा हृष्टा तथा दीना क्रुद्धा दृप्ता भयान्विता॥ ३७८॥

जुगुप्सिता विस्मितेति दृशोऽष्टौ स्थायिभावजाः।
स्थायिष्वव्यभिचारित्वं प्राप्तेषु स्थायिदृष्टयः॥ ३७९॥

शून्या च मलिना श्रान्ता लज्जिता शङ्किता तथा।
मुकुला चार्धमुकुला ग्लाना जिह्मा च कुञ्चिता॥ ३८०॥

वितर्किताभितप्ता च विषण्णा ललिताभिधा।
आकेकरा विकोशा च विभ्रान्ता विप्लुता परा॥ ३८१॥

त्रस्ता च मदिरेत्येता व्यभिचारिषु विंशतिः।
सर्वास्ता मिलिताः सत्यः षट्त्रिंशद्दृष्टयो मताः॥ ३८२॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उपांग

सिर के उपांग

उपांग १—दृष्टि

३७७ ग-३८२. (अ०) कान्ता, हास्या, करुणा, रौद्री, वीरा, भयानका, बीभत्सा और अद्‌भुता **इति अष्टौ** ये आठ **रसदृष्टयः द्रष्टव्याः** रसदृष्टियाँ समझनी चाहियें।

स्निग्धा, हृष्टा, दीना, क्रुद्धा, दृप्ता, भयान्विता, जगुप्सिता, विस्मिता **इति अष्टौ** ये आठ **स्थायिभावजः** स्थायी भाव से उत्पन्न होने वाली **दृशः** दृष्टियाँ (हैं)।

स्थायिषु स्थायी (भावों) में **अव्यभिचारित्वं प्राप्तेषु** व्यभिचारी स्वरूप प्राप्त न करने वाली (दृष्टियाँ) **स्थायिदृष्टयः** स्थायी दृष्टि (होती हैं)।

शून्या, मलिना, श्रान्ता, लज्जिता, शंकिता, मुकुला, अर्धमुकुला, ग्लाना, जिह्मा, कुंचिता, वितर्किता, अभितप्ता, विषण्णा, ललिता, आकेकरा, विकोशा, विभ्रान्ता, विप्लुता, त्रस्ता, मदिरा **इति एताः** ऐसी ये **विंशतिः** बीस (दृष्टियाँ) **व्यभिचारिषु** व्यभिचारियों में (होती हैं)। **ताः सर्वाः** वे सब **मिलिताः सत्यः** मिलाने से **षट्‌त्रिंशत् दृष्टयः** छत्तीस दृष्टियाँ **मताः** मानी गई हैं।

(सर०) सिर के उपांगों के उद्देश (गिनाने) में सबसे पहले दृष्टि कही गई है। लक्षण-निरूपण में ग्रन्थकार ने यहाँ तीन प्रकार की दृष्टि कही है—रसदृष्टि, स्थायिदृष्टि और व्यभिचारिदृष्टि। यह समझ सकते हैं कि कान्ता आदि रसपरिपाक कराती हैं इसलिये रसदृष्टि कही गई हैं। स्निग्धा आदि जो दृष्टियाँ स्थायी भावों को पुष्ट करती हैं, सीधे रसावस्था तक नहीं ले जातीं वे स्थायी दृष्टि होती हैं और जो केवल व्यभिचारी भावों को पुष्ट करती हैं वे शून्या आदि व्यभिचारी दृष्टि होती हैं।

कल्लि० ने **स्थायिष्वव्यभिचारित्वं प्राप्तेषु स्थायिदृष्टयः** के अर्थ को इस रूप में स्पष्ट किया है। स्निग्धा आदि स्थायी दृष्टियाँ हैं। रति इत्यादि को व्यभिचारी भाव प्राप्त हो तो उनका शृंगार आदि रस तक न जाकर दूसरे विरोधी भावों से बाधित होना संभव है। रति आदि का स्थायी स्वरूप होने से स्निग्धा आदि स्थायी दृष्टि होती हैं अन्यथा उन्हें व्यभिचारित्व प्राप्त हो जाने से वे व्यभिचारी दृष्टि ही होंगी।

(क—रसदृष्टयः)

(कान्ता—१)

आपिबन्तीव दृष्यं या सविकासातिनिर्मला।
सभ्रूक्षेपकटाक्षा सा कान्ता मन्मथवर्धिनी॥ ३८३॥

यद्‌गतागतविश्रान्तिवैचित्र्येण विवर्तनम्।
तारकायाः कलाभिज्ञास्तं कटाक्षं प्रचक्षते॥ ३८४॥

इति कान्ता (१)

क—रसदृष्टियाँ

कान्ता—१

३८३-३८४. (अ०) **या** जो **दृश्यं** दृश्य को **आपिबन्ती-इव** पूरी तरह पीती हुई सी, **सविकासा** विकसित, **अतिनिर्मला** अत्यन्त निर्मल, **सभ्रूक्षेपकटाक्षा** भौंहों के संकोच सहित कटाक्ष से युक्त **सा** वह **कान्ता** कान्ता (दृष्टि होती है, जो) **मन्मथवर्धिनी** कामदेव (अर्थात् प्रेम) बढ़ाने वाली (होती है)।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यत् जो **गत-आगतविश्रान्तिवैचित्र्येण** जाने-आने (अर्थात् हलचल) की विश्रान्ति (स्थिरता) के वैचित्र्य से **तारकाया: विवर्तनं** (आँख की) पुतलियों का (सुन्दर) चलन (उसे) **कला-अभिज्ञाः** कला के ज्ञाता **कटाक्षं प्रचक्षते** कटाक्ष कहते हैं।

यह कान्ता है। (१)

(हास्या—२)

किंचिदन्तःसमाविष्टविचित्रभ्रान्ततारका।
आकुञ्चितपुटा मन्दमध्यतीव्रतया क्रमात्॥ ३८५॥
विस्मापनेऽभिनेतव्ये हास्या दृष्टिः प्रशस्यते।

इति हास्या (२)

हास्या—२

३८५-३८६ ख. (अ०) किंचित् कुछ **अन्तःसमाविष्टविचित्रभ्रान्ततारका** अन्दर की ओर गई हुई विचित्र रूप से घूमती हुई पुतलियों वाली **मन्दमध्यतीव्रतया क्रमात्** मन्द, मध्य और तीव्रता के क्रम से **आकुञ्चितपुटा** आकुंचित पलकों वाली **हास्या दृष्टिः** हास्या दृष्टि (होती है)। **विस्मापने अभिनेतव्ये** (वह) आश्चर्य निर्माण करने के अभिनय में **प्रशस्यते** प्रशंसित होती है।

यह हास्या है। (२)

(करुणा—३)

पतितोर्ध्वपुटा सास्त्रा शोकमन्थरतारका॥ ३८६॥
नासाग्रमेवानुगता करुणा दृष्टिरुच्यते।

इति करुणा (३)

करुणा—३

३८६ ग-३८७ ख. (अ०) पतित-ऊर्ध्वपुटा ऊपर की पलक नीचे गिरी हुई, **स-अस्त्रा** अश्रुयुक्त, **शोकमन्थरतारका** शोक से स्थिर हुई पुतलियों वाली, **नासा-अग्रम् एव अनुगता** नाक की नोक को ही गई हुई (अर्थात् नोक पर टिकी हुई) **करुणा दृष्टिः उच्यते** करुणा दृष्टि कही जाती है।

यह करुणा है। (३)

(रौद्री—४)

चकितद्विपुटा स्तब्धतारकात्यन्तलोहिता॥ ३८७॥
रूक्षा भृकुटिभीमोग्रा रौद्री दृष्टिरुदाहृता।

इति रौद्री (४)

रौद्री—४

३८७ ग-३८८ ख. (अ०) चकित द्विपुटा थरथराती हुई दोनों पलकों वाली, **स्तब्धतारका** स्तब्ध हुई पुतलियों वाली, **अत्यन्तलोहिता** अत्यन्त लाल, **रूक्षा** रूखी, **भृकुटिभीम-उग्रा** भौंहें अत्यन्त उग्र **रौद्री दृष्टिः उदाहृता** रौद्री दृष्टि कही गई है।

यह रौद्री है। (४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(वीरा—५)

अचञ्चला विकसिता गम्भीरा समतारका॥ ३८८॥

दीप्ता संकुचितापाङ्गा वीरा धीरैरुदाहृता।
औदार्यधैर्यगाम्भीर्यमाधुर्यललितान्यपि॥ ३८९॥

तेजः शोभाविलासाख्यानष्टौ भेदान् विवृण्वती।

इति वीरा (५)

वीरा—५

३८८ ग-३९० ख. (अ०) धीरैः विद्वानों के द्वारा अचञ्चला स्थिर, विकसिता विकसित, गम्भीरा गंभीर, समतारका सम पुतलियों वाली, दीप्ता दीप्त (और) संकुचित-अपाङ्गा संकुचित अपांग (आँख की बाहरी कोर) वाली (दृष्टि) वीरा उदाहृता वीरा कही गई है। (वह) औदार्यधैर्यगाम्भीर्यमाधुर्यललितानि अपि औदार्य, धैर्य, गांभीर्य, माधुर्य, ललित और तेजः शोभाविलास-आख्यान् तेज, शोभा, विलास नाम वाले अष्टौ भेदान् आठ भेदों को विवृण्वती प्रकट करने वाली है।

यह वीरा है। (५)

(भयानका—६)

ततोद्वृत्तपुटात्यन्तचञ्चलोद्वृत्ततारका॥ ३९०॥

दृश्यात्पलायमाने च भीत्या दृष्टिर्भयानका।

इति भयानका (६)

भयानका—६

३९० ग-३९१ ख. (अ०) तत-उद्वृत्तपुटा फैली हुई और ऊपर उठी हुई पलक वाली, अत्यन्तचञ्चल-उद्वृत्ततारका दृष्टिः अति कंपित (और) ऊपर उठी हुई पुतलियों वाली दृष्टि भयानका भयानका (होती है)। (वह) भीत्या डर से (के कारण) दृश्यात् पलायमाने दर्शनीय से पलायन करने (दूर भागने के अभिनय) में (योजित होती है)।

यह भयानका है। (६)

(बीभत्सा—७)

बीभत्सा स्यान्मिलल्लोलपक्ष्मा तरलतारका॥ ३९१॥

दृश्योद्वेगादपाङ्गौ च निकुञ्चितपुटौ श्रिता।

इति बीभत्सा (७)

बीभत्सा-७

३९१ ग-३९२ ख. (अ०) मिलत् लोलपक्ष्मा (एक दूसरे से) मिलती हुई चंचल पलकों वाली, तरलतारका चंचल पुतलियों वाली, दृश्य-उद्वेगात् अपाङ्गौ श्रिता दृश्य से (उत्पन्न) उद्वेग से आँख की बाहरी कोरों के आश्रित (अर्थात् कोरों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तक गई हुई) **निकुञ्चितपुटौ च** और सिकुड़ी हुई पलकों वाली **बीभत्सा स्यात्** बीभत्सा (दृष्टि) होती है।

यह बीभत्सा है। (७)

(अद्भुता—८)

प्रसन्ना स्निग्धशुक्लांशान्तर्बहिर्गामितारका॥ ३९२॥

ईषत्कुञ्चितपक्ष्माग्राद्भुतापाङ्गविकासिनी।

इत्यद्भुता (८)

अद्भुता—८

३९२ ग-३९३ ख. (अ०) **प्रसन्ना** प्रसन्न (हर्षयुक्त), **स्निग्धशुक्ल-अंशा** स्निग्ध व शुभ्र अंश (अपांग/चितवन) वाली, **अन्तः-बहिःगामितारका** भीतर-बाहर (अर्थात् दोनों ओर) जाती हुई पुतलियों वाली, **ईषत्** कुछ **कुञ्चितपक्ष्म-अग्रा** कुंचित पलक के सिरों वाली (और) **अपाङ्गविकासिनी** अपांग के विकास वाली **अद्भुता** अद्भुता (दृष्टि होती है)।

यह अद्भुता है। (८)

रसेष्वष्टसु शृङ्गारप्रमुखेषु क्रमादिमाः॥ ३९३॥

इष्यष्टौ रसदृष्टयः

३९३ ग-घ. (अ०) **शृङ्गारप्रमुखेषु** शृंगार (इत्यादि) प्रमुख **अष्टसु रसेषु** आठ रसों में **क्रमात्** क्रम से **इमाः** ये (दृष्टियाँ योजित करनी चाहियें)।

ये आठ रसदृष्टियाँ हैं।

(ख—स्थायिदृष्टयः)

रसदृष्टिर्भवेद्भावदृष्टिर्भावैरनुल्बणैः।

ख—स्थायी दृष्टियाँ

३९४ क-ख. (अ०) **अनुल्बणैः भावैः** अस्पष्ट (अच्छी तरह व्यक्त न हुए) भावों से **रसदृष्टिः भावदृष्टिः भवेत्** रसदृष्टि (ही) भावदृष्टि होती है।

(स्निग्धा—१)

विकासिस्निग्धा मधुरा चतुरे बिभ्रती भ्रुवौ॥ ३९४॥

कटाक्षिणी साभिलाषा दृष्टिः स्निग्धाभिधीयते।

अत्रैकभ्रूसमुत्क्षेपमाहुः कीर्तिधरादयः॥ ३९५॥

इति स्निग्धा (१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्निग्धा—१

३९४ ग-३९५. (अ०) **विकासिस्निग्धा** विकासी, स्निग्ध, **मधुरा** मधुर, **चतुरे भ्रुवो बिभ्रती** चतुर (कोमल भावभरी) भौंहे धारण करने वाली, **कटाक्षिणी** कटाक्षयुक्त (और) **स-अभिलाषा** अभिलाषा सहित **दृष्टिः** दृष्टि **स्निग्धा अभिधीयते** स्निग्धा कही जाती है। **अत्र** इसे **कीर्तिंधर-आदयः** कीर्तिंधर आदि (आचार्य) **एकभ्रूसम्-उत्क्षेपः आहुः** एक भौंह ऊपर उठाई हुई कहते हैं।

यह स्निग्धा है। (१)

(हृष्टा—२)

फुल्लगल्ला विशत्तारा किंचिदाकुञ्चिता चला।
निमेषिणी स्मिताकारा हृष्टा दृष्टिरुदाहृता॥ ३९६॥

इति हृष्टा (२)

हृष्टा—२

३९६. (अ०) **फुल्लगल्ला** विकसित गालों वाली, **विशत् तारा** अन्दर प्रवेश करती हुई पुतलियों वाली; **किंचित् आकुञ्चिता** कुछ आकुंचित, **चला** चंचल, **निमेषिणी** अपलक देखती हुई, **स्मित-आकारा** स्मितयुक्त **दृष्टिः** दृष्टि **हृष्टा उदाहृता** हृष्टा कही गई है।

यह हृष्टा है। (२)

(दीना—३)

या त्वर्धपतितोर्ध्वस्थपुटेषद्रुद्धतारका।
सबाष्पा मन्दसंचारा दीना दृष्टिरसौ मता॥ ३९७॥

इति दीना (३)

दीना—३

३९७. (अ०) **या तु** जो **अर्धपतिता** आधी नीचे झुकी हुई, **ऊर्ध्वस्थपुटा** ऊपर उठी हुई पलकों वाली, **ईषत् रुद्धतारका** कुछ रुद्ध पुतलियों वाली, **सबाष्पा** आँसू-युक्त, **मन्दसंचारा** मंद संचार वाली **असौ दृष्टिः** ऐसी दृष्टि **दीना मता** दीना मानी गई है।

यह दीना है। (३)

(क्रुद्धा—४)

स्थिरोद्वृत्तपुटां रूक्षां किंचित्तरलतारकाम्।
भ्रुकुटीकुटिलां दृष्टिं क्रुद्धां ब्रूते हरप्रियः॥ ३९८॥

इति क्रुद्धा (४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

क्रुद्धा—४

३९८. (अ०) स्थिर-उद्वृत्तपुटां स्थिर और ऊपर उठी हुई पलकों वाली, **रूक्षां** रूखी, **किंचित् तरलतारकां** कुछ चंचल पुतलियों वाली, **भ्रुकुटीकुटिलां** टेढ़ी भौंहों वाली **दृष्टिं** दृष्टि को **हरप्रियः** शंकरप्रिय (शार्ङ्गदेव) **क्रुद्धां ब्रूते** क्रुद्धा कहता है।

यह क्रुद्धा है। (४)

(दृप्ता—५)

सत्त्वमुद्गिरती दृष्टिर्दृप्ता विकसिता स्थिरा।

इति दृप्ता (५)

दृप्ता—५

३९९ क-ख. (अ०) सत्त्वम् उद्गिरती सत्त्व को बाहर निकालने वाली, **विकसिता** विकसित **स्थिरा दृष्टिः** (और) स्थिर दृष्टि **दृप्ता** दृप्ता (होती है)।

(सर०) सिंह० ने 'सत्त्व' की यह व्याख्या की है—संपत्ति और विपत्ति में चित्त का विकारत्व सत्त्व है।

यह दृप्ता है। (५)

(भयान्विता—६)

मध्यनिर्गमनोद्युक्तौ भावविस्फारितौ पुटौ॥ ३९९॥

तारके कम्पिते यस्याः सा स्याद्दृष्टिर्भयान्विता।

इति भयान्विता (६)

भयान्विता—६

३९९ ग-४०० ख. (अ०) मध्यनिर्गमन-उद्युक्तौ बीच का भाग बाहर जाने के लिये उत्सुक (तत्पर) **भावविस्फारितौ पुटौ** (और) भावों से फैली हुई पलकें **यस्याः** (और) जिसकी **तारके** पुतलियाँ **कम्पिते** कंपित हों **सा दृष्टिः** वह दृष्टि **भयान्विता स्यात्** भयान्विता (भय से युक्त) होती है।

यह भयान्विता है। (६)

(जुगुप्सिता—७)

अस्पष्टालोकिनी मीलत्तारका संकुचत्पुटा॥ ४००॥

दृश्यं दृष्ट्वा समुद्विग्ना दृष्टिरुक्ता जुगुप्सिता।

इति जुगुप्सिता (७)

जुगुप्सिता—७

४०० ग-४०१ ख. (अ०) अस्पष्ट-आलोकिनी अस्पष्ट देखने वाली, **मीलत् तारका** झुकी पुतलियों वाली, **संकुचत्**

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पुटा संकुचित पलकों वाली, दृश्यं दृष्ट्वा दृश्य (वस्तु) को देख कर सम्-उद्विग्ना उद्विग्न हुई दृष्टिः दृष्टि जुगुप्सिता उक्ता जुगुप्सिता कही गई है।

यह जुगुप्सिता है। (७)

(विस्मिता—८)

भरविस्फारिताकारपुटद्वन्द्वविकासिनी॥ ४०१॥

निश्चला दृष्टिरुद्वृत्ततारका विस्मिता स्मृता।

इति विस्मिता (८)

विस्मिता—८

४०१ ग-४०२ ख. (अ०) भरविस्फारित-आकारपुटद्वन्द्वविकासिनी अतिशय विस्तृत (फैले) हुए आकार वाली दोनों पलकों से विकासित, निश्चला निश्चल (अचंचल) उद्वृत्ततारका ऊपर उठी हुई पुतलियों वाली दृष्टिः दृष्टि विस्मिता स्मृता विस्मता कही गई है।

यह विस्मिता है। (८)

दृष्टयोऽष्टासु रत्यादिस्थायिभावेष्विमाः क्रमात्॥ ४०२॥

इत्यष्टौ स्थायिभावदृष्टयः

४०२ ग-घ. (अ०) इमाः दृष्टयः ये (आठ) दृष्टियाँ अष्टासु रति-आदिस्थायिभावेषु रति आदि आठ स्थायी भावों में क्रमात् क्रम से (होती हैं)।

(सर०) क्रम से होने का यह अर्थ है कि रति स्थायी भाव में स्निग्धा, हास में हृष्टा, शोक में दीना, क्रोध में क्रुद्धा, उत्साह में दृप्ता, भय में भयान्विता, जुगुप्सा में जुगुप्सिता और विस्मय में विस्मिता।

ये आठ स्थायीभाव दृष्टियाँ हैं।

(ग—व्यभिचारिदृष्टयः)

(शून्या—१)

समतारापुटा दृश्यदृष्टिशून्या विलोकिनी।
निष्कम्पा धूसरा शून्या चिन्तायां दृष्टिरिष्यते॥ ४०३॥

इति शून्या (१)

ग—व्यभिचारी दृष्टियाँ

शून्या—१

४०३. (अ०) समतारापुटा पुतलियाँ और पलकें सम, दृश्यदृष्टिशून्या विलोकिनी दृश्य पदार्थ (वस्तु) को शून्य दृष्टि से देखने वाली, निष्कम्पा निश्चल, धूसरा दृष्टिः धूसर (धूमिल) दृष्टि शून्या शून्या (होती है)। चिन्तायां इश्यते (वह) चिन्ता में मानी गई है।

यह शून्या है। (१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(मलिना—२)

दृश्यादपसृते तारे किंचिन्मुकुलितौ पुटौ।
दधत्यपाङ्गौ विच्छायौ पक्ष्माग्रस्पन्दने तथा॥ ४०४॥

दृष्टिः स्यान्मलिना स्त्रीणां विहृते सा प्रयुज्यते।
प्राप्ते कालेऽप्यसंलापः प्रियेण विहृतं मतम्॥ ४०५॥

इति मलिना (२)

मलिना—२

४०४-४०५. (अ०) दृश्यात् अपसृते तारे दृश्य (पदार्थ) से दूर हटी पुतलियों वाली, किंचित् मुकुलितौ पुटौ कुछ बन्द पलकों वाली, अपाङ्गौ विच्छायौ अपांग निष्प्रभ तथा पक्ष्म-अग्रस्पन्दने और पलकों के अग्र (बरौनियाँ) स्पन्दित (झपकते से) दधती दृष्टिः धारण करने वाली दृष्टि मलिना स्यात् मलिना होती है। सा वह स्त्रीणां विहृते स्त्रियों के विहृत में प्रयुज्यते प्रयुक्त होती है। काले प्राप्ते अपि (उचित) अवसर प्राप्त होने पर भी प्रियेण असंलापः प्रिय के साथ संलाप न करना (न बोलना) विहृतं मतं विहृत माना गया है।

यह मलिना है। (२)

(श्रान्ता—३)

अदूरालोकिनी म्लानपुटाप्यलसचारिणी।
चलत्तारा मनाक् कुञ्चत्प्रान्ता श्रान्ता श्रमे मता॥ ४०६॥

इति श्रान्ता (३)

श्रान्ता—३

४०६. (अ०) अदूर-आलोकिनी दूर देखने में असमर्थ, म्लानपुटा अपि म्लान पलकों वाली और अलसचारिणी अलसाते हुए संचार करने वाली, चलत् तारा चंचल पुतलियों वाली, मनाक् कुञ्चत् प्रान्ता कुछ झुके हुए सिरों वाली (दृष्टि) श्रान्ता श्रान्ता (थकी हुई) होती है। श्रमे मता (वह) श्रम में मानी गई है।

यह श्रान्ता है। (३)

(लज्जिता—४)

मिथोऽभिगामिपक्ष्माग्राप्यधस्ताद्गततारका।
पतितोर्ध्वपुटा दृष्टिर्लज्जायां लज्जिता मता॥ ४०७॥

इति लज्जिता (४)

लज्जिता—४

४०७. (अ०) मिथः अभिगामिपक्ष्म-अग्रा अपि परस्पर निकट आई हुई पलकों के अग्रों वाली और अधस्तात्

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गततारका नीचे झुकी हुई पुतलियों वाली, पतित-ऊर्ध्वपुटा दृष्टिः नीचे देखती हुई ऊपर की पलक वाली दृष्टि लज्जिता लज्जिता लज्जायां मता लज्जा में मानी गई है।

यह लज्जिता है। (४)

(शङ्किता—५)

मुहुश्चलस्थिरा पार्श्वालोकिनी बहिरुन्मुखी।
गूढावलोकिनी शीघ्रं विनिवृत्ता विलोकनात्॥ ४०८॥

शङ्कायां शङ्किता दृष्टिरुक्ता निःशङ्कसूरिणा।

इति शङ्किता (५)

शंकिता—५

४०८-४०९ ख. (अ०) मुहुः चलस्थिरा क्षण भर चल (और) क्षण भर स्थिर पार्श्व-आलोकिनी बाजू की ओर देखने वाली, बहिः उन्मुखी बाहर की ओर मुड़ी हुई, गूढ-अवलोकिनी गूढ़ (भाव) से देखती हुई, विलोकनात् शीघ्रं विनिवृत्ता देखने से झट से दूर हटने वाली शङ्किता दृष्टिः शंकिता दृष्टि (होती है)। निःशङ्कसूरिणा शंकारहित विद्वान् (शार्ङ्गदेव) के द्वारा (वह) शङ्कायाम् उक्ता शंका में कही गई है।

यह शंकिता है। (५)

(मुकुला—६)

स्फुरत्संश्लिष्टपक्ष्माग्रा सुखविश्रान्ततारका॥ ४०९॥

मुकुला दृष्टिरानन्दे हृद्ययोः स्पर्शगन्धयोः।

इति मुकुला (६)

मुकुला—६

४०९ ग-४१० ख. (अ०) स्फुरत् संश्लिष्ट पक्ष्म-अग्रा स्फुरित होते हुए और जुड़े हुए पलकों के सिरों वाली, सुखविश्रान्ततारका दृष्टिः सुख से विश्रान्त हुई पलकों वाली दृष्टि मुकुला मुकुला (होती है)। आनन्दे (वह) आनन्द में हृद्ययोः स्पर्शगन्धयोः सुखद स्पर्श और गन्ध में (योजित करनी चाहिये)।

यह मुकुला है। (६)

(अर्धमुकुला—७)

अर्धव्याकोशिते किंचिद् भ्रमन्त्यौ तारके पुटौ॥ ४१०॥

यत्रार्धमीलितौ सार्धमुकुलार्थे सुखप्रदे।

इत्यर्धमुकुला (७)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अर्धमुकुला—७

४१० ग-४११ ख. (अ०) **अर्धव्याकोशिते** आधी विकसित (और) **किंचित् भ्रमन्त्यौ तारके** कुछ घूमती हुई पुतलियाँ **यत्र** (और) जिसमें **पुटौ अर्धमीलितौ** पलकें आधी बंद सा वह **अर्धमुकुला** अर्धमुकुला (दृष्टि होती है)। **सुखप्रदे अर्थे** सुखदायक अर्थ में (योजित होती है)।

यह अर्धमुकुला है। (७)

(ग्लाना—८)

मज्जत्तारा मन्दचारा शिथिला विकलैरिव॥ ४११॥

पक्ष्माग्रभ्रूपुटैर्युक्ता ग्लाना ग्लानौ विधीयते।

इति ग्लाना (८)

ग्लाना—८

४११ ग-४१२ ख. (अ०) **मज्जत् तारा** मग्न पुतलियों वाली, **मन्दचारा** मंद संचार वाली, **शिथिला** शिथिल, **विकलैः इव पक्ष्म-अग्रभ्रूपुटैः युक्ता** विकल हुए से पलकों के अग्र और भौंहो व पलकों वाली **ग्लाना** ग्लाना (दृष्टि होती है)। **ग्लानौ विधीयते** (वह) ग्लानि में योजित होती है।

यह ग्लाना है। (८)

(जिह्मा—९)

किंचित्कुञ्चत्पुटा गूढपतत्तारा विलोकने॥ ४१२॥

शनैस्तिर्यङ्निगूढा या सा जिह्मा विनियुज्यते।
असूयायां निगूढार्थे जडतालस्ययोरपि॥ ४१३॥

इति जिह्मा (९)

जिह्मा—९

४१२ ग-४१३. (अ०) **या** जो **किंचित् कुञ्चत्-पुटा** कुछ कुंचित पलकों वाली, **विलोकने** देखने में (देखते समय) **गूढपतत्-तारा** गूढ़ता से नीचे झुकी हुई पुतलियों वाली, **शनैः** धीरे से **तिर्यक् निगूढा** तिरछी व गूढ़ होने वाली **सा** वह **जिह्मा** जिह्मा (दृष्टि होती है)। **असूयायां** (वह) असूया, **निगूढ-अर्थे** गूढ़ अर्थ, **जडता-आलस्ययोः अपि** जड़ता और आलस्य में भी **विनियुज्यते** प्रयुक्त होती है।

यह जिह्मा है। (९)

(कुञ्चिता—१०)

किंचिच्चेत्कुञ्चितानि स्युः पक्ष्माग्राणि पुटावपि।
सम्यक्च कुञ्चिता तारा तदा दृक्कुञ्चितोच्यते॥ ४१४॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अनिष्टेऽसूयिते तेजोदुष्प्रेक्ष्येऽक्षिव्यथासु सा।

इति कुञ्चिता (१०)

कुंचिता—१०

४१४-४१५ ख. (अ०) **पक्ष्म-अग्राणि** पलकों के अग्र **पुटौ अपि** और पलकें **किंचित् चेत्** यदि कुछ **कुञ्चितानि स्युः** कुंचित हों **सम्यक् च कुञ्चितानि तारा** और अच्छी कुंचित पुतलियों वाली (हो) **तदा** तो **कुञ्चिता दृक् उच्यते** कुंचिता दृष्टि कहते हैं। **सा** वह **अनिष्टे** अनिष्ट में, **असूयिते** असूया हुए में, **तेजोदुष्प्रेक्ष्ये** (तेजसा दुष्प्रेक्ष्ये) अति तेजस्विता के कारण देखने में कठिन (सूर्य आदि को देखने में), **अक्षिव्यथासु** आँखों की पीड़ा में (योजित की जाती है)।

यह कुंचिता है (१०)

(वितर्किता—११)

उद्भ्रामितपुटोत्फुल्लताराधःसंचरन्त्यपि॥ ४१५॥

वितर्कितोदिता दृष्टिर्वितर्के साभिधीयते।

इति वितर्किता (११)

वितर्किता—११

४१५ ग-४१६ ख. (अ०) **उद्भ्रामितपुटा** ऊपर की ओर घूमती हुई पलकों वाली, **उत्फुल्लतारा** पूरी तरह फैली पुतलियों वाली **अधः संचरन्ति अपि** और नीचे की ओर संचार करती हुई **दृष्टिः** दृष्टि **वितर्किता उदिता** वितर्किता कही गई है। **सा** वह **वितर्के** वितर्क में **अभिधीयते** कही जाती है।

यह वितर्किता है। (११)

(अभितप्ता—१२)

विलोकनालसे तारे व्यथाप्रचलितौ पुटौ॥ ४१६॥

यस्याः संभ्रान्तवद्भान्ति साभितप्ताभिधीयते।
निर्वेद वेदितव्या साप्यभिघातोपतापयोः॥ ४१७॥

इत्यभितप्ता (१२)

अभितप्ता—१२

४१६ ग-४१७. (अ०) **यस्याः** जिसकी **तारे** पुतलियाँ **विलोकन-आलसे** देखते समय आलस वाली (हों), **व्यथाप्रचलितौ पुटौ** पीड़ा से चंचल हुई पलकें (हों और जो) **संभ्रान्तवत् भान्ति** संभ्रान्त हुई सी दिखाई देती (हों) **सा** वह **अभितप्ता** अभितप्ता **अभिधीयते** कही जाती है। **सा** वह **निर्वेदे** निर्वेद **अभिघात-उपतापयोः अपि** तथा प्रहार और पीड़ा में **वेदितव्या** जाननी चाहिये।

यह अभितप्ता है। (१२)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(विषण्णा—१३)

या दृष्टिः पतितापाङ्गा विस्तारितपुटद्वया।
निमेषिणी स्तब्धतारा विषण्णा सा विषादिनी॥ ४१८॥

इति विषण्णा (१३)

विषण्णा—१३

४१८. (अ०) या दृष्टिः जो दृष्टि **पतित-अपाङ्गा** नीचे झुके अपांगों वाली, **विस्तारितपुटद्वया** फैली हुई दोनों पलकों वाली, **निमेषिणी** निमेषयुक्त **स्तब्धतारा** (और) स्थिर पुतलियों वाली **सा विषण्णा** वह विषण्णा (होती है)। **विषादिनी** (वह) विषाद वाली (विषाद में योजित होने वाली होती है)।

यह विषण्णा है। (१३)

(ललिता—१४)

मधुरा कुञ्चितापाङ्गा सभ्रूक्षेपा स्मितान्विता।
मन्मथोन्मथिता दृष्टिर्ललिता ललिते मता॥ ४१९॥

इति ललिता (१४)

ललिता—१४

४१९. (अ०) मधुरा मधुर, **कुञ्चित-अपाङ्गा** कुंचित अपांगों वाली, **सभ्रूक्षेपा** भौंहों के क्षेप वाली, **स्मित-अन्विता** स्मितयुक्त, **मन्मथ-उन्मथिता दृष्टिः** मदन से उन्मादित दृष्टि **ललिता** ललिता (होती है)। **ललिते मता** (वह) ललित में मानी गई है।

यह ललिता है। (१४)

(आकेकरा—१५)

किंचित्कुञ्चत्पुटापाङ्गा दृष्टिरर्धनिमेषिणी।
पृथक्पथे चान्यनेत्रान्मुहुस्ताराविवर्तिनी॥ ४२०॥
आकेकरा दुरालोके स्याद्विच्छिन्ने च वस्तुनि।

इत्याकेकरा (१५)

आकेकरा—१५

४२०-४२१ ख. (अ०) किंचित् कुञ्चत् पुटा-अपाङ्गा कुछ कुंचित पलकों (और) अपांगों वाली, **अर्धनिमेषिणी** आधे निमेष वाली, **अन्य नेत्रात् च** और दूसरी आँख की अपेक्षा **पृथक् पथे** अलग ओर **मुहुः** बार-बार **ताराविवर्तिनी दृष्टिः** पुतलियाँ घूमने वाली दृष्टि **आकेकरा** आकेकरा (होती है)। **दुर्-आलोके** देखने में कठिन **विच्छिन्ने च वस्तूनि** और काटी हुई वस्तुओं में **स्यात्** (योजित) होती है।

यह आकेकरा है। (१५)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(विकोशा—१६)

विकासितपुटद्वन्द्वा विकासिन्यनिमेषिणी॥ ४२१॥

अनवस्थिततारा च विकोशा कीर्तिता बुधैः।
ज्ञानविज्ञानगर्वे सा स्यादमर्षे विमर्शने॥ ४२२॥

इति विकोशा (१६)

विकोशा—१६

४२१ ग-४२२. (अ०) विकासितपुटद्वन्द्वा विकासित दोनों पलकों वाली, विकासिनि-अनिमेषिणी विकासयुक्त निमेषरहित अन्-अवस्थिततारा च और स्थिर न रहने वाली पुतलियों वाली बुधैः विद्वानों के द्वारा विकोशा कीर्तिता विकोशा कही गई है। सा वह ज्ञानविज्ञानगर्वे ज्ञान-विज्ञान के गर्व, अमर्षे असहनशीलता (और) विमर्शने विचार(-विनिमय) में स्यात् (प्रयुक्त) होती है।

यह विकोशा है। (१६)

विभ्रान्ता—१७)

या तु क्वचिदविश्रान्तमविस्रब्धं विलोकने।
विस्तीर्णा चञ्चलोत्फुल्लतारा सा दृष्टिरुच्यते॥ ४२३॥

विभ्रान्ता विभ्रमे वेगे संभ्रमे च भवेदसौ।

इति विभ्रान्ता (१७)

विभ्रान्ता—१७

४२३-४२४ ख. (अ०) या तु और जो विलोकने देखते समय क्वचित् अविश्रान्तं कभी कहीं न रुकने वाली अविस्रब्ध अविश्वासयुक्त, विस्तीर्णा फैली हुई, चञ्चल-उत्फुल्लतारा चंचल और खिली-खिली पुतलियों वाली (होती है) सा वह विभ्रान्ता दृष्टिः उच्यते विभ्रान्ता दृष्टि कही जाती है। असौ यह विभ्रमे विभ्रम, वेगे वेग संभ्रमे च और संभ्रम में भवेत् (योजित) होती है।

यह विभ्रान्ता है। (१७)

(विप्लुता—१८)

पुटौ विस्फुरितौ स्तब्धौ यस्याः स्तः पतितौ क्रमात्॥ ४२४॥

सा विप्लुतार्तिदुःखादावुन्मादे चापले तथा।

इति विप्लुता (१८)

विप्लुता—१८

४२४ ग-४२५ ख. (अ०) यस्याः पुटौ जिसकी पलकें क्रमात् क्रम से विस्फुरितौ विस्फुरित, स्तब्धौ स्तब्ध पतितौ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(और) नीचे झुकी हुई स्तः होती हैं सा विप्लुता वह विप्लुता (दृष्टि होती है)। आर्तिदुःख-आदौ (वह) पीड़ा, दुःख आदि में, उन्मादे तथा चापले उन्माद और चपलता में (प्रयुक्त होती है)।

यह विप्लुता है। (१८)

(त्रस्ता—१९)

उत्कम्पोत्फुल्लतारा स्यात् त्रासे त्रस्तोद्भ्रमत्पुटा॥ ४२५॥

इति त्रस्ता (१९)

त्रस्ता—१९

४२५ ग-घ. (अ०) उत्कम्पा कंपित, उत्फुल्लतारा विकसित पुतलियों वाली, उद्भ्रमत्-पुटा ऊपर की ओर घूमती हुई पलकों वाली त्रस्ता स्यात् त्रस्ता (दृष्टि) होती है। त्रासे (वह) भय में (योजित होती है)।

यह त्रस्ता है। (१९)

(मदिरा—२०)

मदिरा त्रिविधा प्रोक्ता तरुणे मध्यमेऽधमे।
मदे प्रयोगमर्हन्ती तत्तल्लक्ष्मसमन्विता॥ ४२६॥

तीव्रो मदोऽधमोऽत्र स्यादधमे पुरुषे स्थितः।
दृष्टिर्विकसितापाङ्गा क्षामीभूतविलोचना॥ ४२७॥

आघूर्णमानतारा स्यान्मदिरा तरुणे मदे।
किंचित्कुञ्चत्पुटा किंचिदनवस्थितचारिणी॥ ४२८॥

दृष्टिः किंचिद्भ्रमत्तारा मदिरा मध्यमे मदे।
अधोभागचरी किंचिद्दृष्टतारा निमेषिणी॥ ४२९॥

यत्नेऽप्यसिद्ध्यदुन्मेषा मदिरा स्यान्मदेऽधमे।

इति मदिरा (२०)

इति विंशतिव्यभिचारिदृष्टयः

मदिरा—२०

४२६-४३० ख. (अ०) मदिरा मदिरा (दृष्टि) त्रिविधा प्रोक्ता तीन प्रकार की कही गई है। तत् तत् लक्ष्मसमन्विता उस-उस लक्षण से युक्त तरुणे मध्यमे अधमे मदे तरुण, मध्यम (और) अधम मद के प्रयोगम् अर्हन्ती प्रयोग के योग्य होती है। अत्र इनमें से तीव्रः मदः तीव्र मद अधमः स्यात् अधम होता है अधमे पुरुषे स्थितः (और वह) अधम (प्रकृति के) पुरुष में होता है। विकसित-अपाङ्गा विकसित अपांगों वाली, क्षामीभूतविलोचना दुर्बल हुए नेत्रों वाली मदिरा दृष्टिः मदिरा दृष्टि तरुणे मदे तरुण मद में (हल्का मद चढ़ने में) स्यात् (योजित) होती है। किंचित् कुञ्चत्-पुटा कुछ कुंचित पलकों वाली,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किंचित् अनवस्थितचारिणी कुछ अस्थिर संचार वाली (और) **किंचित् भ्रमत्-तारा** कुछ घूमती हुई पुतलियों वाली **मदिरा दृष्टिः** मदिरा दृष्टि **मध्यमे मदे** मध्यम मद में (प्रयुक्त होती है)। **अधोभागचरी** नीचे के भाग में संचार करने वाली, **किंचित् दृष्टतारा** कुछ दिखाई देती पुतलियों वाली, **निमेषिणी** पलकें झपकाती हुई, **यत्ने अपि** प्रयत्न करने पर भी **असिद्ध्यत् उन्मेषा** (आँखें) खोलने में असमर्थ **मदिरा** मदिरा (दृष्टि) **अधमे मदे स्यात्** अधम मद में (प्रयुक्त) होती है।

(सर०) श्लोक ४२८ ग में **किंचित्कुञ्चतपुटा** के स्थान पर सिंह० का पाठ '**किंचिन्नमितपुटा**' है जिसका अर्थ है '**कुछ झुकी पलकों वाली**'।

यह मदिरा है। (२०)

ये बीस व्यभिचारी दृष्टियाँ हैं।

प्रदर्शनार्थमित्युक्ताः षट्त्रिंशद्दृष्टयो मया॥ ४३०॥

अनन्ताः सन्ति संदर्भाद् भ्रूतारापुटकर्मणाम्।
दृष्टयस्ता विरिञ्चोऽपि प्रत्येकं वक्तुमक्षमः॥ ४३१॥

लाघवात्तत्प्रबोधार्थं ब्रूमो भ्रूप्रभृतीन्यतः।

इति दृष्टिप्रकरणम्

४३० ग-४३२ ख. (अ०) **प्रदर्शन-अर्थम् इति** (मार्ग) दिखाने के लिये ये **षट्त्रिंशत् दृष्टयः** छत्तीस दृष्टियाँ **मया उक्ताः** मेरे द्वारा कही गईं। **भ्रूतारापुटकर्मणां संदर्भात्** भौंह, पुतली और पलकों की क्रियाओं के (परस्पर) संदर्भ से **दृष्टयः** दृष्टियाँ **अनन्ताः सन्ति** अनन्त होती हैं। **ताः प्रत्येकं वक्तुं** वे (उनमें से) हरेक (को) कहने में **विरिञ्चः अपि अक्षमः** ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं। **अतः** इसलिये **लाघवात्** संक्षेप से **तत् प्रबोध-अर्थम्** उनके ज्ञान के लिये **भ्रूप्रभृतीनि ब्रूमः** भौंह आदि कहते हैं (कहता हूँ)।

दृष्टि प्रकरण समाप्त

(उपाङ्गम् २—भ्रू)

सहजा पतितोक्षिप्ता रेचिता कुञ्चिता तथा॥ ४३२॥

भ्रुकुटी चतुरा चेति प्रोक्ता भ्रूः सप्तधा बुधैः।

उपांग २—भौंह

४३२ ग-४३३ ख. (अ०) **सहजा, पतिता, उत्क्षिप्ता, रेचिता, कुंचिता, भ्रुकुटी और चतुरा इति** ये **सप्तधा भ्रूः** सात प्रकार की भौंह **बुधैः प्रोक्ताः** बुधजनों के द्वारा कही गई हैं।

(सहजा—१)

स्वाभाविकी स्यात्सहजा भावेष्वकुटिलेष्वसौ॥ ४३३॥

इति सहजा (१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सहजा—१

४३३ ग-घ. (अ०) सहजा सहजा (भौंह) स्वाभाविकी स्यात् स्वाभाविक (अवस्था वाली) होती है। असौ यह अकुटिलेषु भावेषु सरल भावों में (योजित होती है)।

यह सहजा है। (१)

(पतिता—२)

पतिता स्यादधो याता सद्द्वितीयाथवा क्रमात्।
उत्क्षेपे विस्मये हर्षे रोषेऽसूयाजुगुप्सयोः॥ ४३४॥
हासे घ्राणे च पतिते विधीयेतामुभे भ्रुवौ।

इति पतिता (२)

पतिता—२

४३४-४३५ ख. (अ०) सद्द्वितीया अथवा क्रमात् दूसरी भौंह के साथ या क्रम से अधः याता नीचे गई (झुकी) हुई पतिता स्यात् पतिता होती है। उत्क्षेपे विस्मये उत्क्षेप (उछालने), विस्मय, हर्षे रोषे हर्ष, रोष, असूयाजुगुप्सयोः असूया और जुगुप्सा में (प्रयुक्त करनी चाहिये)। उभे पतिते भ्रुवौ दोनों पतिता भौंहें हासे घ्राणे च हास और गन्ध (लेने) में विधीयेतां योजित करनी चाहिये।

यह पतिता है। (२)

(उत्क्षिप्ता—३)

उत्क्षिप्ता संमतान्वर्था क्रमेण सह चान्यथा॥ ४३५॥
स्त्रीणां कोपे वितर्के च दर्शने श्रवणे निजे।
भ्रूर्लीलाहेलयोश्चैषा कार्योत्क्षिप्ता विचक्षणैः॥ ४३६॥

इत्युत्क्षिप्ता (३)

उत्क्षिप्ता—३

४३५ ग-४३६. (अ०) उत्क्षिप्ता उत्क्षिप्ता सह अन्यथा च क्रमेण (दूसरी भौंह के) साथ अथवा क्रम से अन्वर्था संमता (ऊपर उठाई हुई, इस अर्थ में) अन्वर्थ मानी गई है। एषा स्त्रीणां यह स्त्रियों के कोपे वितर्के कोप, वितर्क निजे दर्शने श्रवणे च स्वयं के दर्शन और श्रवण में (योजित होती है)। भ्रूः उत्क्षिप्ता एक भौंह उत्क्षिप्ता विचक्षणैः ज्ञाताओं के द्वारा लीलाहेलयोः च कार्या लीला और हेला में (प्रयोग) करनी चाहिये।

(सर०) कल्लि० ने स्पष्ट किया कि एक भ्रू उत्क्षेप के विनियोग में लीला और हेला कहा गया। उनमें से लीला स्त्री और पुरुषों के शरीर का भावविशेष होता है। उसने भावप्रकाश का लक्षण भी उद्धृत किया है जिसके अनुसार प्रीतिपूर्वक मन, वाणी और अंग की मधुर चेष्टाओं (क्रियाओं) के द्वारा प्रिय का अनुकरण लीला है जो स्त्री पुरुष दोनों में होता है। हेला नामक सात्त्विक भावविशेष का लक्षण यह दिया है—ललित अभिनय के स्वरूप वाला, नाना प्रकार से अभिव्यक्त होने वाला, शृंगार का रूप सूचित करने वाला वही हाव हेला होता है।

यह उत्क्षिप्ता है। (३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(रेचिता—४)

एकैव ललितोत्क्षिप्ता रेचिता नृत्तगोचरा।

इति रेचिता (४)

रेचिता—४

४३७ क-ख. (अ०) एक-एव एक ही (भौंह) ललिता उत्क्षिप्ता लालित्यपूर्ण ऊपर उठी हुई रेचिता रेचिता (होती है)। नृत्तगोचरा (वह) नृत्त में दिखाई देती है।

यह रेचिता है। (४)

(निकुञ्चिता—५)

केवला सद्द्वितीया वा मृदुभङ्गा निकुञ्चिता॥ ४३७॥

मोट्टायिते कुट्टमिते विलासे किलकिञ्चिते।

इति निकुञ्चिता (५)

निकुंचिता—५

४३७ ग-४३८ ख. (अ०) केवला अकेली (एक) सद्द्वितीया वा या दूसरी के साथ मृदुभङ्गा सुकुमारता से युक्त टेढ़ी की हुई (भौंह) निकुञ्चिता निकुंचिता (होती है)। मोट्टायिते मोट्टायित, कुट्टमिते कुट्टमित, विलासे विलास किलकिञ्चिते (और) किलकिंचित में (योजित होती हैं)।

(सर०) मोट्टायित आदि के लक्षण सं०र० में नहीं हैं। लेकिन ना०शा० के सामान्याभिनय नामक बाईसवें अध्याय में इस प्रकार दिये हैं—

विलास—उठने, बैठने, चलने और हाथ, भौंह, नेत्र के 'कर्म' (क्रियाओं) में जो 'श्लिष्ट' (विशेष स्वरूप) उत्पन्न होता है वह विलास होता है। (२२/१५)

किलकिंचित—स्मित, रोने, हँसने, भय, हर्ष, गर्व, दुःख, श्रम, अभिलाषा का बार-बार किया हुआ मिश्रण किलकिंचित होता है। (वही, १८)

मोट्टायित—प्रिय व्यक्ति के कथन या लीला, हेला आदि के दर्शन में उस भाव से भावित हो जाने से जो अंग मोड़ना या मरोड़ना होता है वह मोट्टायित है। (वही, १९) (अति सुख में सुध-बुध खो जाने के कारण मूर्छा जैसी स्थिति में अपने आप अंग मुड़ने लगना। हरिदर्शनादि में उत्पन्न अष्टसात्त्विक विकारों में यह दशा देखी गई है।)

कुट्टमित—प्रियतमा के केश, स्तन, अधर आदि का ग्रहण करने से उत्पन्न होने वाला अत्यन्त हर्ष और संभ्रम कुट्टमित होता है। वह सुखमय होने पर भी दुःखदायी स्वरूप का होता है। (वही, २०)

यह निकुंचिता है। (५)

(भ्रुकुटी—६)

आमूलात्सद्द्वितीया भ्रूरुत्क्षिप्ता भ्रुकुटी क्रुधि॥ ४३८॥

इति भ्रुकुटी (६)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भ्रुकुटी—६

४३८ ग-घ. (अ०) आमूलात् सद्वितीया मूल के पास से दूसरी (भौंह) के साथ उत्क्षिप्ता भ्रूः ऊपर उठाई हुई भौंह भ्रुकुटी भ्रुकुटी (होती है)। क्रुधि (वह) क्रोध में (योजित होती है)।

यह भ्रुकुटी है। (६)

(चतुरा—७)

सद्वितीयाल्पकस्पन्दादायता मन्थरा भवेत्।
चतुरा रुचिरे स्पर्शे शृङ्गारे ललिते च सा॥ ४३९॥

इति चतुरा (७)

इति सप्तधा भ्रूः

(इति भ्रूप्रकरणम्)

चतुरा—७

४३९. (अ०) सद्वितीया दूसरी (भौंह) के साथ अल्पक-स्पन्दात् आयता थोड़े स्पन्दन से विस्तृत हुई, मन्थरा धीमी चतुरा भवेत् चतुरा होती है। सा रुचिरे स्पर्शे वह रुचिर स्पर्श, शृङ्गारे ललिते च शृंगार और ललित में (योजित होती है)।

यह चतुरा है। (७)

ये भौंह के सात प्रकार हैं।

भ्रू प्रकरण समाप्त

(उपाङ्गम् ३—पुटौ)

प्रसृतौ कुञ्चितौ स्यातामुन्मेषितनिमेषितौ।
विवर्तितौ च स्फुरितौ पिहितौ च विताडितौ॥ ४४०॥

समौ च नवधेत्युक्तौ पुटौ सोढलसूनुना।

उपांग ३—पलकें

४४०-४४१ ख. (अ०) प्रसृत, कुंचित, उन्मेषित, निमेषित, विवर्तित, स्फुरित, पिहित, विताड़ित और सम इति ये नवधा पुटौ नौ प्रकार की पलकें सोढलसूनुना उक्तौ सोढलपुत्र (शार्ङ्गदेव) के द्वारा कही गई हैं।

(प्रसृतौ—१)

आयतौ प्रसृतौ स्यातां वीरे हर्षे च विस्मये॥ ४४१॥

इति प्रसृतौ (१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रसृत—१

४४१ ग-घ. (अ०) **आयतौ** विस्तारित (पलकें) **प्रसृतौ स्यातां** प्रसृत होती हैं। **वीरे हर्षे विस्मये च** वीर, हर्ष और विस्मय में (योजित होती हैं)।

ये प्रसृत हैं। (१)

(कुञ्चितौ—२)

आकुञ्चितौ कुञ्चितौ स्तो रूपादौ च मनोहरे।

इति कुञ्चितौ (२)

कुंचित—२

४४२ क-ख. (अ०) **आकुञ्चितौ** आकुंचित (पलकें) **कुञ्चितौ स्तः** कुंचित होती हैं **मनोहरे रूप-आदौ च** और (वे) मनोहर रूप आदि में (योजित होती हैं)।

ये कुंचित हैं। (२)

(उन्मेषितनिमेषितविवर्तिताः—३, ४, ५)

उन्मेषितौ तु विश्लेषात्संश्लेषात्तु निमेषितौ॥ ४४२॥

विवर्तितौ समुद्वृत्तौ त्रयोऽमी क्रोधगोचराः।

इत्युन्मेषितनिमेषितविवर्तिताः (३, ४, ५)

उन्मेषित निमेषित विवर्तित—३, ४, ५

४४२ ग-४४३ ख. (अ०) **उन्मेषितौ तु विश्लेषात्** उन्मेषित तो अलग हुई (खुली) पलकों से, **निमेषितौ तु संश्लेषात्** निमेषित तो मिली हुई (बन्द पलकों) से (और) **विवर्तितौ** विवर्तित **सम्-उद्वृत्तौ** अच्छी तरह ऊपर उठी हुई (पलकों) वाली (होती है)।

ये उन्मेषित, निमेषित और विवर्तित हैं। (३, ४, ५)

(स्फुरितौ—६)

स्फुरितौ स्पन्दितौ स्यातां तावीर्ष्याविषयौ मतौ॥ ४४३॥

इति स्फुरितौ (६)

स्फुरित—६

४४३ ग-घ. (अ०) **स्फुरितौ** स्फुरित (पलकें) **स्पन्दितौ स्यातां** स्पन्दित होती हैं। **तौ** वे **ईर्ष्याविषयौ मतौ** ईर्ष्या का विषय (ईर्ष्या में) मानी गई हैं।

ये स्फुरित हैं। (६)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(पिहितौ—७)

अतीव कुञ्चितौ लग्नौ पिहितौ तौ दृशो रुजि।
सुप्तिमूर्छातिवर्षोष्णधूमवाताञ्जनार्तिषु॥ ४४४॥

इति पिहितौ (७)

पिहित—७

४४४. (अ०) **अतीव कुञ्चितौ** अत्यन्त कुंचित **लग्नौ** (और) जुड़ी हुई **पिहितौ** पिहित (पलकें होती हैं)। **तौ** वे **दृशः रुजि** आँखों के रोग, **सुप्तिमूर्छा-अतिवर्षा-उष्णधूमवात-अञ्जन-आर्तिषु** नींद, मूर्छा, अतिवर्षा, गर्मी, धुएँ, हवा और काजल की पीड़ा में (योजित होती हैं)।

ये पिहित हैं। (७)

(विचालितौ—८)

उत्तरेणाधराघातादभिघाते विचालितौ।
आहुरन्ये त्वदृश्यौताविति विस्फारणात्पुटौ॥ ४४५॥

इति विचालितौ (८)

विचालित—८

४४५. (अ०) **उत्तरेण** ऊपर (की पलक) से **अधर-आघातात्** नीचे वाली (पलक) पर आघात (करने) से **विचालितौ** विचालित (पलकें होती हैं)। **अभिघाते** (वे) आघात में (योजित करनी चाहियें)। **अन्ये तु** अन्य (आचार्य) तो **तौ पुटौ विस्फारणात्** वे पलकें विस्फारित करने से (अर्थात् विस्फारित करना) **अदृश्यौ आहुः** अदृश्य (अर्थात् प्रयोग में दिखाई नहीं देतीं, ऐसा) कहते हैं।

ये विचालित हैं। (८)

(समौ—९)

समौ स्वाभाविकावेतौ स्वभावाभिनये मतौ।

इति समौ (९)

इति नवधा पुटौ

सम—९

४४६ क-ख. (अ०) **स्वाभाविकौ** स्वाभाविक (स्थिति वाली) **समौ** सम होती हैं। **एतौ** ये **स्वभाव-अभिनये मतौ** स्वाभाविक अभिनय में मानी गई हैं।

ये सम हैं। (९)

ये नौ प्रकार की पलकें हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(उपाङ्गम् ४—तारा)

कर्मभिस्तारकाभेदा यैः स्युस्तान्यधुना ब्रुवे॥ ४४६॥

तानि द्वेधा स्वनिष्ठानि विषयाभिमुखानि च।
भ्रमणं वलनं पातश्चलनं च प्रवेशनम्॥ ४४७॥

विवर्तनं समुद्वृत्तं निष्क्रामः प्राकृतं तथा।
स्वनिष्ठानि नवेत्याहुस्ताराकर्माणि सूरयः॥ ४४८॥

उपांग ४—पुतली

४४६ ग-४४८. (अ०) **यैः कर्मभिः** जिन कर्मों के द्वारा **तारकाभेदाः स्युः** पुतलियों के भेद होते हैं **अधुना तानि ब्रुवे** अब वे कहता हूँ। **तानि** वे **द्वेधा** दो प्रकार के (हैं) **स्वनिष्ठानि विषयाभिमुखानि च** स्वविषय अभिमुख और विषय अभिमुख। भ्रमण, वलन, पात, चलन, प्रवेश, विवर्तन, समुद्वृत्त, निष्क्राम और प्राकृत इति नव ये नौ **स्वनिष्ठानि ताराकर्माणि** स्वनिष्ठ पुतलियों के कर्म **सूरयः आहुः** विद्वान् कहते हैं।

(सर०) कल्लि० ने **कर्मभिस्तारकाभेदाः** का अभिप्राय इस प्रकार स्पष्ट किया है। नेत्रों के गोलकों के आश्रित रहने वाली पुतलियों के बारे में हस्तों की तरह स्वरूपगत भेद संभव न होने से पुतलियों के भ्रमण आदि कर्मभेदों के द्वारा ही पुतलीभेद समझना चाहिये।

(स्वनिष्ठानि कर्माणि)

(भ्रमणम्—१)

तारयोर्मण्डलभ्रान्तिः पुटान्तर्भ्रमणं मतम्।

(इति भ्रमणम् १)

स्वनिष्ठ कर्म

भ्रमण—१

४४९ क-ख. (अ०) **पुट-अन्तः** पलकों के अन्दर **तारयोः** पुतलियों का **मण्डलभ्रान्तिः** गोलाकार घूमना **भ्रमणं मतं** भ्रमण माना गया है।

यह भ्रमण है। (१)

(वलनम्—२)

वलनं त्र्यश्रगमनं,

(इति वलनम् २)

वलन—२

४४९ ग. (अ०) **त्र्यश्रगमनं वलनं** तिरछे जाना वलन (होता है)।

यह वलन है। (२)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(पातः—३)

पातस्तु स्यादधोगतिः॥ ४४९॥

(इति पातः ३)

पात—३

४४९ घ. (अ०) पातः तु पात तो अधोगतिः स्यात् नीचे जाना होता है।

यह पात है। (३)

(चलनम्—४)

चलनं कम्पनं प्रोक्तं,

(इति चलनम् ४)

चलन—४

४५० क. (अ०) कम्पनं कंपन चलनं प्रोक्तं चलन कहा गया है।

यह चलन है। (४)

(प्रवेशनम्—५)

अथ ज्ञेयं प्रवेशनम्।

प्रवेशः पुटयोरन्तः,

(इति प्रवेशनम् ५)

प्रवेशन—५

४५० ख-ग. (अ०) अथ और पुटयोः पुतलियों का अन्तः प्रवेशः भीतर प्रवेश प्रवेशनं ज्ञेयं प्रवेशन जाना गया है।

यह प्रवेशन है।

(विवर्तनम्—६)

कटाक्षस्तु विवर्तनम्॥ ४५०॥

(इति विवर्तनम् ६)

विवर्तन—६

४५० घ. (अ०) कटाक्षः तु विवर्तनं कटाक्ष तो विवर्तन (होता है)।

यह विवर्तन है। (६)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(समुद्वृत्तम्—७)

उद्गतिस्तु समुद्वृत्तं,

(इति समुद्वृत्तम् ७)

समुद्वृत्त—७

४५१ क. (अ०) उद्गतिः तु ऊपर उठना तो समुद्वृत्तं समुद्वृत्त (होता है)।

यह समुद्वृत्त है। (७)

(निष्क्रामः—८)

अन्तरा निर्गमस्तु यः

स निष्क्रामः

(इति निष्क्रामः ८)

निष्क्राम—८

४५१ ख-ग. (अ०) यः अन्तरा निर्गमः तु जो भीतर से बाहर की ओर जाना सः निष्क्रामः वह निष्क्राम है।

यह निष्क्राम है। (८)

(प्राकृतम्—९)

प्राकृतं तु स्वभावस्थितिरुच्यते॥ ४५१॥

(इति प्राकृतम् ९)

प्राकृत—९

४५१ ग-घ. (अ०) प्राकृतं तु प्राकृत तो स्वभावस्थितिः उच्यते स्वाभाविक स्थिति कही जाती है।

यह प्राकृत है। (९)

समुद्वृत्तं च वलनं भ्रमणं वीररौद्रयोः।
पातस्तु करुणे कार्यश्चलनं तु भयानके॥ ४५२॥

प्रवेशनं तु बीभत्से हास्ये तु स्याद्विवर्तनम्।
शृङ्गारे स्यात्तु निष्क्रामो वीरे रौद्रे भयानके॥ ४५३॥

अद्भुते च प्राकृतं तु भावेऽनावेशभागिनि।

इति नव स्वनिष्ठानि ताराकर्माणि

४५२-४५४ ख. (अ०) समुद्वृत्तं वलनं भ्रमणं च समुद्वृत्त, वलन और भ्रमण वीररौद्रयोः वीर और रौद्र (रसों) में, पातः तु पात तो करुणे कार्यः करुण (रस) में (योजित) करना चाहिये। चलनं तु भयानके चलन तो भयानक में, प्रवेशनं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तु बीभत्से प्रवेशन तो बीभत्स में, **हास्ये तु** हास्य में तो **विवर्तनं स्यात्** विवर्तन होता है। **शृङ्गारे वीरे रौद्रे भयानके अद्भुते तु** शृंगार, वीर, रौद्र, भयानक (और) अद्भुत में तो **निष्क्रामः स्यात्** निष्क्राम होता है। **अनावेशभागिनि भावे तु** आवेशरहित (शेष) भावों में तो **प्राकृतं** प्राकृत (योजित होता है)।

(सर०) आड्० व आनन्द० के पाठ भावेनावेशभागिनि से संगत अर्थ प्राप्त नहीं होता क्योंकि सभी रसों में पुतलीकर्म बताया जा चुका है। ना०शा० (खण्ड २, ८/१०४ क) में 'प्राकृतं शेषभावेषु' कहा गया है। तदनुसार 'अनावेशभागिनि' ही सही पाठ बनता है। ऊपर यही पाठ रखा है।

ये पुतलियों के स्वनिष्ठ नौ कर्म हैं।

(विषयनिष्ठानि ताराकर्माणि)

विषयाभिमुखान्यष्टौ ताराकर्माण्यथ ब्रुवे॥ ४५४॥

समं साच्यनुवृत्तावलोकितानि विलोकितम्।
उल्लोकितालोकिते च प्रविलोकितमित्यपि॥ ४५५॥

एतानि दर्शनान्याहुर्लक्ष्यलक्ष्मविचक्षणाः।

पुतलियों के विषयनिष्ठ कर्म

४५४ ग-४५६ ख. (अ०) **अथ** अब **विषय-अभिमुखानि** विषयनिष्ठ **सम, साचि, अनुवृत्त, अवलोकित, विलोकित, उल्लोकित, आलोकित** और **प्रविलोकित इति** ये **अष्टौ** आठ **ताराकर्माणि ब्रुवे** पुतलियों के कर्म कहता हूँ। **लक्ष्यलक्ष्मविचक्षणाः** लक्ष्य (और) लक्षण के विचक्षण **एतानि** ये **दर्शनानि आहुः** दर्शन (देखने के प्रकार) कहते हैं।

(समम्—१)

सौम्यं मध्यस्थतारं च दर्शनं सममुच्यते॥ ४५६॥

इति समम् (१)

सम—१

४५६ ग-घ. (अ०) **मध्यस्थतारं** बीच में स्थित पुतलियों से **सौम्यं च दर्शनं** सौम्य दर्शन **समम् उच्यते** सम कहा जाता है।

यह सम है। (१)

(साचि—२)

साच्युच्यते तिरश्चीनपक्ष्मान्तर्गततारकम्।

इति साचि (२)

साचि—२

४५७ क-ख. (अ०) **तिरश्चीनपक्ष्म-अन्तर्गततारकं** तिरछी पलकों के भीतर गई हुई सी पुतलियों से देखना **साचि उच्यते** साचि (दर्शन) कहा जाता है।

यह साचि है। (२)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(अनुवृत्तम्—३)

रूपनिर्वर्णनायुक्तमनुवृत्तं मतं मुनेः॥ ४५७॥

निर्वर्णना क्रियाकात्स्न्यंदिदृक्षातश्चिरस्थिरा।

इत्यनुवृत्तम् (३)

अनुवृत्त—३

४५७ ग-४५८ ख. (अ०) **रूपनिर्वर्णनायुक्तं** रूप की निर्वर्णना (दृष्टि भर कर देख डालने) से युक्त **मुनेः** (भरत) मुनि का **अनुवृत्तं मतम्** अनुवृत्त माना हुआ है। **कात्स्न्यंदिदृक्षातः चिरस्थिरा क्रिया** संपूर्णता से देखने की इच्छा से देर तक स्थिर रहने वाली क्रिया **निर्वर्णना** निर्वर्णना (होती है)।

यह अनुवृत्त है। (३)

(अवलोकितम्—४)

अधस्थदर्शनं यत्तदवलोकितमुच्यते॥ ४५८॥

इत्यवलोकितम् (४)

अवलोकित—४

४५८ ग-घ. (अ०) **यत्** जो **अधस्थदर्शनं** नीचे स्थित (का) दर्शन (देखना) **तत्** वह **अवलोकितम् उच्यते** अवलोकित कहा जाता है।

यह अवलोकित है। (४)

(विलोकितम्—५)

पृष्ठतो दर्शनं यत्तद्विलोकितमुदाहृतम्।

इति विलोकितम् (५)

विलोकित—५

४५९ क-ख. (अ०) **यत्** जो **पृष्ठतः दर्शनं** पीछे की ओर का दर्शन (देखना) **तत्** वह **विलोकितम् उदाहृतं** विलोकित कहा गया है।

यह विलोकित (५)

(उल्लोकितम्—६)

उल्लोकितं तदूर्ध्वस्थवस्तुनो यदवेक्षणम्॥ ४५९॥

इत्युल्लोकितम् (६)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उल्लोकित—६

४५९ ग-घ. (अ०) **यत्** जो **ऊर्ध्वस्थ वस्तुनः अवेक्षणम्** ऊपर रखी वस्तु का देखना **तत् उल्लोकितं** वह उल्लोकित (होता है)।

यह उल्लोकित है। (६)

(आलोकितम्—७)

सहसा दर्शनं यत्तदालोकितमुदीरितम्।

इत्यालोकितम् (७)

आलोकित—७

४६० क-ख. (अ०) **यत्** जो **सहसा दर्शनम्** अचानक दर्शन **तत् आलोकितम् उदीरितं** वह आलोकित कहा गया है।

यह आलोकित है। (७)

(प्रविलोकितम्—८)

पार्श्वस्थदर्शनं प्रोक्तं कृतिभिः प्रविलोकितम्॥ ४६०॥

इति प्रविलोकितम् (८)

प्रविलोकित—८

४६० ग-घ. (अ०) **कृतिभिः** क्रियाकुशल (विद्वानों) के द्वारा **पार्श्वस्थदर्शनं** बाजू की ओर की वस्तु का दर्शन **प्रविलोकितं प्रोक्तं** प्रविलोकित कहा गया है।

यह प्रविलोकित है। (८)

साधारणान्यमून्याहू रसभावेषु तद्विदः।

इत्यष्टौ दर्शनानि

इत्यष्टौ विषयनिष्ठानि ताराकर्माणि

(इति तारकाप्रकरणम्)

४६१ क-ख. (अ०) **तत् विदः** उन (दर्शनों) के वेत्ता **अमूनि** ये (दर्शन) **रसभावेषु** रस और भावों में **साधारणानि आहुः** साधारण (रूप के) कहते हैं।

ये आठ दर्शन हैं।

ये पुतलियों के विषयनिष्ठ आठ कर्म हैं।

पुतली प्रकरण समाप्त

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(उपाङ्गम् ५—कपोलौ)

कुञ्चितौ कम्पितौ पूर्णौ क्षामौ फुल्लौ समौ तथा॥ ४६१॥

कपोलौ षड्विधावुक्तौ तल्लक्षणमथोच्यते।

उपांग ५—गाल

४६१ ग-४६२ ख. (अ०) कुंचित, कंपित, पूर्ण, क्षाम, फुल्ल और सम **षट्-विधौ कपोलौ** छ प्रकार के गाल **उक्तौ** कहे गये हैं। **अथ** अब **तत् लक्ष्म** उनके लक्षण **उच्यते** कहे जा रहे हैं।

(कुञ्चितौ—१)

संकोचात्कुञ्चितौ रोमाञ्चितौ शीते ज्वरे भये॥ ४६२॥

इति कुञ्चितौ (१)

कुंचित—१

४६२ ग-घ. (अ०) **संकोचात्** (गाल) संकुचित होने से **कुञ्चितौ** कुंचित (होते हैं)। **रोमाञ्चितौ** रोमांचित **शीते ज्वरे भये** ठंड, ज्वर (और) भय में (योजित होते हैं)।

ये कुंचित हैं। (१)

(कम्पितौ—२)

स्फुरितौ कम्पितौ कार्यौ रोमहर्षेषु सूरिभिः।

इति कम्पितौ (२)

कंपित—२

४६३ क-ख. (अ०) **स्फुरितौ कम्पितौ** स्फुरण होने वाले (गाल) कंपित (होते हैं)। **सूरिभिः** विद्वानों के द्वारा **रोमहर्षेषु कार्यौ** रोमांच और हर्ष में (योजित) करने चाहियें।

ये कंपित हैं। (२)

(पूर्णौ—३)

कपोलावुन्नतौ पूर्णौ तौ गर्वोत्साहगोचरे॥ ४६३॥

इति पूर्णौ (३)

पूर्ण—३

४६३ ग-घ. (अ०) **उन्नतौ कपोलौ** उन्नत गाल **पूर्णौ** पूर्ण (होते हैं)। **तौ** वे **गर्व-उत्साह-गोचरे** गर्व और उत्साह में दिखाई देते हैं।

ये पूर्ण हैं। (३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(क्षामौ—४)

क्षामौ त्ववनतौ ज्ञेयौ दुःखे कार्याविमौ नटैः।

इति क्षामौ (४)

क्षाम—४

४६४ क-ख. (अ०) क्षामौ तु क्षाम तो अवनतौ ज्ञेयौ नीचे झुके हुए जाने गये हैं। इमौ ये नटैः नटों के द्वारा दुःखे कार्यौ दुःख में (प्रयोग) किये जाने चाहियें।

ये क्षाम हैं। (४)

(फुल्लौ—५)

गण्डौ विकसितौ फुल्लौ प्रहर्षे परिकीर्तितौ॥ ४६४॥

इति फुल्लौ (५)

फुल्ल—५

४६४ ग-घ. (अ०) विकसितौ गण्डौ विकसित गाल फुल्लौ फुल्ल (होते हैं)। प्रहर्षे परिकीर्तितौ आनन्द में कहे गये हैं।

ये फुल्ल हैं। (५)

(समौ—६)

समौ स्वाभाविकौ भावेष्वनावेशेषु तौ मतौ।

इति समौ (६)

इति षोढा कपोललक्षणम्

(इति कपोलप्रकरणम्)

सम—६

४६५ क-ख. (अ०) स्वाभाविकौ समौ स्वाभाविक (स्थिति वाले) सम (होते हैं)। तौ वे अनावेशेषु भावेषु आवेशरहिंत भावों में माने गये हैं।

ये सम हैं। (६)

ये छ प्रकार के गालों के लक्षण हैं।

गाल प्रकरण समाप्त

(उपाङ्गम् ६—नासा)

स्वाभाविकी नता मन्दा विकृष्टा च विकूणिता॥ ४६५॥

सोच्छ्वासेत्युदिता नासा षड्विधा सूरिशार्ङ्गिणा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उपांग ६—नाक

४६५ ग-४६६ ख. (अ०) स्वाभाविकी, नता, मन्दा, विकृष्टा, विकूणिता और सोच्छ्वासा इति. ये सूरिशार्ङ्गिणा विद्वान् शार्ङ्गदेव के द्वारा षट्-विधा नासा उदिता छ प्रकार की नाक कही गई है।

(स्वाभाविकी—१)

स्वाभाविकी स्यादन्वर्था भावे सावेगवर्जिते॥ ४६६॥

इति स्वाभाविकी (१)

स्वाभाविकी—१

४६६ ग-घ. (अ०) स्वाभाविकी अन्वर्था स्यात् स्वाभाविकी अन्वर्था (स्वाभाविक स्थिति वाली) होती है। सा वह आवेगवर्जिते भावे आवेगरहित भाव में (योजित होती है)।

(सर०) आड्० के प्रकाशित पाठ में 'भावेष्वावेगवर्जिता' दिया है। इसमें स्वाभाविकी का विनियोग है और 'आवेगवर्जिता' 'भावेषु' का विशेषण है। लेकिन 'आवेगवर्जिता' 'एकवचन' और 'भावेषु' बहुवचन होने से असंगत है। सिंह० की टीका में स्पष्टत: 'सा आवेगवर्जिते भावे कार्या' होने से उसके आधार पर भावे सावेगवर्जिते पाठ बनाने से अर्थसंगति हो जाती है इसलिये यहाँ यही पाठ रखा है। सं०रा० में भी 'आवेशवर्जिते भावे'—यह विनियोग दिया है (अप्रकाशित, ४/३/९९)।

यह स्वाभाविकी है। (१)

(नता—२)

मुहुः संश्लिष्टविश्लिष्टपुटा नासा नता मता।
सोच्छ्वासाभिनये मन्दविच्छिन्नरुचिगोचरे॥ ४६७॥

इति नता (२)

नता—२

४६७. (अ०) मुहुः बार-बार (हर क्षण) संश्लिष्टविश्लिष्टपुटा नासा जुड़ते और अलग (फैलकर खुलते) हुए नथुनों वाली नाक नता मता नता मानी गई है। सा उच्छ्वास-अभिनये वह उच्छ्वास के अभिनय में (और) मन्दविच्छिन्नरुचिगोचरे मन्द तथा विभक्त (खंडित) रुचि के विषयों में (रुचि अति अल्प होने या हट जाने के प्रसंग में) (योजित करनी चाहिये)।

यह नता है। (२)

(मन्दा—३)

मन्दा तु मन्दनिःश्वासोच्छ्वासा नासाभिधीयते।
सा चिन्तौत्सुक्ययोः शोके निर्वेदे च विधीयते॥ ४६८॥

इति मन्दा (३)

मन्दा—३

४६८. (अ०) मन्दा नासा तु मन्दा नाक तो मन्दनिःश्वास-उच्छ्वासा मन्द निःश्वास और उच्छ्वास वाली अभिधीयते

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कही जाती है। **सा चिन्ता-औत्सुक्ययोः** वह चिन्ता और उत्सुकता, **शोके निर्वेदे च** शोक और निर्वेद में **विधीयते** योजित की जाती है।

यह मन्दा है। (३)

(विकृष्टा—४)

विकृष्टात्यन्तमुत्फुल्लपुटा रोषार्तिभीतिषु।
ऊर्ध्वश्वासे च कर्तव्या घ्रातव्ये भूरिसौरभे॥ ४६९॥

इति विकृष्टा (४)

विकृष्टा—४

४६९. (अ०) अत्यन्तम् उत्फुल्लपुटा अत्यन्त फैले हुए नथुनों वाली **विकृष्टा** विकृष्टा (होती है)। **रोष-आर्तिभीतिषु** (वह) रोष, दुःख और भय, **ऊर्ध्वश्वासे** ऊर्ध्व साँस **भूरिसौरभे घ्रातव्ये च** और बहुत सुगन्ध वाली वस्तु को सूँघने में **कर्तव्या** (योजित) करनी चाहिये।

यह विकृष्टा है। (४)

(विकूणिता—५)

विकूणिता संकुचिता हास्येऽसूयाजुगुप्सयोः।

इति विकूणिता (५)

विकूणिता—५

४७० क-ख. (अ०) संकुचिता संकुचित (नाक) **विकूणिता** विकूणिता (होती है)। **हास्ये** हास्य, **असूयाजुगुप्सयोः** असूया और जुगुप्सा में (योजित होती है)।

यह विकूणिता है। (५)

(सोच्छ्वासा—६)

आकृष्टश्वसना नासा सोच्छ्वासा सौरभे भवेत्॥ ४७०॥

निर्वेदादिषु भावेषु दीर्घोच्छ्वासकरेषु च।

इति सोच्छ्वासा (६)

इति षोढा नासिका

इति नासाप्रकरणम्

सोच्छ्वासा—६

४७० ग-४७१ ख. (अ०) आकृष्टश्वसना नासा खींच कर साँस लेने वाली नाक **सोच्छ्वासा** सोच्छ्वासा (होती है)।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सौरभे सुगन्ध, **निर्वेद-आदिषु** निर्वेद आदि **दीर्घ-उच्छ्वासकरेषु च भावेषु** और दीर्घ उच्छ्वासकारी भावों में **भवेत्** (योजित) होती है।

यह सोच्छ्वासा है। (६)

यह छ प्रकार की नाक है।

नाक प्रकरण समाप्त

(उपाङ्गम् ७—अनिलः)

स्वस्थौ चलौ प्रवृद्धश्च निरस्तोल्लासितावपि॥ ४७१॥

विमुक्तौ विस्मितः श्वासः स्खलितः प्रसृतस्तथा।
एवमुच्छ्वासनिःश्वासौ नवधा कोहलोदितौ॥ ४७२॥

समो भ्रान्तो विलीनश्चान्दोलितः कम्पितोऽपरः।
स्तम्भितोच्छ्वासनिःश्वाससूत्कृतानि च सीत्कृतम्॥ ४७३॥

एवं दशविधः प्रोक्तो लक्ष्यज्ञैर्मारुतोऽपरैः।

उपांग ७—वायु

४७१ ग-४७४ ख. (अ०) स्वस्थ, चल, प्रवृद्ध, निरस्त, उल्लासित, विमुक्त, विस्मित श्वास, स्खलित और प्रसृत **एवं** ये **नवधा उच्छ्वासनिःश्वासौ** नौ प्रकार के उच्छ्वास और निःश्वास **कोहल-उदितौ** कोहल द्वारा कहे गये हैं। **अपरैः लक्ष्यज्ञैः** दूसरे लक्ष्यज्ञाताओं के द्वारा सम, भ्रान्त, विलीन, आन्दोलित, कंपित, स्तंभित, उच्छ्वास, निःश्वास, सूत्कृत और सीत्कृत **एवं** ये **दशविधः मारुतः** दस प्रकार की वायु **प्रोक्तः** कही गई है।

(सर०) वायु, अनिल, पवन, मरुत् शब्द संस्कृत में पुल्लिंग हैं। हिन्दी के अनुसार वायु को अनुवाद में स्त्रीलिंग ही रखा है।

(स्वस्थौ—१)

स्वस्थावुच्छ्वासनिःश्वाससंज्ञौ वायू स्वभावजौ॥ ४७४॥

स्वस्थक्रियासु कर्तव्यावुक्तौ निःशङ्कसूरिणा।

इति स्वस्थौ (१)

स्वस्थ—१

४७४ ग-४७५ ख. (अ०) **स्वभावजौ** स्वाभाविक **उच्छ्वासनिःश्वाससंज्ञौ वायू** उच्छ्वास और निःश्वास नाम वाली वायु **स्वस्थौ** स्वस्थ (होती है)। **स्वस्थक्रियासु कर्तव्यौ** (वे) स्वस्थ क्रियाओं में (योजित) करनी चाहियें (ऐसा) **निःशङ्कसूरिणा उक्तौ** शंकारहित विद्वान् (शार्ङ्गदेव) के द्वारा कहा गया है।

ये स्वस्थ हैं। (१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(चलौ—२)

उष्णौ दीर्घौ सशब्दौ च तौ मुखेन कृतौ चलौ ॥ ४७५ ॥

कार्यावौत्सुक्यनिर्वेदशोकचिन्तास्विमौ मतौ ।

इति चलौ (२)

चल—२

४७५ ग-४७६ ख. (अ०) **उष्णौ** गर्म, **दीर्घौ** लंबी **सशब्दौ च** और ध्वनिसहित **मुखेन कृतौ** मुँह से की गई **चलौ** चल (होती हैं)। **इमौ** ये **औत्सुक्यनिर्वेदचिन्तासु** उत्सुकता, निर्वेद और चिन्ता में **कार्यौ** (प्रयुक्त) करनी (उचित) **मतौ** मानी गई हैं।

ये चल हैं। (२)

(प्रवृद्धः—३)

प्रवृद्धः सन्सशब्देन वदनेन विनिर्गतः ॥ ४७६ ॥

निःश्वासः स्यात्प्रवृद्धाख्यः क्षयव्याध्यादिगोचरः ।

इति प्रवृद्धः (३)

प्रवृद्ध—३

४७६ ग-४७७ ख. (अ०) **प्रवृद्धः सन्** बड़ा होकर **वदनेन** मुँह से **सशब्देन विनिर्गतः निश्वासः** आवाज़ के साथ बाहर निकलने वाला निःश्वास **प्रवृद्ध-आख्यः स्यात्** प्रवृद्ध नाम वाला होता है। **क्षयव्याधि-आदिगोचरः** क्षयरोग आदि में दिखाई देता है।

(सर०) सिंह० ने ध्यान दिलाया कि पिछले दोनों (यानी स्वस्थ और चल) से यह अलग है। उनमें उच्छ्वास और निःश्वास (दोनों) मिल कर योजित होने से संज्ञा में (स्वस्थौ और चलौ—यों) द्विवचन प्रयोग किया गया है। लेकिन यहाँ (प्रवृद्ध आदि में) एक-एक की भी योजना हो सकती है इसलिये द्विवचन प्रयोग नहीं किया (अर्थात् 'प्रवृद्धः' आदि एकवचन ही हैं)।

यह प्रवृद्ध है। (३)

(निरस्तः—४)

सशब्दः सन्सकृत्क्षिप्तो निरस्तः कथ्यते मरुत् ॥ ४७७ ॥

दुःखान्विते सरोगे च श्रान्ते चैष विधीयते ।

इति निरस्तः (४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

निरस्त—४

४७७ ग-४७८ ख. (अ०) **सशब्दः सन्** आवाज़ के साथ होते हुए **सकृत्** एक बार **उत्क्षिप्तः मरुत्** बाहर निकाली गई वायु **निरस्तः कथ्यते** निरस्त कही जाती है। **एष च** और यह **दुःख-अन्विते** दुःखयुक्त, **सरोगे** रोग सहित (अवस्था) में **श्रान्ते च** और विश्राम में **विधीयते** योजित होती है।

यह निरस्त है। (४)

(उल्लासितः—५)

चिरान्मन्दं निपीतस्तु घ्राणेनोल्लासितो मरुत्॥ ४७८॥

हृद्ये गन्धे विधातव्यः संदिग्धे च विचक्षणैः।

इत्युल्लासितः (५)

उल्लासित—५

४७८ ग-४७९ ख. (अ०) **चिरात्** देर तक **घ्राणेन** नाक से **मन्दं निपीतः मरुत् तु** धीरे-धीरे पीयी हुई (भीतर ली हुई) वायु तो **उल्लासितः** उल्लासित (होती है)। **विचक्षणैः** विचक्षणों के द्वारा **हृद्ये गन्धे** सुखद गन्ध **संदिग्धे च** और संदिग्ध (विषय) में **विधातव्यः** योजित करनी चाहिये।

यह उल्लासित है। (५)

(विमुक्तः—६)

संयम्य सुचिरं मुक्तो विमुक्तः कथ्यतेऽनिलः॥ ४७९॥

योगे ध्याने च स प्रोक्तः प्राणायामे च सूरिभिः।

इति विमुक्तः (६)

विमुक्त—६

४७९ ग-४८० ख. (अ०) **सुचिरं संयम्य** देर तक संयमन करके **मुक्तः अनिलः** छोड़ी गई वायु **विमुक्तः कथ्यते** विमुक्त कही जाती है। **सः च** और वह **योगे ध्याने च** योग और ध्यान में **प्राणायामे च** तथा प्राणायाम में **सूरिभिः** विद्वानों के द्वारा **प्रोक्तः** कही गई है।

यह विमुक्त है। (६)

(विस्मितः—७)

चित्तस्यान्यपरत्वेन यः प्रयत्नेन वर्तते॥ ४८०॥

स विस्मितो विस्मये स्यादद्भुते चार्थचिन्तने।

इति विस्मितः (७)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विस्मित—७

४८० ग-४८१ ख. (अ०) **चित्तस्य अन्यपरत्वेन** मन के अन्यत्र लगे होने पर **यः** जो (वायु) **प्रयत्नेन वर्तते** प्रयत्नपूर्वक चलती रहती है **सः विस्मितः** वह विस्मित (होती है)। **विस्मये** विस्मय, **अद्‌भुते** अद्‌भुत विषय **अर्थचिन्तने च** और विषय के चिन्तन में **स्यात्** (योजित) होती है।

यह विस्मित है। (७)

(स्खलितः—८)

महत्त्वाद्दुःखनिष्क्रान्तः कथितः स्खलितोऽनिलः॥ ४८१॥

स्याद्दशम्यां दशायां स व्याधौ प्रस्खलितेषु च।

इति स्खलितः (८)

स्खलित—८

४८१ ग-४८२ ख. (अ०) **महत्त्वात् दुःखनिष्क्रान्तः अनिलः** अत्यधिक दुःख के कारण बाहर निकलने वाली वायु **स्खलितः कथितः** स्खलित कही गई है। **सः** वह **व्याधौ दशम्यां दशायां** रोग की दसवीं दशा में **प्रस्खलितेषु च** और लड़खड़ाने में **स्यात्** (प्रयुक्त) होती है।

यह स्खलित है। (८)

(प्रसृतः—९)

प्रसुप्ते प्रसृतो दीर्घः सशब्दो निर्गतो मुखात्॥ ४८२॥

इति प्रसृतः (९)

इति नवविधोऽनिलः

प्रसृत—९

४८२ ग-घ. (अ०) **दीर्घः** लम्बी, **सशब्दः** आवाज़ के साथ **मुखात् निर्गतः** मुँह से निकलने वाली (वायु) **प्रसृतः** प्रसृत (होती है)। **प्रसुप्ते** (वह) गहरी नींद में (योजित होती है)।

यह प्रसृत है। (९)

यह नौ प्रकार की वायु है।

(मतान्तरेण दशविधं पवनम्)

समोऽत्र स्वस्थपर्यायो भ्रान्तोऽन्तर्भ्रमणान्मरुत्।
अन्ये त्वन्वर्थनामानस्तत्र सूत्कृतसीत्कृते॥ ४८३॥

शब्दानुकरणे वक्त्रत्याज्यग्राह्योऽनिले क्रमात्।
समः स्वाभाविको भ्रान्तः प्रथमे प्रियसङ्गमे॥ ४८४॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विलीनो मूर्छिते शैलारोहे त्वान्दोलितो मतः।
कम्पितः सुरते शस्त्रमोक्षादौ स्तम्भितो भवेत्॥ ४८५॥

उच्छ्वासः कुसुमाघ्राणे निःश्वासोऽनुशयादिषु।
सूत्कृतं वेदनादौ स्याच्छीते क्लेशे तु सीत्कृतम्॥ ४८६॥

नखक्षते मृगाक्षीणां निर्दयाधरचर्वणे।
विनियोगान्तराण्यत्र बुध्यतां लोकतो बुधः॥ ४८७॥

इति मतान्तरेण दशधा श्वसनः

इत्यनिलप्रकरणम्

मतान्तर से दस प्रकार की वायु

४८३-४८७. (अ०) **अत्र** इनमें से (मतान्तर से कही गई दस प्रकार की वायु में से) **समः स्वस्थपर्यायः** सम स्वस्थ की पर्याय है। **अन्तः भ्रमणात्** भीतर की ओर घूमने से **भ्रान्तः मरुत्** भ्रान्त वायु (होती है)। **अन्ये तु** अन्य तो **अन्वर्थनामानः** अन्वर्थ नाम वाली (हैं)। **तत्र** उनमें से **सूत्कृतसीत्कृते** सूत्कार और सीत्कार **क्रमात्** क्रम से **शब्द-अनुकरणे** (उन) शब्दों के अनुकरण से **वक्त्रत्याज्यग्राह्ये अनिले** मुँह से बाहर छोड़ती और भीतर लेती हुई वायु से (होती हैं)। **समः स्वाभाविकः** सम स्वाभाविक (अवस्था में), **भ्रान्तः** भ्रान्त **प्रथमे प्रियसङ्गमे** प्रिय के (साथ) पहले संयोग में, **विलीनः मूर्छिते** विलीन मूर्छा में (और) **शैल-आरोहे तु** पर्वत पर चढ़ने में तो **आन्दोलितः मतः** आन्दोलित वायु मानी गई है। **कम्पितः सुरते** कंपित संभोग में (और) **स्तम्भितः** स्तंभित **शस्त्रमोक्ष-आदौ** शस्त्र छोड़ने आदि में **भवेत्** (योजित) होती है। **उच्छ्वासः** उच्छ्वास **कुसुम-आघ्राणे** फूल सूँघने में, **निश्वासः** निःश्वास **अनुशय-आदिषु** पश्चात्ताप आदि में, **सूत्कृतं** सूत्कृत **वेदना-आदौ** वेदना आदि में (और) **शीते क्लेशे स्यात्** ठंड (तथा) वेदना में (प्रयुक्त) होती है। **सीत्कृतं तु** सीत्कार तो **मृग-अक्षीणां** मृगनयनी (सुन्दर आँखों वाली रमणी) के **नखक्षते** नखक्षत (और) **निर्दय-अधरचर्वणे** निर्दयता से ओठ चबाने में (विनियुक्त होती है)। **अत्र** इनमें **विनियोग-अन्तराणि** अन्य विनियोग **बुधः** बुद्धिमान् **लोकतः** लोक से **बुध्यतां** समझ लें।

(सर०) **शब्दानुकरणे** का आशय यह है कि वायु बाहर छोड़ते समय 'सू' की और भीतर लेते समय 'सी' की ध्वनि होने से सूत्कार और सीत्कार का अनुकरण होगा।

यह मतान्तर से दस प्रकार का श्वसन है।

वायु प्रकरण समाप्त

(उपाङ्गम् ८—अधरः)

विवर्तितः कम्पितश्च विसृष्टो विनिगूहितः।
संदष्टकः समुद्गश्चेत्यधरः षड्विधो मतः॥ ४८८॥

अन्येऽन्यानूचुरुद्वृत्तविकास्यायतरेचितान्।

उपांग ८—ओठ

४८८-४८९ ख. (अ०) विवर्तित, कंपित, विसृष्ट, विनिगूहित, संदष्टक और समुद्ग इति यों **अधरः** ओठ **षट्-विधः मतः** छ प्रकार का माना गया है। **अन्ये** दूसरे (आचार्य) उद्वृत्त, विकासी, आयत (और) रेचित (ये) **अन्यान् ऊचुः** दूसरे (चार भी) कहते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(विवर्तितः—१)

ओष्ठयोः संपुटस्तिर्यक्संकोचेन विवर्तितः॥ ४८९॥
अवज्ञावेदनासूयाहास्यादिषु विधीयते।

इति विवर्तितः (१)

विवर्तित—१

४८९ ग-४९० ख. (अ०) संकोचेन तिर्यक् संकोच से तिरछे हुए **ओष्ठयोः संपुटः** ओठों का संपुट **विवर्तितः** विवर्तित (होता है)। **अवज्ञावेदना-असूयाहास्य-आदिषु** (वह) अवज्ञा, वेदना, असूया, हास्य आदि में **विधीयते** योजित होता है।

यह विवर्तित है। (१)

(कम्पितः—२)

व्यथायां कम्पितोऽन्वर्थो भीतौ शीते जपे रुजि॥ ४९०॥

(इति कम्पितः २)

कंपित—२

४९० ग-घ. (अ०) कम्पितः अन्वर्थः कंपित अन्वर्थ (काँपने वाला है)। **व्यथायां** (वह) व्यथा, **भीतौ शीते जपे रुजि** भय, ठंड, जप (और) रोग में (विनियुक्त होता है)।

यह कंपित है। (२)

(विसृष्टः—३)

विसृष्टः स्याद्विनिष्क्रान्तो रञ्जनेऽलक्तकादिना।
स्त्रीणां विलासे बिब्बोके शार्ङ्गिदेवेन कीर्तितः॥ ४९१॥

इति विसृष्टः (३)

विसृष्ट—३

४९१. (अ०) विनिष्क्रान्तः बाहर निकाला हुआ (ओठ) **विसृष्टः स्यात्** विसृष्ट होता है। **शार्ङ्गिदेवेन** शार्ङ्गदेव के द्वारा **अलक्तक-आदिना रञ्जने** आलते आदि से रँगने, **स्त्रीणां विलासे** स्त्रियों के विलास (और) **बिब्बोके** बिब्बोक में **कीर्तितः** कहा गया है।

(सर०) सिंह० ने '**बहिर्निष्क्रान्तो वातो विसृष्टः**' कहा है लेकिन वात यानी वायु की यहाँ कोई सार्थकता नहीं है।

ना०शा० (२२/२१) और उस पर अभि० टीका के अनुसार वस्त्र, अलंकार आदि इष्ट वस्तुओं के प्राप्त हो जाने पर अभिमान और गर्व से स्त्रियों में उत्पन्न अनादर (का भाव) बिब्बोक होता है।

यह विसृष्ट है। (३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(विनिगूहितः—४)

मुखान्तर्निहितः प्राणसाध्येऽर्थे विनिगूहितः।
रोषेर्ष्ययोश्च नारीणां बलाच्चुम्बति वल्लभे॥ ४९२॥

इति विनिगूहितः (४)

विनिगूहित—४

४९२. (अ०) **मुख-अन्तर्निहितः** मुँह के अन्दर रखा हुआ (ओठ) **विनिगूहितः** विनिगूहित (होता है)। **प्राणसाध्ये अर्थे** प्रयत्नसाध्य विषयों, **नारीणां रोष ईर्ष्ययोः** स्त्रियों के रोष और ईर्ष्या (और) **वल्लभे बलात् चुम्बति** प्रिय द्वारा बलपूर्वक चुंबन करते हुए (करते समय योजित होता है)।

(सर०) यहाँ भी सिंह० के 'मुखमध्ये क्षिप्तो वातो विनिगूहितः' कथन में 'वात' उचित प्रतीत नहीं होता।

यह विनिगूहित है। (४)

(संदष्टकः—५)

संदष्टकोऽधरो दन्तैर्दष्टः क्रोधे विधीयते।

इति संदष्टकः (५)

संदष्टक—५

४९३ क-ख. (अ०) **दन्तैः दष्टः अधरः** दाँतों से काटा हुआ ओठ **संदष्टकः** संदष्टक (होता है)। **क्रोधे विधीयते** (वह) क्रोध में योजित होता है।

यह संदष्टक है। (५)

(समुद्गः—६)

समुद्गस्तु भवेदोष्ठसंपुटो दधदुन्नतिम्॥ ४९३॥
स्यात्फूत्कारेऽनुकम्पायां चुम्बने चाभिनन्दने।

इति समुद्गः (६)

समुद्ग—६

४९३ ग-४९४ ख. (अ०) **समुद्गः तु** समुद्ग तो **उन्नतिं दधत् ओष्ठसंपुटः** ऊँचा किये हुए ओठ के संपुट वाला (होता है)। **फूत्कारे** (वह) फूँकने, **अनुकम्पायाम्** अनुकंपा, **चुम्बने** चुंबन **अभिनन्दने च** और अभिनन्दन में **स्यात्** (प्रयुक्त) होता है।

यह समुद्ग है। (६)

(उद्वृत्तः—७)

आस्योत्क्षिप्ततयोद्वृत्तः सोऽवज्ञापरिहासयोः॥ ४९४॥

इत्युद्वृत्तः (७)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उद्‌वृत्त—७

४९४ ग-घ. (अ०) **आस्य-उत्क्षिप्ततया** मुँह ऊपर किये हुए (ओठ) से **उद्‌वृत्तः** उद्‌वृत्त (होता है)। **सः** वह **अवज्ञापरिहासयोः** अवज्ञा और परिहास में (योजित होता है)।

यह उद्‌वृत्त है। (७)

(विकासी—८)

ईषद्दृश्योर्ध्वदशनो विकासी स स्मिते स्मृतः।

इति विकासी (८)

विकासी—८

४९५ क-ख. (अ०) **ईषत् दृश्य-ऊर्ध्वदशनः** कुछ दिखाई देते हुए ऊपर के दाँत वाले (ओठ वाला) **विकासी** विकासी (होता है)। **सः** वह **स्मिते स्मृतः** स्मित में जाना गया है।

यह विकासी है। (८)

(आयतः—९)

स सार्धमुत्तरोष्ठेन ततः स्यादायतः स्मिते॥ ४९५॥

इत्यायतः (९)

आयत—९

४९५ ग-घ. (अ०) **सः** वही **उत्तर-ओष्ठेन सार्धम्** ऊपर के ओठ के साथ (योजित हो) **ततः** तब **आयतः स्यात्** आयत होता है। **स्मिते** (और) स्मित में (माना गया है)।

यह आयत है। (९)

(रेचितः—१०)

पर्यन्तवलनादुक्तो विलासे रेचितोऽधरः।

इति रेचितः (१०)

इति दशविधोऽधरः

इत्यधरप्रकरणम्

रेचित—१०

४९६ क-ख. (अ०) **पर्यन्तवलनात्** (ओठ के) सिरे मुड़े होने से **रेचितः अधरः उक्तः** रेचित ओठ कहा गया है। **विलासे** (वह) विलास में (योजित होता है)।

यह रेचित है। (१०)

यह दस प्रकार का ओठ है।

ओठ प्रकरण समाप्त

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(उपाङ्गम् ९—दन्तकर्माणि)

दन्तकर्माणि वक्ष्यामो दन्तलक्षणसिद्धये॥ ४९६॥

कुट्टनं खण्डनं छिन्नं चुक्कितं ग्रहणं समम्।
दष्टं निष्कर्षणं चेति दन्तकर्माष्टकं जगुः॥ ४९७॥

उपांग ९—दन्त कर्म (दाँत की क्रियाएँ)

४९६ ग-४९७. (अ०) **दन्तलक्षणसिद्धये** दाँतों के लक्षण सिद्ध करने के लिये **दन्तकर्माणि** दाँतों के कर्म (क्रियाएँ) **वक्ष्यामः** कहेंगे। कुट्टन, खण्डन, छिन्न, चुक्कित, ग्रहण, सम, दष्ट और निष्कर्षण **इति** ये **दन्तकर्म-अष्टकं विदुः** दाँत के आठ कर्म (विद्वान्) जानते हैं।

(कुट्टनम्—१)

संघर्षणं कुट्टनं स्याच्छीतरुग्भीजरासु तत्।

इति कुट्टनम् (१)

कुट्टन—१

४९८ क-ख. (अ०) **संघर्षणं** (दाँतों को परस्पर) घिसना (पीसना) **कुट्टनं स्यात्** कुट्टन होता है। **तत्** वह **शीतरुज्-भीजरासु** ठंड, रोग, भय और वृद्धावस्था (के अभिनय) में (योजित होता है)।

यह कुट्टन है। (१)

(खण्डनम्—२)

खण्डनं तु मुहुर्दन्तश्लेषविश्लेषणं मतम्॥ ४९८॥

जपाध्ययनसंलापभक्षणेषु भवेदिदम्।

इति खण्डनम् (२)

खंडन—२

४९८ ग-४९९ ख. (अ०) **खण्डनं तु** खंडन तो **मुहुः** बार-बार **दन्तश्लेषविश्लेषणं मतं** दाँत मिलाना और अलग करना माना गया है। **इदं** यह **जप-अध्ययनसंलापभक्षणेषु भवेत्** जप, अध्ययन, बातचीत और खाने में (योजित) होता है।

यह खंडन है। (२)

(छिन्नम्—३)

छिन्नं स्याद्गाढसंश्लेषो रोदने भीतिशीतयोः॥ ४९९॥

व्याधौ च वीटिकाच्छेदव्यायामादिषु कीर्तितम्।

इति छिन्नम् (३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

छिन्न—३

४९९ ग-५०० ख. (अ०) **गाढसंश्लेषः** (दाँतों का) गाढ़ (रूप से) मिलना (जुड़ना) **छिन्नं स्यात्** छिन्न होता है। **रोदने** रोने **भीतिशीतयोः** डर और ठंड, **व्याधौ** व्याधि **वीटिका-छेदव्यायाम-आदिषु** (पान का) बीड़ा तोड़ने और व्यायाम आदि में **कीर्तितं** कहा गया है।

यह छिन्न है। (३)

(चुक्कितम्—४)

दन्तपङ्क्त्योः स्थितिर्दूरे चुक्कितं जृम्भणादिषु॥ ५००॥

इति चुक्कितम् (४)

चुक्कित—४

५०० ग-घ. (अ०) **दन्तपङ्क्त्योः** दाँतों की दोनों पंक्तियों के **दूरे स्थितिः** दूर रहने पर **चुक्कितं** चुक्कित (होता है)। **जृम्भण-आदिषु** (वह) जँभाई आदि में (योजित होता है)।

यह चुक्कित है। (४)

(ग्रहणम्—५)

तृणस्य चाङ्गुलैर्दन्ते धारणं ग्रहणं भये।

इति ग्रहणम् (५)

ग्रहण—५

५०१ क-ख. (अ०) **अङ्गुलैः** उँगलियों से **तृणस्य च** तिनके का **दन्ते धारणं** दाँतों में रखना **ग्रहणं** ग्रहण (होता है)। **भये** (वह) भय में (योजित होता है)।

(सर०) आड्० के 'दन्तधारणं' की अपेक्षा आनन्द० का **दन्ते धारणं** अर्थ की दृष्टि से अधिक संगत है इसलिये यहाँ यही रखा है।

यह ग्रहण है। (५)

(समम्—६)

किंचिच्छ्लेषः समं तच्च स्वभावाभिनये मतम्॥ ५०१॥

इति समम् (६)

सम—६

५०१ ग-घ. (अ०) **किंचित् श्लेषः** (परस्पर) कुछ जुड़े हुए (दाँत) वाला **समं** सम (होता है) **तत् च** और वह **स्वभाव-अभिनये मतं** स्वाभाविक अभिनय में माना गया है।

यह सम है। (६)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(दष्टम्—७)

अधरे दंशनं दन्तैर्दष्टं क्रोधेऽभिधीयते।

इति दष्टम् (७)

दष्ट—७

५०२ क-ख. (अ०) दन्तैः दाँतों से अधरे दंशनम् ओठों को चबाना दष्टं दष्ट (होता है)। क्रोधे अभिधीयते (वह) क्रोध (के अभिनय) में कहा जाता है।

यह दष्ट है। (७)

(निष्कर्षणम्—८)

निष्कर्षणं तु निष्कासः कार्यं मर्कटरोदने॥ ५०२॥

इति निष्कर्षणम् (८)

इत्यष्टौ दन्तकर्माणि

इति दन्तकर्मप्रकरणम्

निष्कर्षण—८

५०२ ग-घ. (अ०) निष्कर्षणं तु निष्कर्षण तो निष्कासः (दाँत) बाहर निकालना (होता है)। मर्कटरोदने कार्यं बन्दर के जैसे (नकल में) रोने में (झूठे रोने में) (योजित) करना चाहिये।

यह निष्कर्षण है। (८)

ये दाँत के आठ प्रकार हैं।

दन्तकर्म प्रकरण समाप्त

(उपाङ्गम् १०—जिह्वा)

ऋज्वी सृक्कानुगा वक्रोन्नता लोलावलेहिनी।
जिह्वेति षड्विधा,

उपांग १०—जीभ

५०३ क-ग. (अ०) ऋज्वी, सृक्कानुगा, वक्रा, उन्नता, लोला और अवलेहिनी इति ये षड्विधा जिह्वा छ प्रकार की जीभ (होती है)।

(ऋज्वी—१)

तत्र प्रसृतास्ये प्रसारिता॥ ५०३॥

ऋज्वी श्रमे पिपासायां श्वापदानां प्रयुज्यते॥

इति ऋज्वी (१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ऋज्वी—१

५०३ घ-५०४ ख. (अ०) **तत्र** उनमें से **प्रसृत-आस्ये** फैले हुए मुँह में **प्रसारिता** फैली हुई (जीभ) **ऋज्वी** ऋज्वी (होती है)। **श्रमे** श्रम में (और) **श्वापदानां पिपासायां** जँगली जानवरों की प्यास (दिखाने) में (योजित होती है)।

(सर०) जँगली जानवर प्यास लगने पर जैसे मुँह चौड़ा करके सीधी जीभ निकाल कर पानी पीते हैं या प्यासे होने पर इसी मुद्रा में जीभ बाहर निकालते रहते हैं उससे तात्पर्य है।

यह ऋज्वी है। (१)

(सृक्कानुगा—२)

सृक्कानुगा लीढसृक्का प्रकोपस्वादुभक्षयोः ॥ ५०४ ॥

इति सृक्कानुगा (२)

सृक्कानुगा—२

५०४ ग-घ. (अ०) **लीढसृक्का** (सृक्का) मुँह के किनारे (लीढ) चाटने वाली (जीभ) **सृक्कानुगा** सृक्कानुगा (होती है)। **प्रकोपस्वादुभक्षयोः** (वह) बहुत क्रोध और स्वादिष्ट (पदार्थ) खाने में (योजित होती है)।

यह सृक्कानुगा है। (२)

(वक्रा—३)

व्यात्तास्यस्थोन्नताग्रा च वक्रा नृहरिरूपणे।

इति वक्रा (३)

वक्रा—३

५०५ क-ख. (अ०) **व्यात्त-आस्यस्थ-उन्नत-अग्रा च** फैले हुए मुँह में स्थित और ऊँचे उठे अग्र वाली **वक्रा** वक्रा (होती है)। **नृहरिरूपणे** नरसिंह के अभिनय में (प्रयुक्त होती है)।

यह वक्रा है। (३)

(उन्नता—४)

व्यात्तास्यस्थोन्नतान्वर्था जृम्भास्यान्तस्थवीक्षयोः ॥ ५०५ ॥

इत्युन्नता (४)

उन्नता—४

५०५ ग-घ. (अ०) **व्यात्त-आस्यस्थ** फैले हुए मुँह में स्थित (जीभ) **अन्वर्था** अन्वर्थ **उन्नता** उन्नता (होती है)। **जृम्भा-आस्य-अन्तस्थवीक्षयोः** जँभाई और मुँह के भीतर का देखने में (योजित होती है)।

यह उन्नता है। (४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(लोला—५)

व्यात्ते वक्त्रे चला लोला वेतालाभिनये भवेत्।

इति लोला (५)

लोला—५

५०६ क-ख. (अ०) **व्यात्ते वक्त्रे** फैले हुए मुँह में **चला** चंचल (जीभ) **लोला** लोला (होती है)। **वेताल-अभिनये भवेत्** (वह) वेताल के अभिनय में (योजित) होती है।

यह लोला है। (५)

(लेहिनी—६)

दन्तोष्ठं लिहती जिह्वा लेहिनी संमता मुनेः ॥ ५०६ ॥

इति लेहिनी (६)

इति षोढा जिह्वा

इति जिह्वाप्रकरणम्

लेहिनी—६

५०६ ग-घ. (अ०) **दन्त-ओष्ठं लिहती जिह्वा** दाँत और ओठ चाटती हुई जीभ **मुनेः** (भरत) मुनि की **लेहिनी संमता** लेहिनी मानी हुई है।

यह लेहिनी है। (६)

यह छ प्रकार की जीभ है।

जीभ प्रकरण समाप्त

(उपाङ्गम् ११—चिबुकम्)

जिह्वोष्ठदन्तक्रियया चिबुकं लक्ष्यते ततः।
उक्तप्रायं सुखार्थं तु वक्ष्ये लक्ष्यानुसारतः ॥ ५०७ ॥

उपांग—११—ठोडी

५०७. (अ०) **ततः** उसके (जीभ के) बाद **जिह्वा-ओष्ठदन्तक्रियया** जीभ, ओठ (और) दाँत की क्रिया से **चिबुकं लक्ष्यते** ठोडी लक्षित होती है। **उक्तप्रायं** (वह उनके द्वारा) कही जा चुकी है। **सुख-अर्थं तु** लेकिन सुख (बोध) के लिये **लक्ष्य-अनुसारतः वक्ष्ये** लक्ष्य के अनुसार कहता हूँ।

व्यादीर्णं श्वसितं वक्रं संहतं चलसंहतम्।
स्फुरितं वलितं लोलमेवं चिबुकमष्टधा ॥ ५०८ ॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

५०८. (अ०) व्यादीर्ण, श्वसित, वक्र, संहत, चलसंहत, स्फुरित, वलित (और) लोल एवं यों **चिबुकं** ठोडी **अष्टधा** आठ प्रकार की (होती है)।

(व्यादीर्णम्—१)

व्यादीर्णं दूरनिष्क्रान्तं जृम्भालस्यादिषु स्मृतम्।

इति व्यादीर्णम् (१)

व्यादीर्ण—१

५०९ क-ख. (अ०) **दूरनिष्क्रान्तं** दूर बाहर गई हुई **व्यादीर्णं** व्यादीर्ण (होती है)। **जृम्भा-आलस्य-आदिषु स्मृतं** जँभाई, आलस्य आदि में जानी गई है।

यह व्यादीर्ण है। (१)

(श्वसितम्—२)

एकाङ्गुलमधःस्त्रस्तं श्वसितं वीक्षणेऽद्भुते॥ ५०९॥

इति श्वसितम् (२)

श्वसित—२

५०९ ग-घ. (अ०) **एक-अङ्गुलम् अधः स्त्रस्तम्** एक अंगुल नीचे गई हुई **श्वसितं** श्वसित (ठोडी होती है)। **अद्भुते वीक्षणे** (वह) अद्भुत (विषय को) देखने में (प्रयुक्त होती है)।

यह श्वसित है। (२)

(वक्रम्—३)

वक्रं तिर्यङ्नतं तत्तु ग्रहावेशे विधीयते।

इति वक्रम् (३)

वक्र—३

५१० क-ख. (अ०) **तिर्यक् नतं वक्रं** तिरछी झुकी हुई वक्र (होती है)। **तत् तु** वह तो **ग्रह-आवेशे** भूत-प्रेत आदि के आवेश (पकड़ लेने) में **विधीयते** योजित होती है।

यह वक्र है। (३)

(संहतम्—४)

निश्चलं मीलितमुखं मौने संहतमिष्यते॥ ५१०॥

इति संहतम् (४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संहत—४

५१० ग-घ. (अ०) **मीलितमुखं** मिले हुए (बन्द) मुँह (और) **निश्चलं** निश्चल (हुई ठोडी) **संहतम् इष्यते** संहत जानी जाती है। **मौने** (वह) मौन में (योजित होती है)।

यह संहत है। (४)

(चलसंहतम्—५)

संलग्नोष्ठं चलं नारीवल्गने चलसंहतम्।

इति चलसंहतम् (५)

चलसंहत—५

५११ क-ख. (अ०) **संलग्न-ओष्ठं** जुड़े हुए ओठ वाली (और) **चलं** (जुड़ कर) हिलते हुए (ओठों से युक्त ठोड़ी) **चलसंहतं** चलसंहत (होती है)। **नारीवल्गने** स्त्री के चुंबन में (योजित होती है)।

(सर०) मान० (४/१६/११११) में इसका विनियोग स्त्रीभोग, कवल (कौर निगलने या खाने) और वृद्ध द्वारा पान चबाने में कहा गया है।

यह चलसंहत है। (५)

(स्फुरितम्—६)

कम्पितं स्फुरितं प्राहुर्भीते शीतज्वरे तथा॥५११॥

इति स्फुरितम् (६)

स्फुरित—६

५११ ग-घ. (अ०) **कम्पितं स्फुरितं प्राहुः** कंपित होती हुई (ठोडी) को स्फुरित कहते हैं। **भीते तथा शीतज्वरे** (वह) भय और शीतज्वर में (योजित होती है)।

यह स्फुरित है। (६)

(चलितम्—७)

चलितं श्लिष्टविश्लिष्टं वाक्स्तम्भे क्षोभकोपयोः।

इति चलितम् (७)

चलित—७

५१२ क-ख. (अ०) **श्लिष्टविश्लिष्टं** (मुँह) जुड़ने और अलग होने वाली (ठोडी) **चलितं** चलित (होती है)। **वाक्-स्तम्भे** वाणी की जड़ता, **क्षोभकोपयोः** क्षोभ और कोप में (योजित होती है)।

यह चलित है। (७)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(लोलम्—८)

रोमन्थे केवलावर्ते लोलं तिर्यग्गतागतम्॥ ५१२॥

इति लोलम् (८)

इत्यष्टविधं चिबुकम्

इति चिबुकप्रकरणम्

लोल—८

५१२ ग-घ. (अ०) **तिर्यक्** गत-आगतं तिरछे जाने (और) आने वाली (ठोडी) **लोलं** लोल (होती है)। **रोमन्थे** जुगाली (और) **केवलावर्ते** केवलावर्त (कुम्भक प्राणायाम का विशेष प्रकार जिसमें मुँह में रोकी हुई वायु को चक्कर जैसा घुमाया जाता है) में (योजित होती है)।

यह लोल है। (८)

यह आठ प्रकार की ठोडी है।

ठोडी प्रकरण समाप्त

(उपाङ्गम् १२—वदनम्)

व्याभुग्नं भुग्नमुद्वाहि विधुतं विवृतं तथा।
विनिवृत्तमिति प्राज्ञाः षड्विधं वदनं जगुः॥ ५१३॥

उपांग १२—वदन

५१३. (अ०) **प्राज्ञाः** प्रज्ञाशीलों (विशेष जानकारों) ने व्याभुग्न, भुग्न, उद्वाहि, विधुत, विवृत और विनिवृत्त इति ऐसे **षट्-विधं** छ प्रकार का **वदनं जगुः** वदन (चेहरा) कहा है।

(व्याभुग्नम्—१)

किंचिदायामिवक्त्रं च व्याभुग्नं मुखमुच्यते।
निर्वेदौत्सुक्यचिन्तादौ तदुक्तं पूर्वसूरिभिः॥ ५१४॥

इति व्याभुग्नम् (१)

व्याभुग्न—१

५१४. (अ०) **किंचित्** आयामि **वक्त्रं च मुखं** और कुछ विस्तृत मुँह वाला चेहरा **व्याभुग्नम् उच्यते** व्याभुग्न कहा जाता है। **पूर्वसूरिभिः** प्राचीन विद्वानों के द्वारा तत् वह **निर्वेद-औत्सुक्यचिन्ता-आदौ** निर्वेद, उत्सुकता, चिन्ता आदि में **उक्तं** कहा गया है।

यह व्याभुग्न है। (१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(भुग्नम्—२)

अधोमुखं तु भुग्नं तल्लज्जायां प्रकृतौ यतेः।

इति भुग्नम् (२)

भुग्न—२

५१५ क-ख. (अ०) अधोमुखं तु नीचे की ओर झुका हुआ भुग्नं भुग्न (होता है)। तत् वह लज्जायां लज्जा (और) यतेः प्रकृतौ यति (संयमी/संन्यासी) की स्वाभाविक अवस्था में (योजित होता है)।

यह भुग्न है। (२)

(उद्वाहि—३)

लीलासूत्क्षिप्तमुद्वाहि गर्वानादरतो गतौ॥ ५१५॥

इत्युद्वाहि (३)

उद्वाहि—३

५१५ ग-घ. (अ०) उत्क्षिप्तम् उद्वाहि ऊपर उठाया हुआ उद्वाहि (होता है)। लीलासु (वह) लीलाओं में (और) गर्व-अनादरतः गतौ गर्व से उत्पन्न अनादर वाली गति में (प्रयुक्त होता है)।

यह उद्वाहि है। (३)

(विधुतम्—४)

वारणे नैवमित्युक्तौ विधुतं तिर्यगायतम्।

इति विधुतम् (४)

विधुत—४

५१६ क-ख. (अ०) तिर्यक् आयतं तिरछा विस्तारित विधुतं विधुत (होता है)। वारणे मना करने न-एवम् 'ऐसा नहीं' इति उक्तौ यह कहने में (योजित होता है)।

यह विधुत है। (४)

(विवृतम्—५)

विश्लिष्टौष्ठं तु विवृतं हास्यशोकभयादिषु॥ ५१६॥

इति विवृतम् (५)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विवृत—५

५१६ ग-घ. (अ०) **विश्लिष्ट-ओष्ठं तु** अलग हुए (खुले हुए) ओठ वाला तो **विवृतं** विवृत (होता है)। **हास्यशोकभय-आदिषु** हास्य, शोक, भय आदि में (योजित करना चाहिये)।

यह विवृत है। (५)

(विनिवृत्तम्—६)

विनिवृत्तं परावृत्तं रोषेर्ष्यासूयितेषु तत्।

इति विनिवृत्तम् (६)

इति षोढा वदनम्

इति वदनप्रकरणम्

इति द्वादश शिरोगतान्युपाङ्गानि

विनिवृत्त—६

५१७ क-ख. (अ०) **परावृत्तं** पीछे मुड़ा हुआ **विनिवृत्तं** विनिवृत्त (होता है)। **तत्** वह **रोष-ईर्ष्या-असूयितेषु** रोष, ईर्ष्या और असूया में (योजित होता है)।

यह विनिवृत्त है। (६)

यह छ प्रकार का चेहरा है।

चेहरा प्रकरण समाप्त

सिर-संबन्धी बारह उपांग समाप्त

(अन्यान्युपाङ्गानि)

(पार्ष्णिगुल्फकराङ्गुल्यः)

(तत्र पार्ष्णिः)

उत्क्षिप्ता पतितोत्क्षिप्तपतितान्तर्गता तथा॥ ५१७॥

बहिर्गता मिथोयुक्ता वियुक्ताङ्गुलिसंगता।
पार्ष्णिरित्यष्टधा पादचारीस्थानेषु दृश्यते॥ ५१८॥

(इति पार्ष्णिः)

अन्य उपांग

एड़ी, टख़ने और हाथों की उँगलियाँ

एड़ी

५१७ ग-५१८. (अ०) **उत्क्षिप्ता, पतिता, उत्क्षिप्तपतिता, अन्तर्गता, बहिर्गता, मिथोयुक्ता, वियुक्ता, अंगुलिसंगता इति**

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यों **अष्टधा पार्ष्णिः** आठ प्रकार की एड़ी **पादचारीस्थानेषु** पाद, चारी और स्थानों में **दृश्यते** दिखाई देती है।

(सर०) एड़ी के प्रकारों के सभी नाम अन्वर्थ हैं। **उत्क्षिप्ता** ऊपर उठाई हुई, **पतिता** यानी नीचे लाई हुई, **उत्क्षिप्तपतिता** अर्थात् ऊपर उठा कर नीचे लाई हुई, **अन्तर्गता** भीतर गई हुई, **बहिर्गता** बाहर की ओर गई हुई, **मिथोयुक्ता** दोनों मिलाई हुई, **वियुक्ता** अलग की हुई और **अङ्गुलि-संगता** उँगलियों से लगी हुई।

ये एड़ी के प्रकार हैं।

(गुल्फौ)

गुल्फावङ्गुष्ठसंश्लिष्टावन्तर्यातौ बहिर्मुखौ।
मिथोयुक्तौ वियुक्तौ च पञ्चधा स्थानकादिषु॥ ५१९॥

(इति गुल्फौ)

टख़ने

५१९. (अ०) अंगुष्ठसंश्लिष्ट, अन्तर्यात, बहिर्मुख, मिथोयुक्त और वियुक्त **पञ्चधा गुल्फौ** पाँच प्रकार के टख़ने **स्थानक-आदिषु** स्थानक आदि में (दिखाई देते हैं)।

(सर०) ये क्रम से अँगूठे से लगे हुए, भीतर की ओर गये हुए, बाहर की ओर मुड़े हुए, दोनों जुड़े हुए और अलग किये हुए होते हैं। स्थानक आगे कहे जाने वाले हैं।

ये टख़ने के प्रकार हैं।

(कराङ्गुल्यः)

संयुता वियुता वक्रा वलिताः पतितास्तथा।
कुञ्चन्मूलाः करेऽङ्गुल्यः प्रसृताश्चेति सप्तधा॥ ५२०॥
एते पार्ष्ण्यादिभेदाः स्युः संज्ञाविज्ञातलक्षणाः।

(इति कराङ्गुल्यः)

इति पार्ष्णिगुल्फकराङ्गुलिभेदाः

हाथ की उँगलियाँ

५२०-५२१ ख. (अ०) संयुता, वियुता, वक्रा, वलिता, पतिता, कुंचन्मूला और प्रसृता **इति सप्तधा** ये सात प्रकार की **अङ्गुल्यः करे** उँगलियाँ हाथ में (होती हैं)।

एते पार्ष्णि-आदिभेदाः ये एड़ी आदि के भेद **संज्ञाविज्ञातलक्षणाः स्युः** नाम (वाले शब्दों) से ही ज्ञात लक्षण वाले होते हैं।

ये हाथ की उँगलियों के प्रकार हैं।

ये एड़ी, टख़ने, हाथ की उँगलियों के प्रकार हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(चारणाङ्गुलयः)

अधःक्षिप्तास्तथोत्क्षिप्ताः कुञ्चिताश्च प्रसारिताः ॥ ५२१ ॥

संलग्नाश्चेति चरणाङ्गुलयः पञ्चधा मताः ।

पैर की उँगलियाँ

५२१ ग-५२२ ख. (अ०) अधःक्षिप्ता, उत्क्षिप्ता, कुंचिता, प्रसारिता और संलग्ना इति यों **चरण-अङ्गुलयः** पैर की उँगलियाँ **पञ्चधा मताः** पाँच प्रकार की मानी गई हैं।

(अधःक्षिप्ताः—१)

मुहुः पातादधःक्षिप्ता बिब्बोके किलकिञ्चिते ॥ ५२२ ॥

(इत्यधःक्षिप्ताः १)

अधःक्षिप्ता—१

५२२ ग-घ. (अ०) **मुहुः पातात्** बार-बार नीचे ले जाने से **अधःक्षिप्ताः** अधःक्षिप्ता (होती हैं)। **बिब्बोके किलकिञ्चिते** बिब्बोक (और) किलकिंचित में (योजित होती हैं)।

(सर०) बिब्बोक और किलकिञ्चित का लक्षण ६७ ग-६८ ख में दिया जा चुका है।

ये अधःक्षिप्ता हैं। (१)

(उत्क्षिप्ताः—२)

उत्क्षिप्ता मुहुरुत्क्षेपान्नवोढायास्त्रपाभरे।

(इत्युत्क्षिप्ताः २)

उत्क्षिप्ता—२

५२३ क-ख. (अ०) **मुहुः उत्क्षेपात्** बार-बार ऊपर उठाने से **उत्क्षिप्ताः** उत्क्षिप्ता (कहलाती हैं)। **नव-ऊढायाः** (वे) नवविवाहिता की **त्रपाभरे** अत्यधिक लज्जा में (योजित होती हैं)।

ये उत्क्षिप्ता हैं। (२)

(कुञ्चिताः—३)

संकोचात्कुञ्चिताः शीतमूर्छात्रासग्रहार्दिते ॥ ५२३ ॥

(इति कुञ्चिताः ३)

कुंचिता—३

५२३ ग-घ. (अ०) **संकोचात् कुञ्चिताः** संकोच करने (सिकोड़ने) से कुंचिता (होती हैं)। **शीतमूर्छात्रासग्रह-अर्दिते** ठंड, मूर्छा, भय और ग्रहपीड़ा में (प्रयुक्त होती हैं)।

ये कुंचिता हैं। (३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(प्रसारिताः—४)

प्रसारिता ऋजुस्तब्धा स्तम्भे स्वापेऽङ्गमोटने।

(इति प्रसारिताः ४)

प्रसारिता—४

५२४ क-ख. (अ०) **प्रसारिताः** प्रसारिता **ऋजुस्तब्धाः** (लंबी होकर) सीधी (फैली हुई और) अचल (होती हैं)। **स्तम्भे** जड़ता, **स्वापे** गहरी नींद (और) **अङ्गमोटने** अंग मरोड़ने में (योजित होती हैं)।

ये प्रसारिता हैं। (४)

अङ्गुष्ठस्याप्यमी भेदा ज्ञातव्या नृत्तकोविदैः॥५२४॥

५२४ ग-घ. (अ०) **अमी भेदाः** ये (चार) प्रकार **नृत्तकोविदैः** नृत्तज्ञों के द्वारा **अङ्गुष्ठस्य-अपि** अँगूठे के भी **ज्ञातव्याः** जानने चाहियें (जाने गये हैं)।

(संलग्नाः—५)

स्वाङ्गुष्ठासु मिथोलग्नाः संलग्ना घर्षणे मताः।

इति चरणाङ्गुलिभेदाः

संलग्ना—५

५२५ क-ख. (अ०) **स्व-अङ्गुष्ठासु** अपने-अपने अँगूठों में **मिथोलग्नाः** परस्पर लगी हुई **संलग्नाः** संलग्ना (होती हैं)। **घर्षणे मताः** (वे) घर्षण में मानी गई हैं।

ये संलग्ना हैं। (५)

ये पैर की उँगलियों के प्रकार हैं।

(चरणतलम्)

पतिताग्रं चोद्धताग्रं भूमिलग्नमथोद्धतम्॥५२५॥

कुञ्चन्मध्यं तिरश्चीनमिति षोढा तलं विदुः।

(इति चरणतलम्)

इति करणगतानि पञ्चाङ्गानि

इति पार्ष्णिगुल्फाङ्गुलितलानि करचरणोपाङ्गानि

पैर के तलुए

५२५ ग-५२६ ख. (अ०) **पतित-अग्रम्** (आगे का सिरा नीचे गया हुआ) पतिताग्र, **उद्धत-अग्रम्** (ऊपर उठा हुआ आगे का सिरा) उद्धताग्र, **भूमिलग्नं** (भूमि से लगा हुआ) भूमिलग्न, **उद्धतम्** (ऊपर उठा हुआ) उद्धत, **कुञ्चन् मध्यं** (बीच

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का भाग संकुचित हुआ) कुंचन्मध्य (और) तिरश्चीनं (तिरछा हुआ) तिरश्चीन इति यों तलं (पैर के) तलुए **षोढा विदुः** (आचार्यों ने) छ प्रकार के जाने हैं।

ये पैर के तलुए हैं।

करणगत पाँच अंग समाप्त

एड़ी, टख़ने, उँगली और तलुए—हाथ-पैरों के उपांग समाप्त

(मुखरागः)

विवृणोति मनोवृत्तिं मुखरागो रसात्मिकाम्॥ ५२६॥

अतो रसोपयोगित्वान्मुखरागोऽभिधीयते।

मुखराग

५२६ ग-५२७ ख. (अ०) **मुखरागः** मुखराग (चेहरे का रंग यानी भावात्मक आकृति) **रस-आत्मिकां मनोवृत्तिं विवृणोति** रसस्वरूप वाले मन के व्यापार को प्रकट करता है **अतः** इसलिये **रस-उपयोगित्वात्** रस में उपयोगी होने से **मुखरागः अभिधीयते** मुखराग (को) कहा जा रहा है।

(सर०) कल्लि० ने व्याख्या शुरू करते हुए कहा कि नाट्य में उपयोग के द्वारा मुखराग का नृत्त में भी उपयोग दिखाने के लिये ग्रन्थकार ने **रसात्मिकां मनोवृत्तिं** कहा। रस यानी शृंगार आदि। इससे मनोवृत्ति आदि स्थायी भावरूप होना और निर्वेद आदि संचारी भावरूप होना समझना चाहिये क्योंकि इन स्थायी-संचारी आदि भावों का भी रसों में अंतर्भाव है। अर्थात् ये सब रस के घटक अवश्य हैं। नृत्त अभिनययुक्त न होने पर भी कभी नाट्य के अंग के रूप में नृत्त का रसव्यंजक स्वरूप मान लेने से और कभी स्वतंत्र रूप से गीत आदि में उसका प्रयोग होने पर गीत के वाक्यार्थ में निहित रस को नृत्त व्यक्त करता है इस कारण नृत्त में भी मुखराग की उपयोगिता होती है। इसलिये, यहाँ नृत्त के संदर्भ में मुखराग का वर्णन संगत नहीं है ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। आशय यह है कि मुखराग का नृत्त में भी उपयोग है।

स्वाभाविकः प्रसन्नश्च रक्तश्यामोऽपरस्तथा॥ ५२७॥

चतुर्धा मुखरागः,

५२७ ग-५२८ क. (अ०) स्वाभाविक, प्रसन्न, रक्त तथा **अपरः श्यामः** और एक अन्य श्याम (यों) **चतुर्धा मुखरागः** चार प्रकार का मुखराग (होता है)।

(स्वाभाविकः—१)

अत्रान्वर्थः स्वाभाविको मतः।
अनाविष्टेषु भावेषु सुधीभिः स विधीयते॥ ५२८॥

इति स्वाभाविकः (१)

स्वाभाविक—१

५२८ ख-घ. (अ०) **अत्र स्वाभाविकः** इनमें (से) स्वाभाविक **अन्वर्थः मतः** अन्वर्थ माना गया है। **सः** वह **सुधीभिः** बुद्धिमानों के द्वारा **अनाविष्टेषु भावेषु** आवेशरहित भावों में **विधीयते** योजित होता है।

यह स्वाभाविक है। (१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(प्रसन्नः—२)

प्रसन्नो निर्मलो हास्ये शृङ्गारे चाद्भुते भवेत्।

इति प्रसन्नः (२)

प्रसन्न—२

५२९ क-ख. (अ०) निर्मलः निर्मल (स्वच्छ स्वरूप वाला) प्रसन्नः प्रसन्न (होता है)। हास्ये शृङ्गारे अद्भुते च भवेत् हास्य, शृंगार और अद्भुत (रसों) में (प्रयुक्त) होता है।

यह प्रसन्न है। (२)

(रक्तः—३)

रक्तोऽरुणः स्यात्करुणे रौद्रे वीरेऽद्भुते तथा॥५२९॥

इति रक्तः (३)

रक्त—३

५२९ ग-घ. (अ०) रक्तः रक्त अरुणः स्यात् लाल होता है। करुणे रौद्रे वीरे तथा अद्भुते करुण, रौद्र, वीर और अद्भुत (रसों) में (प्रयोग किया जाता है)।

यह रक्त है। (३)

(श्यामः—४)

अन्वर्थो भवति श्यामः स बीभत्से भयानके।

इति श्यामः (४)

श्याम—४

५३० क-ख. (अ०) श्यामः श्याम अन्वर्थः भवति अन्वर्थ (शब्द से सूचित अर्थ वाला) होता है। सः वह बीभत्से भयानके बीभत्स (और) भयानक (रसों) में (योजित होता है)।

यह श्याम है। (४)

शशिनेव दिशोऽङ्गानि शोभन्ते मुखरागतः॥५३०॥

रसभावान्तरे नेत्रमन्यदन्यत्क्षणे भवेत्।
यथातथोचितः कार्यो मुखरागो रसे रसे॥५३१॥

इति चतुर्धा मुखरागः

इति मुखरागप्रकरणम्

५३० ग-५३१. (अ०) दिशः शशिना इव चन्द्रमा के द्वारा दिशाओं की तरह मुखरागतः अङ्गानि मुखराग से अंग

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शोभन्ते शोभित होते हैं। **यथा रसभाव-अन्तरे** जैसे रस और भाव का भेद होने (बदल जाने) पर **नेत्रं** आँख **क्षणे** एक(-एक) क्षण में **अन्यत् अन्यत् भवेत्** अलग-अलग (भिन्न) हो जाती है **तथा** उसी तरह **रसे रसे** रस-रस में (उस-उस रस में) **उचितः मुखरागः** यथायोग्य (रस के अनुरूप) मुखराग **कार्यः** (प्रयोग) किया जाना चाहिये।

यह चार प्रकार का मुखराग है।

मुखराग प्रकरण समाप्त

(हस्तप्रचाराः)

उत्तानोऽधोमुखः पार्श्वगतः पाणिरिति त्रिधा।
प्रचारं भरतो मेने पञ्चधा त्वपरे जगुः॥५३२॥

अग्रगोऽधस्तलश्चेति द्वौ त्रयश्च पुरोदिताः।
तत्र त्वग्रग उत्तानोऽधोमुखोऽधस्तलः करः॥५३३॥

अन्तर्भूतं वदन्भट्टस्त्रित्वमेव समादधे।

हस्तप्रचार

५३२-५३४ ख. (अ०) **उत्तान, अधोमुख** (और) **पार्श्वगत पाणिः** पाणि **इति त्रिधा प्रचारं** यों तीन प्रकार का (हस्त) प्रचार **भरतः मेने** भरत ने माना है। **अपरे तु** अन्य (आचार्य) तो **पञ्चधा जगुः** पाँच प्रकार के कहते हैं—**अग्रगः अधस्तलः च** अग्रग और अधस्तल **इति द्वौ** ये दो **त्रयः च** और तीन **पुरा उदिताः** (जो) पहले (अभी) कहे गये। **तत्र तु** किन्तु उनमें से **अग्रगः उत्तानः** अग्रग उत्तान (में और) **अधस्तलः करः अधोमुखः** अधस्तल हस्त अधोमुख (में) **अन्तर्भूतं वदन्** अन्तर्भूत (है ऐसा) कहते हुए **भट्टः त्रित्वम् एव** भट्ट (भट्ट नायक अथवा भट्ट अभिनवगुप्त) ने (हस्तों का) तीन प्रकार (में) ही **समादधे** समाधान किया है (तीन प्रकार ही माने हैं)।

(सर०) ग्रन्थकार द्वारा प्रयुक्त **भट्टः** को सिंह० ने 'भारतीयटीकाकार' यानी नाट्यशास्त्र का टीकाकार, भट्टनायक कहा है। यह उल्लेखनीय है कि नाट्यशास्त्र के चार प्रमुख टीकाकार माने जाते हैं—भट्टनायक, भट्ट लोल्लट, भट्ट शंकुक और अभिनवगुप्त। इनमें से पहले तीन की टीकाएँ आज मूल रूप में प्राप्त नहीं हैं लेकिन अभिनवगुप्त ने ना०शा० पर अपनी टीका अभिनवभारती में इनके ग्रन्थों से अनेक स्थानों पर उद्धरण दिये हैं। प्रस्तुत प्रसंग में अभिनव ने भट्ट उद्भट का उद्धरण दिया है जिसमें पाँच हस्तप्रचारों का उल्लेख है लेकिन अभिनव ने दो का अन्तर्भाव दिखा कर त्रिविधता सिद्ध की है। (ना०शा०, ९/१८२ पर अभि०, खण्ड २, पृ० ७०)

उत्तानोऽधस्तलः पार्श्वगतो हस्तोऽग्रतस्तलः॥५३४॥

स्वसंमुखतलश्चोर्ध्वमुखोऽधोवदनस्तथा।
पराङ्मुखः संमुखश्च हस्तोऽन्यः पार्श्वतोमुखः॥५३५॥

ऊर्ध्वगोऽधोगतः पार्श्वगतो हस्तोऽग्रगोऽपरः।
संमुखागत इत्येतान् प्रचारान् दश पञ्च च॥५३६॥

लक्ष्यलक्षणतत्त्वज्ञः शार्ङ्गदेवोऽभ्यभाषत।

इति पञ्चदश हस्तप्रचाराः

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

५३४ ग-५३७ ख. (अ०) उत्तान, अधस्तल, पार्श्वगत, अग्रतस्तल, स्वसंमुखतल, ऊर्ध्वमुख, अधोमुख, पराङ्मुख, संमुख, पार्श्वतोमुख, ऊर्ध्वग, अधोगत, पार्श्वगत, अग्रग और संमुखगत **इति** इस प्रकार **एतान्** ये **दश पञ्च च प्रचारान्** दस (और) पाँच (पन्द्रह) (हाथों के) प्रचार **लक्ष्यलक्षणतत्त्वज्ञः** लक्ष्य (और) लक्षण के तत्त्व के ज्ञाता **शार्ङ्गदेवः** शार्ङ्गदेव ने **अभ्यभाषत** स्पष्ट रूप से कहे हैं।

ये पन्द्रह हस्तप्रचार हैं।

(हस्तकरणानि)

निष्पत्तौ निरपेक्षायां करस्याभिनयाय यः॥ ५३७॥

क्रियाविशेषः क्रियते तद्धस्तकरणं मतम्।

हस्तकरण

५३७ ग-५३८ ख. (अ०) **करस्य** (पताक आदि) हस्त की **निरपेक्षायां निष्पत्तौ** निरपेक्ष निष्पत्ति में (अर्थात् जिनकी अपेक्षा के बिना हस्त सिद्ध होता है) **अभिनयाय** अभिनय (अर्थात् विनियोग के अनुसार अभिव्यक्ति) के लिये **यः क्रियाविशेषः क्रियते** जो विशेष क्रिया की जाती है **तत्** वह **हस्तकरणं मतं** हस्तकरण माना जाता है।

(सर०) प्रस्तुत अंश पर कल्लि० की टीका का सार यह है कि पहले पताक आदि हस्तों के जो लक्षण कहे गये (श्लो० १०१) उनके द्वारा उन हस्तों की सिद्धि यद्यपि आवेष्टित आदि करणों के बिना भी हो जाती है लेकिन अभिनय यानी किसी अर्थ को प्रदर्शित करने के लिये हाथ को कभी 'उत्तान' (ऊपर), कभी 'अधस्तल' (नीचे) कभी 'पार्श्वतल' बाजू में ले जाना होता है। इस प्रकार एक से दूसरी हस्तक्रिया में जाने के बीच में जो 'छिद्र' (अन्तर, Gap) आता है उसे भरने के लिये जो विशेष प्रकार की क्रिया की जाती है, जिसे 'वर्तना' कहा गया है, वह हस्तकरण है।

आवेष्टितोद्वेष्टिते च व्यावर्तितमतः परम्॥ ५३८॥

परिवर्तितमित्येतच्चतुर्धा सूरिसंमतम्।

५३८ ग-५३९ ख. (अ०) आवेष्टित, उद्वेष्टित और व्यावर्तित **अतः परम्** इसके बाद **परिवर्तितं** परिवर्तित **इति** यों **एतत् चतुर्धा** यह चार प्रकार का (हस्तकरण) **सूरिसंमतं** विद्वानों का संमत (माना गया है)।

(आवेष्टितम्—१)

तर्जन्याद्यङ्गुलीनां यद्भवेदावेष्टनं क्रमात्॥ ५३९॥

तलसंमुखमावक्षः करोऽप्यायाति पार्श्वतः।

तदावेष्टितमाख्यातं करस्य करणं बुधैः॥ ५४०॥

(इत्यावेष्टितम् १)

आवेष्टित—१

५३९ ग-५४०. (अ०) **तर्जनी-आदि-अङ्गुलीनां** तर्जनी आदि (चारों) उँगलियों का **यत्** जो **क्रमात्** क्रम से **आवेष्टनं** मोड़ना या टेढ़ा करना **भवेत्** होता है (और) **तलसंमुखं करः अपि** हथेली सामने हुआ हाथ भी **पार्श्वतः** बाजू से **आवक्षः** छाती तक **आयाति** आता है **तत्** वह **बुधैः** बुद्धिमानों के द्वारा **करस्य** हाथ का **आवेष्टित-आख्यं करणम्** आवेष्टित नाम वाला करण (अर्थात् आवेष्टित हस्तकरण) **आख्यातं** कहा गया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) **क्रमात्** यानी तर्जनी से शुरू करके एक के बाद एक मध्यमा आदि उँगलियाँ। कल्लि० ने कहा कि आवेष्टन करते समय ही हाथ भी अपनी बाजू की ओर से इस तरह छाती तक ले जाना जिससे हथेली अभिनेता की ओर रहे। **आयाति** यानी विलास के साथ छाती तक आये।

(यह आवेष्टित है। १)

(उद्वेष्टितम्—२)

यत्तु क्रमेण निर्याणमङ्गुलीनां तलाद्बहिः।
वक्षःस्थलात्करस्यापि तदुद्वेष्टितमुच्यते॥ ५४१॥

(इत्युद्वेष्टितम् २)

उद्वेष्टित—२

५४१. (अ०) **यत् तु** और जो **अङ्गुलीनाम्** उँगलियों का **क्रमेण** क्रम से **तलात्** हथेली से **बहिः निर्याणं** बाहर की ओर जाना **करस्य अपि** (और) हाथ का भी **वक्षःस्थलात्** छाती से (बाहर जाना) **तत्** वह **उद्वेष्टितम् उच्यते** उद्वेष्टित कहा जाता है।

(सर०) कल्लि० ने स्पष्ट किया कि पहले जो उँगलियाँ वक्र की हुई थीं उन्हें तर्जनी आदि के ही क्रम से सीधा करने और उसके साथ-साथ हाथ को भी वापस छाती से दूर ले जाने से उद्वेष्टित होता है। **करस्य अपि** में **अपि** का आशय हाथ का भी 'निर्याण' समझना चाहिये।

(यह उद्वेष्टित है। २)

(व्यावर्तितं परिवर्तितञ्च—३, ४)

आवेष्टितप्रक्रियया कार्यं व्यावर्तितं करे।
उद्वेष्टितेन व्याख्यातं करणं परिवर्तितम्॥ ५४२॥
किंत्वेतत्करणद्वन्द्वं कनिष्ठाद्यङ्गुलीकृतम्।

(व्यावर्तितं परिवर्तितम् ३, ४)

इति चत्वारि करकरणानि

व्यावर्तित और परिवर्तित—३, ४

५४२-५४३ ख. (अ०) **आवेष्टितप्रक्रियया** (फिर से) आवेष्टित की (ही) प्रक्रिया से **करे** हाथ में **व्यावर्तितं कार्यं** व्यावर्तित करना चाहिये। **उद्वेष्टितेन** उद्वेष्टित से **परिवर्तितं करणं** परिवर्तित करण **व्याख्यातं** कहा गया है। **किंतु** लेकिन **एतत् करणद्वन्द्वं** ये दो करण **कनिष्ठा-आदि-अङ्गुलीकृतं** कनिष्ठा आदि उँगली के क्रम से की हुई (होती हैं)।

(सर०) पूर्वोक्त आवेष्टित और उद्वेष्टित करण ही तर्जनी से शुरू करने के बजाय कनिष्ठा से शुरू करने पर क्रमशः व्यावर्तित और परिवर्तित कहे जाते हैं।

(ये व्यावर्तित और परिवर्तित हैं। ३, ४)

(सर०) इन चार हस्तकरणों का अभिनय के साथ संबन्ध स्पष्ट करने के लिये कल्लि० ने कालिदास के विक्रमोर्वशीय

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नाटक के नान्दीश्लोक का अभिनयप्रकार विस्तार के साथ दिखाया है। इस श्लोक का यहाँ अनुवाद देकर उस टीका का अनुवाद दिया जा रहा है। श्लोक यह है—

वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी
यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः।
अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते
स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायास्तु वः॥

अर्थ—जिसे वेदान्तों में पृथ्वी और आकाश को व्याप्त करके रहने वाला एक अर्थात् अद्वितीय पुरुष कहा गया है, जिसके लिये अनन्यविषय अर्थात् किसी भी दूसरे का विषय न होने वाला, ईश्वर जैसा यथार्थ अक्षर प्रयुक्त होता है, जो प्राण आदि का नियमन करने वाले मुमुक्षुओं के द्वारा अन्तःकरण में खोजा जाता है वह स्थिर भक्तियोग के द्वारा सुलभ होने वाला स्थाणु अर्थात् शिव **वः** आपके लिये कल्याणदायक अस्तु हो।

कल्लि० ने इसका अभिनय इस प्रकार दिखाया है—

पहले तालधारी द्वारा ताल (नामक वाद्य) पर एक आघात देकर 'तत्ताधी' बोल बजाने पर सूत्रधार के रूप में प्रविष्ट पात्र नट या नटी उस बोल के साथ ही मंडल स्थानक के साथ चतुरश्र हस्त करके गायिका के द्वारा **वेदान्तेषु** आदि पद गाये जाते हुए उन स्वरों के ताल (प्रमाण) में पहले **वेद** पद के अर्थ का निकुंचित हस्त से, उत्तान पराङ्मुख, अधोगत (हस्तप्रचारों) से उद्वेष्टित करणपूर्वक विलास के साथ अभिनय करे। अभिनय में दृष्टि सदा हाथ का अनुसरण करे। उसके बाद (वेदान्तेषु के) **अन्तेषु** पद के अर्थ का अग्रतस्तल, पार्श्वमुख और ऊर्ध्वमुख हस्तों के साथ सूचीमुख हस्त से अभिनय करे। तब निकुंचक और सूचीमुख के बीच में आवर्तित करण होता है। उसके बाद **यं** पद के अर्थ का अभिनय व्यावर्तित करणपूर्वक बायें सूचीमुख हस्त से अग्रतस्तल, ऊर्ध्वमुख और पार्श्वगत हस्तप्रचारों के द्वारा करें। उस समय, दाहिना हाथ कमर या नाभि पर रखना चाहिये। तदनन्तर **आहुः** पद के अर्थ को उद्वेष्टित करणपूर्वक दाहिने हंसास्य हस्त से मुख के पास कुछ प्रसारित ऊर्ध्वमुख और उत्तान हस्तप्रचारों के साथ अभिनीत करें। उस समय भी बायाँ हाथ कमर या नाभि पर रखें। इस प्रकार सर्वत्र असंयुत हस्त से अभिनय करें और तब दूसरा हाथ कमर या नाभि पर रहे यह समझना चाहिये। इसके बाद **एकं** पद के अर्थ का अभिनय आवेष्टित करणपूर्वक दाहिने सूचीमुख हस्त से ऊर्ध्वमुख, अग्रतस्तल और अग्रग हस्तप्रचारों से करें। तब **पुरुषं** पद का अर्थ उद्वेष्टित करणपूर्वक बायें चतुर हस्त से स्वसंमुखतल, ऊर्ध्व पार्श्वमुख से अभिनीत करें। इसके बाद **व्याप्य** के अर्थ का ऊर्ध्व उद्वेष्टित करण के साथ दाहिने पताक हस्त से उत्तान, पराङ्मुख, पार्श्वगत हस्तप्रचारों के साथ स्वयं एक भ्रमरिका करके अभिनय करें। फिर **स्थितं** का अर्थ व्यावर्तित करणपूर्वक बायें शिखर हस्त से स्वसंमुखतल, पार्श्वमुख और कुछ अधोगत प्रचारों से अभिनीत करें। तब **रोदसी** के अर्थ को उद्वेष्टितपूर्वक दाहिने पताक हस्त से उत्तान, अधोमुख, ऊर्ध्वगत प्रचारों से आकाश दिखा कर फिर उसी हस्त से अधोमुख, अधोगत से भूमि दिखा कर अभिनीत करें।

उसके बाद **यस्मिन्** का अर्थ बायें हाथ से पहले कहे गये यं के पदार्थ की तरह अभिनीत करें। तब **ईश्वरः** के पदार्थ का अभिनय उद्वेष्टित करणपूर्वक दाहिने चतुर हस्त से उत्तान ऊर्ध्वमुख से मुख के पास से कुछ पार्श्वगत हस्तप्रचार से करें। फिर **इति** का पदार्थ आवेष्टित करणपूर्वक दाहिने मृगशीर्ष हस्त से अधस्तल, पार्श्वमुख, संमुखागत, हस्तप्रचार के साथ अभिनीत करें। तब **अनन्यविषयः** में (अन् के) 'नञ्' के 'न'कार का अर्थ उद्वेष्टितपूर्वक बायें खटकामख हस्त से मुक्तकटक से अभिनीत करें। उसी सूचीमुख रूप से फिर से उद्वेष्टितपूर्वक उत्तान, पार्श्वगत हस्त प्रचार से अन्य का अर्थाभिनय करें। तब **विषयः** पद के अर्थ का अभिनय उद्वेष्टितपूर्वक दाहिने चतुर हस्त से उत्तान, पराङ्मुख, कुछ पार्श्वगत प्रचार से करें। तब **शब्दः** के अर्थ का अभिनय व्यावर्तितपूर्वक बायें सूचीमुख, अग्रतस्तल प्रचारों से कर्णरन्ध्रों की ओर करके करें। उसके बाद **यथार्थ** का अभिनय उद्वेष्टितपूर्वक दाहिने संदंश हस्त से उत्तानित व कुछ ऊपर जाकर अधोगत प्रचार से करें। तब **अक्षरः** का पदार्थभिनय आवेष्टितपूर्वक दाहिने संदंश हस्त से अग्रतस्तल, ऊर्ध्वमुख क्रिया के द्वारा पार्श्वगत से करें।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इसके बाद **अन्तः** का अर्थ व्यावर्तितपूर्वक दाहिने संदंश हस्त से संमुख से हृदय के पास रखे हस्तप्रचार से अभिनीत करें। फिर **यः** के पदार्थ का पहले की तरह अभिनय करके **च** पद का अभिनय उसी से कुछ पार्श्वप्रसारित हस्त से करें। तब **मुमुक्षुभिः** का पदार्थ संमुखागत व्यावर्तितपूर्वक दोनों संदंश हस्तों से उत्तान प्रचार से नाभि और हृदय से ऊपर-ऊपर रख कर अभिनीत करें। फिर **नियमित** का पदार्थाभिनय व्यावर्तितपूर्वक बायें शिखर हस्त से संमुखागत से हृदय के पास करें। फिर **प्राणादिभिः** के पदार्थ का अभिनय व्यावर्तितपूर्वक दाहिने संदंश हस्त से स्वसंमुखतल, पार्श्वमुख, संमुखागत प्रचारों से नाक के पास दो या तीन बार नीचे लाकर और ऊपर ले जाकर करें। इसके बाद **मृग्यते** के अर्थ का अभिनय उसी उद्वेष्टितपूर्वक कर्तरीमुख हस्त से पार्श्वतल पराङ्मुख हस्तप्रचार से हृदय के पास धीरे से गोलाकार घुमा कर करें।

तब **सः** के अर्थ का बायें हाथ से **यत्** शब्द के अर्थ की तरह अभिनय करें। तब **स्थाणुः** का पदार्थ व्यावर्तितपूर्वक दोनों पताक हस्तों से सिर पर अंजली करके अभिनीत करें। फिर **स्थिर** के अर्थ का परिवर्तितपूर्वक दो संदंश हस्तों से उत्तान, पराङ्मुख हस्तप्रचार से हृदय के पास रख कर अभिनय करें। तब **भक्ति** पद का अर्थ परिवर्तित करणपूर्वक दोनों पताक हस्तों से हृदय पर अंजली बाँधकर अभिनीत करें। फिर **योग** का अभिनय परिवर्तितपूर्वक दोनों संदंश हस्तों से उत्तान प्रचार से 'मुमुक्षु' की तरह करें। लेकिन बायाँ हाथ नाभि पर उत्तान पताक से करें। तब **सुलभः** पद का अर्थ व्यावर्तितपूर्वक दाहिने चतुर हस्त से उत्तान, पार्श्वमुख प्रचार से हृदय के पास संमुखागत से अभिनीत करें। इसके बाद **निःश्रेयसाय** पद का अर्थ व्यावर्तितपूर्वक दोनों अराल हस्तों से उत्तानित पुरोमुख के द्वारा ऊर्ध्वगत प्रचार के साथ संवलन (समेटना, पूरे वाक्यार्थ या प्रपञ्च का उपसंहार) का अभिनय करें। तब **अस्तु** पद का दाहिने परिवर्तितपूर्वक पताक हस्त से उत्तान, पार्श्वमुख, पार्श्वअन्तरगत (दूसरी बाजू की ओर गये हुए) प्रचारों से अभिनय करें। तब **वः** पद के अर्थ का परिवर्तितपूर्वक दोनों पताक हस्तों से उत्तान, पुरोमुख, अग्रग हस्तप्रचारों से अभिनय करें।

इस प्रकार दो हस्तों के बीच के अन्तर को भरने के लिये करणों का प्रयोग समझना चाहिये। पदार्थों के अभिनय में कुछ आचार्य विभक्ति के अर्थ का भी अलग अभिनय दिखाते हैं। लेकिन वाचिक अभिनय से ही उनका बोध हो जाने और भरत मुनि द्वारा (अलग से) न कहने का आधार देकर कल्लि० ने उनका विस्तार नहीं किया। फिर भी कल्लि० ने यह स्पष्ट किया कि जहाँ प्रत्यय के अर्थ की प्रधानता हो वहाँ पहले प्रकृति (मूल शब्द) का अभिनय करके उसके बाद प्रत्यय के अर्थ का अभिनय करें। जहाँ प्रकृति का अर्थ प्रधान हो वहाँ उसी का अभिनय करना चाहिये, प्रत्यय के अर्थ का नहीं। इससे भरत के द्वारा विधि-निषेध और अनुभव के रूप से हस्ताभिनय की विधि तीन प्रकार की कही गई समझनी चाहिये।

कल्लि० ने हस्तों को हस्तप्रचारों सहित हस्तकरणों के द्वारा संबद्ध करके १५वीं शताब्दी तक किस प्रकार अभिनय किया जाता था इसका स्पष्ट निरूपण नान्दीश्लोक के द्वारा किया है।

चार प्रकार के करकरण समाप्त

(करकर्माणि)

धूननं श्लेषविश्लेषौ क्षेपो रक्षणमोक्षणे॥ ५४३॥

परिग्रहो निग्रहश्चोत्कृष्टाकृष्टिविकृष्टयः।
ताडनं तोलनं छेदभेदौ स्फोटनमोटने॥ ५४४॥

स्याद्विसर्जनमाह्वानं तर्जनं चेति विंशतिः।
करकर्माणि नृत्तज्ञैरन्वर्थानि बभाषिरे॥ ५४५॥

इति विंशतिः करकर्माणि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करकर्म (हाथ के कार्य)

५४३ ग-५४५. (अ०) धूनन, श्लेष, विश्लेष, क्षेप, रक्षण, मोक्षण, परिग्रह, निग्रह, उत्कृष्ट, आकृष्टि, विकृष्टि, ताडन, तोलन, छेद, भेद, स्फोटन, मोटन, विसर्जन, आह्वान और तर्जन **इति विंशतिः** ये बीस **अन्वर्थानि** अन्वर्थ **करकर्माणि** करकर्म **नृत्तज्ञैः** नृत्त के ज्ञाताओं के द्वारा **बभाषिरे** कहे गये हैं।

(सर०) धूनन का अर्थ झकझोरना/कँपाना है, श्लेष का जुड़ना, विश्लेष का अलग होना, क्षेप का फेंकना, रक्षण का बचाना, मोक्षण का छोड़ना, परिग्रह का लेना, निग्रह का रोकना, उत्कृष्ट का ऊपर खींचना, आकृष्टि का पूरा खींचना/ओढ़ना, विकृष्टि का दूर हटाना, ताडन का प्रहार करना, तोलन का ऊपर उठाना, छेद का तोड़ना, भेद का फोड़ना, स्फोटन का फाड़ना, मोटन का मोड़ना/मरोड़ना, विसर्जन का दूर भेजना या विदा करना, आह्वान का बुलाना, तर्जन का डाँटना या क्रोधसहित धमकाना।

सिंह० का 'तोलनं' के स्थान पर 'लोलनं' पाठ है।

ये बीस करकर्म हैं।

(हस्तक्षेत्राणि)

पार्श्वद्वयं पुरस्ताच्च पश्चादूर्ध्वमधः शिरः।
ललाटकर्णस्कन्धोरोनाभयः कटिशीर्षके ॥ ५४६ ॥

ऊरुद्वयं च हस्तानां क्षेत्राणीति चतुर्दश।

इति चतुर्दश हस्तक्षेत्राणि

हस्तक्षेत्र

५४६-५४७ ख. (अ०) **पार्श्वद्वयं पुरस्तात् पश्चात् च** दो बाजू सामने और पीछे, **शिरः** सिर **ऊर्ध्वम् अधः** ऊपर-नीचे, **ललाटकर्णस्कन्ध-उरोनाभयः** ललाट, (दो) कान, (दो) कन्धे, छाती, नाभि, **कटिशीर्षके** दोनों (ओर) कमर के ऊपर के भाग **ऊरुद्वयं च** और दोनों जाँघ **इति चतुर्दश** ये चौदह **हस्तानां क्षेत्राणि** हाथों (की क्रियाओं) के क्षेत्र (स्थान) हैं।

ये चौदह हस्तक्षेत्र हैं।

(नृत्तकरणानि)

(मङ्गलाचरणम्)

करणैः करणातीतोऽनङ्गहारोऽङ्गहारकैः ॥ ५४७ ॥

यः स्थाणू रोदसीरङ्गे नृत्यतीशं नमामि तम्।

नृत्तकरण

मंगलाचरण

५४७ ग-५४८ ख. (अ०) **यः** जो **करण-अतीतः** (चक्षु आदि) इन्द्रियों से अतीत (पार गया हुआ है) **अनङ्गहारः** (और) कामदेव को हरने वाला (है), **स्थाणुः** (जो) स्थिर (है और) **रोदसीरङ्गे** आकाश और पृथ्वी के रंगमंडप पर **करणैः अङ्गहारकैः** करणों (और) अंगहारों से **नृत्यति** नृत्य करता है **तम् ईशम्** उस ईश्वर (शिव) को **नमामि** नमन करता हूँ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) यहाँ ग्रन्थकार ने विरोध अलंकार के द्वारा, कल्लि० के अनुसार, ताण्डव नृत्त के प्रवर्तक शिव की वन्दना करते हुए मंगलाचरण किया है। इस अलंकार का लक्षण यह है—

विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः।
(का०प्र०, दशम उल्लास, सूत्र १६६)

अर्थात् वास्तव में विरोध न होने पर भी विरुद्ध रूप से कथन विरोध (या विरोधाभास अलंकार) होता है।

करणैः करणातीतः (यानी करणों से अतीत होते हुए भी करणों से नृत्य करता है) में विरोध का आभास होता है। लेकिन 'करण' शब्द के दो अर्थों नृत्तकरण और इन्द्रिय में से नृत्त के संदर्भ में नृत्तकरण और शिव के संदर्भ में इन्द्रिय अर्थ का ग्रहण करने से विरोध दूर हो जाता है। इसी तरह **'अङ्गहारैः'** और **अनङ्गहारः** में तथा **नृत्यति** और **स्थाणुः** में विरोध प्रतीत होता है। अङ्गहारों से रहित नृत्त कैसे? अंगरहित (कामदेव) का हरण (नाश) करने वाला। लेकिन 'अनङ्गहार' में 'अनङ्ग' का 'हारः' अर्थात् कामदेव का नाश करने वाला और 'अङ्गहार' यानी नृत्त के स्थिरहस्तों से रहित—इस अर्थ से विरोध समाप्त हो जाता है। **'स्थाणुः'** का अर्थ है ठूँठ, सूखा वृक्ष, इसलिये उसके समान अचल या स्थिर, जो शिव का विशेषण है। **नृत्यति** में नृत्य का स्थिर होना—इन दोनों में भी परस्पर विरोध लगता है। किन्तु निश्चल स्वरूप से नृत्य करता है—यह अर्थ ग्रहण करने से विरोध दूर हो जाता है।

सिंह० ने व्याख्या के शुरू में मंगलाचरण की यह भूमिका बताई कि ग्रन्थकार नृत्त और अभिनय दोनों में समान रूप से विद्यमान अङ्गमातृका (अर्धांगिनी देवी) बता कर फिर, साक्षात् नृत्त में उपयोगी मातृका (देवी) को लक्षित (प्रकट) करने की इच्छा से अंगसमुदायों के रूप दिखाते हुए मंगलाचरण करता है।

स्यात्क्रिया करपादादेर्विलासेनात्रुटद्रसा॥ ५४८॥

करणं नृत्तकरणं भीमवद्भीमसेनवत्।
प्रभेदान्करणस्यास्य ब्रूमहे भरतोदितान्॥ ५४९॥

५४८ ग-५४९. (अ०) **अत्रुटत्-रसा** रसभंग न होते हुए **विलासेन** विलास के साथ (होने वाली) **करपाद-आदेः क्रिया** हाथ-पैर आदि की क्रिया **भीमवत् भीमसेनवत्** भीम (या) भीमसेन के समान **करणं** करण (ही) **नृत्तकरणं स्यात्** नृत्तकरण होता है। **भरत-उदितान्** भरत द्वारा कहे गये **अस्य करणस्य प्रभेदान्** इस करण के प्रभेदों को **ब्रूमहे** (हम) कह रहे हैं।

(सर०) कल्लि० ने ध्यान दिलाया कि आदि शब्द से सिर, छाती, बाजू, कमर, बाँह, टाँग आदि का भी ग्रहण होता है। **विलासेन** का अर्थ है अंगों की शोभा, **अत्रुटत्रसा** यानी जिससे प्रेक्षकों की प्रीति खंडित न हो। करण और नृत्तकरण दो नाम देने की संगति के लिये उदाहरण दिया कि जैसे भीम और भीमसेन दो नाम दिये जाते हैं।

(करणानामुद्देशः)

तलपुष्पपुटं लीनं वर्तितं वलितोरु च।
मण्डलस्वस्तिकं वक्षःस्वस्तिकाक्षिप्तरेचिते॥ ५५०॥

स्वस्तिकान्यर्धदिक्पृष्ठाद्यानि स्वस्तिकमञ्चितम्।
अपविद्धं समनखोन्मत्ते स्वस्तिकरेचितम्॥ ५५१॥

निकुट्टार्धनिकुट्टे च कटीछिन्नं कटीसमम्।
भुजङ्गत्रासितालातविक्षिप्ताक्षिप्तकानि च॥ ५५२॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

निकुञ्चितं घूर्णितं स्यादूर्ध्वजान्वर्धरेचितम्।
मत्तल्लि चार्धमत्तल्लि स्याद्रेचकनिकुट्टकम्॥ ५५३॥

ललितं वलितं दण्डपक्षं पादापविद्धकम्।
नूपुरं भ्रमरं छिन्नं भुजङ्गत्रस्तरेचितम्॥ ५५४॥

भुजङ्गाञ्चितकं दण्डरेचितं चतुरं ततः।
कटिभ्रान्तं व्यंसितं च क्रान्तं वैशाखरेचितम्॥ ५५५॥

वृश्चिकं वृश्चिकाद्ये च स्यातां कुट्टितरेचिते।
लतावृश्चिकमाक्षिप्तार्गले तलविलासितम्॥ ५५६॥

ललाटतिलकं पार्श्वनिकुट्टं चक्रमण्डलम्।
उरोमण्डलमावर्तं कुञ्चितं डोलापादकम्॥ ५५७॥

विवृत्तं विनिवृत्तं च पार्श्वक्रान्तं निशुम्भितम्।
विद्युद्भ्रान्तमतिक्रान्तं विक्षिप्तं च विवर्तितम्॥ ५५८॥

गजविक्रीडितं गण्डसूची स्याद्गरुडप्लुतम्।
तलसंस्फोटितं पार्श्वजानु गृध्रावलीनकम्॥ ५५९॥

सूच्यर्धसूचिनी सूचीविद्धं च हरिणप्लुतम्॥
परिवृत्तं दण्डपादं मयूरललितं ततः॥ ५६०॥

प्रेङ्खोलितं संनतं च सर्पितं करिहस्तकम्।
प्रसर्पितमपक्रान्तं नितम्बस्खलिते तथा॥ ५६१॥

सिंहविक्रीडितं सिंहाकर्षितं चावहित्थकम्।
निवेशमेडकाक्रीडजनितोपसृतानि च॥ ५६२॥

तलसंघट्टितोद्वृत्तविष्णुक्रान्तानि लोलितम्।
मदस्खलितसंभ्रान्तविष्कम्भोद्घट्टितानि च॥ ५६३॥

शकटास्योरूद्वृत्ताख्ये वृषभक्रीडितं ततः।
नागापसर्पितमथो गङ्गावतरणं तथा॥ ५६४॥

इत्यष्टोत्तरमुद्दिष्टं करणानां शतं मया।
गतिस्थितिप्रयोगाणामानन्त्यात्करणान्यपि॥ ५६५॥

अनन्तान्यङ्गहारेषु त्वियतां चोपयोगिता।

इति करणानामुद्देशः

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करणों का उद्देश

५५०-५६६ ख. (अ०) तलपुष्पपुट, लीन, वर्तित, वलितोरु, मंडलस्वस्तिक, वक्ष:स्वस्तिक, आक्षिप्तरेचित, अर्धस्वस्तिक, दिक्स्वस्तिक, पृष्ठस्वस्तिक, स्वस्तिक, अंचित, अपविद्ध, समनख, उन्मत्त, स्वस्तिकरेचित, निकुट्ट, अर्धनिकुट्ट, कटीछिन्न, कटीसम, भुजंगत्रासित, अलात, विक्षिप्तआक्षिप्तक, निकुंचित, घूर्णित, ऊर्ध्वजानु, अर्धरेचित, मत्तल्लि, अर्धमत्तल्लि, रेचकनिकुट्टक, ललित, वलित, दण्डपक्ष, पादापविद्धक, नूपुर, भ्रमर, छिन्न, भुजंगत्रस्तरेचित, भुजंगांचितक, दण्डरेचित, चतुर, कटिभ्रान्त, व्यंसित, क्रान्त, वैशाखरेचित, वृश्चिक, वृश्चिककुट्टित, वृश्चिकरेचित, लतावृश्चिक, आक्षिप्त, अर्गल, तलविलासित, ललाटतिलक, पार्श्वनिकुट्ट, चक्रमंडल, उरोमंडल, आवर्त, कुंचित, डोलापाद, विवृत्त, विनिवृत्त, पार्श्वक्रान्त, निशुंभित, विद्युद्भ्रान्त, अतिक्रान्त, विक्षिप्त, विवर्तित, गजविक्रीडित, गण्डसूची, गरुडप्लुत, तलसंस्फोटित, पार्श्वजानु, गृध्रावलीनक, सूचि, अर्धसूचि, सूचीविद्ध, हरिणप्लुत, परिवृत्त, दंडपाद, मयूरललित, प्रेंखोलित, संनत, सर्पित, करिहस्त, प्रसर्पित, अपक्रान्त, नितंब, स्खलित, सिंह-विक्रीडित, सिंहाकर्षित, अवहित्थक, निवेश, एडकाक्रीडित, जनित, उपसृत, तलसंघट्टित, उद्वृत्त, विष्णुक्रान्त, लोलित, मदस्खलित, संभ्रान्त, विष्कंभ, उद्घट्टित, शकटास्य, ऊरूद्वृत्त, वृषभक्रीडित, नागापसर्पित, गंगावतरण **इति** यों **अष्ट-उत्तरं शतम्** आठ अधिक सौ (एक सौ आठ) **करणानां** करणों का **मया उद्दिष्टं** मेरे द्वारा उद्देश किया गया। **गतिस्थितिप्रयोगाणां** गति (चारी) और स्थिति (स्थानक) के प्रयोगों की **आनन्त्यात्** अनंतता से **करणानि अपि** करण भी **अनन्तानि** अनन्त (होते हैं)। **अङ्गहारेषु तु** अंगहारों (स्थिर हस्तों) में तो **इयतां च उपयोगिता** इतनों की ही उपयोगिता (है, अर्थात् उपयोग होता है)।

(सर०) आड्० में 'इयत्तां' और आनन्द० में 'क्रियन्तां' पाठ है। लेकिन कल्लि० और सिंह० दोनों ने इयतां का ही प्रयोग किया है। इसी से संगत अर्थ प्राप्त होता है इसलिये हमने यही पाठ रखा है।

यह करणों का उद्देश है।

(करणलक्षणानि)

अथ लक्षणमेतेषां वक्ष्ये लक्ष्यविदां मतम्॥ ५६६॥

प्रायशो नर्तनारम्भे समपादौ लताकरौ।
चतुरश्रं भवेदङ्गं विशेषस्त्वयमुच्यते॥ ५६७॥

करणों के लक्षण

५६६ ग-५६७. (अ०) **अथ** अब **लक्ष्यविदां मतं** लक्ष्य के वेत्ताओं के माने हुए **एतेषां लक्षणम्** इनके लक्षण **वक्ष्ये** कहता हूँ। **प्रायशः** प्रायः **नर्तन-आरम्भे** नर्तन के आरंभ में **समपादौ** दोनों (पैर) समपाद, **लताकरौ** दोनों (हाथ) लताकर (और) **अङ्गम्** अंग **चतुरश्रं भवेत्** चतुरश्र होता है। **विशेषः तु** विशेष तो **अयम् उच्यते** यह (अब) कहा जा रहा है।

(सर०) अंगसंनिवेश के लिये सिंह० ने कहा कि यह 'सर्वसाधारण' है अर्थात् शुरू में सर्वत्र यही होता है। अयं का अर्थ 'अधुना' (अब) करके ग्रन्थकार के द्वारा तलपुष्पपुट करणों का विशेष संनिवेश कहना, सिंह० के अनुसार, अभिप्रेत है।

(तलपुष्पपुटम्—१)

चार्याध्यर्धिकया पादे विनिष्क्रामति दक्षिणे।
व्यावर्तनात्करयुगे दक्षिणं पार्श्वमागते॥ ५६८॥

परिवर्तनतो वामपार्श्वं संनतमाश्रिते।
तत्कुचक्षेत्रसंविष्टो यस्य पुष्पपुटः व करः॥ ५६९॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तलपुष्पपुटं तत्स्यात्पादेऽग्रतलसंचरे।
यद्यनन्तरमेतत्स्यात्करणं करणान्तरात्॥ ५७०॥

तदा करक्रिया तत्तत्त्याज्यग्राह्यकरानुगा।
एतत्पुष्पाञ्जलिक्षेपे लज्जायां च नियुज्यते॥ ५७१॥

इति तलपुष्पपुटम् (१)

तलपुष्पपुट—१

५६८-५७१. (अ०) **अध्यर्धिकया चार्या** अध्यर्धिका चारी के द्वारा **दक्षिणे पादे** दाहिना पैर **विनिष्क्रामति** आगे निकला होने पर, **करयुगे** दोनों हाथ **व्यावर्तनात्** व्यावर्तित करके **दक्षिणं पार्श्वम् आगते** दाहिनी बाजू में आने पर, **परिवर्तनतः** परिवर्तन से **संनतं** संनत (से) **वामपार्श्वम् आश्रिते** बाईं बाजू के आश्रित **तत् कुचक्षेत्रसंविष्टः** उसी (बाईं ओर के) स्तन प्रदेश पर **यस्य** जिसके **पुष्पपुटः करः** पुष्पपुट हस्त रखा हो **तत्** वह **अग्रतलसंचरे पादे** अग्रतलसंचर पाद होने पर **तलपुष्पपुटं स्यात्** तलपुष्पपुट होता है। **यदि करण-अन्तरात् अनन्तरं** यदि (किसी) दूसरे करण के बाद **एतत् करणं स्यात्** यह करण (योजित) हो **तदा** तब **करणक्रिया** (इसकी) हस्तक्रिया **तत् तत् त्याज्यग्राह्यकर-अनुगा** उस-उस (करण) के अनुसार छोड़ कर या ग्रहण करके (करनी चाहिये)। **एतत्** यह **पुष्पाञ्जलिक्षेपे** पुष्पांजलि देने **लज्जायां च** और लज्जा में **नियुज्यते** विनियुक्त होती है।

(सर०) कल्लि० ने कहा कि किसी करण के बाद यह करण करने संबन्धी जो नियम यहाँ कहा वह दूसरे करणों में भी समझना चाहिये।

यह तलपुष्पपुट है। (१)

(लीनम्—२)

ऊर्ध्वमण्डलिनौ कृत्वा करौ वक्षःस्थितोऽञ्जलिः।
निहञ्चितं चांसकूटं यत्र ग्रीवा नता कृता॥ ५७२॥

लीनं तत्करणं योज्यं वल्लभाभ्यर्थने बुधैः।

इति लीनम् (२)

लीन—२

५७२-५७३ ख. (अ०) **करौ** दोनों हाथ **ऊर्ध्वमण्डलिनौ कृत्वा** ऊर्ध्वमंडली करके **वक्षःस्थितः** छाती पर रख कर **अञ्जलिः** अंजलि (हस्त करके) **अंसकूटं च** और दोनों कंधों के शिखर (ऊँचे भाग) को **निहञ्चितं** निहंचित (करके) **यत्र** जिसमें **ग्रीवा** गर्दन **नता कृता** झुकाई हुई हो **तत्** वह **लीनं करणं** लीन करण (होता है)। **बुधैः** विद्वानों के द्वारा (वह) **वल्लभ-अभ्यर्थने** प्रिय से अनुरोध करने में **योज्यं** योजित करना चाहिये।

यह लीन है। (२)

(वर्तितम्—३)

आश्लिष्टौ मणिबन्धस्थस्वस्तिकाभिमुखौ करौ॥ ५७३॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कृत्वा वक्षस्येककालं व्यावृत्तपरिवर्तितौ।
उत्तानौ पातयेदूर्वोर्यत्र तद्वर्तितं मतम्॥ ५७४॥

असूयायां प्रयोगः स्यात्पताकौ यदि पातयेत्।
अधोमुखनिघृष्टौ तौ क्रोधं सूचयतः करौ॥ ५७५॥

शुकतुण्डादयोऽप्यन्ये विनियोगवशादिह।

इति वर्तितम् (३)

वर्तित—३

५७३ ग-५७६ ख. (अ०) **मणिबन्धस्थस्वस्तिक-अभिमुखौ** कलाई पर स्वस्तिकाकार आमने-सामने **आश्लिष्टौ करौ** जुड़े हुए दोनों हाथ **एककालम्** एक ही समय में (एक साथ) **वक्षस्य** छाती पर **व्यावृत्तपरिवर्तितौ कृत्वा** व्यावर्तित और परिवर्तित करके **यत्र** जिसमें **उत्तानौ** ऊपर किये हुए **ऊर्वोः पातयेत्** जाँघ पर ले जायँ **तत्** वह **वर्तितं मतं** वर्तित माना गया है। **असूयायाम्** असूया में **प्रयोगः स्यात्** (इसका) प्रयोग होता है। **यदि** यदि **पताकौ** दोनों पताक **अधोमुखनिघृष्टौ** नीचे की ओर किये हुए (परस्पर) घिसते हुए **पातयेत्** नीचे लायें (तो) **तौ करौ** वे हाथ **क्रोधं सूचयतः** क्रोध को सूचित करते हैं। **विनियोगवशात्** विनियोग के अनुसार **इह** इसमें **शुकतुण्ड-आदयः** शुकतुंड आदि **अन्यः अपि** दूसरे (हस्त) भी (योजित होते हैं)।

यह वर्तित है। (३)

(वलितोरुः—४)

वक्षःक्षेत्रे समं हस्तौ व्यावृत्तपरिवर्तितौ॥ ५७६॥

विधायाक्षिप्तया चार्या संहतौ परिवर्तनात्।
तत्रानीय निधीयेते शुकतुण्डावधोमुखौ॥ ५७७॥

बद्धया च स्थितिर्यत्र वलितोरु तदुच्यते।
मुग्धस्त्रीव्रीडिते चास्य प्रयोगः शार्ङ्गिणोदितः॥ ५७८॥

इति वलितोरुः (४)

वलितोरु—४

५७६ ग-५७८. (अ०) **हस्तौ** दोनों हाथ **समम्** एक साथ **वक्षःक्षेत्रे** छाती के भाग पर **व्यावृत्तपरिवर्तितौ विधाय** व्यावर्तित और परिवर्तित करके **आक्षिप्तया चार्या** आक्षिप्ता चारी से **परिवर्तनात्** परिवर्तन से **संहतौ** संहत करके (एकत्र लाकर) **तत्र आनीय** वहाँ (छाती पर) लाकर **शुकतुण्डौ अधोमुखौ** शुकतुंड अधोमुख (रखे हों) **यत्र बद्धया च स्थितिः** और जिसमें बद्धा (चारी) से स्थिति (हो) **तत्** वह **वलितोरुः उच्यते** वलितोरु कहा जाता है। **शार्ङ्गिणा** शार्ङ्गदेव के द्वारा **अस्य प्रयोगः** इसका प्रयोग **मुग्धस्त्रीव्रीडिते च** मुग्ध स्त्री की लज्जा में **उदितः** कहा गया है।

(सर०) आड्० के 'बद्धया ते स्थितिः' में 'ते' संगत नहीं है। ना०शा० में वलितोरु के लक्षण (४/६३ ग-६४ ख) की अभि० टीका में 'बद्धया च चार्या स्थितिः' के च का ग्रहण कर लेने से 'ते' की विसंगति दूर हो जाती है। इसलिये हमने पाठ में च का ग्रहण किया है।

यह वलितोरु है। (४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(मण्डलस्वस्तिकम्—५)

चतुरश्रौ करौ कृत्वा विदधद्विच्यवां ततः।
उद्वेष्टितक्रियापूर्वमूर्ध्वमण्डलिनौ करौ॥ ५७९॥

विधाय स्वस्तिकौ कुर्यादत्र स्थानं च मण्डलम्।
मण्डलस्वस्तिकं तत्स्यात्प्रसिद्धार्थावलोकने॥ ५८०॥

इति मण्डलस्वस्तिकम् (५)

मंडलस्वस्तिक—५

५७९-५८०. (अ०) चतुरश्रौ करौ कृत्वा दोनों चतुरश्र हस्त करके **विच्यवां विदधत्** विच्यवा (चारी) करते हुए **ततः** तब **उद्वेष्टितक्रियापूर्वम्** उद्वेष्टित करणपूर्वक **ऊर्ध्वमण्डलिनौ करौ विधाय** ऊर्ध्वमंडली हस्तों का विधान करके **स्वस्तिकौ कुर्यात्** स्वस्तिक करें **अत्र च** और इसमें **मण्डलं स्थानं** मंडल स्थानक (होता है)। **तत् मण्डलस्वस्तिकं** वह मंडलस्वस्तिक (होता है)। **प्रसिद्ध-अर्थ-अवलोकने** (वह) प्रसिद्ध अर्थ (वस्तु) को देखने में **स्यात्** (योजित) होता है।

यह मंडलस्वस्तिक है। (५)

(वक्षःस्वस्तिकम्—६)

चतुरश्रौ करौ वक्षःस्थितौ कृत्वाथ रेचितौ।
व्यावर्तितेन चानीयाभुग्ने वक्षसि यत्र तौ॥ ५८१॥

स्वस्तिकौ स्वस्तिकौ पादौ तद्वक्षःस्वस्तिकं मतम्।
अनाभुग्नांसमेतच्च योज्यं लज्जानुतापयोः॥ ५८२॥

इति वक्षःस्वस्तिकम् (६)

वक्षःस्वस्तिक—६

५८१-५८२. (अ०) चतुरश्रौ करौ दोनों चतुरश्र हस्त **वक्षःस्थितौ कृत्वा** छाती पर रख कर **अथ** फिर **रेचितौ** दोनों रेचित, **व्यावर्तितेन** (तब) व्यावर्तित से **आभुग्ने** कुछ झुके हुए **वक्षसि च आनीय** छाती के पास लाकर **यत्र** जिसमें **तौ स्वस्तिकौ** वे दोनों स्वस्तिक वाले हों **स्वस्तिकौ पादौ** (और) स्वस्तिक पैर हों **तत् वक्षःस्वस्तिकं मतं** वक्षःस्वस्तिक माना गया है। **एतत् च** और यह **आभुग्न-अंस** कुछ झुके हुए कन्धों वाला **लज्जा-अनुतापयोः** लज्जा और पश्चात्ताप में **योज्यं** योजित करना चाहिये।

यह वक्षःस्वस्तिक है। (६)

(आक्षिप्तरेचितम्—७)

हस्तौ हृत्क्षेत्रगौ यत्र व्यावृत्योर्ध्वं च पार्श्वयोः।
क्षिप्तैकं हंसपक्षं च द्रुतभ्रममधोमुखम्॥ ५८३॥

वक्षः प्राप्यापरं तादृग्भूतं निष्क्रामयेत्ततः।
पादावञ्चितसूच्यौ च तत्स्यादाक्षिप्तरेचितम्॥ ५८४॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अनेनाभिनये(त्)त्यागपरिग्रहपरम्परा।

इत्याक्षिप्तरेचितम् (७)

आक्षिप्तरेचित—७

५८३-५८५ ख. (अ०) **यत्र** जिसमें **हृत्क्षेत्रगौ हस्तौ** छाती के भाग पर रखे हुए दोनों हाथ **व्यावृत्त्या-ऊर्ध्वम्** ऊपर की ओर व्यावर्तित करके **पार्श्वयोः क्षिप्त-एकं हंसपक्षं** बाजुओं की ओर फेंक कर एक हंसपक्ष **द्रुतभ्रमं** द्रुतता से घुमा कर **अधोमुखं वक्षः प्राप्य** अधोमुख किया हुआ छाती पर रख कर **अपरं** दूसरा **तादृक्-भूतं** उसी तरह का **निष्क्रामयेत्** बाहर ले जायँ **ततः** फिर **पादौ** दोनों पैर **अञ्चितसूच्यौ च** अंचित और सूचीयुक्त हों (अर्थात् एक अंचित और दूसरा सूचियुक्त हो) **तत्** वह **आक्षिप्तरेचितं स्यात्** आक्षिप्तरेचित होता है। **अनेन** इससे **त्यागपरिग्रहपरम्परा** त्याग और स्वीकार परंपरा (कई बार करने का) **अभिनये(त्)** अभिनय करना चाहिये।

यह आक्षिप्तरेचित है। (७)

(अर्धस्वस्तिकम्—८)

दक्षिणः करिहस्तः स्याद्वामस्तु खटकामुखः॥५८५॥

वक्षस्थः स्वस्तिकौ पादौ यत्रार्धस्वस्तिकं तु तत्।
अन्ये करिकरस्थाने पक्षवञ्चितकं परम्॥५८६॥

पक्षप्रद्योतकं चार्धचन्द्रं कटिगतं विदुः।

इत्यर्धस्वस्तिकम् (८)

अर्धस्वस्तिक—८

५८५ ग-५८७ ख. (अ०) **यत्र** जिसमें **दक्षिणः करिहस्तः** दाहिना (हाथ) करिहस्त **स्यात्** होता है **वामः तु** और बायाँ **वक्षस्थः खटकामुखः** छाती पर रखा हुआ खटकामुख (हो), **पादौ स्वस्तिकौ** दोनों पैर स्वस्तिक (हों) **तत् तु** वह तो **अर्धस्वस्तिकम्** अर्धस्वस्तिक (होता है)। **अन्ये** अन्य (आचार्य) **करिकरस्थाने** करिहस्त के स्थान पर **पक्षवञ्चितकं** पक्षवंचित (और) **परं** दूसरे (आचार्य) **पक्षप्रद्योतकं** पक्षप्रद्योतक **कटिगतम् अर्धचन्द्रं च** अथवा कमर पर रखा हुआ अर्धचन्द्र **विदुः** जानते हैं।

यह अर्धस्वस्तिक है। (८)

(दिक्स्वस्तिकम्—९)

पार्श्वयोरग्रतः पृष्ठे स्वस्तिकोऽत्र दिशं गतः॥५८७॥

कराङ्घ्री रेचितौ यत्र तद्दिक्स्वस्तिकमुच्यते।
तद्गीतपरिवर्तेषु विनियुक्तं पुरातनैः॥५८८॥

स्वस्तिकप्रक्रियैषा स्यात्स्वस्तिकोक्त्यन्तरेष्वपि।

इति दिक्स्वस्तिकम् (९)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दिक्स्वस्तिक (९)

५८७ ग-५८९ ख. (अ०) अत्र इसमें स्वस्तिकः स्वस्तिक पार्श्वयोः दोनों बाजुओं, अग्रतः सामने पृष्ठे (और) पीछे की दिशं गतः दिशा में योजित हुआ (होता है) यत्र (और) जहाँ कर-अङ्घ्री हाथ और पैर रेचितौ रेचित (किये हुए हों) तत् वह दिक्स्वस्तिकम् उच्यते दिक्स्वस्तिक कहा जाता है। पुरातनैः प्राचीन (आचार्यों) के द्वारा तत् वह गीतपरिवर्तेषु गीतों के परिवर्तों में विनियुक्तं प्रयुक्त किया गया (है)। एषा यह स्वस्तिकप्रक्रिया स्वस्तिक की प्रक्रिया स्वस्तिक-उक्त-अन्तरेषु अपि स्वस्तिक कहे गये दूसरों (अन्य स्वस्तिकों) में भी स्यात् होती है।

यह दिक्स्वस्तिक है। (९)

(पृष्ठस्वस्तिकम्—१०)

उद्वेष्टितक्रियापूर्वं बाह्वोर्विक्षिप्यमाणयोः ॥ ५८९ ॥

कृत्वा चारीमपक्रान्तां क्रियमाणेऽपवेष्टने।
रेचयित्वान्यचरणं सूचीस्वस्तिकमाचरेत् ॥ ५९० ॥

यत्राङ्घ्रिभ्यां कराभ्यां च तत्पृष्ठस्वस्तिकं भवेत्।
एतन्निषेधराभस्यपरान्वेषणभाषणे ॥ ५९१ ॥

प्रयुक्तं नाट्यतत्त्वज्ञैरन्यैर्युद्धपरिक्रमे।

इति पृष्ठस्वस्तिकम् (१०)

पृष्ठस्वस्तिक—१०

५८९ ग-५९२ ख. (अ०) उद्वेष्टितक्रियापूर्वं उद्वेष्टित करणपूर्वक बाह्वोः विक्षिप्यमाणयोः दोनों हाथ फेंके जाते हुए अपक्रान्तां चारीं कृत्वा अपक्रान्ता चारी करके अपवेष्टने क्रियमाणे अपवेष्टन करते हुए अन्यचरणं दूसरा पैर रेचयित्वा रेचित करके यत्र जिसमें अङ्घ्रिभ्यां कराभ्यां च पैरों और हाथों से सूचीस्वस्तिकम् आचरेत् (सूची) और स्वस्तिक किया जाता है तत् वह पृष्ठस्वस्तिकं भवेत् पृष्ठस्वस्तिक होता है। एतत् यह नाट्यतत्त्वज्ञैः नाट्य के तत्त्व के वेत्ताओं के द्वारा निषेधराभस्यपर-अन्वेषणभाषणे निषेध, प्रबल वेग, दूसरे की खोज और भाषण में प्रयुक्तं प्रयोग किया जाता है। अन्यैः दूसरे (आचार्यों) के द्वारा युद्धपरिक्रमे युद्ध (स्थल) में परिक्रमा में (प्रयोग कहा गया है)।

यह पृष्ठस्वस्तिक है। (१०)

(स्वस्तिकम्—११)

उद्वेष्टितेन निष्कास्य पाण्योर्व्यावर्तमानयोः ॥ ५९२ ॥

उत्प्लुत्य युगपद्यत्र कराङ्घ्रिः स्वस्तिकः कृतः।
तत्स्वस्तिकं प्रयोक्तव्यं बुधैः पूर्वोक्तवस्तुनि ॥ ५९३ ॥

इति स्वस्तिकम् (११)

स्वस्तिक—११

५९२ ग-५९३. (अ०) उद्वेष्टितेन निष्कास्य उद्वेष्टित से बाहर ले जाकर पाण्योः दोनों हाथ व्यावर्तमानयोः व्यावर्तित

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करते हुए उत्प्लुत्य उछल कर यत्र जिसमें कर-अङ्घ्रिः हाथ, पैर युगपत् स्वस्तिकः कृतः एकसाथ स्वस्तिक किये हुए हों (अर्थात् करें) तत् वह स्वस्तिकं (होता है)। बुधैः बुद्धिमानों के द्वारा पूर्व-उक्तवस्तुनि पहले (पृष्ठस्वस्तिक में) कही गई स्थितियों में प्रयोक्तव्यं प्रयुक्त करना चाहिये।

यह स्वस्तिक है। (११)

(अञ्चितम्—१२)

व्यावर्तपरिवर्ताभ्यां नासादेशं गतो यदा।
करिहस्तोऽलपद्मत्वं धत्ते स्यादञ्चितं तदा॥ ५९४॥

संमुखप्रेषणे तच्च योज्यं स्वस्यातिकौतुकात्।

इत्यञ्चितम् (१२)

अंचित—१२

५९४-५९५ ख. (अ०) यदा जब व्यावर्तपरिवर्ताभ्यां व्यावर्त और परिवर्त से नासादेशं गतः नाक प्रदेश पर गया हुआ करिहस्तः करिहस्त अलपद्मत्वं धत्ते अलपद्म का स्वरूप धारण करता है तदा तब अञ्चितं स्यात् अंचित होता है तत् च और वह अतिकौतुकात् अत्यन्त कौतुक से स्वस्य संमुखप्रेक्षणे अपने सामने देखने में योज्यं योजित करना चाहिये।

यह अंचित है। (१२)

(अपविद्धम्—१३)

चतुरश्रकरः स्थित्वा हस्तं व्यावर्त्य दक्षिणम्॥ ५९५॥

निष्क्रामयन्भजेच्चारीमाक्षिप्तामथ दक्षिणम्।
शुकतुण्डं करं तस्यैवोरौ तु परिपातयेत्॥ ५९६॥

यत्रापविद्धं तद्वामे वक्षस्थे खटकामुखे।
तत्कोपासूययोर्योज्यमुक्तं सोढलसूनुना॥ ५९७॥

इत्यपविद्धम् (१३)

अपविद्ध—१३

५९५ ग-५९७. (अ०) चतुरश्रकरः स्थित्वा चतुरश्र हस्त पर रुक कर दक्षिणं हस्तं दाहिना हाथ व्यावर्त्य व्यावर्तित करके निष्क्रामयन् बाहर ले जाते हुए आक्षिप्तां चारीं भजेत् आक्षिप्ता चारी करें। अथ फिर दक्षिणं दाहिना शुकतुण्डं करं शुकतुंड हस्त तस्य एव ऊरौ तु उसी (दाहिनी) जाँघ पर परिपातयेत् गिरायें (ले आयें)। यत्र जिसमें (ऐसा) वामे खटकामुखे बायाँ खटकामुख हस्त वक्षस्थे छाती पर रखा हो तत् अपविद्धं वह अपविद्ध (होता है)। तत् वह कोप-असूययोः योज्यं कोप और असूया में योजित करना चाहिये (ऐसा) सोढलसूनुना उक्तं सोढलपुत्र (शार्ङ्गदेव) के द्वारा कहा गया है।

यह अपविद्ध है। (१३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(समनखम्—१४)

देहः स्वाभाविको यत्र पादौ समनखौ युतौ।
लताहस्तौ समनखं स्यात्प्रवेशे तदादिमे॥ ५९८॥

इति समनखम् (१४)

समनख—१४

५९८. (अ०) यत्र जिसमें देहः स्वाभाविकः शरीर स्वाभाविक (स्थिति में हो), पादौ दोनों पैर समनखौ युतौ समनख और मिले (जुड़े) हुए (हों और) लताहस्तौ (दोनों हाथ) लताहस्त (हों वह) समनखं स्यात् समनख होता है। तत् वह आदिमे प्रवेशे (पात्र के) पहले (पहली बार) प्रवेश में (योजित होता है)।

यह समनख है। (१४)

(उन्मत्तम्—१५)

चार्याविद्धाञ्चितपदे पर्यायाद्रेचितः करः।
यत्रोन्मत्तं तु तद्गर्वे सौभाग्यादिसमुद्भवे॥ ५९९॥

इत्युन्मत्तम् (१५)

उन्मत्त—१५

५९९. (अ०) यत्र जहाँ चारी-आविद्धा-अञ्चितपदे आविद्धा चारी (करके) पैर अंचित करः (और) हाथ पर्यायात् रेचितः क्रम से रेचित (हों) तत् तु वह तो उन्मत्तम् उन्मत्त (होता है)। सौभाग्य-आदिसमुदभवे गर्वे (वह) सौभाग्य आदि (प्राप्त होने से) उत्पन्न गर्व में (प्रयोग किया जाता है)।

यह उन्मत्त है। (१५)

(स्वस्तिकरेचितम्—१६)

चतुरश्रः स्थितः कृत्वा हंसपक्षौ द्रुतभ्रमौ।
व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यामधश्चोर्ध्वं शिरःस्थलात्॥ ६००॥

आनीयाविद्धवक्रौ चेद्वक्षसि स्वस्तिकौ कृतौ।
विप्रकीर्णौ ततः कार्यौ पक्षवञ्चितकौ करौ॥ ६०१॥

पक्षप्रद्योतकौ पश्चाच्चारी तद्वशगा भवेत्।
अन्तेऽवहित्थकं स्थानं तदा स्वस्तिकरेचितम्॥ ६०२॥

नृत्ताभिनयने तच्च प्रहर्षादौ नियुज्यते।

इति स्वस्तिकरेचितम् (१६)

स्वस्तिकरेचित—१६

६००-६०३ ख. (अ०) चतुरश्रः कृत्वा स्थितः चतुरश्र (हस्त) करके रुक कर, हंसपक्षौ दोनों हंसपक्ष हाथ व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां व्यावृत्ति और परिवृत्ति से अधः ऊर्ध्वं च नीचे और ऊपर द्रुतभ्रमौ द्रुत गति से घुमा कर शिरःस्थलात् आनीय

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सिर के पास से लाकर **वक्षसि आविद्धवक्रौ चेत्** यदि छाती पर आविद्धवक्र करें (फिर) **स्वस्तिकौ कृतौ** स्वस्तिक करके **विप्रकीर्णौ** विप्रकीर्ण **ततः** उसके बाद **पक्षवञ्चितकौ** (कमर पर) पक्षवंचित और **पक्षप्रद्योतकौ करौ** पक्षप्रद्योतक हस्त **कार्यौ** करने चाहियें। **पश्चात्** उसके बाद **तत् वशगा** उसके अनुसार **चारी भवेत्** (कोई) चारी होती है। **अन्ते** अन्त में **अवहित्थकं स्थानं** अवहित्थ स्थान (हो) **तदा** तब **स्वस्तिकरेचितं** स्वस्तिकरेचित (होता है)। **तत् च** और वह **नृत्त-अभिनयने** नृत्त के अभिनय में **प्रहर्ष-आदौ** अत्यन्त आनन्द आदि में **नियुज्यते** विनियुक्त होता है।

यह स्वस्तिकरेचित है। (१६)

(निकुट्टकम्—१७)

मण्डलस्थानके कृत्वा (स्थित्वा) चतुरश्रतया स्थितः॥ ६०३॥

उद्वेष्ट्य दक्षिणं हस्तं नीत्वा स्कन्धशिरस्यमुम्।
पतनोत्पतनाविष्टकनिष्ठाद्यङ्गुलीद्वयम्॥ ६०४॥

अलपद्माकृतिं कृत्वोद्घट्टितेऽङ्घ्रौ च दक्षिणे।
आविद्धवक्रतां नीत्वा करेऽत्र चतुरश्रिते॥ ६०५॥

तथैव वामपाण्यङ्घ्रि यत्र स्यात्तन्निकुट्टकम्।
आत्मसंभावनाख्यानपरे वाक्ये नियुज्यते॥ ६०६॥

इति निकुट्टकम् (१७)

निकुट्टक—१७

६०३ ग-६०६. (अ०) **मण्डलस्थानके स्थित्वा** मंडलस्थानक में स्थित होकर (फिर) **चतुरश्रतया स्थितः** चतुरश्र द्वारा रुक कर **दक्षिणं हस्तं** दाहिना हाथ **उद्वेष्ट्य** उद्वेष्टित करके **अमुम्** इसे **स्कन्धशिरसि नीत्वा** कंधे के सिर (ऊपरी नोक) पर लाकर **पतन-उत्पतन-आविष्टकनिष्ठ-आदि-अङ्गुलीद्वयं** पतन (नीचे और) उत्पतन (ऊपर) युक्त कनिष्ठा आदि दो उँगलियाँ आवेष्टित (करके) **अलपद्म-आकृतिं कृत्वा** अलपद्माकृति करके **दक्षिण अङ्घ्रौ च** दाहिने पैर में **उद्घट्टिते** उद्घट्टित होने पर **अत्र करे** इस (दाहिने) हाथ में **आविद्धवक्रतां नीत्वा** आविद्धवक्रता को प्राप्त करके **चतुरश्रिते** चतुरश्र होने पर **यत्र तथा-एव** जिसमें वैसा ही **वामपाणि-अङ्घ्रिः** बायाँ हाथ (और) पैर (हो) **तत् निकुट्टकं स्यात्** वह निकुट्टक होता है। **आत्मसंभावन-आख्यान परे** आत्मसंमान कहने संबन्धी **वाक्ये** वाक्य (के अभिनय) में **नियुज्यते** प्रयुक्त होता है।

(सर०) 'मण्डलस्थानके कृत्वा' में 'स्थानके कृत्वा' से संगत अर्थ प्राप्त नहीं होता। ना०शा०, ४/६९ पर अभि० टीका में **मण्डलस्थानके स्थित्वा** है जिसका अर्थ है मण्डलस्थानक में स्थित होकर। यही अभिप्रेत अर्थ है। इसलिये इसके आधार पर **'कृत्वा'** के स्थान पर **स्थित्वा** रख कर अन्वय और अर्थ किया है।

यह निकुट्टक है। (१७)

(अर्धनिकुट्टकम्—१८)

तदेवार्धनिकुट्टं स्यादेकेनाङ्गेन चेत्कृतम्।
अप्ररूढवचःप्रोक्ते तत्रैवार्थे नियुज्यते॥ ६०७॥

इत्यर्धनिकुट्टकम् (१८)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अर्धनिकुट्ट—१८

६०७. (अ०) तत् एव तु और वही एकेन अङ्गेन कृतं चेत् यदि एक ही अंग से किया गया (हो तो) अर्धनिकुट्टं स्यात् अर्धनिकुट्ट होता है। तत्र एव अर्थे उसी अर्थ (अपनी स्तुति, प्रशंसा) में अप्ररूढवचः अप्रौढ बोलने में नियुज्यते प्रयुक्त होता है।

यह अर्धनिकुट्ट है। (१८)

(कटीछिन्नम्—१९)

पार्श्वेन भ्रमरीं कृत्वा मण्डलस्थानके स्थितः।
कृत्वा छिन्नां कटीमेकां बाह्वोः शिरसि पल्लवम्॥ ६०८॥

करमङ्गान्तरेणैवं यत्र त्रिचतुराः कृताः।
आवृत्तयः कटीछिन्नं तद्विस्मयनिरूपणे॥ ६०९॥

इति कटीछिन्नम् (१९)

कटीछिन्न—१९

६०८-६०९. (अ०) मण्डलस्थानके स्थितः मंडल स्थान में स्थित होकर पार्श्वेन बाजू से भ्रमरीं कृत्वा भ्रमरी करके, एकां कटीम् एक ओर की कमर छिन्नां कृत्वा छिन्ना करके बाह्वोः शिरसि बाँहों के सिर (अर्थात् कंधों) में पल्लवं करं पल्लव हस्त (किया हो और) यत्र जिसमें अङ्ग-अन्तरेण एवं दूसरे अंग से ऐसी ही त्रिचतुराः आवृत्तयः तीन या चार आवृत्तियाँ कृताः की गई हों तत् वह कटीछिन्नं कटीछिन्न (होता है)। विस्मयनिरूपणे (वह) विस्मय के अभिनय में (प्रयुक्त होता है)।

यह कटीछिन्न है। (१९)

(कटीसमम्—२०)

आक्षिप्तामप्यपक्रान्तां चारीं कृत्वा करद्वयम्।
स्वस्तिकीकृत्य नाभिस्थो दक्षिणः खटकामुखः॥ ६१०॥

कट्यामन्योऽर्धचन्द्रश्च कृतः पार्श्वं च तन्नतम्।
अन्यदुद्वाहितं यत्र वृत्तिरङ्गान्तरैस्तथा॥ ६११॥

तत्कटीसममादिष्टं वैष्णवस्थानकान्वितम्।
प्रयोज्यं सूत्रधारेण जर्जरस्याभिमन्त्रणे॥ ६१२॥

इति कटीसमम् (२०)

कटीसम—२०

६१०-६१२. (अ०) आक्षिप्ताम् अपक्रान्ताम् अपि आक्षिप्ता और अपक्रान्ता चारीं कृत्वा चारी करके, करद्वयं स्वस्तिकीकृत्य दोनों हाथ स्वस्तिक करके, दक्षिणः खटकामुखः दाहिना खटकामुख (हाथ) नाभिस्थः नाभि पर रखा हुआ, अन्यः कट्यां दूसरा (बायाँ) कमर पर अर्धचन्द्रः च कृतः अर्धचन्द्र किया हुआ तत् पार्श्वं च नतं और वह (बाईं) बाजू नीची, अन्यत् उद्वाहितं दूसरी (दाहिनी बाजू) उद्वाहित की हुई (और) यत्र जिसमें अङ्ग-अन्तरैः दूसरे अंगों के द्वारा तथा वृत्तिः वैसी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ही क्रिया (की गई हो) तत् वह वैष्णवस्थानक-अन्वितं वैष्णव स्थानक से युक्त कटीसमम् आदिष्टं कटीसम कहा गया है। सूत्रधारेण सूत्रधार के द्वारा जर्जरस्य अभिमन्त्रणे जर्जर के अभिमन्त्रण में प्रयोज्यं प्रयुक्त करना चाहिये।

(सर०) नाट्य के आरंभ में पूर्वरंग में जर्जरपूजा का विशेष महत्त्व माना गया है जिसकी विधि का निरूपण ना०शा० के पूर्वरंग विधान नामक ५वें अध्याय में (७६-१०३) किया गया है। बाँस का ५ पोरों वाला डंडा जर्जर कहलाता है जिसमें ५ देवताओं को विशेष पूजा के द्वारा अधिष्ठित करके नाट्य में आने वाले विघ्नों को जर्जर (नष्ट) करने के लिए विशेष अनुष्ठान किया जाता है। जर्जर को इस प्रकार विशेष मन्त्रादि से पवित्र करना अभिमन्त्रण होता है।

यह कटीसम है। (२०)

(भुजङ्गत्रासितम्—२१)

भुजङ्गत्रासितां चारीं कृत्वोत्क्षिप्य च कुञ्चितम्।
अङ्घ्रिमूरुकटीजानुत्र्यश्रं यत्र विवर्तयेत्॥ ६१३॥

व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यामेको डोलाकरोऽपरः।
खटकाख्यस्तदन्वर्थं भुजङ्गत्रासितं मतम्॥ ६१४॥

इति भुजङ्गत्रासितम् (२१)

भुजंगत्रासित—२१

६१३-६१४. (अ०) भुजंगत्रासितां चारीं कृत्वा भुजंगत्रासिता चारी करके कुञ्चितम् अङ्घ्रिं कुंचित पैर को उत्क्षिप्य ऊँचा उठा कर यत्र जिसमें ऊरुकटीजानुत्र्यश्रं च विवर्तयेत् जाँघ, कमर और घुटना त्रिकोण आकार में घुमाये जाते हैं, व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां व्यावृत्ति और परिवृत्ति से एकः डोलाकरः एक डोला हस्त (व) अपरः खटका-आख्यः दूसरा खटकामुख नामक (हस्त हो) तत् वह अन्वर्थम् अन्वर्थ भुजङ्गत्रासितं मतं भुजंगत्रासित माना गया है।

यह भुजंगत्रासित है। (२१)

(अलातम्—२२)

चार्यलाता नितम्बश्च करोऽथ चतुरश्रकः।
एतद्दक्षिणतो वाम ऊर्ध्वजानुस्तथैव चेत्॥ ६१५॥

अङ्गान्तरं तदालातं नृत्ते सललिते मतम्।

इत्यलातम् (२२)

अलात—२२

६१५-६१६ ख. (अ०) अलाता चारी अलाता चारी नितम्बः च करः और नितंब हस्त अथ चतुरश्रकः फिर चतुरश्र (हस्त) एतत् यह (सब) दक्षिणतः दाहिने (पैर और हाथ) से (होता है)। वामः बायाँ (पैर) ऊर्ध्वजानुः ऊर्ध्वजानु तथा एव उसी तरह अङ्ग-अन्तरं चेत् यदि दूसरे (बायें) अंग (भी) हों तदा अलातं तो अलात (होता है)। सललिते नृत्ते (वह) ललित नृत्त में मतं माना गया है।

यह अलात है। (२२)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(विक्षिप्ताक्षिप्तकम्—२३)

हस्ते व्यांवर्तमाने तु सोऽङ्घ्रिर्विक्षिप्यते बहिः ॥ ६१६ ॥

चतुरश्रः करः पाणिः पूर्वोऽथ परिवर्तने।
पाणिराक्षिप्यते चाङ्घ्रिर्यत्राङ्गं चान्यदीदृशम् ॥ ६१७ ॥

विक्षिप्ताक्षिप्तकं तत्स्याद्गतागतनिरूपणे।
इमं तु नाट्यतत्त्वज्ञा विनियोगं न मन्वते ॥ ६१८ ॥

वाक्यार्थाभिनयस्तत्र यत्राभिनयहस्तकाः।
प्राधान्येन विधीयन्ते नृत्तमात्रपरं त्विदम् ॥ ६१९ ॥

अतोऽन्तरालसंधाने गतीनां च परिक्रमे।
तथा युद्धनियुद्धस्थचारीस्थानकसंक्रमे ॥ ६२० ॥

कार्ये तालानुसंधाने योज्यं करणमीदृशम्।

इति विक्षिप्ताक्षिप्तकम् (२३)

(विक्षिप्ताक्षिप्तक—२३)

६१६ ग-६२१ ख. (अ०) हस्ते व्यावर्तमाने तु एक हाथ व्यावर्तित करके तो सः अङ्घ्रिः वह (उसी ओर का) पैर बहिः विक्षिप्यते बाहर फेंका जाता है, करः (दूसरा) हाथ चतुरश्रः चतुरश्र (होता है), अथ अब पूर्वः पाणिः पहला हाथ परिवर्तने परिवर्तन से पाणिः अङ्घ्रिः च हाथ और पैर (का) आक्षिप्यते आक्षेप किया जाता है (और) यत्र जिसमें अन्यत् अङ्गं च दूसरा अंग भी ईदृशम् ऐसा ही (परिवर्तन से) योजित हो तत् वह विक्षिप्ताक्षिप्तकं स्यात् विक्षिप्ताक्षिप्तक होता है। गत-आगतनिरूपणे (वह) जाने और आने के अभिनय में (योजित होता है) नाट्यतत्त्वज्ञाः नाट्य के तत्त्ववेत्ता इमं तु यह तो विनियोगं न मन्वते विनियोग नहीं मानते। यत्र जहाँ अभिनयहस्तकाः अभिनयहस्त प्राधान्येन विधीयन्ते मुख्यता से प्रयुक्त होते हैं तत्र वहाँ वाक्यार्थ-अभिनयः वाक्यार्थाभिनय (होता है)। इदं तु यह तो नृत्तमात्रपरं केवल नृत्तविषयक (है)। अतः इसलिये अन्तरालसन्धाने बीच की दूरी भरने, गतीनां च परिक्रमे गतियों के परिक्रम तथा और युद्धनियुद्धस्थचारीस्थानकसंक्रमे युद्ध व नियुद्ध (पैदल युद्ध) में चारी, स्थानक, गमन में ताल-अनुसंधाने कार्ये (और) ताल का अनुसरण करने में ईदृशं करणं ऐसा करण योज्यं योजित करना चाहिये।

(सर०) ना०शा० में दिये गये विक्षिप्ताक्षिप्तक के लक्षण पर अभि० से विक्षेप और आक्षेप में यह अन्तर स्पष्ट होता है कि बाहर निष्क्रमण विक्षेप है और परिवर्तित करण से यानी पहली क्रिया उलटकर भीतर क्षेप से आक्षेप होता है। गमन-प्रधान वाक्यार्थ में विक्षेप और आगमन-प्रधान में आक्षेप का प्रयोग अभिनव ने बताया। (ना०शा०, ४/८१-८२ पर अभि०)

यह विक्षिप्ताक्षिप्तक है। (२३)

(निकुञ्चितम्—२४)

वृश्चिकं चरणं कृत्वा यत्रारालं शिरस्थले ॥ ६२१ ॥

तद्दिक्कं करमाधाय नासाक्षेत्रार्जवेन तु।
कृतो वक्षस्यरालोऽन्यस्तद्वदन्ति निकुञ्चितम् ॥ ६२२ ॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एतदुत्पतनौत्सुक्यवितर्कादौ प्रयुज्यते।
अन्ये पताकसूच्यास्यावस्मिन्नासाग्रगौ विदुः॥ ६२३॥

इति निकुञ्चितम् (२४)

निकुंचित—२४

६२१ ग-६२३. (अ०) यत्र जिसमें वृश्चिकं चरणं कृत्वा वृश्चिक पैर (अर्थात् वृश्चिक करण में जो पैर कहा गया है वह) करके तत् दिक्कम् उसी दिशा की ओर अरालं करम् अराल हस्त शिरस्थले सिर पर आधाय रखकर अन्यः अरालः तु और दूसरा अराल तो नासाक्षेत्र-आर्जवेन नाक से सरलता से वक्षसि कृतः छाती पर रखा गया हो तत् वह निकुञ्चितं वदन्ति निकुंचित कहा जाता है। एतत् यह उत्पतन-औत्सुक्यवितर्क-आदौ उछलने, उत्सुकता और विर्तक आदि में प्रयुज्यते प्रयुक्त होता है। अन्ये दूसरे (आचार्य) अस्मिन् इसमें नासा-अग्रगौ नाक की नोक पर पताकसूच्यास्यौ पताक और सूचीमुख (हस्त) विदुः जानते हैं।

(सर०) आड्० 'करणं' और आनन्द० में 'चरणं' पाठ है। ना०शा० और अभि० में चरणं ही है और उसी से पूरा अर्थ प्राप्त होता है इसलिये ऊपर इसी का ग्रहण किया है।

यह निकुंचित है। (२४)

(घूर्णितम्—२५)

ऊर्ध्वं व्यावर्तनेनाधः परिवर्तनतः करे।
पार्श्वक्षेत्राद्भ्राम्यमाणे जङ्घास्वस्तिकमाचरेत्॥ ६२४॥

ततोऽपक्रान्तचारीकस्तद्दिक्कश्चरणो यदा।
वामो डोलाकरः प्रोक्तं करणं घूर्णितं तदा॥ ६२५॥

इति घूर्णितम् (२५)

घूर्णित—२५

६२४-६२५. (अ०) व्यावर्तेन ऊर्ध्वं व्यावर्तन से ऊपर (और) परिवर्तनतः अधः परिवर्तन से नीचे की ओर (वाले) पार्श्वक्षेत्रात् भ्राम्यमाणे बाजू की ओर से घुमाते हुए करे (दाहिने) हाथ में (और) जङ्घा स्वस्तिकम् आचरेत् टाँग (में) स्वस्तिक करना चाहिये। ततः फिर यदा जब अपक्रान्तचारीकः अपक्रान्ता चारी वाला तत् दिक्कः चरणः उसी दिशा वाला पैर वामः (और) बायाँ (हाथ) डोलाकरः डोलाहस्त (हो) तदा तो घूर्णितं करणं प्रोक्तं घूर्णित करण कहा गया है।

यह घूर्णित है। (२५)

(ऊर्ध्वजानुः—२६)

कुञ्चिते चरणे चार्यामूर्ध्वजानौ यदा करः।
तद्दिग्भवोऽलपद्मो वारालश्चोर्ध्वमुखो भवेत्॥ ६२६॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पक्षवञ्चितकश्चोर्ध्वं स्तनसाम्यस्थजानुनः।
खटकास्योऽपरो वक्षस्यूर्ध्वजानु तदोच्यते॥ ६२७॥

इत्यूर्ध्वजानु (२६)

ऊर्ध्वजानु-२६

६२६-६२७. (अ०) कुञ्चिते चरणे कुंचित पैर (और) ऊर्ध्वजानौ चार्याम् ऊर्ध्वजानु चारी होने पर यदा जब करः हाथ तत् दिक्-भवः उस दिशा का ऊर्ध्वमुखः ऊपर की ओर सिरे वाला अलपद्मः अरालः च अल्पद्म या अराल (हस्त) भवेत् होता है, स्तनसाम्यस्थ स्तन के समान (स्तर पर) आये हुए जाननुः ऊर्ध्वं घुटने के ऊपर के भाग से पक्षवञ्चितकः पक्षवंचित और अपरः खटका-आस्यः दूसरा खटकामुख वक्षसि छाती पर (हो) तदा तब ऊर्ध्वजानु उच्यते ऊर्ध्वजानु कहा जाता है।

(सर०) सिंह० ने टीका में 'पक्षवञ्चितकौ' के स्थान पर 'पक्षवञ्चितको' यों एकवचन प्रयोग किया है क्योंकि इसे एक ही हाथ में करना है। इसलिये 'पक्षवञ्चितकौ'—यह द्विवचन प्रयोग उचित नहीं लगता। 'पक्षवञ्चितकः'—इस एकवचन के साथ 'चोर्ध्वं' की सन्धि होने पर पक्षवञ्चितकश्चोर्ध्वं हो जाता है। हमने यही पाठ रखा है।

यह ऊर्ध्वजानु है। (२६)

(अर्धरेचितम्—२७)

मण्डले स्थानके स्थित्वा वक्षस्थः खटकामुखः।
सूचीमुखं चापसार्य यदा तस्यान्तिके कृतः॥ ६२८॥

अङ्घ्रिरुद्घट्टितः पार्श्वं संनतं चापसारणे।
तदर्धरेचितं योज्यमसमञ्जसचेष्टने॥ ६२९॥

इत्यर्धरेचितम् (२७)

अर्धरेचित—२७

६२८-६२९. (अ०) मण्डले स्थानके स्थित्वा मंडल स्थानक में खड़े होकर वक्षस्थः खटकामुखः (एक हाथ) छाती पर खटकामुख सूचीमुखं च अपसार्य और (दूसरा) सूचीमुख दूर ले जाकर यदा जब तस्य अन्तिके कृतः उसके समीप लाया जाय, अङ्घ्रिः उद्घट्टितः पैर उद्घट्टित पार्श्वं च और बाजू अपसारणे संनतम् अपसारण होकर संनत (हो) तत् अर्धरेचितं वह अर्धरेचित (होता है)। असमञ्जसचेष्टने योज्यं (वह) असमंजस गति (के अभिनय) में योजित करना चाहिये।

यह अर्धरेचित है। (२७)

(मत्तल्लि—२८)

गुल्फयोः स्वस्तिकं कृत्वा पादयोरपसर्पणे।
युगपत्करयोर्यत्रोद्वेष्टनं चापवेष्टनम्॥ ६३०॥

कुर्यान्मुहुर्मुहुस्तत्तु मत्तल्लि मदवेदकम्।

इति मत्तल्लि (२८)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मत्तल्लि—२८

६३०-६३१ ख. (अ०) यत्र जिसमें गुल्फयोः दोनों टख़नों में स्वस्तिकं कृत्वा स्वस्तिक करके पादयोः अपसर्पणे दोनों पैर दूर करने पर युगपत् उसी के साथ करयोः दोनों हाथों में उद्वेष्टनम् अपवेष्टनं च उद्वेष्टन और अपवेष्टन मुहुः मुहुः कुर्यात् बार-बार किया जाय तत् तु वह तो मत्तल्लि मत्तल्लि (होता है)। मदवेदकं (वह) मद की दशा बताने में (योजित होता है)।

यह मत्तल्लि है। (२८)

(अर्धमत्तल्लि—२९)

नितम्बकेशबन्धादिवर्तनो दक्षिणः करः॥ ६३१॥

उद्वेगापसृतौ पादौ वामश्चेद्रेचितः करः।
कट्यामर्धस्तदा त्वर्धमत्तल्लि तरुणे मदे॥ ६३२॥

इत्यर्धमत्तल्लि (२९)

अर्धमत्तल्लि—२९

६३१ ग-६३२. (अ०) दक्षिणः करः दाहिना हाथ नितम्बकेशबन्ध-आदिवर्तनः नितंब, केशबन्ध आदि वर्तनाओं वाला (हो), पादौ दोनों पैर उद्वेग-अपसृतौ उद्वेग से दूर किये हुए (हों), वामः करः बायाँ हाथ कट्यां कमर पर अर्धः रेचितः अर्धरेचित (हो) तदा तु तब अर्धमत्तल्लि अर्धमत्तल्लि (होता है)। तरुणे मदे (यह) तरुण मद में (प्रयुक्त होता है)।

यह अर्धमत्तल्लि है। (२९)

(रेचकनिकुट्टकम्—३०)

रेचितो दक्षिणो हस्तः सोऽङ्घ्रिरुद्घट्टितो भवेत्।
यत्र डोलाकरो वामस्तद्रेचकनिकुट्टकम्॥ ६३३॥

इति रेचकनिकुट्टकम् (३०)

रेचकनिकुट्टक—३०

६३३. (अ०) दक्षिणः हस्तः दाहिना हाथ रेचितः रेचित, सः अङ्घ्रिः वह (दाहिना) पैर उद्घट्टितः उद्घट्टित (और) वामः बायाँ (हाथ) डोलाकरः डोलाहस्त भवेत् होता है तत् वह रेचकनिकुट्टकं रेचकनिकुट्टक (होता है)।

यह रेचकनिकुट्टक है। (३०)

(ललितम्—३१)

पूर्वोक्तः करिहस्तोऽन्यः पादश्चोद्घट्टितस्तथा।
अङ्गान्तरं चेल्ललितं तदा नृत्ते विलासिनि॥ ६३४॥

इति ललितम् (३१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ललित—३१

६३४. (अ०) पूर्व-उक्तः पहले कहा गया (अर्थात् दाहिना हाथ नितंब, केशबंध आदि हस्तव्यापार वाला), अन्यः दूसरा (बायाँ हाथ) करिहस्तः करिहस्त पादः च और पैर उद्घट्टितः उद्घट्टित (और) अङ्ग-अन्तरं तथा चेत् यदि अन्य अंग (भी) वैसे ही (हों) तदा तो ललितं ललित (होता है)। विलासिनि नृत्ते (वह) विलासयुक्त नृत्त में (प्रयोग किया जाता है)।

यह ललित है। (३१)

(वलितम्—३२)

वक्षःक्षेत्रात्करे सूचीमुखसंज्ञेऽपसर्पति।
सूचीपादोऽप्यपसृतश्चारी स्याद् भ्रमरी ततः॥ ६३५॥

क्रमादङ्गद्वयेऽप्येवं ललिते वलितं मतम्।

इति वलितम् (३२)

वलित—३२

६३५-६३६ ख. (अ०) वक्षःक्षेत्रात् छाती से सूचीमुखसंज्ञे करे सूचीमुख नाम वाला हस्त अपसर्पति दूर होने पर सूचीपादः अपि सूचीपाद भी अपसृतः दूर गया हो, ततः उसके बाद भ्रमरी चारी भ्रमरी चारी स्यात् हो (और) क्रमात् क्रम से अङ्गद्वये अपि एवं दोनों अंगों में भी ऐसा ही (किया जाय तो) वलितं भवेत् वलित होता है। ललिते (वह) ललित में (योजित होता है)।

यह वलित है। (३२)

(दण्डपक्षम्—३३)

यत्रोर्ध्वजानुश्चारी स्याल्लताहस्तौ करौ कृतौ॥ ६३६॥

तयोरेकं ततो न्यस्येदुपर्यूर्ध्वस्थजानुनः।
पुनरङ्गान्तरेणैव दण्डपक्षं तदुच्यते॥ ६३७॥

इति दण्डपक्षम् (३३)

दण्डपक्ष—३३

६३६ ग-६३७. (अ०) यत्र जिसमें ऊर्ध्वजानुः चारी स्यात् ऊर्ध्वजानु चारी हो, करौ लताहस्तौ कृतौ दोनों हाथ लताहस्त किये हुए (हों), ततः उसके बाद तयोः एकम् उनमें से एक ऊर्ध्वस्थजानुनः उपरि ऊपर किये हुए घुटने के ऊपर न्यस्येत् रखा जाता है (और) अङ्ग-अन्तरेण एव दूसरे अंग से भी पुनः फिर से (ऐसा ही किया जाय) तत् (तो) वह दण्डपक्षम् उच्यते दंडपक्ष कहा जाता है।

यह दंडपक्ष है। (३३)

(पादापविद्धकम्—३४)

पराङ्मुखौ नाभितटे हस्तौ चेत्खटकामुखौ।
सूचीपादोऽङ्घ्रिणान्येन युक्त्वापक्रान्तयान्वितः॥ ६३८॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अङ्घ्रिरन्यस्तथैव स्यात्तदा पादापविद्धकम्।

इति पादापविद्धकम् (३४)

पादापविद्धक—३४

६३८-६३९ ख. (अ०) खटकामुखौ हस्तौ (यदि) दोनों खटकामुख हस्त नाभितटे नाभि के पास पराङ्मुखौ पराङ्मुख (किये हुए हों) सूचीपादः सूचीपाद अन्येन अङ्घ्रिणा युक्त्वा दूसरे पैर के साथ जुड़ा हुआ अपक्रान्तया अन्वितः अपक्रान्ता चारी से युक्त (हो) अन्यः अङ्घ्रिः दूसरा पैर तथा एव चेत् यदि वैसा ही (योजित हो) तदा तो पादापविद्धकं स्यात् पादापविद्धक होता है।

यह पादापविद्धक है। (३४)

(नूपुरम्—३५)

विधाय भ्रमरीं चारीं ततो नुपूरपादिकाम्॥ ६३९॥

पादेनैकेन तद्दिक्कं हस्तं रेचितमाचरेत्।
द्वितीयं तु लताहस्तं यत्र तन्नूपुरं विदुः॥ ६४०॥

इति नूपुरम् (३५)

नूपुर—३५

६३९ ग-६४०. (अ०) एकेन पादेन एक पैर से भ्रमरीं चारीं विधाय भ्रमरी चारी योजित करके ततः फिर नूपुरपादिकां नूपुरपादिका (योजित करें) तत् दिक्कम् उसी दिशा में रेचितं हस्तं रेचित हस्त आचरेत् करें (और) यत्र द्वितीयं तु जहाँ दूसरा लताहस्तं लताहस्त (हो) तत् नूपुरं विदुः वह नूपुर जानते हैं (जाना जाता है)।

यह नूपुर है। (३५)

(भ्रमरम्—३६)

पादमाक्षिप्तचारीकं तदैवोद्वेष्टितं करम्।
त्रिकं च वलितं कृत्वा पादस्वस्तिकमाचरेत्॥ ६४१॥

ततस्तद्वद् द्वितीयाङ्गं युगपच्चोल्बणौ करौ।
यत्र तद् भ्रमरं योज्यं तच्चोद्धतपरिक्रमे॥ ६४२॥

इति भ्रमरम् (३६)

भ्रमर—३६

६४१-६४२. (अ०) पादम् आक्षिप्तचारीकं पैर आक्षिप्ता चारीयुक्त, तदा एव उसी समय करम् उद्वेष्टितं हाथ उद्वेष्टित त्रिकं च वलितम् कृत्वा और कमर मोड़ कर पादस्वस्तिकम् आचरेत् पैर स्वस्तिक करें। ततः फिर यत्र तत् वत् जिसमें उसी तरह द्वितीय-अङ्गं दूसरा अंग युगपत् च और उसी के साथ करौ उल्बणौ दोनों हाथ उल्बण (हों) तत् भ्रमरं वह भ्रमर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(होता है) तत् च और वह उद्धतपरिक्रमे उद्धत परिक्रम में योज्यं योजित करना चाहिये।

यह भ्रमर है। (३६)

(च्छिन्नम्—३७)

अलपद्मौ कटीपार्श्वक्षेत्रे यत्र क्रमात्करौ।
कटीछिन्ना च वैशाखं स्थानं तच्छिन्नमुच्यते॥ ६४३॥

स्यात्तालभञ्जने तच्च तथाङ्गप्रतिसारणे।

इति च्छिन्नम् (३७)

छिन्न—३७

६४३-६४४ ख. (अ०) यत्र जिसमें कटीपार्श्वक्षेत्रे कमर की बाजू में करौ दोनों हाथ क्रमात् क्रम से अलपद्मौ अलपद्म (हों) कटी छिन्ना च और कमर छिन्ना (हो), वैशाखं स्थानं वैशाख स्थान (योजित हो) तत् वह छिन्नम् उच्यते छिन्न कहा जाता है। तत् च और वह तालभञ्जने तालभंजन तथा अङ्गप्रतिसारणे स्यात् और अंगों के घावों के उपचार में (योजित) होता है।

यह छिन्न है। (३७)

भुजङ्गत्रस्तरेचितम् (३८)

भुजङ्गत्रासिता चारी ततो यत्र च रेचितौ॥ ६४४॥
हस्तौ स्तो वामपार्श्वे तद्भुजङ्गत्रस्तरेचितम्।

इति भुजङ्गत्रस्तरेचितम् (३८)

भुजंगत्रस्तरेचित—३८

६४४ ग-६४५ ख. (अ०) यत्र च जिसमें भुजङ्गत्रासिता चारी भुजंगत्रासिता चारी (और) ततः उसके बाद हस्तौ दोनों हाथ रेचितौ स्तः रेचित होते हैं (और फिर उन्हें) वामपार्श्वे बाईं बाजू में (ले जायँ) तत् भुजङ्गत्रस्तरेचितं वह भुजंगत्रस्तरेचित (होता है)।

यह भुजंगत्रस्तरेचित है। (३८)

(भुजङ्गाञ्चितम्—३९)

चारी चेद्दक्षिणाङ्घ्रेः स्यात्पूर्वोक्ता दक्षिणः करः॥ ६४५॥
रेचितोऽन्यो लताहस्तो भुजङ्गाञ्चितकं तदा।

इति भुजङ्गाञ्चितम् (३९)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भुजंगांचित—३९

६४५ ग-६४६ ख. (अ०) दक्षिण-अङ्घ्रेः चारी (यदि) दाहिने पैर की चारी पूर्व-उक्ता पहले (भुजंगत्रस्त में) कही गई (भुजंगत्रासिता) स्यात् हो, दक्षिणः करः रेचितः दाहिना हाथ रेचित (हो) अन्यः लताहस्तः चेत् (और) यदि दूसरा (बायाँ) लताहस्त (हो) तदा तो भुजङ्गाञ्चितकं भुजंगांचित (होता है)।

यह भुजंगांचित है। (३९)

(दण्डरेचितम्—४०)

चारी चेद्दण्डपादा स्याद्दण्डपक्षौ च हस्तकौ॥ ६४६॥

प्रमोदनृत्तविषयं तदा स्याद्दण्डरेचितम्।
प्रयोगमपरे प्राहुरस्योद्धतपरिक्रमे॥ ६४७॥

इति दण्डरेचितम् (४०)

दंडरेचित—४०

६४६ ग-६४७. (अ०) दण्डपादा चारी (यदि) दंडपादा चारी (हो) हस्तकौ दण्डपक्षौ च स्यात् चेत् और यदि दोनों हाथ दंडपक्ष हों तदा तो दण्डरेचितं स्यात् दंडरेचित होता है। प्रमोदनृत्तविषयं (वह) प्रमोद (और) नृत्त विषयक (होता है)। अपरे दूसरे (आचार्य) उद्धतपरिक्रमे उद्धत परिक्रम में अस्य प्रयोगम् आहुः इसका प्रयोग कहते हैं।

यह दंडरेचित है। (४०)

(चतुरम्—४१)

वक्षःक्षेत्रस्थयोः पाण्योर्वामश्चेदलपल्लवः।
दक्षिणश्चतुरोऽङ्घ्रिस्तूद्घट्टितश्चतुरं तदा॥ ६४८॥

एतद्विस्मयसूचायां वैदूषिक्यां नियुज्यते।

इति चतुरम् (४१)

चतुर—४१

६४८-६४९ ख. (अ०) वक्षःक्षेत्रस्थयोः पाण्योः छाती पर रखे हुए हाथों में (से) वामः अलपल्लवः बायाँ अलपल्लव, दक्षिणः चतुरः दाहिना चतुर, अङ्घ्रिः तु और पैर उद्घट्टितः चेत् यदि उद्घट्टित (हो) तदा तो चतुरं चतुर (होता है)। एतत् यह वैदूषिक्यां विदूषक के विस्मयसूचायां विस्मययुक्त सूचा (अभिनय) में नियुज्यते प्रयुक्त होता है।

(सर०) आड्० में 'विस्मयसूयायां' और आनन्द० में विस्मयसूचायां पाठ है। ना०शा० ४/९९ की टीका में अभिनव ने विदूषक के सविस्मय-सूचीअभिनय में विनियोग दिया है। इन दोनों के आधार पर ऊपर विस्मयसूचायां का ग्रहण हुआ है।

यह चतुर है। (४१)

(कटिभ्रान्तम्—४२)

द्रुतापसारितं वामं सूचीपादं विधाय चेत्॥ ६४९॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तत्पार्श्वे दक्षिणं न्यस्येत्तत्कालं रेचयेत्कटिम्।
कुर्वन्वा भ्रमरीं हस्तौ व्यावृत्तपरिवर्तितौ॥ ६५०॥

कृत्वान्ते चतुरश्रः स्यात्कटिभ्रान्तं तदा भवेत्।
अस्य तालान्तरेषु यतीनां परिपूरणे॥ ६५१॥

प्रयोगमाह निःशङ्कस्तथा गतिपरिक्रमे।

इति कटिभ्रान्तम् (४२)

कटिभ्रान्त—४२

६४९ ग-६५२ ख. (अ०) **वामं सूचीपादं** (यदि) बायाँ सूचीपाद **द्रुत-अपसारितं विधाय** जल्दी दूर ले जाकर **दक्षिणं** दाहिना (पैर) **तत् पार्श्वे** उसकी बाजू में **न्यस्येत्** रखा जाता है **तत् कालम्** (और) उसी समय **कटिं रेचयेत्** कमर रेचित की जाती है **भ्रमरीं वा कुर्वन** या भ्रमरी करते हुए, **हस्तौ** दोनों हाथ **व्यावृत्तपरिवर्तितौ कृत्वा** व्यावृत्त और परिवर्तित करके **अन्ते** अन्त में **चतुरश्रः स्यात् चेत्** यदि चतुरश्र होता है **तदा** तब **कटिभ्रान्तं भवेत्** कटिभ्रान्त होता है। **निःशङ्कः** निःशंक (शार्ङ्गदेव) **ताल-अन्तरालेषु** दो तालों के बीच के अन्तराल में, **यतीनां परिपूरणे** (ताल की) यतियों की पूर्ति करने में **तथा** और **गतिपरिक्रमे** गतिपरिक्रम में **अस्य प्रयोगम् आह** इसका प्रयोग कहता है।

यह कटिभ्रान्त है। (४२)

(व्यंसितम्—४३)

एक उद्वेष्टितेनाधो विप्रकीर्णः करोऽपरः॥ ६५२॥

ऊर्ध्वं तादृक्परावृत्त्या वक्षःक्षेत्रगतस्ततः।
उत्तानो रेचितश्चैकोऽपरोऽधोमुखरेचितः॥ ६५३॥

आलीढं स्थानकं यत्र तद्व्यंसितमुदाहृतम्।
प्रयोज्यमाञ्जनेयादिमहाकपिपरिक्रमे॥ ६५४॥

इति व्यंसितम् (४३)

व्यंसित—४३

६५२ ग-६५४. (अ०) **एकः करः** एक हाथ **उद्वेष्टितेन** उद्वेष्टित से **अधः विप्रकीर्णः** नीचे प्रकीर्ण (और) **अपरः ऊर्ध्वं** दूसरा ऊपर की ओर **तादृक्** वैसा ही **परावृत्त्या** परावृत्ति से **वक्षःक्षेत्रगतः** छाती के पास गया हुआ, **ततः** उसके बाद **एकः** एक (हाथ) **उत्तानः रेचितः** उत्तान रेचित (और) **अपरः** दूसरा **अधोमुखरेचितः** अधोमुख रेचित **यत्र** (और) जिसमें **आलीढं स्थानकम्** आलीढ स्थानक (हो) **तत् व्यंसितम् उदाहृतं** वह व्यंसित कहा गया है। **आञ्जनेय-आदिमहाकपिपरिक्रमे** हनुमान् आदि महाकपि के पराक्रम में **प्रयोज्यं** प्रयुक्त करना चाहिये।

यह व्यंसित है। (४३)

(क्रान्तम्—४४)

चार्यातिक्रान्तया पादं पात्यमानं तु कुञ्चयेत्।
व्यावर्तितेन तत्कालं करं निष्क्रामयेत्ततः॥ ६५५॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आक्षिप्य परिवर्तेन तं कुर्यात्खटकामुखम्।
वक्षस्येवं द्वितीयाङ्गं यत्र तत्क्रान्तमिष्यते॥ ६५६॥

प्रयोगमाहुराचार्यास्तस्योद्धतपरिक्रमे।

इति क्रान्तम् (४४)

क्रान्त—४४

६५५-६५७ ख. (अ०) **यत्र** जिसमें **अतिक्रान्तया चार्या** अतिक्रान्ता चारी से **पात्यमानं पादं तु** नीचे लाते हुए एक पैर तो **कुञ्चयेत्** कुंचित किया जाय, **तत् कालम्** उसी समय **करं** हाथ **व्यावर्तितेन निष्क्रामयेत्** व्यावर्तित से बाहर ले जायँ, **ततः** फिर **आक्षिप्य** आक्षेप करके **तं परिवर्तेन** उसे परिवर्तन से **वक्षसि** छाती पर **खटकामुखं कुर्यात्** खटकामुख करें, **द्वितीय-अङ्गम् एव** दूसरा अंग भी (ऐसा ही करें) **तत्** वह **क्रान्तम् इष्यते** क्रान्त कहा जाता है। **आचार्याः** आचार्य **तस्य प्रयोगम्** उसका प्रयोग **उद्धतपरिक्रमे** उद्धत परिक्रम में **आहुः** कहते हैं।

यह क्रान्त है। (४४)

(वैशाखरेचितम्—४५)

हस्तपादकटिग्रीवं रेचितं स्थानकं पुनः॥ ६५७॥
वैशाखं यत्र तज्ज्ञेयं विज्ञैर्वैशाखरेचितम्।

इति वैशाखरेचितम् (४५)

वैशाखरेचित—४५

६५७ ग-६५८ ख. (अ०) **यत्र** जिसमें **हस्तपादकटिग्रीवं** हाथ, पैर, कमर और गर्दन **रेचितं** रेचित (हों) **पुनः** और **स्थानकं वैशाखं** स्थानक वैशाख **तत्** वह **विज्ञैः** वेत्ताओं के द्वारा **वैशाखरेचितं ज्ञेयं** वैशाखरेचित जाना गया है।

यह वैशाखरेचित है। (४५)

(वृश्चिकम्—४६)

करिहस्तौ करौ पादौ पृष्ठे वृश्चिकपुच्छवत्॥ ६५८॥

दूरसंनतपृष्ठं च यत्र तद्वृश्चिकं विदुः।
एतदैरावणादीनां व्योमयाने नियुज्यते॥ ६५९॥

इति वृश्चिकम् (४६)

वृश्चिक—४६

६५८ ग-६५९. (अ०) **यत्र** जिसमें **करौ** दोनों हाथ **करिहस्तौ** करिहस्त, **पादौ** पैर **पृष्ठे** पीछे की ओर **वृश्चिकपुच्छवत्** बिच्छू की पूँछ की तरह, **दूरसंनत-पृष्ठं च** और पीठ दूर तक मुड़ी हुई (हो) **तत्** वह **वृश्चिकं विदुः** वृश्चिक जाना जाता है। **एतत्** यह **ऐरावण-आदीनाम्** ऐरावत आदि के **व्योमयाने** आकाश गमन में **नियुज्यते** विनियुक्त होता है।

यह वृश्चिक है। (४६)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(वृश्चिककुट्टितम्—४७)

वृश्चिकं चरणं कृत्वा बाहुशीर्षे यदा क्रमात्।
अलपद्मौ निकुट्येते तदा वृश्चिककुट्टितम्॥ ६६०॥

सविस्मये व्योमयानवाञ्छादौ विनियुज्यते।

इति वृश्चिककुट्टितम् (४७)

वृश्चिककुट्टित—४७

६६०-६६१ ख. (अ०) **वृश्चिकं चरणं कृत्वा** वृश्चिक (में कहा गया) चरण करके **यदा** जब **अलपद्मौ बाहुशीर्षे** अलपद्म बाँहों के शिखर (अर्थात् कंधे) **क्रमात्** क्रम से **निकुट्येते** निकुट्टित किये जाते हैं **तदा** तो **वृश्चिककुट्टितं** वृश्चिककुट्टित (होता है)। **सविस्मये** (वह) विस्मय में **व्योमयानवाञ्छा-आदौ** आकाशगमन की इच्छा आदि में **विनियुज्यते** विनियुक्त होता है।

(सर०) सिंह० का पाठ चरणं के स्थान पर 'करणं' है।

यह वृश्चिककुट्टित है। (४७)

(वृश्चिकरेचितम्—४८)

यत्राङ्घ्री वृश्चिकीभूतौ स्वस्तिकौ रेचितौ करौ॥ ६६१॥

विच्युतौ चेत्तदाकाशयाने वृश्चिकरेचितम्।

इति वृश्चिकरेचितम् (४८)

वृश्चिकरेचित—४८

६६१ ग-६६२ ख. (अ०) **यत्र** जिसमें **अङ्घ्री** दोनों पैर **वृश्चिकीभूतौ** वृश्चिक (करण जैसे) हुए हों **करौ** दोनों हाथ **स्वस्तिकौ रेचितौ** स्वस्तिक और रेचित (आकृतियों में किन्तु) **विच्युतौ चेत्** यदि अलग किये हुए हों **तदा** तो **वृश्चिकरेचितं** वृश्चिकरेचित (होता है)। **आकाशयाने** (वह) आकाशगमन (आकाशमार्ग से जाने के अभिनय) में (योजित होता है)।

यह वृश्चिकरेचित है। (४८)

(लतावृश्चिकम्—४९)

वृश्चिकचरणो यत्र वामहस्तो लताभिधः॥ ६६२॥

तल्लतावृश्चिकं योज्यं गगनोत्पतने बुधैः।

इति लतावृश्चिकम् (४९)

लतावृश्चिक—४९

६६२ ग-६६३ ख. (अ०) **यत्र** जहाँ **वृश्चिकः चरणः** वृश्चिक (में कहा गया) पैर (हो) **वामहस्तः लता-अभिधः**

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(और) बायाँ हाथ लता नाम वाला (हो) तत् वह लतावृश्चिकं लतावृश्चिक (होता है)। बुधैः बुधों के द्वारा गगन-उत्पतने योज्यं आकाश में उड़ान में योजित करना चाहिये।

यह लतावृश्चिक है। (४९)

(आक्षिप्तम्—५०)

आक्षिप्ता यत्र चारी स्यादाक्षिप्तः खटकामुखः ॥ ६६३ ॥

चतुरो वा तदाक्षिप्तं विदूषकगतौ मतम्।

इत्याक्षिप्तम् (५०)

आक्षिप्त—५०

६६३ ग-६६४ ख. (अ०) यत्र जिसमें आक्षिप्ता चारी आक्षिप्ता चारी (और) खटकामुखः चतुरः वा खटकामुख या चतुर (हस्त) आक्षिप्तः स्यात् आक्षिप्त किया हुआ होता है तत् आक्षिप्तं वह आक्षिप्त (होता है)। विदूषकगतौ मतं (वह) विदूषक की गति में माना गया है।

यह आक्षिप्त है। (५०)

(अर्गलम्—५१)

कनिष्ठाङ्गुलिभागे चेद्वामाङ्घ्रेर्दक्षिणः स्थितः ॥ ६६४ ॥

स्तब्धजङ्घः सार्धतालद्वितयं स्यात्प्रसारितः।
तदैव स्तब्धबाहुः सन्वामपार्श्वेऽलपल्लवः ॥ ६६५ ॥

वामेतरः करः किंचित्प्रसृताग्रोऽर्गलं तदा।
परिक्रमेऽङ्गदादीनां शार्ङ्गदेवेन कीर्तितम् ॥ ६६६ ॥

इत्यर्गलम् (५१)

अर्गल—५१

६६४ ग-६६६. (अ०) वाम-अङ्घ्रेः कनिष्ठ-अङ्गुलिभागे (यदि) बायें पैर की कनिष्ठा उँगली के भाग में स्थितः दक्षिणः रखा हुआ दाहिना (पैर) स्तब्धजङ्घः स्थिर टाँग वाला स-अर्धतालद्वितयं ढाई ताल (दूर) प्रसारितः स्यात् प्रसारित (फैला हुआ) हो तदा एव (और) उसी समय वाम-इतरः अलपल्लवः करः बायें से भिन्न (दाहिना) अलपल्लव हाथ स्तब्धबाहुः सन् स्थिर बाँह वाला होकर वामपार्श्वे बाईं बाजू की ओर किंचित् प्रसृत-अग्रः चेत् यदि अग्र (सिरे) कुछ फैल कर (योजित हों) तदा तो अर्गलम् अर्गल (होता है)। शार्ङ्गदेवेन (वह) शार्ङ्गदेव के द्वारा अङ्गद-आदीनां परिक्रमे अंगद आदि के परिक्रम में कीर्तितं कहा गया है।

यह अर्गल है। (५१)

(तलविलासितम्—५२)

ऊर्ध्वमूर्ध्वाङ्गुलितलः पादः पार्श्वे प्रसारितः।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तदग्रयुक्तपताकोऽङ्गं यत्रेत्थमपरं क्रमात्॥ ६६७॥

सूत्रधारादिविषये तत्स्यात्तलविलासितम्।

इति तलविलासितम् (५२)

६६७-६६८ ख. (अ०) **ऊर्ध्व-अङ्गुलितलः पादः** उँगलियाँ और तलुआ ऊपर किया हुआ पैर **पार्श्वे ऊर्ध्वं प्रसारितः** बाजू में ऊपर फैले हुए (और) **यत्र** जिसमें **तत् अग्रयुक्तपताकः** उसकी नोक से लगा हुआ पताक हस्त (तथा) **इत्थम्** इसी तरह **अपरम् अङ्गं** दूसरा अंग (भी योजित हो) **तत्** वह **तलविलासितं स्यात्** तलविलासित होता है। **सूत्रधार-आदिविषये** सूत्रधार आदि के लिये (योजित होता है)।

यह तलविलासित है। (५२)

(ललाटतिलकम्—५३)

अङ्गुष्ठो वृश्चिकाङ्घ्रेश्चेल्ललाटे तिलकं लिखेत्॥ ६६८॥

तदा ललाटतिलकं विद्याधरगतौ मतम्।

इति ललाटतिलकम् (५३)

ललाटतिलक—५३

६६८ ग-६६९ ख. (अ०) **वृश्चिक-अङ्घ्रेः अङ्गुष्ठः** (यदि) वृश्चिक पैर का अँगूठा **ललाटे** भाल पर **तिलकं लिखेत् चेत्** यदि तिलक करे **तदा** तो **ललाटतिलकं** ललाटतिलक (होता है)। **विद्याधरगतौ मतं** (वह) विद्याधरों की गति में माना गया है।

(सर०) विद्याधर अर्धदेव योनि मानी गई है।

यह ललाटतिलक है। (५३)

(पार्श्वनिकुट्टकम्—५४)

पाण्योः स्वस्तिकयोरूर्ध्वमुखः पार्श्वे निकुट्टितः॥ ६६९॥

एकोऽन्योऽधोमुखो यत्र तद्वत्पादो निकुट्टितः।
तत्प्रकाशनसंचाराभ्यासे पार्श्वनिकुट्टकम्॥ ६७०॥

इति पार्श्वनिकुट्टकम् (५४)

पार्श्वनिकुट्टक—५४

६६९ ग-६७०. (अ०) **स्वस्तिकयोः पाण्योः** दोनों स्वस्तिक हाथों में से **एकः** एक **ऊर्ध्वमुखः पार्श्वे निकुट्टितः** ऊपर नोक वाला (हाथ) बाजू की ओर निकुट्टित (हो और) **यत्र** जहाँ **अन्यः** दूसरा (हाथ) **अधोमुखः** नीचे नोक वाला (हो) **पादः** पैर **तत्-वत्** उसी तरह **निकुट्टितः** निकुट्टित (हो) **तत्** वह **पार्श्वनिकुट्टकं** पार्श्वनिकुट्टक (होता है)। **प्रकाशनसंचार-अभ्यासे** (वह) प्रकट करने और संचार की पुनरावृत्ति में (प्रयोग किया जाता है)।

यह पार्श्वनिकुट्टक है। (५४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(चक्रमण्डलम्—५५)

यत्र कृत्वाड्डितां चारीं डोलाभ्यां चक्रवद्भ्रमेत्।
अन्तर्नतेन गात्रेण तदूचुश्चक्रमण्डलम्॥ ६७१॥
सुराणां वरिवस्यायां तदुद्धतपरिक्रमे।

इति चक्रमण्डलम् (५५)

चक्रमण्डल—५५

६७१-६७२ ख. (अ०) यत्र जिसमें अड्डितां चारीं कृत्वा अड्डिता चारी करके डोलाभ्यां दोनों डोलों (हस्तों) से अन्तर्नतेन गात्रेण भीतर की ओर झुके हुए शरीर से चक्रवत् भ्रमेत् चक्र की तरह (गोलाकार) घूमा जाय तत् उसे चक्रमण्डलम् ऊचुः चक्रमंडल कहा गया है। तत् वह सुराणां वरिवस्यायां देवताओं की पूजा (उपासना, सेवा) करने में (और) उद्धतपरिक्रमे उद्धत परिक्रम में (योजित करना चाहिये।)

यह चक्रमंडल है। (५५)

(उरोमण्डलम्—५६)

चार्यौ बद्धास्थितावर्ते उरोमण्डलिनौ करौ॥ ६७२॥
यत्रोरोमण्डलं तत्तु शिववल्लभभाषितम्।

इत्युरोमण्डलम् (५६)

उरोमंडल—५६

६७२ ग-६७३ ख. (अ०) यत्र जिसमें बद्धास्थितावर्ते चार्यौ बद्धा और स्थितावर्ता चारी (और) करौ उरोमण्डलिनौ दोनों हाथ उरोमंडली हों तत् तु वह तो शिववल्लभभाषितम् उरोमण्डलं शिवप्रिय (शार्ङ्गदेव) का कहा हुआ उरोमंडल है।

यह उरोमंडल है। (५६)

(आवर्तम्—५७)

उद्वेष्टेनापवेष्टेन यत्र डोलाभिधौ करौ॥ ६७३॥
चारी चाषगतिस्तत्स्यादावर्तं भयसर्पणे।

इत्यावर्तम् (५७)

(आवर्त—५७)

६७३ ग-६७४ ख. (अ०) यत्र जिसमें उद्वेष्टेन अपवेष्टेन उद्वेष्टित और अपवेष्टित से डोल-अभिधौ करौ दोनों डोल हस्त (और) चाषगतिः चारी चाषगति चारी (योजित हो) तत् आवर्तं स्यात् वह आवर्त होता है। भयसर्पणे (वह) भय के कारण जाने में (प्रयुक्त होता है)।

यह आवर्त है। (५७)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(कुञ्चितम्—५८)

उत्तानो वामपार्श्वस्थोऽलपद्मो दक्षिणः करः॥ ६७४॥

यत्र तत्कुञ्चितं पादे सव्येऽग्रतलसंचरे।
तेन देवानभिनयेल्लसदानन्दनिर्भरान्॥ ६७५॥

इति कुञ्चितम् (५८)

कुंचित—५८

६७४ ग-६७५. (अ०) **यत्र** जिसमें **उत्तानः अलपद्मः** उत्तान अलपद्म **दक्षिणः करः** दाहिना हाथ **वामपार्श्वस्थः** बाईं ओर रखा हुआ (और) **सव्ये पादे** दाहिना पैर **अग्रतलसंचरे** अग्रतलसंचर होने पर (अर्थात् हो) **तत् कुञ्चितं** वह कुंचित (होता है)। **तेन** उसके द्वारा **आनन्दनिर्भरान् लसत्** अत्यन्त आनन्द से विभोर **देवान् अभिनयेत्** देवताओं का अभिनय करें।

यह कुंचित है। (५८)

(डोलापादम्—५९)

ऊर्ध्वजानोः परं चारी डोलापादा यदा भवेत्।
डोलौ हस्तौ तदा प्रोक्तं डोलापादं विदांवरैः॥ ६७६॥

इति डोलापादम् (५९)

डोलापाद—५९

६७६. (अ०) **यदा** जब **ऊर्ध्वजानोः चारी परम्** ऊर्ध्वजानु चारी (करने) के बाद **डोलापादा भवेत्** डोलापादा (योजित) होती है **डोलौ हस्तौ** (और) दोनों डोल हस्त (होते हैं) **तदा** तब **विंदावरैः** विज्ञों में श्रेष्ठ (वेत्ताओं) के द्वारा **डोलापादं प्रोक्तं** डोलापाद कहा गया है।

यह डोलापाद है। (५९)

(विवृत्तम्—६०)

पादमाक्षिप्तया चार्याक्षिप्याक्षिप्य करावपि।
व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां कृत्वा भ्रमरिकां करौ॥ ६७७॥

रेचितौ चेद्विवृत्तं स्यात्तच्चोद्धतपरिक्रमे।

इति विवृत्तम् (६०)

विवृत्त—६०

६७७-६७८ ख. (अ०) **पादं** पैर को **आक्षिप्तया चार्या आक्षिप्य** आक्षिप्ता चारी से आक्षिप्त करके **करौ अपि** दोनों हाथ भी **व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां** व्यावर्तित और परिवर्तित करणों से **आक्षिप्य** आक्षिप्त करके **भ्रमरिकां कृत्वा** भ्रमरी करके **करौ रेचितौ चेत्** यदि दोनों हाथ रेचित हों (तो) **विवृत्तं स्यात्** विवृत्त होता है **तत् च** और वह **उद्धतपरिक्रमे** उद्धत परिक्रम में (योजित होता है)।

यह विवृत्त है। (६०)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(विनिवृत्तम्—६१)

सूच्यङ्घ्रिणा द्वितीयाङ्घ्रेः पार्ष्णितः स्वस्तिकं भवेत्॥ ६७८॥

व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां वलयित्वैकपार्श्वतः।
त्रिकं बद्धाभिधां चारीं कुर्याद्धस्तौ तु रेचितौ॥ ६७९॥

यत्र तद्विनिवृत्तं स्यात्पूर्वोक्तविनियोगभाक्।

इति विनिवृत्तम् (६१)

विनिवृत्त—६१

६७८ ग-६८० ख. (अ०) सूचि-अङ्घ्रिणा सूची पैर से द्वितीय अङ्घ्रेः दूसरे पैर की पार्ष्णितः एड़ी के पास स्वस्तिकं भवेत् स्वस्तिक होता है (हो), त्रिकं कमर को व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां व्यावृत्ति और परिवृत्ति से एकपार्श्वतः वलयित्वा एक बाजू की ओर मोड़ कर बद्धा-अभिधां चारीं कुर्यात् बद्धा नाम वाली चारी करें (और) यत्र जिसमें हस्तौ तु रेचितौ हाथ तो रेचित (हों) तत् विनिवृत्तं स्यात् वह विनिवृत्त होता है। पूर्व-उक्तविनियोगभाक् (वह) पहले (विवृत्त में) कहे गये विनियोग वाला (होता है)।

यह विनिवृत्त है। (६१)

(पार्श्वक्रान्तम्—६२)

पार्श्वक्रान्ता भवेच्चारी करौ पादानुगौ यदा॥ ६८०॥

पार्श्वक्रान्तं तदा यद्वाभिनेयवशगौ करौ।
तद्योज्यं भीमसेनादे रौद्रप्राये परिक्रमे॥ ६८१॥

इति पार्श्वक्रान्तम् (६२)

पार्श्वक्रान्त—६२

६८० ग-६८१. (अ०) यदा जब पार्श्वक्रान्ता चारी भवेत् पार्श्वक्रान्ता चारी होती है (और) करौ पाद-अनुगौ दोनों हाथ दोनों पैरों का अनुसरण करते हुए (हों) यत् वा अथवा करौ अभिनेयवशंगौ हाथ अभिनेय (अभिनय के विषय) का अनुसरण करें तदा पार्श्वक्रान्तं तो पार्श्वक्रान्त (होता है)। तत् वह भीमसेन-आदेः भीमसेन आदि के रौद्रप्राये परिक्रमे रौद्रप्राय परिक्रम में योज्यं योजित करना चाहिये।

यह पार्श्वक्रान्त है। (६२)

(निशुम्भितम्—६३)

पार्ष्णिदेशे द्वितीयाङ्घ्रेः कुञ्चितश्चरणो भवेत्।
समुन्नतमुरः पाणेः खटकाख्यस्य मध्यमा॥ ६८२॥

यत्राङ्गुलिस्तिलकयेल्ललाटं तन्निशुम्भितम्।
यद्वा वृश्चिकहस्तः स्यादभिनेयो महेश्वरः॥ ६८३॥

इति निशुम्भितम् (६३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

निशुंभित—६३

६८२-६८३. (अ०) यत्र जिसमें द्वितीय-अङ्घ्रेः दूसरे पैर की पार्ष्णिदेशे एड़ी के पास चरणः एक पैर कुञ्चितः भवेत् कुंचित होता है, उरः सम्-उन्नतम् छाती ऊपर की हुई हो, खटकामुखस्य पाणेः खटकामुख हाथ की मध्यमा अङ्गुलिः मध्यमा उँगली ललाटं तिलकयेत् ललाट पर तिलक रचती है तत् निशुम्भितं वह निशुंभित (होता है) यत् वा अथवा वृश्चिकः हस्तः वृश्चिक हस्त (होता है)। महेश्वरः अभिनेयः स्यात् (इसमें) शंकर का अभिनय होता है।

यह निशुंभित है। (६३)

(विद्युद्भ्रान्तम्—६४)

पृष्ठतो भ्रामितं पादं सर्वतोमण्डलप्लुतः।
भ्रामयेच्चेच्छिरःक्षेत्रे विद्युद्भ्रान्तं तदोच्यते॥ ६८४॥

प्रयोगमस्य च प्राहुरुद्धतानां परिक्रमे।

इति विद्युद्भ्रान्तम् (६४)

विद्युद्भ्रान्त—६४

६८४-६८५ ख. (अ०) मण्डलप्लुतः गोलाकार गति से पृष्ठतः पीछे की ओर सर्वतः भ्रामितं पादं चारों ओर घुमाया हुआ पैर शिरः क्षेत्रे भ्रामयेत् चेत् यदि सिर प्रदेश में घुमाया जाय तदा तो विद्युद्भ्रान्तम् उच्यते विद्युद्भ्रान्त कहा जाता है अस्य च प्रयोगम् और इसका प्रयोग उद्धतानां परिक्रमे उद्धत (पात्रों) के परिक्रम में प्राहुः कहते हैं।

यह विद्युद्भ्रान्त है। (६४)

(अतिक्रान्तम्—६५)

कृत्वा चारीमतिक्रान्तामङ्घ्रिमग्रे प्रसारयेत्॥ ६८५॥

यत्र हस्तौ प्रयोगार्हावतिक्रान्तमदो विदुः।

इत्यतिक्रान्तम् (६५)

अतिक्रान्त—६५

६८५ ग-६८६ ख. (अ०) अतिक्रान्तां चारीं कृत्वा अतिक्रान्ता चारी करके अङ्घ्रिम् अग्रे प्रसारयेत् पैर को आगे फैलायें। यत्र जिसमें हस्तौ दोनों हाथ प्रयोग-अर्हौ प्रयोग के अनुरूप हों अदः यह अतिक्रान्तं विदुः अतिक्रान्त जानते हैं।

(सर०) आनन्द० और आड्० दोनों संस्करणों में अतिक्रान्तमदो पाठ है जिसका सिंह० ने 'अतिक्रान्त मदे' यानी अतिक्रान्त मद में अर्थ किया है। ना०शा० ४/१२६ की अभि० टीका में इसे 'गतिपरिक्रमादिविषयमेव' कह कर यह भी कहा कि इसका अभिनय में उपयोग नहीं है। इसलिये यहाँ 'अतिक्रान्तमदो' ही उचित है।

यह अतिक्रान्त है। (६५)

(विक्षिप्तम्—६६)

विद्युद्भ्रान्तादण्डपादे क्रमाच्चार्यौ विधायं चेत्॥ ६८६॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उद्वेष्टितापवेष्टाभ्यामेकमार्गगतौ करौ।
रेचयन्नग्रतः पृष्ठे पार्श्वयोर्विक्षिपेत्तदा॥ ६८७॥
विक्षिप्तमभिनेतव्यस्तेनोद्धतपरिक्रमः।

इति विक्षिप्तम् (६६)

विक्षिप्त—६६

६८६ ग-६८८ ख. (अ०) क्रमात् (यदि) क्रम से विद्युद्भ्रान्तादण्डपादे चार्यौ विद्युद्भ्रान्ता और दण्डपादा चारी विधाय योजित करके उद्वेष्टित-अपवेष्टाभ्याम् उद्वेष्टित और अपवेष्टित से एक मार्गगतौ करौ एक ही ओर गये हुए हाथ रेचयन् रेचित करते हुए अग्रतः सामने, पृष्ठे पीछे पार्श्वयोः विक्षिपेत् चेत् यदि दोनों बाजुओं की ओर फेंके जायँ तदा तो विक्षिप्तं विक्षिप्त (होता है)। तेन उसके द्वारा उद्धतपरिक्रमः उद्धतपरिक्रम अभिनेतव्यः अभिनीत करना चाहिये।

यह विक्षिप्त है। (६६)

(विवर्तितम्—६७)

करं चरणमाक्षिप्य यत्र त्रिकविवर्तनम्॥ ६८८॥
करोऽपरो रेचितश्च तद्वदन्ति विवर्तितम्।

इति विवर्तितम् (६७)

विवर्तित—६७

६८८ ग-६८९ ख. (अ०) यत्र जिसमें करं चरणम् आक्षिप्य हाथ (और) पैर आक्षिप्त करके त्रिकविवर्तनं कमर विवर्तित की जाय अपरः करः रेचितः च और दूसरा हाथ रेचित (हो) तत् उसे विवर्तितं वदन्ति विवर्तित कहा जाता है।

यह विवर्तित है। (६७)

(गजविक्रीडितम्—६८)

डोलापादा यदा चारी करिहस्तोऽस्य कर्णगः॥ ६८९॥
क्रियाविष्टः करोऽन्वर्थं गजविक्रीडितं तदा।

इति गजविक्रीडितम् (६८)

गजविक्रीडित—६८

६८९ ग-६९० ख. (अ०) यदा जब डोलापादा चारी डोलापादा चारी (करके) अस्य इस (पैर के बाजू वाले) कर्णगः कान के पास क्रियाविष्टः करिहस्तः क्रियायुक्त करिहस्त (किया जाय) तदा तब अन्वर्थं गजविक्रीडितं करः अन्वर्थ गजविक्रीडित कर (करण होता है)।

यह गजविक्रीडित है। (६८)

(गण्डसूचि—६९)

सूचीपादो नतं पार्श्वं वक्षस्थः खटकामुखः॥ ६९०॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वामोऽलपल्लवो गण्डक्षेत्रे चेद्गण्डसूचि तत्।
क्षेत्रेऽत्र केचिदिच्छन्ति सूचीपादं परे पुनः॥ ६९१॥

सूचीमुखं नृत्तहस्तमन्येऽभिनयहस्तकम्।
करणेनाभिनेतव्या कपोलालंकृतिस्तदा॥ ६९२॥

इति गण्डसूचि (६९)

गण्डसूचि—६९

६९० ग-६९२. (अ०) सूचीपादः सूची पैर, पार्श्वं नतं बाजू झुकी हुई, वक्षस्थः खटकामुखः छाती पर रखा हुआ खटकामुख (हाथ और) वामः अलपल्लवः बायाँ अलपल्लव (हाथ) गण्डक्षेत्रे चेत् यदि गाल पर (हो) तत् तो वह गण्डसूचि गण्डसूचि (होता है)। अत्र इसमें केचित् कोई (आचार्य) क्षेत्रे (गाल) प्रदेश पर सूचीपादम् इच्छन्ति सूचीपाद स्वीकार करते हैं। परे पुनः और दूसरे सूचीमुखं नृत्तहस्तं सूचीमुख नृत्त हस्त अन्ये (और) अन्य अभिनयहस्तकम् अभिनयहस्त (स्वीकार करते हैं)। तदा तब करणेन (इस) करण से कपोल-अलंकृतिः गालों पर अलंकरण अभिनेतव्या अभिनीत करना चाहिये।

यह गण्डसूचि है। (६९)

(गरुडप्लुतम्—७०)

लतारेचितकौ हस्तौ वृश्चिकाङ्घ्रिः समुन्नतम्।
उरो यत्र तदन्वर्थाभिधानं गरुडप्लुतम्॥ ६९३॥

इति गरुडप्लुतम् (७०)

गरुडप्लुत—७०

६९३. (अ०) यत्र जिसमें लतारेचितकौ हस्तौ (एक) लता हस्त और (दूसरा) रेचित, वृश्चिक-अङ्घ्रिः वृश्चिक पैर समुन्नतम् उरः ऊपर उठाई हुई छाती तत् वह अन्वर्थ-अभिधानम् अन्वर्थ नाम वाला गरुडप्लुतं गरुडप्लुत (होता है)।

यह गरुडप्लुत है। (७०)

(तलसंस्फोटितम्—७१)

दण्डपादाख्यया चार्या यद्वातिक्रान्तया द्रुतम्।
उत्क्षिप्य पात्यमानेऽङ्घ्रावग्रे चेत्तालिकां करौ॥ ६९४॥

सशब्दां कुरुतोऽन्वर्थं तलसंस्फोटितं तदा।

इति तलसंस्फोटितम् (७१)

तलसंस्फोटित—७१

६९४-६९५ ख. (अ०) दण्डपादा-आख्यया दंडपादा नाम वाली यत् वा अथवा अतिक्रान्तया चार्या अतिक्रान्ता चारी से अङ्घ्रौ दोनों पैर द्रुतम् उत्क्षिप्य द्रुत गति से ऊपर उठा कर पात्यमाने चेत् यदि नीचे लाये जायँ (और) अग्रे सामने करौ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दोनों हाथ सशब्दां तालिकां कुरुतः ध्वनियुक्त ताली बजाते हैं तदा तो अन्वर्थं तलसंस्फोटितम् अन्वर्थ तलसंस्फोटित (होता है)।

यह तलसंस्फोटित है। (७१)

(पार्श्वजानु—७२)

समपादस्तु पृष्ठे चेन्निहितश्चरणोऽपरः॥ ६९५॥

मुष्टिर्वक्षःस्थितो हस्तोऽप्यर्धचन्द्रः कटीतटे।
पार्श्वजानु तदा ज्ञेयं योज्यं युद्धनियुद्धयोः॥ ६९६॥

इति पार्श्वजानु (७२)

पार्श्वजानु—७२

६९५ ग-६९६. (अ०) समपादः चरणः (यदि) एक पैर समपाद अपरः पृष्ठे निहितः (और) दूसरा पीछे की ओर रखा हुआ (हो), मुष्टिः वक्षःस्थितः एक मुष्टि (हस्त) छाती पर रखा हुआ अर्धचन्द्रः हस्तः अपि और दूसरा अर्धचन्द्र हस्त कटीतटे चेत् यदि कमर पर (हो) तदा तो पार्श्वजानु ज्ञेयं पार्श्वजानु जाना गया है। युद्धनियुद्धयोः योज्यं (वह) युद्ध और नियुद्ध में योजित करना चाहिये।

यह पार्श्वजानु है। (७२)

(गृध्रावलीनकम्—७३)

पृष्ठेऽङ्घ्रिः प्रसृतो भूमिश्लिष्टाङ्गुष्ठौ लताकरौ।
यदा तदा महापक्षियुद्धे गृध्रावलीनकम्॥ ६९७॥

इति गृध्रावलीनकम् (७३)

गृध्रावलीनक—७३

६९७. (अ०) यदा जब अङ्घ्रिः पैर पृष्ठे प्रसृतः पीछे की ओर फैला हुआ (हो) भूमिश्लिष्टौ अङ्गुष्ठौ (और) भूमि से लगे हुए अँगूठों वाले लताकरौ दोनों लताहस्त (हों) तदा तो गृध्रावलीनकं गृध्रावलीनक (होता है)। महापक्षियुद्धे (वह) बड़े पक्षियों के युद्ध में (योजित होता है)।

यह गृध्रावलीनक है। (७३)

(सूचि—७४)

उत्क्षिप्य कुञ्चितः पादः पात्यते भूमिमस्पृशन्।
खटकाख्यश्च तद्दिको हस्तो वक्षस्यथापरः॥ ६९८॥

अलपद्मः शिरोदेशे तथैवाङ्गान्तरं क्रमात्।
यत्र तच्छार्ङ्गदेवेन गदितं सूचि विस्मये॥ ६९९॥

इति सूचि (७४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सूचि—७४

६९८-६९९. (अ०) यत्र जिसमें **कुञ्चितः पादः** कुंचित पैर **उत्क्षिप्य** ऊपर उठा कर **भूमिम् अस्पृशन् पात्यते** भूमि को न छूते हुए नीचे लाया जाता है, **तत् दिक्कः** उसी ओर का **खटका-आख्यः हस्तः** खटकामुख हाथ **वक्षसि** छाती पर **अपरः च अलपद्मः** और दूसरा अलपद्म **शिरोदेशे** मस्तक पर (रखा जाय) **क्रमात्** (और) क्रम से **तथा**-एव उसी तरह **अङ्ग-अन्तरं** दूसरे अंगों में (किया जाय) **तत्** वह **शार्ङ्गदेवेन** शार्ङ्गदेव के द्वारा **सूचि गदितं** सूचि कहा गया है। **विस्मये** (वह) विस्मय में (योजित होता है)।

यह सूचि है। (७४)

(अर्धसूचि—७५)

सूच्येवैकाङ्गरचितमर्धसूचि प्रचक्षते।

इत्यर्धसूचि (७५)

अर्धसूचि—७५

७०० क-ख. (अ०) एक-अङ्गरचितम् एक ही अंग से योजित किया हुआ **सूचि एव** सूचि ही **अर्धसूचि प्रचक्षते** अर्धसूचि कहा जाता है।

यह अर्धसूचि है। (७५)

(सूचीविद्धम्—७६)

पक्षवञ्चितको वार्धचन्द्रो हस्तः कटीगतः॥ ७००॥

खटकाख्योऽपरो वक्षस्यन्यपार्ष्णिस्थितोऽपरः।
सूच्यङ्घ्रिश्चेत्तदा सूचीविद्धं चिन्तादिगोचरम्॥ ७०१॥

इति सूचीविद्धम् (७६)

सूचीविद्ध—७६

७०० ग-७०१. (अ०) कटीगतः कमर पर रखा हुआ **पक्षवञ्चितकः अर्धचन्द्रः वा हस्तः** पक्षवंचितक या अर्धचन्द्र हस्त, **अपरः** दूसरा **खटका-आख्यः वक्षसि** खटकामुख (हस्त) छाती पर, **अन्यपार्ष्णिस्थितः** दूसरी एड़ी पर रखा हुआ **अपरः सूचि-अङ्घ्रिः चेत्** अन्य यदि सूचीपाद हो **तदा** तो **सूचीविद्धं** सूचीविद्ध (होता है)। **चिन्ता-आदिगोचरं** चिन्ता आदि में दिखाई देता है।

यह सूचीविद्ध है। (७६)

(हरिणप्लुतम्—७७)

हरिणप्लुतया चार्या डोलाखटकहस्तकम्।
हरिणप्लुतमाख्यातं नामोक्तविनियोगकम्॥ ७०२॥

इति हरिणप्लुतम् (७७)

हरिणप्लुत—७७

७०२. (अ०) हरिणप्लुतया चार्या हरिणप्लुता चारी से **डोलाखटकहस्तकं** डोला (और) खटकामुख हस्त वाला

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हरिणप्लुतम् आख्यातं हरिणप्लुत कहा गया है। नाम-उक्तविनियोगकं नाम से कहे गये विनियोग वाला (अर्थात् हिरन की छलांग वाला है)।

यह हरिणप्लुत है। (७७)

(परिवृत्तम्—७८)

ऊर्ध्वमण्डलिनौ हस्तौ सूच्यङ्घ्रिर्यत्र बद्धया।
विवृत्तोऽथ भ्रमरिका परिवृत्तं तदुच्यते॥ ७०३॥

इति परिवृत्तम् (७८)

परिवृत्त—७८

७०३. (अ०) यत्र जिसमें ऊर्ध्वमण्डलिनौ हस्तौ दोनों ऊर्ध्वमंडली हस्त, सूचि-अङ्घ्रिः सूचीपाद (और) बद्धया विवृत्तः बद्धा चारी से मुड़ा हुआ अथ फिर भ्रमरिका भ्रमरी (की जाय) तत् वह परिवृत्तम् उच्यते परिवृत्त कहा जाता है।

यह परिवृत्त है। (७८)

(दण्डपादम्—७९)

चारी नूपुरपादोऽथ दण्डपादाद् द्रुतः करः।
दण्डवन्न्यस्यते यत्र दण्डपादं तदुच्यते॥ ७०४॥
सूरयो विनियुञ्जन्ति तत्साटोपपरिक्रमे।

इति दण्डपादम् (७९)

दण्डपाद—७९

७०४-७०५ ख. (अ०) यत्र जिसमें चारी नूपुरपादः नूपुरपाद (नाम वाली) चारी (करके) अथ फिर दण्डपादात् दंडपाद (नाम वाली चारी) के बाद करः हाथ द्रुतः जल्दी दण्डवत् न्यस्यते डंडे की तरह (सीधा टाँग पर) रखा जाता है तत् वह दण्डपादम् उच्यते दंडपाद कहा जाता है। सूरयः विद्वान् तत् उसे साटोपपरिक्रमे रौबयुक्त परिक्रम में (प्रयुक्त करते हैं)।

यह दण्डपाद है। (७९)

(मयूरललितम्—८०)

हस्तौ चेद्रेचिताकारौ वृश्चिकाङ्घ्रिं निकुञ्च्य च॥ ७०५॥
भ्रमरी क्रियतेऽन्वर्थं मयूरललितं तदा।

इति मयूरललितम् (८०)

मयूरललित—८०

७०५ ग-७०६ ख. (अ०) हस्तौ रेचित-आकारौ (यदि) दोनों हाथ रेचित वृश्चिक-अङ्घ्रिं च और वृश्चिक पैर निकुञ्च्य

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कुंचित करके भ्रमरी क्रियते चेत् यदि भ्रमरी की जाती है तदा तो अन्वर्थं मयूरललितं अन्वर्थ मयूरललित (होता है)।

यह मयूरललित है। (८०)

(प्रेङ्खोलितम्—८१)

डोलापादाख्यचारीकादङ्घ्रेरन्याङ्घ्रिणा यदा॥ ७०६॥

उत्प्लुत्य भ्रमरीं कुर्याद्भवेत्प्रेङ्खोलितं तदा।

इति प्रेङ्खोलितम् (८१)

प्रेंखोलित—८१

७०६ ग-७०७ ख. (अ०) डोलापादा-आख्यचारीकात् डोलापादा नामक चारी किये हुए अङ्घ्रेः पैर को यदा अन्य-अङ्घ्रिणा जब दूसरे पैर से उत्प्लुत्य कूद कर भ्रमरीं कुर्यात् भ्रमरी की जाती है तदा तो प्रेङ्खोलितं भवेत् प्रेंखोलित होता है।

यह प्रेंखोलित है। (८१)

(संनतम्—८२)

कृत्वा मृगप्लुतां चारीं कृतोऽङ्घ्रिः स्वस्तिकोऽग्रतः॥ ७०७॥

डोलौ हस्तौ संनतं तदधमापसृतौ भवेत्।

इति संनतम् (८२)

संनत—८२

७०७ ग-७०८ ख. (अ०) मृगप्लुतां चारीं कृत्वा हरिणप्लुता चारी करके अग्रतः सामने स्वस्तिकः अङ्घ्रिः कृतः स्वस्तिक पैर करके हस्तौ डोलौ दोनों हाथ डोल (करने पर) संनतं संनत (होता है)। तत् वह अधम-अपसृतौ भवेत् अधम (पात्रों) के दूर जाने में (प्रयुक्त) होता है।

यह संनत है। (८२)

(सर्पितम्—८३)

अञ्चितेऽपसरत्यङ्घ्रावन्याङ्घ्रेर्नामितं शिरः॥ ७०८॥

तस्मिन्पार्श्वे करोऽप्येष रेचितोऽङ्गान्तरं तथा।
यत्र तत्सर्पितं मत्तस्योपसर्पापसरणे॥ ७०९॥

इति सर्पितम् (८३)

सर्पित—८३

७०८ ग-७०९. (अ०) यत्र जिसमें अञ्चिते अङ्घ्रौ (एक) पैर अंचित होकर अन्य अङ्घ्रेः दूसरे पैर से अपसरति दूर जाता हो, शिरः नामितं सिर झुका हुआ (हो) एषः करः अपि वह हाथ भी तस्मिन् पार्श्वे रेचितः उस बाजू में रेचित हो, अङ्ग-

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अन्तरं तथा दूसरे अंग भी वैसे ही (योजित हों) **तत् सर्पितं** वह सर्पित (होता है)। **मत्तस्य** (वह) मत्त हुए (पात्र) के **उपसर्प-अपसर्पणे** पास आने और दूर जाने में (योजित होता है)।

यह सर्पित है। (८३)

(करिहस्तम्—८४)

वामश्चेत्खटको वक्षस्युद्वेष्टिततया परः।
त्रिपताकः करः कर्णे तद्दिक्कश्चरणोऽञ्चितः॥ ७१०॥

निष्क्रम्यते यदा प्रोक्तं करिहस्तं तदा बुधैः।

इति करिहस्तम् (८४)

करिहस्त—८४

७१०-७११ ख. (अ०) **वामः खटकः** (यदि) बायाँ खटकामुख (हाथ) **वक्षसि** छाती पर, **परः त्रिपताकः करः** दूसरा त्रिपताक हस्त **उद्वेष्टिततया कर्णे चेत्** यदि उद्वेष्टित होकर कान पर (रखा हो) **तत् दिक्कं यदा अञ्चितः चरणः** उसी दिशा में जब अंचित चरण **निष्क्रम्यते** बाहर जाता है **तदा** तो **बुधैः** बुद्धिमानों के द्वारा **करिहस्तं प्रोक्तं** करिहस्त कहा गया (है)।

यह करिहस्त है। (८४)

(प्रसर्पितम्—८५)

हस्तो यो रेचितस्तद्दिक्पादश्चेद्भूमिघर्षणात्॥ ७११॥

चरेत्पादान्तरान्मन्दं मन्दमन्यो लताकरः।
तदा खेचरसंचारगोचरं स्यात्प्रसर्पितम्॥ ७१२॥

इति प्रसर्पितम् (८५)

प्रसर्पित—८५

७११ ग-७१२. (अ०) **यः हस्तः रेचितः** जो हाथ रेचित (हो) **तत् दिक्पादः चेत्** यदि उस दिशा का पैर **भूमिघर्षणात्** भूमि घिसते हुए **पाद-अन्तरात्** दूसरे पैर से **मन्दं मन्दं चरेत्** धीरे-धीरे चलता है (और) **अन्यः लताकरः** दूसरा लताहस्त (हो) **तदा** तो **प्रसर्पितं स्यात्** प्रसर्पित होता है। **खेचरसंचारगोचरम्** आकाश में गमन करने वालों में (दिखाई देता है)।

यह प्रसर्पित है। (८५)

(अपक्रान्तम्—८६)

बद्धापक्रान्तयोश्चार्योः कृतयोर्हस्तयोः पुनः।
तत्तत्प्रयोगानुगयोरपक्रान्तमुदाहृतम्॥ ७१३॥

इत्यपक्रान्तम् (८६)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अपक्रान्त—८६

७१३. (अ०) बद्धा-अपक्रान्तयोः चार्योः कृतयोः बद्धा और अपक्रान्ता चारी करने पर हस्तयोः दोनों हाथों से पुनः फिर तत् प्रयोग-अनुगयोः उस प्रयोग का अनुसरण करने पर अपक्रान्तम् उदाहृतम् अपक्रान्त कहा गया है।

यह अपक्रान्त है। (८६)

(नितम्बम्—८७)

अधोमुखाङ्गुली हस्तौ पताकौ चेच्छिरःस्थलम्।
आनीय परिवृत्तेन निष्क्रम्योर्ध्वांसयोस्तयोः॥ ७१४॥

मिथोमुखाववस्थाप्य स्वदेहाभिमुखाङ्गुली।
नितम्बाख्यौ विधीयेते नितम्बं करणं तदा॥ ७१५॥

इति नितम्बम् (८७)

नितंब—८७

७१४-७१५. (अ०) अधोमुख-अङ्गुली पताकौ हस्तौ चेत् यदि नीचे की ओर उँगली वाले दोनों पताक हस्त शिरःस्थलम् आनीय मस्तक प्रदेश पर लाकर परिवृत्तेन परिवर्तित से ऊर्ध्व-अंसयोः निष्क्रम्य कंधों के ऊपर ले जाकर तयोः उन्हें मिथः मुखौ अवस्थाप्य परस्पर सामने (आमने-सामने) रख कर स्वदेह-अभिमुख-अङ्गुली अपने शरीर के सामने उँगलियाँ करके नितम्ब-आख्यौ विधीयेते नितंब नामक (हस्त) योजित किये जाते हैं तदा तो नितम्बं करणं नितंब करण (होता है)।

यह नितंब है। (८७)

(स्खलितम्—८८)

डोलापादाङ्घ्रिगमनागमने हंसपक्षकः।
अभ्येत्याथेत्थमन्याङ्गं यत्र तत्स्खलितं मतम्॥ ७१६॥

इति स्खलितम् (८८)

स्खलित—८८

७१६. (अ०) यत्र जिसमें डोलापादा-अङ्घ्रिगमन-आगमने डोलापादा (चारी से युक्त) पैर जाने-आने में (योजित होकर) हंसपक्षकः हंसपक्ष (हाथ) अभ्येत्य (उसके) पास आकर अथ फिर इत्थम् अन्य-अङ्गम् इसी तरह दूसरा अंग (योजित होता है) तत् (तो) वह स्खलितं मतं स्खलित माना गया (है)।

यह स्खलित है। (८८)

(सिंहविक्रीडितम्—८९)

कृत्वालातां पुरोऽङ्घ्रिं चेद् द्रुतं न्यस्य चपेटवत्।
कृतो हस्तस्तथान्याङ्गं सिंहविक्रीडितं तदा॥ ७१७॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एतद्रौद्रगतौ योज्यं ब्रूते श्रीकरणाग्रणीः।

इति सिंहविक्रीडितम् (८९)

सिंहविक्रीडित—८९

७१७-७१८ ख. (अ०) अलातां कृत्वा (यदि) अलाता (चारी) करके अङ्घ्रिः पुरः द्रुतं न्यस्य पैर सामने की ओर द्रुत (गति से) रखा जाय (और) हस्तः चपेटवत् कृतः हाथ चाँटा (मारने) की तरह किया हुआ (हो) अन्य-अङ्गं तथा दूसरे अंग (भी) वैसे ही (किये जायँ) तदा तो सिंहविक्रीडितं सिंहविक्रीडित (होता है)। एतत् यह रौद्रगतं योज्यं रौद्रगति में योजित करना चाहिये (ऐसा) श्रीकरणाग्रणीः ब्रूते श्रीकरणाग्रणी (शार्ङ्गदेव) कहता है।

यह सिंहविक्रीडित है। (८९)

(सिंहाकर्षितम्—९०)

वृश्चिकोऽङ्घ्रिः पद्मकोशौ वोर्णनाभौ यदा करौ॥ ७१८॥

अन्याङ्घ्रौ वृश्चिके प्राञ्चौ भङ्क्त्वा तौ तादृशौ पुनः।
कृतौ सिंहाभिनयने सिंहाकर्षितकं तदा॥ ७१९॥

इति सिंहाकर्षितम् (९०)

सिंहाकर्षित—९०

७१८ ग-७१९. (अ०) यदा अङ्घ्रिः वृश्चिकः जब एक पैर वृश्चिक, करौ दोनों हाथ पद्मकोशौ ऊर्णनाभौ वा पद्मकोश या ऊर्णनाभ (हों), अन्य-अङ्घ्रौ वृश्चिके दूसरा पैर वृश्चिक होने पर, प्राञ्चौ भङ्क्त्वा पहले वाले (पहले किये हुए हस्त) को छोड़ कर तौ पुनः तादृशौ कृतौ वे फिर वैसे ही किये जायँ तदा तो सिंहाकर्षितकं सिंहाकर्षित (होता है)। सिंह-अभिनयने (वह) सिंह के अभिनय में (प्रयुक्त होता है)।

यह सिंहाकर्षित है। (९०)

(अवहित्थकम्—९१)

विधाय जनितां चारीं यद्यरालालपल्लवौ।
ललाटवक्षःक्षेत्रस्थौ हस्तावभिमुखाङ्गुली॥ ७२०॥

क्रमात्कृत्वोद्वेष्टितेन व्यावृत्त्या पार्श्वगौ ततः।
वक्षोदेशेऽपवेष्टेन परिवृत्त्या च तादृशौ॥ ७२१॥

मिथोमुखौ निधीयेते तदा स्यादवहित्थकम्।
गोपनप्रायवाक्यार्थाभिनये तन्नियुज्यते॥ ७२२॥

अन्येऽवहित्थहस्तेन युक्तत्वादवहित्थकम्।
वदन्ति चिन्तादौर्बल्यप्रभृत्यभिनयक्षमम्॥ ७२३॥

इत्यवहित्थकम् (९१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अवहित्थ—९१

७२०-७२३. (अ०) **जनितां चारीं विधाय** जनिता चारी योजित करके यदि **अभिमुख-अङ्गुली** यदि सामने की ओर उँगली वाले **अराल-अलपल्लवौ हस्तौ** अराल और अलपल्लव हस्त **क्रमात्** क्रम से **ललाटवक्षःक्षेत्रस्थौ कृत्वा** ललाट और छाती के भाग पर रख कर **उद्वेष्टितेन व्यावृत्त्या पार्श्वगौ** उद्वेष्टित और व्यावर्तित (करणों) से बाजू की ओर जाकर **ततः** फिर **अपवेष्टेन परिवृत्त्या च** अपवेष्टित और परिवर्तित से **तादृशौ** उसी तरह **मिथोमुखौ** परस्पर आमने-सामने **वक्षोदेशे** छाती के भाग पर **निधीयेते** रखे जाते हैं **तदा** तब **अवहित्थकं स्यात्** अवहित्थ होता है। **तत्** वह **गोपनप्रायवाक्यार्थ-अभिनये** गुप्तप्राय वाक्यार्थ के अभिनय में **नियुज्यते** योजित होता है। **अन्ये** दूसरे (आचार्य) **अवहित्थहस्तेन युक्तत्वात्** अवहित्थ हस्त से युक्त होने से **अवहित्थकं वदन्ति** अवहित्थ कहते हैं। **चिन्तादौर्बल्यप्रभृति-अभिनयक्षमं** (वे) चिन्ता, दुर्बलता आदि के अभिनय में योग्य (मानते हैं)।

यह अवहित्थ है। (९१)

(निवेशम्—९२)

यत्र वक्षसि निर्भुग्ने निहितौ खटकामुखौ।
मण्डलस्थानकं तत्तु निवेशं गजवाहने॥ ७२४॥

इति निवेशम् (९२)

निवेश—९२

७२४. (अ०) **यत्र** जिसमें **निर्भुग्ने वक्षसि** तनी हुई छाती पर **खटकामुखौ निहितौ** दोनों खटकामुख हाथ रखे हों (और) **मण्डलस्थानकं** मंडल स्थानक (हो) **तत् तु** वह तो **निवेशं** निवेश (होता है)। **गजवाहने** (वह) हाथी पर (बैठ कर) जाने में (योजित होता है)।

यह निवेश है। (९२)

(एडकाक्रीडितम्—९३)

एडकाक्रीडिता चारी चेड्डोलाखटकौ करौ।
संनतं वलितं गात्रमेडकाक्रीडितं तदा॥ ७२५॥

अधमप्रकृतिप्राणिगतिगोचरमिष्यते।

इत्येडकाक्रीडितम् (९३)

एडकाक्रीडित—९३

७२५-७२६ ख. (अ०) **एडकाक्रीडिता चारी** (यदि) एडकाक्रीडिता चारी (हो), **डोलाखटकौ करौ** दोनों डोलाखटक हाथ (हों) **गात्रं संनतं वलितं चेत्** (और) यदि शरीर संनत (और) वलित (हो) **तदा** तो **एडकाक्रीडितम्** एडकाक्रीडित (होता है)। **अधमप्रकृतिप्राणिगतिगोचरम् इष्यते** (वह) अधम प्रकृति के प्राणियों की गति में दिखाई देने वाला माना जाता है।

यह एडकाक्रीडित है। (९३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(जनितम्—९४)

चारी चेज्जनिता मुष्टिर्वक्षस्थोऽन्यो लताकरः॥ ७२६॥

यदा तदा क्रियारम्भाभिनये जनितं भवेत्।

इति जनितम् (९४)

जनित—९४

७२६ ग-७२७ ख. (अ०) जनिता चारी चेत् यदि जनिता चारी (हो), मुष्टिः वक्षस्थः मुष्टि (हस्त) छाती पर रखा (हो और) यदा जब अन्यः दूसरा लताकरः लताहस्त (हो) तदा तो जनितं भवेत् जनित होता है। क्रिया-आरम्भ-अभिनये (वह) क्रिया के आरंभ के अभिनय में भवेत् (योजित) होता है।

यह जनित है। (९४)

(उपसृतम्—९५)

आक्षिप्तां वामतश्चारीं व्यावृत्तपरिवर्तितम्॥ ७२७॥

करं कृत्वा नते पार्श्वे दक्षिणेऽरालतां नयेत्।
यत्र तत्स्यादुपसृतं विनयेनोपसर्पणे॥ ७२८॥

इत्युपसृतम् (९५)

उपसृत—९५

७२७ ग-७२८. (अ०) यत्र जिसमें वामः बायें (पैर) से आक्षिप्तां चारीम् आक्षिप्ता चारी (करके), व्यावृत्तपरिवर्तितं करं कृत्वा व्यावर्तित और परिवर्तित हाथ करके दक्षिणे पार्श्वे दाहिनी ओर नते झुके होने पर अरालतां नयेत् अरालता को ले जायँ (अर्थात् अराल करें) तत् उपसृतं स्यात् वह उपसृत होता है। विनयेन उपसर्पणे (वह) विनय से समीप जाने में (योजित होता है)।

यह उपसृत है। (९५)

(तलसंघट्टितम्—९६)

डोलापादां भजंश्चारीं संघट्टिततलौ करौ।
पताकौ रेचयित्वा चेद्वैष्णवे स्थानके स्थितः॥ ७२९॥

कटिस्थं दक्षिणं हस्तं वामं रेचितमाचरेत्।
अनुकम्पाविधाने स्यात्तलसंघट्टितं तदा॥ ७३०॥

इति तलसंघट्टितम् (९६)

तलसंघट्टित—९६

७२९-७३०. (अ०) डोलापादां चारीं भजन् डोलापादा चारी करते हुए संघट्टिततलौ हथेलियाँ परस्पर रगड़ते हुए पताकौ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करौ दोनों पताक हस्त **रेचयित्वा चेत्** यदि रेचित करके **वैष्णवे स्थानके स्थितः** वैष्णव स्थानक में खड़े होकर **दक्षिणं हस्तं** दाहिना हाथ **कटिस्थं** कमर पर रखा हुआ **वामं रेचितम् आचरेत्** (और) बायाँ रेचित करता है **तदा तलसंघट्टितं** तो तलसंघट्टित (होता है)। **अनुकम्पाविधाने स्यात्** अनुकंपा संबन्धी विधान में (योजित) होता है।

यह तलसंघट्टित है। (९६)

(उद्वृत्तम्—९७)

यत्र प्रसारितानीतं हस्तपादं विधीयते।
गात्रमुद्वृत्तचारीकं तदुद्वृत्तं विदुर्बुधाः॥ ७३१॥

इत्युद्वृत्तम् (९७)

उद्वृत्त—९७

७३१. (अ०) **यत्र** जिसमें **हस्तपादं** हाथ (और) पैर **प्रसारित-आनीतं** फैला कर (पास) ले आयें (और) **उद्वृत्तचारीकं गात्रम्** उद्वृत्त चारी वाला शरीर **विधीयते** योजित होता है **तत्** वह **बुधाः** विद्वान् **उद्वृत्तं विदुः** उद्वृत्त जानते हैं।

यह उद्वृत्त है। (९७)

(विष्णुक्रान्तम्—९८)

कुञ्चितः प्रसरत्यङ्घ्रिरग्रे यत्रोद्गमोन्मुखः।
करौ च रेचितौ विष्णुक्रान्तं तत्क्रमणे हरेः॥ ७३२॥

इति विष्णुक्रान्तम् (९८)

विष्णुक्रान्त—९८

७३२. (अ०) **यत्र** जिसमें **उद्गम-उन्मुखः कुञ्चितः अङ्घ्रिः** ऊपर जाने के लिये तैयार कुंचित पैर **अग्रे प्रसरति** सामने फैलता है **करौ च रेचितौ** और दोनों हाथ रेचित हों **तत् विष्णुक्रान्तं** वह विष्णुक्रान्त (होता है)। **हरेः क्रमणे** (वह) विष्णु के क्रमण (कदम रखने) में (योजित होता है)।

यह विष्णुक्रान्त है। (९८)

(लोलितम्—९९)

रेचितः पाणिरेकः स्याद्वक्षस्यन्योऽलपल्लवः।
लोलितं शीर्षमुभयोर्विश्रान्तं पार्श्वयोरपि॥ ७३३॥

वैष्णवं स्थानकं यत्र तदाहुर्लोलितं बुधाः।

इति लोलितम् (९९)

लोलित—९९

७३३-७३४ ख. (अ०) **यत्र** जिसमें **एकः रेचितः पाणिः** एक रेचित हाथ **वक्षसि स्यात्** छाती पर होता है, **अन्यः**

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अलपल्लवः दूसरा अलपल्लव शीर्षं सिर को उभयोः पार्श्वयोः अपि दोनों बाजुओं से भी लोलितं विश्रान्तं लोलित करके थामा हुआ (और) वैष्णवं स्थानकं वैष्णव स्थानक (हो) तत् वह बुधाः बुधजन लोलितम् आहुः लोलित कहते हैं।

यह लोलित है। (९९)

(मदस्खलितम्—१००)

स्वस्तिकापसृतौ पादौ क्रमेण परिवाहितम्॥ ७३४॥

शिरो डोलौ यदा हस्तौ मदस्खलितकं तदा।
एतन्मध्यमदे योज्यं भाषते भववल्लभः॥ ७३५॥

मदस्खलितम् (१००)

मदस्खलित—१००

७३४ ग-७३५. (अ०) यदा पादौ जब दोनों पैर क्रमेण क्रम से स्वस्तिक-अपसृतौ स्वस्तिक और अपसृत (हों), शिरः परिवाहितं सिर परिवाहित (हो और) हस्तौ डोलौ दोनों हाथ डोल (हों) तदा मदस्खलितं तब मदस्खलित (होता है)। एतत् यह मध्यमदे मध्यम मद में योज्यं योजित करना चाहिये भववल्लभः भाषते (ऐसा) शंकरप्रिय (शार्ङ्गदेव) कहता है।

यह मदस्खलित है। (१००)

(संभ्रान्तम्—१०१)

आविद्धां विदधच्चारीं व्यावृत्तपरिवर्तितम्।
अलपद्मकरं न्यस्येदूरुपृष्ठे यदा तदा॥ ७३६॥

संभ्रान्तं तत्प्रयोक्तव्यं ससंभ्रमपरिक्रमे।

इति संभ्रान्तम् (१०१)

संभ्रान्त—१०१

७३६-७३७ ख. (अ०) यदा जब आविद्धां चारीं विदधत् आविद्धा चारी धारण करते हुए व्यावृत्तपरिवर्तितं व्यावर्तित और परिवर्तित अलपद्मकरम् अलपद्म हाथ को ऊरुपृष्ठे न्यस्येत् जाँघ के पीछे की ओर रखा जाता है तदा संभ्रान्तं तब संभ्रान्त (होता है)। तत् वह ससंभ्रमपरिक्रमे संभ्रमयुक्त परिक्रम में प्रयोक्तव्यं प्रयुक्त करना चाहिये।

यह संभ्रान्त है। (१०१)

(विष्कम्भम्—१०२)

अपेत्योपव्रजेद्वामं दक्षिणो नृत्तहस्तकः॥ ७३७॥

सूचीमुखो निकुट्येत साङ्घ्रिर्वामकरो हृदि।
तद्वदङ्गान्तरं कृत्वा सूचीपादश्च दक्षिणः॥ ७३८॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हस्तोऽसावलपद्मः स्याद्वामहस्तस्तु पूर्ववत्।
एवं पुनः पुनर्यत्र विष्कम्भं तद्बभाषिरे॥ ७३९॥

इति विष्कम्भम् (१०२)

विष्कम्भ—१०२

७३७ ग-७३९. (अ०) **दक्षिणः सूचीमुखः नृत्तहस्तकः** दाहिना सूचीमुख नृत्तहस्त **अपेत्य** (पहले) दूर करके **वामम् उपव्रजेत्** बायें के पास आये (और फिर) **स-अङ्घ्रिः निकुट्येत** (दाहिने) पैर के साथ निकुट्टित करे, **वामकरः** बायाँ हाथ **हृदि** हृदय पर (रखें)। **तत्-वत्** उसी तरह **अङ्ग-अन्तरं कृत्वा** दूसरे अंग करके **दक्षिणः सूचीपादः च** दाहिना पैर सूची और **असौ हस्तः** यह (दाहिना) हाथ **अलपद्मः स्यात्** अलपद्म होता है। **वामहस्तः तु पूर्ववत्** बायाँ हाथ तो पहले जैसा (योजित करना चाहिये)। **यत्र** जिसमें **पुनः पुनः एवं** बार-बार ऐसा (हो) **तत् विष्कम्भं बभाषिरे** वह विष्कम्भ कहा गया है।

यह विष्कम्भ है। (१०२)

(उद्घट्टितम्—१०३)

उद्घट्टितोऽङ्घ्रिः पार्श्वं तत्संनतं तालिकोद्यतौ।
हस्तौ यत्रोद्घट्टितं तदावृत्ताङ्गं प्रमोदकम्॥ ७४०॥

इत्युद्घट्टितम् (१०३)

उद्घट्टित—१०३

७४०. (अ०) **यत्र** जिसमें **अङ्घ्रिः उद्घट्टितः** एक पैर उद्घट्टित, **पार्श्वं संनतं** बाजू संनत, **हस्तौ** दोनों हाथ **तालिका-उद्यतौ** ताली के लिये तैयार (और) **आवृत्त-अङ्गं** (दूसरे) अंग फिर वैसे ही योजित हों **तत् उद्घट्टितं** वह उद्घट्टित (होता है)। **प्रमोदकं** (वह) प्रमोदकारी (अर्थात् प्रमोद में योजित होने वाला होता है)।

यह उद्घट्टित है। (१०३)

(शकटास्यम्—१०४)

शकटास्या भवेच्चारी प्रसार्येताङ्घ्रिणा सह।
एको हस्तो द्वितीयस्तु वक्षस्थः खटकामुखः॥ ७४१॥

यत्र तच्छकटास्यं स्यात्तादृशे बालखेलने।

इति शकटास्यम् (१०४)

शकटास्य—१०४

७४१-७४२ ख. (अ०) **यत्र** जिसमें **शकटास्या चारी भवेत्** शकटास्या चारी होती है, **एकः हस्तः** एक हाथ **अङ्घ्रिणा सह** पैर के साथ **प्रसार्येत** फैलाएँ (और) **द्वितीयः खटकामुखः** दूसरा खटकामुख (हाथ) **वक्षस्थः** छाती पर रखा हुआ (हो) **तत्** वह **शकटास्यं स्यात्** शकटास्य होता है। **तादृशे बालखेलने** (वह) उस प्रकार के बालकों के खेल में (योजित होता है)।

यह शकटास्य है। (१०४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(ऊरूद्वृत्तम्—१०५)

सहोरूद्वृत्तया चार्या यत्र व्यावर्तनान्वितौ ॥ ७४२ ॥

अरालखटकौ हस्तौ निदध्यादूरुपृष्ठयोः।
ऊरूद्वृत्तं तदीर्ष्यायां प्रार्थनाप्रेमकोपयोः ॥ ७४३ ॥

इत्यूरूद्वृत्तम् (१०५)

ऊरूद्वृत्त—१०५

७४२ ग-७४३. (अ०) यत्र जिसमें ऊरूद्वृत्तया चार्या ऊरूद्वृत्ता चारी से व्यावर्तिना-अन्वितौ व्यावर्तितयुक्त **अरालखटकौ हस्तौ,** अराल और खटकामुख हाथ ऊरुपृष्ठयोः जाँघों के पीछे की ओर निद्ध्यात् रखे जायँ तत् वह ऊरूद्वृत्तम् ऊरूद्वृत्त (होता है)। ईर्ष्यायां (वह) ईष्या प्रार्थनाप्रेमकोपयोः प्रार्थना और प्रेम के कोप में (योजित होता है)।

यह ऊरूद्वृत्त है। (१०५)

(वृषभक्रीडितम्—१०६)

अलातां विदधच्चारीं हस्तौ कुर्वीत रेचितौ।
व्यावृत्त्या कुञ्चितौ कृत्वालपद्मौ बाहुशीर्षयोः ॥ ७४४ ॥

न्यस्येते यत्र तद्धीरा वृषभक्रीडितं जगुः।

इति वृषभक्रीडितम् (१०६)

वृषभक्रीडित—१०६

७४४-७४५ ख. (अ०) यत्र जिसमें अलातां चारीं विदधत् अलाता चारी करते हुए (करते समय) हस्तौ रेचितौ कुर्वीत दोनों हाथ रेचित किये जायँ (और) व्यावृत्त्या व्यावर्तित से कुञ्चितौ कृत्वा कुंचित करके अलपद्मौ दोनों अलपद्म हाथ बाहुशीर्षयोः बाँहों के शिखर (अर्थात् कंधों) पर न्यस्येते रखे जाते हैं तत् उसे धीराः धैर्यवानों ने वृषभक्रीडितं जगुः वृषभक्रीडित कहा है।

यह वृषभक्रीडित है। (१०६)

(नागापसर्पितम्—१०७)

हस्तौ चेद्रेचितौ स्यातां शिरस्तु परिवाहितम् ॥ ७४५ ॥

स्वस्तिकापसृतौ पादौ तदा नागापसर्पितम्।
प्राहुः प्रयोगमेतस्य सूरयस्तरुणे मदे ॥ ७४६ ॥

इति नागापसर्पितम् (१०७)

नागापसर्पित—१०७

७४५ ग-७४६. (अ०) हस्तौ रेचितौ स्यातां दोनों हाथ रेचित हों शिरः तु परिवाहितम् और सिर परिवाहित (हो), पादौ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दोनों पैर स्वस्तिक-अपसृतौ चेत् यदि स्वस्तिक करके दूर किये हुए (हों) तदा तो नागापसर्पितं नागापसर्पित (होता है)। सूरयः विद्वान् एतस्य प्रयोगम् इसका प्रयोग तरुणे मदे तरुण मद में प्राहुः कहते हैं।

यह नागापसर्पित है। (१०७)

(गङ्गावतरणम्—१०८)

अङ्घ्रेरुत्क्षेपनिक्षेपावनु प्रोन्नतिसंनती।
भजेतां त्रिपताकौ चेदेवमेव शिरस्तदा॥ ७४७॥

गङ्गावतरणं गङ्गावतारे शार्ङ्गिणोदितम्।

इति गङ्गावतरणम् (१०८)

गंगावतरण—१०८

७४७-७४८ ख. (अ०) अङ्घ्रेः पैर के उत्क्षेपनिक्षेपौ अनु ऊपर जाने और नीचे आने के बाद त्रिपताकौ दोनों त्रिपताक (हाथ) प्रोन्नतिसंनती भजेतां चेत् यदि ऊपर उठ कर नीचे आयें (और) शिरः एवम् एव सिर इसी तरह (हो) तदा तो गङ्गावतरणं गंगावतरण (होता है)। शार्ङ्गिणा शार्ङ्गदेव के द्वारा (वह) गङ्गा-अवतारे गंगा को नीचे लाने में उदितं कहा गया है।

यह गंगावतरण है। (१०८)

कर्तव्यः करणे प्रायो वामो वक्षःस्थितः करः॥ ७४८॥

पाणिस्तु दक्षिणस्तत्र स्यात्तत्तत्करणानुगः।

इत्यष्टोत्तरशतं करणानि

७४८ ग-७४९ ख. (अ०) करणे करण में प्रायः सामान्य रूप से वामः करः बायाँ हाथ वक्षःस्थितः कर्तव्यः छाती पर रख कर योजित करना चाहिये। तत्र (और) उसमें दक्षिणः पाणिः तु दाहिना हाथ तो तत्-तत् करण-अनुगः स्यात् उस-उस करण के अनुसार होता है।

(सर०) कल्लि० ने कहा कि प्रायः से यह समझना चाहिये कि जहाँ लक्षण में अलग से बायें हाथ की क्रिया न कही गई हो वहाँ ऐसा करना चाहिये।

एक सौ आठ करण समाप्त

(उत्प्लुतिकरणानि)

अथ देश्यनुसारेण देशे देशे लसद्यशाः॥ ७४९॥

वदत्युत्प्लुतिपूर्वाणि करणानि हरप्रियः॥

उत्प्लुतिकरण

७४९ ग-७५० ख. (अ०) अथ अब देशे देशे देश देश में (विभिन्न प्रदेशों में) लसत्-यशाः प्रकाशित होते हुए यश वाले उत्प्लुतिपूर्वाणि करणानि उत्प्लुति पूर्वक करण (अर्थात् उत्प्लुतिकरण) देशि-अनुसारेण देशी के अनुसार हरप्रियः शंकर-प्रिय (शार्ङ्गदेव) वदति कहता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) **हरप्रियः** पर सिंह० ने कहा कि यह 'साभिप्राय विशेषण' है क्योंकि तांडव में ईश्वर उत्प्लुति करणों से नृत्य करता है। अतः उसकी प्रीति के लिये उत्प्लुति करण कह रहा है।

कल्लि० ने **देश्यनुसारेण** पर कहा कि भरतादि ने उत्प्लुति करण नहीं कहे इसलिये शुद्ध करणों की तरह इनमें लक्षण के नियम का आदर (अनिवार्यता) नहीं है।

शुद्ध करण यानी १०८ करण जिनके लक्षण ऊपर दिये जा चुके हैं।

(उत्प्लुतिकरणानामुद्देशः)

अञ्चितं चैकचरणाञ्चितं स्याद्भैरवाञ्चितम्॥ ७५०॥

दण्डप्रणामाञ्चितं च कर्तर्यञ्चितकं ततः।
अलगं त्रीणि कूर्मोर्ध्वान्तरपूर्वालगानि च॥ ७५१॥

लोहडी कर्तरीलोहड्येकपादादिलोहडी।
ततः स्याद्दर्पसरणं शयनं जलपूर्वकम्॥ ७५२॥

नागबन्धं कपालाद्यं चूर्णनं नतपृष्ठकम्।
स्यान्मत्स्यकरणं चाथ करस्पर्शनसंज्ञकम्॥ ७५३॥

एणप्लुतं ततस्तिर्यक्करणं तिर्यगञ्चितम्।
तिर्यक्स्वस्तिकसंज्ञं च सूच्यन्तमथ कीर्तितम्॥ ७५४॥

बाह्यान्तश्छत्रतिरिपालगचक्रोचितादिमाः।
सप्त भ्रमर्यो भ्रमरी शिरःपूर्वा दिगादिमा॥ ७५५॥

समपादाञ्चितं भ्रान्तपादाञ्चितमतः परम्।
स्कन्धभ्रान्तं च षट्त्रिंशदिति सोढलनन्दनः॥ ७५६॥

संक्षिप्योत्प्लुतिपूर्वाणि करणानि समादिशत्।

उत्प्लुति करणों का उद्देश

७५० ग-७५७ ख. (अ०) अंचित, एकचरणांचित, भैरवांचित, दंडप्रणामांचित, कर्तर्यंचित, अलग, **कूर्म-ऊर्ध्व-अन्तरपूर्व-अलगानि त्रीणि च** कूर्म, ऊर्ध्व, अन्तर पूर्व वाले तीन अलग (अर्थात् कूर्मालग, ऊर्ध्वालग, अन्तरालग), लोहडी, कर्तरीलोहडी, एकपादलोहडी, दर्पसरण, **जलपूर्वकं शयनं** जल पूर्व वाला शयन (जलशयन), नागबन्ध, **कपाल-आद्यं चूर्णनं** कपाल जिसके शुरू में है (ऐसा) चूर्ण (कपालचूर्ण), नतपृष्ठ, मत्स्यकरण, करस्पर्शन, एणप्लुत, तिर्यक्करण, तिर्यगंचित, तिर्यक्स्वस्तिक, सूच्यन्त, बाह्य, अन्तर, छत्र, तिरिप, अलग, चक्र और उचित-**आदिमाः सप्त भ्रमर्यो**: उचित से शुरू होने वाली सात भ्रमरियाँ (अर्थात् बाह्यभ्रमरी, अन्तरभ्रमरी, छत्रभ्रमरी, तिरिपभ्रमरी, अलगभ्रमरी, चक्रभ्रमरी और उचितभ्रमरी—ये सात), **शिरःपूर्वा भ्रमरी** शिर से शुरू होने वाली भ्रमरी (शिरोभ्रमरी), **दिक्-आदिमा** दिक् से शुरू होने वाली (दिग्भ्रमरी), समपादांचित, भ्रान्तपादांचित, **स्कन्धभ्रान्त इति षट्त्रिंशत्** ये छत्तीस **उत्प्लुतिपूर्वाणि करणानि** उत्प्लुति पूर्व वाले करण (उत्प्लुतिकरण) **सोढलनन्दनः** सोढलपुत्र (शार्ङ्गदेव) ने **संक्षिप्य समादिशत्** संक्षेप करके कहे हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) आड्० के 'चक्रेऽञ्चितादिमा' के स्थान पर आनन्द० का चक्रोचितादिमा पाठ सही है क्योंकि आगे लक्षण में उचितभ्रमरी ही है।

(तेषां लक्षणानि)

(अञ्चितम्—१)

अञ्चितं समपादेन स्थित्वोत्तानोत्प्लुतौ भवेत्॥ ७५७॥

इत्यञ्चितम् (१)

अंचित—१

७५७ ग-घ. (अ०) समपादेन स्थित्वा समपाद से खड़े होकर उत्तान-उत्प्लुतौ ऊपर कूदने पर अञ्चितं भवेत् अंचित होता है।

यह अंचित है। (१)

(एकचरणाञ्चितम्—२)

एकपादाञ्चितं तत्स्यादेकपादविनिर्मितम्।

इत्येकचरणाञ्चितम् (२)

एकचरणांचित—२

७५८ क-ख. (अ०) एकपादविनिर्मितम् (जो) एक पैर से निर्मित (हो) तत् वह एकपादाञ्चितं स्यात् एकचरणांचित होता है।

यह एकचरणांचित है। (२)

(भैरवाञ्चितम्—३)

ऊरुपृष्ठस्थितैकाङ्घ्रेरुत्प्लुतौ भैरवाञ्चितम्॥ ७५८॥

इति भैरवाञ्चितम् (३)

भैरवांचित—३

७५८ ग-घ. (अ०) ऊरुपृष्ठस्थिता-एक-अङ्घ्रेः उत्प्लुतौ (भूमि पर रखे दूसरे पैर की) जाँघ के पीछे रखे एक पैर से कूदने पर भैरवाञ्चितं भैरवांचित (होता है)।

यह भैरवांचित है। (३)

(दण्डप्रणामाञ्चितम्—४)

उत्प्लुत्याञ्चितवद्यत्र निपतेद्दण्डवद्भुवि।
दण्डप्रणामाञ्चितं तद्गदितं नृत्तवेदिभिः॥ ७५९॥

इति दण्डप्रणामाञ्चितम् (४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दंडप्रणामांचित—४

७५९. (अ०) **यत्र** जिसमें **अञ्चितवत् उत्प्लुत्य** अंचित की तरह कूद कर **भुवि** भूमि पर **दण्डवत् निपतेत्** डंडे की तरह (सीधे) गिरा जाय **तत्** वह **नृत्तवेदभिः** नृत्त के वेत्ताओं के द्वारा **दण्डप्रणामाञ्चितं गदितं** दंडप्रणामांचित कहा गया है।

यह दंडप्रणामांचित है। (४)

(कर्तर्यञ्चितम्—५)

अञ्चितं स्वस्तिकाङ्घ्रिभ्यां कर्तर्यञ्चितमुच्यते॥

इति कर्तर्यञ्चितम् (५)

कर्तर्यंचित—५

७६० क-ख. (अ०) **स्वस्तिक-अङ्घ्रिभ्यां** स्वस्तिक पैरों से (किया हुआ) **अञ्चितम्** अंचित **कर्तर्यञ्चितम् उच्यते** कर्तर्यंचित कहा जाता है।

यह कर्तर्यंचित है। (५)

(अलगम्—६)

अधोमुखोत्प्लुतोऽग्रे च पतित्वा कुक्कुटासनम्॥ ७६०॥

बध्नीयाद्यत्र तत्प्रोक्तमलगं सूरिशार्ङ्गिणा।

इत्यलगम् (६)

अलग—६

७६० ग-७६१ ख. (अ०) **यत्र** जिसमें **अधोमुख-उत्प्लुतः** नीचे मुँह करके कूद कर **अग्रे च पतित्वा** सामने गिर कर **कुक्कुटासनं बध्नीयात्** कुक्कुटासन बाँधा जाय (किया जाय) **तत्** वह **सूरिशार्ङ्गिणा** विद्वान् शार्ङ्गदेव के द्वारा **अलगं प्रोक्तम्** अलग कहा गया है।

यह अलग है। (६)

(कूर्मालगम्—७)

कूर्मासनं यद्यलगे भवेत्कूर्मालगं तदा॥ ७६१॥

इति कूर्मालगम् (७)

कूर्मालग—७

७६१ ग-घ. (अ०) **अलगे** अलग करने पर **यदि कूर्मासनं भवेत्** यदि कूर्मासन होता है **तदा कूर्मालगं** तो कूर्मालग (कहा जाता है)।

यह कूर्मालग है। (७)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(ऊर्ध्वालगम्—८)

ऊर्ध्वालगं तत्पतित्वा समाङ्घ्रेरूर्ध्वसंस्थितौ।

इत्यूर्ध्वालगम् (८)

ऊर्ध्वालग—८

७६२ क-ख. (अ०) पतित्वा (नीचे) गिर कर ऊर्ध्वसंस्थितौ सम-अङ्घ्रेः ऊपर किये हुए समपाद होने पर तत् ऊर्ध्वालगं वह ऊर्ध्वालग (होता है)।

यह ऊर्ध्वालग है। (८)

(अन्तरालगम्—९)

कृतालगो निपत्योर्व्यामुत्तानोरःस्थलस्थितः ॥ ७६२ ॥

पृष्ठतः श्रोणिसंस्पर्शि शिरः स्यादन्तरालगे।

इत्यन्तरालगम् (९)

अंतरालग—९

७६२ ग-७६३ ख. (अ०) कृत-अलगः अलग करके, उर्व्यां निपत्य धरती पर गिर कर उत्तान-उरःस्थलस्थितः ऊपर छाती करके खड़े (नर्तक) का शिरः सिर पृष्ठतः पीछे से श्रोणिसंस्पर्शिः नितंब छूते हुए अन्तरालगे स्यात् अन्तरालग में (योजित) होता है।

यह अंतरालग है। (९)

(लोहडी लुठितं वा—१०)

समपादस्थितो यत्र विवर्त्य त्रिकमुत्प्लुतः ॥ ७६३ ॥

तिर्यक्पाते लोहडी तल्लुठितं चोच्यते बुधैः।

लोहडी लुठितं वा (१०)

लोहडी अथवा लुठित—१०

७६३ ग-७६४ ख. (अ०) यत्र जिसमें समपादस्थितः समपाद में खड़े होकर त्रिकं विवर्त्य कमर को घुमा कर उत्प्लुतः कूदा हुआ (नर्तक) तिर्यक् पाते तिरछा गिरने पर (गिरता है तो) लोहडी लोहडी (होती है)। बुधैः बुद्धिमानों के द्वारा तत् वह लुठितं च उच्यते लुठित भी कहा जाता है।

यह लोहडी अथवा लुठित है। (१०)

(कर्तरीलोहडी—११)

स्वस्तिकाङ्घ्रिकृता सैव कर्तरीलोहडी मता॥ ७६४॥

इति कर्तरीलोहडी (११)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कर्तरीलोहडी—११

७६४ ग-घ. (अ०) स्वस्तिक-अङ्घ्रिकृता स्वस्तिक पाद से की हुई स एव वही कर्तरीलोहडी मता कर्तरीलोहडी मानी गई है।

यह कर्तरीलोहडी है। (११)

(एकपादलोहडी—१२)

एकाङ्घ्रिजा त्वेकपादलोहडी संमता सताम्।

इत्येकपादलोहडी (१२)

एकपादलोहडी—१२

७६५ क-ख. (अ०) एक-अङ्घ्रिजा तु एक पैर से उत्पन्न (निर्मित) होने वाली तो सतां सज्जनों को एकपादलोहडी संमता एकपादलोहडी मान्य है।

यह एकपादलोहडी (१२)

(दर्पसरणम्—१३)

वैष्णवे स्थानके स्थित्वा पतेत्पार्श्वेन चेद्भुवि॥ ७६५॥
करणं दर्पसरणं तदाह करणाधिपः।

इति दर्पसरणम् (१३)

दर्पसरण—१३

७६५ ग-७६६ ख. (अ०) वैष्णवे स्थानके स्थित्वा वैष्णव स्थानक में खड़े होकर पार्श्वेन भुवि पतेत् चेत् यदि (नर्तक) बाजू (की ओर) से धरती पर गिरे तत् (तो) वह करण-अधिपः करणाधिप (शार्ङ्गदेव) दर्पसरणं करणम् आह दर्पसरण करण कहता है।

यह दर्पसरण है। (१३)

(जलशयनम्—१४)

तदेव जलशय्याख्यमासने जलशायिवत्॥ ७६६॥

इति जलशयनम् (१४)

जलशयन—१४

७६६ ग-घ. (अ०) तत् एव वही (दर्पसरण) जलशायिवत् आसने जल में लेटे हुए के समान आसन में (होने पर) जलशय्या-आख्यं जलशय्या नाम वाला (जलशयन होता है)।

यह जलशयन है। (१४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(नागबन्धम्—१५)

नागबन्धं तदेव स्यान्नागबन्धवदासने।

इति नागबन्धम् (१५)

नागबन्ध—१५

७६७ क-ख. (अ०) नागबन्धवत् आसने नागबन्ध के समान आसन में तत् एव वही नागबन्धं नागबन्ध (होता है)।

यह नागबन्ध है। (१५)

(कपालचूर्णनम्—१६)

समपादस्थितो यत्र संस्पृश्य शिरसा भुवम्॥ ७६७॥

परावृत्तस्तत्कपालचूर्णनं वर्णितं बुधैः।

इति कपालचूर्णनम् (१६)

कपालचूर्णन—१६

७६७ ग-७६८ ख. (अ०) यत्र जिसमें समपादस्थितः समपाद में खड़ा (नर्तक) शिरसा भुवं संस्पृश्य सिर से धरती को छूकर परावृत्तः पीछे घूमा हुआ (हो, अर्थात् घूम जाय) तत् वह बुधैः बुद्धिमानों के द्वारा कपालचूर्णनं वर्णितं कपालचूर्णन वर्णित हुआ है।)

यह कपालचूर्णन है। (१६)

(नतपृष्ठम्—१७)

कपालचूर्णनं कृत्वोत्तानं वक्षश्चलासनम्॥ ७६८॥

यत्रोक्तं नतपृष्ठं तद्वङ्कोलमपरैरिदम्।

इति नतपृष्ठम् (१७)

नतपृष्ठ—१७

७६८ ग-७६९ ख. (अ०) यत्र जिसमें कपालचूर्णनं कृत्वा कपालचूर्णन करके वक्षः उत्तानं छाती ऊँची चलासनं (और) चलासन (किया जाय) तत् वह नतपृष्ठम् उक्तं नतपृष्ठ कहा गया है। अपरैः दूसरे (आचार्यों) के द्वारा इदं वङ्कोलं यह वंकोल (कहा जाता है)।

यह नतपृष्ठ है। (१७)

(मत्स्यकरणम्—१८)

उत्प्लुत्य मध्यमावर्त्य वामपार्श्वेन मत्स्यवत्॥ ७६९॥

परिवर्तेन चेन्मत्स्यकरणं वर्णितं तदा।

इति मत्स्यकरणम् (१८)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मत्स्यकरण—१८

७६९ ग-७७० ख. (अ०) उत्प्लुत्य ऊपर कूद कर मध्यम्-आवर्त्य बीच (अर्थात् कमर) को घुमा कर मत्स्यवत् मछली की तरह वामपार्श्वेन परिवर्तेत चेत् यदि बाईं बाजू से (की ओर) बदल (घूम) जाय तदा तो मत्स्यकरणं वर्णितं मत्स्यकरण वर्णित हुआ है।

यह मत्स्यकरण है। (१८)

(करस्पर्शनम्—१९)

अलगं करणं कृत्वा हस्तेनाश्रित्य च क्षितिम्॥ ७७०॥

परिवर्तेत यत्राधः करस्पर्शनमूचिरे।

इति करस्पर्शनम् (१९)

करस्पर्शन—१९

७७० ग-७७१ ख. (अ०) यत्र जिसमें अलगं करणं कृत्वा अलग करण करके हस्तेन हाथ से क्षितिम् आश्रित्य च धरती का सहारा लेकर अधः परिवर्तेत नीचे परिवर्तन किया जाय करस्पर्शनम् ऊचिरे (वह) करस्पर्शन कहा गया है।

यह करस्पर्शन है। (१९)

(एणप्लुतम्—२०)

उत्प्लुत्यान्यतमां सूचीं खे कृत्वा भजते क्षितौ॥ ७७१॥

यदोत्कटासनं चोर्ध्वस्थानमेणप्लुतं तदा।

इत्येणप्लुतम् (२०)

(एणप्लुत—२०)

७७१ ग-७७२ ख. (अ०) उत्प्लुत्य ऊपर कूद कर खे आकाश में अन्यनतमां सूचीं कृत्वा कोई एक सूची करके यदा जब क्षितौ धरती पर ऊर्ध्वस्थानम् उत्कटासनं च भजते (नर्तक) ऊर्ध्व स्थान वाला उत्कटासन भी करता है तदा तब एणप्लुतम् एणप्लुत (हरिण जैसा उछल कर चलने वाला करण होता है)।

यह एणप्लुत है। (२०)

(तिर्यक्करणम्—२१)

तिर्यगेकेन पादेन समुत्प्लुत्य निपत्य चेत्॥ ७७२॥

तिष्ठेद्भुव्यङ्घ्रिणान्येन स्यात्तिर्यक्करणं तदा।

इति तिर्यक्करणम् (२१)

तिर्यक्करण—२१

७७२ ग-७७३ ख. (अ०) एकेन पादेन एक पैर से तिर्यक् सम्-उत्प्लुत्य तिरछा कूद कर निपत्य चेत् (नर्तक) यदि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नीचे आकर अन्येन अङ्घ्रिणा दूसरे पैर से भुवि तिष्ठेत् धरती पर खड़ा हो जाय तदा तो तिर्यक्करणं स्यात् तिर्यक्करण होता है।

यह तिर्यक्करण है। (२१)

(तिर्यगञ्चितम्—२२)

समपादात्परं तिर्यगुत्प्लुतौ तिर्यगञ्चितम्॥ ७७३ ॥

इति तिर्यगञ्चितम् (२२)

तिर्यगंचित—२२

७७३ ग-घ. (अ०) समपादात् परं समपाद (पर खड़े होने) के बाद तिर्यक् उत्प्लुतौ तिरछा कूदने पर तिर्यगञ्चितं तिर्यगंचित (होता है)।

यह तिर्यगंचित है। (२२)

(तिर्यक्स्वस्तिकम्—२३)

स्यात्तिर्यक्स्वस्तिकं कृत्वा स्वस्तिकं तिर्यगुत्प्लुतौ।

इति तिर्यक्स्वस्तिकम् (२३)

तिर्यक्स्वस्तिक—२३

७७४ क-ख. (अ०) स्वस्तिकं कृत्वा स्वस्तिक करके तिर्यक् उत्प्लुतौ तिरछा कूदने पर तिर्यक्स्वस्तिकं स्यात् तिर्यक्स्वस्तिक होता है।

यह तिर्यक्स्वस्तिक है। (२३)

(सूच्यन्तम्—२४)

समाद्यन्यतमां सूचीं दधते निधने यदि॥ ७७४॥

करणानि तदा प्राञ्चि सूच्यन्तानि प्रचक्षते।

इति सूच्यन्त (२४)

सूच्यन्त—२४

७७४ ग-७७५ ख. (अ०) यदि यदि प्राञ्चि करणानि निधने पहले कहे गये करण करने के बाद अन्त में समा-आदि-अन्यतमां सूचीं दधते समा आदि कोई एक सूची धारण की जाती है तदा तो सूच्यन्तानि प्रचक्षते सूच्यन्त कहा जाता है।

यह सूच्यन्त है। (२४)

(बाह्यभ्रमरी—२५)

दक्षिणेनाङ्घ्रिणा स्थित्वा वाममङ्घ्रिं तु कुञ्चयेत्॥ ७७५॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वामावर्तं भवेद्यत्र सा बाह्यभ्रमरी मता।

इति बाह्यभ्रमरी (२५)

बाह्यभ्रमरी—२५

७७५ ग-७७६ ख. (अ०) यत्र जिसमें दक्षिणेन अङ्घ्रिणा स्थित्वा दाहिने पैर से खड़े होकर वाम-अङ्घ्रि तु कुञ्चयेत् बायाँ पैर कुंचित किया जाता है वाम-आवर्तं भवेत् (और) बाईं ओर आवर्त (गोल घुमाव) होता है सा वह बाह्यभ्रमरी मता बाह्यभ्रमरी मानी गई है।

(सर०) आड्० के 'वामावर्ता' के स्थान पर आनन्द० के वामावर्तं पाठ का ग्रहण करके अर्थ किया है।

यह बाह्यभ्रमरी है। (२५)

(अन्तर्भ्रमरी—२६)

एतस्यास्तु विपर्यासादन्तर्भ्रमरिका भवेत्॥ ७७६॥

इत्यन्तर्भ्रमरी (२६)

अन्तर्भ्रमरी—२६

७७६ ग-घ. (अ०) एतस्याः विपर्यासात् तु इसी के विपर्यास (उलट देने) से तो अन्तर्भ्रमरिका भवेत् अन्तर्भ्रमरी होती है।

यह अन्तर्भ्रमरी है। (२६)

(छत्रभ्रमरी—२७)

त्रिविक्रमाकारधारी स्थानमास्थाय यत्र तु।
वामावर्तभ्रमादाहुस्तां छत्रभ्रमरीं बुधाः॥ ७७७॥

इति छत्रभ्रमरी (२७)

छत्रभ्रमरी—२७

७७७. (अ०) यत्र तु और जिसमें त्रिविक्रम-आकारधारी त्रिविक्रम का आकार धारण करने वाले स्थानम्-आस्थाय स्थान में खड़े होकर (एक पैर धरती पर रख कर) वाम-आवर्तभ्रमात् बाईं ओर गोलाकार घूमने से ताम् उसे बुधाः छत्रभ्रमरीं आहुः विद्वान् छत्रभ्रमरी कहते हैं।

यह छत्रभ्रमरी है। (२७)

(तिरिपभ्रमरी—२८)

तिरिपभ्रमरी तिर्यग्भ्रमेऽङ्घ्रिस्वस्तिकात्परम्।

इति तिरिपभ्रमरी (२८)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तिरिपभ्रमरी—२८

७७८ क-ख. (अ०) अङ्घ्रिस्वस्तिकात् परं स्वस्तिक चरण करने के बाद तिर्यक् भ्रमे तिरछा गोलाकार घूमने पर तिरिपभ्रमरी तिरिपभ्रमरी (होती है)।

यह तिरिपभ्रमरी है। (२८)

(अलगभ्रमरी—२९)

वैष्णवस्थानके स्थित्वा यदा वामाङ्घ्रिणा स्थितः॥ ७७८॥

देहं भ्रामयते तिर्यगलगभ्रमरी तदा।

इत्यलगभ्रमरी (२९)

अलगभ्रमरी—२९

७७८ ग-७७९ ख. (अ०) यदा जब वैष्णवस्थानके स्थित्वा वैष्णव स्थानक में खड़े होकर वाम-अङ्घ्रिणा स्थितः बायें पैर पर खड़ा (नर्तक) देहं तिर्यक् भ्रामयते शरीर को तिरछे गोल घुमाता है तदा अलगभ्रमरी तब अलगभ्रमरी (होती है)।

यह अलगभ्रमरी है। (२९)

(चक्रभ्रमरी—३०)

चक्रभ्रमरिका खण्डसूच्यर्धे चक्रवद्भ्रमात्॥ ७७९॥

इति चक्रभ्रमरी (३०)

चक्रभ्रमरी—३०

७७९ ग-घ. (अ०) खण्डसूचि-अर्धे खण्डसूची का आधा चक्रवत् भ्रमात् चक्र की तरह गोल घुमाने से चक्रभ्रमरिका चक्रभ्रमरी (होती है)।

यह चक्रभ्रमरी है। (३०)

(उचितभ्रमरी—३१)

समापादानन्तरं चेत्तिरश्चीं भ्रामयेत्तनुम्।
उचितभ्रमरीं प्राह तदा शंकरवल्लभः॥ ७८०॥

इत्युचितभ्रमरी (३१)

उचितभ्रमरी—३१

७८०. (अ०) समपाद-अनन्तरं समपाद के बाद तनुं शरीर को तिरश्चीं भ्रामयेत् चेत् यदि तिरछा घुमाया जाय तदा तो शंकरवल्लभः शंकरप्रिय (शार्ङ्गदेव) उचितभ्रमरीं प्राह उचितभ्रमरी कहता है।

यह उचितभ्रमरी है। (३१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(शिरोभ्रमरी—३२)

शिरसैव भुवि स्थित्वोर्ध्वीकृतौ चरणौ दधत्।
परिभ्रमति यत्र त्रिः सा शिरोभ्रमरी मता॥ ७८१॥

इति शिरोभ्रमरी (३२)

शिरोभ्रमरी—३२

७८१. (अ०) **यत्र** जिसमें **शिरसा एव** सिर पर ही **भुवि स्थित्वा** धरती पर स्थित होकर **ऊर्ध्वीकृतौ चरणौ दधत्** ऊपर किये चरण धारण करते हुए **त्रिः परिभ्रमति** (नर्तक) तीन बार गोल घूमता है **सा शिरोभ्रमरी मता** वह शिरोभ्रमरी मानी गई है।

यह शिरोभ्रमरी है (३२)

(दिग्भ्रमरी—३३)

प्राग्वत्सकृत्सकृद्भ्रान्त्वा हस्तभ्रान्त्या धृतक्षितिः।
दिक्चतुष्के क्रमात्तिष्ठेद्यदा दिग्भ्रमरी तदा॥ ७८२॥

इति दिग्भ्रमरी (३३)

दिग्भ्रमरी—३३

७८२. (अ०) **यदा** जब **प्राक्-वत्** पहले की तरह **सकृत् सकृत् भ्रान्त्वा** एक-एक बार घूम कर **हस्तभ्रान्त्या** हाथ घुमाते हुए **धृतक्षितिः** धरती का सहारा लेकर (नर्तक) **दिक्चतुष्के** चारों दिशाओं में **क्रमात् तिष्ठेत्** क्रम से रुकता है **तदा दिग्भ्रमरी** तो दिग्भ्रमरी (होती है)।

(सर०) सिंह० ने स्पष्ट किया कि एक बार घूम कर एक दिशा में रुके, फिर एक बार घूम कर दूसरी दिशा में और इसी तरह उस-उस दिशा में हाथ से धरती का सहारा लेते हुए गोल घूम कर रुके तो दिग्भ्रमरी होती है।

यह दिग्भ्रमरी है। (३३)

(समपादाञ्चितम्—३४)

समपादाञ्चितं कृत्वा स्कन्धेनैकेन भूस्थितः।
परिवृत्य च तिर्यक्चेत्पादावुल्लोलयेत्तदा॥ ७८३॥

समपादाञ्चितं प्राह सूरिः श्रीकरणाग्रणीः।

इति समपादाञ्चितम् (३४)

समपादांचित—३४

७८३-७८४ ख. (अ०) **समपाद-अञ्चितं कृत्वा** समपाद (में खड़े होकर) अंचित करके **एकेन स्कन्धेन भूस्थितः** एक कंधे से धरती पर स्थित होकर **परिवृत्य च** और परिवर्त करके **पादौ तिर्यक् चेत्** यदि पैर तिरछे **उल्लोलयेत्** ऊपर हिलाये **तदा** तो **सूरिः श्रीकरणाग्रणीः** विद्वान् श्रीकरणाग्रणी (शार्ङ्गदेव) **समपादाञ्चितं प्राह** समपादांचित कहता है।

यह समपादांचित है। (३४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(भ्रान्तपादाञ्चितम्—३५)

भ्रामयित्वा दक्षिणाङ्घ्रिं तदीयतलपृष्ठतः ॥ ७८४ ॥

जङ्घामध्यमवष्टभ्य वामाङ्घ्रेरञ्चितं पदम्।
विधाय तिर्यक्स्कन्धाभ्यामधिष्ठाय विवृत्य च ॥ ७८५ ॥

पादावुल्लोलयेत्प्रोक्तं भ्रान्तपादाञ्चितं तदा।

इति भ्रान्तपादाञ्चितम् (३५)

भ्रान्तपादांचित—३५

७८४ ग-७८६ ख. (अ०) **दक्षिण-अङ्घ्रिं भ्रामयित्वा** दाहिने पैर को गोल घुमा कर **तदीयतलपृष्ठतः** उसके तलुए के पीछे का भाग **वाम-अङ्घ्रेः** बायें पैर की **जङ्घामध्यम्-अवष्टभ्य** टाँग के मध्य (भाग) का सहारा देकर **अञ्चितं पदं विधाय** अंचित पैर करके **स्कन्धाभ्यां तिर्यक् अधिष्ठाय** कंधों से तिरछे (धरती पर) टिक कर **विवृत्य च** और उलट कर **पादौ उल्लोलयेत्** दोनों पैर ऊपर हिलाये **तदा** तो **भ्रान्तपादाञ्चितं प्रोक्तं** भ्रान्तपादांचित कहा गया है।

यह भ्रान्तपादांचित है। (३५)

(स्कन्धभ्रान्तम्—३६)

उत्कटासनमास्थायाञ्चितं कृत्वा सयुग्मतः ॥ ७८६ ॥

स्थित्वा भुवि व्योम्नि कृत्वाङ्गान्तराणि ततो भुवम्।
अवष्टभ्य कराभ्यां चेद् भ्रान्त्वा भ्रान्त्वा च पूर्ववत् ॥ ७८७ ॥

तिष्ठेत्प्रतिदिशं प्रोक्तं स्कन्धभ्रान्तं तदा बुधैः।

इति स्कन्धभ्रान्तम् (३६)

स्कन्धभ्रान्त—३६

७८६ ग-७८८ ख. (अ०) **उत्कटासनम् आस्थाय** उत्कटासन में स्थित होकर **अञ्चितं कृत्वा** अंचित करके, **सयुग्मतः** दोनों (कंधों) से **भुवि स्थित्वा** धरती पर स्थित होकर, **अङ्ग-अन्तराणि** दूसरे अंग **व्योम्नि कृत्वा** आकाश की ओर करके **ततः** तब **कराभ्यां** दोनों हाथों से **भुवम्-अवष्टभ्य चेत्** यदि धरती का सहारा लेकर **पूर्ववत् भ्रान्त्वा भ्रान्त्वा** पहले की तरह घूम-घूम कर **प्रतिदिशं तिष्ठेत्** प्रत्येक दिशा में ठहरे **तदा** तो **बुधैः** बुद्धिमानों के द्वारा **स्कन्धभ्रान्तं प्रोक्तं** स्कन्धभ्रान्त कहा गया है।

यह स्कन्धभ्रान्त है। (३६)

विद्यन्तेऽन्येऽपि भूयांसो भेदाः करणसंश्रयाः ॥ ७८८ ॥

न ते श्रीशार्ङ्गिणा प्रोक्ता ग्रन्थप्रथिमभीरुणा।

इति षट्त्रिंशदुप्लुतिकरणानि

७८८ ग- ७८९ ख. (अ०) **करणसंश्रयाः** करण संबन्धी **अन्ये अपि भूयांसः भेदाः** और भी बहुत भेद **विद्यन्ते** होते हैं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(लेकिन) ग्रन्थप्रथिमभीरुणा ग्रन्थ के (अनावश्यक) विस्तार के भय वाले श्रीशार्ङ्गिणा श्रीशार्ङ्गदेव के द्वारा ते न प्रोक्ताः वे नहीं कहे गये।

छत्तीस उत्प्लुतिकरण समाप्त

(अङ्गहाराः)

पूर्वरङ्गे प्रयोक्तव्यान् दृष्टादृष्टफलानपि॥ ७८९॥

अङ्गहारान् प्रवक्ष्यामि नामतो लक्ष्मतस्तथा।

अंगहार

७८९ ग-७९० ख. (अ०) **पूर्वरङ्गे प्रयोक्तव्यान्** पूर्वरंग में प्रयुक्त होने वाले **दृष्ट-अदृष्ट-फलान्** दृष्ट-अदृष्ट फल **अङ्गहारान् अपि** और अंगहारों को **नामतः** तथा **लक्ष्मतः** नाम से और लक्षण से **प्रवक्ष्यामि** (अब मैं) कहूँगा।

(सर०) कल्लि० ने प्रस्तुत कारिका की टीका शुरू करते हुए अंगहारों को 'करणों के समुदायरूप वाला' बता कर कहा कि अंगहारों के लक्षण शुरू करने से पहले ग्रन्थकार ने उनका प्रयोगस्थल (अर्थात् कहाँ प्रयोग किया जाय), फल और सनिर्वचन स्वरूप (अर्थात् व्युत्पत्तिपूर्वक स्वरूप) 'पूर्वरङ्गे इत्यादि' के द्वारा कहा है। नाटक आदि रूपकों में कथा सूचित करने के लिये प्रत्याहार आदि बाईस अंगों से युक्त कवि द्वारा निबद्ध नान्दी आदि से पहले का संदर्भ-विशेष पूर्वरंग होता है।

कल्लि० ने भावप्रकाशन ग्रन्थ से पूर्वरंग की जो निरुक्ति उद्धृत की है वह ना०शा० में और उस पर अभि० टीका में इस प्रकार प्राप्त है। वहाँ कहा गया है कि पादभाग, कला, परिवर्त आदि से युक्त यह प्रयोग 'रङ्ग' में 'पूर्व में ही' (अर्थात् सबसे पहले) प्रयुक्त होता है इसलिये यह 'पूर्वरङ्ग' के रूप में जाना गया है (५/६-७)। गीत, ताल, वाद्य, नृत्त, पाठ्य आदि व्यस्त (अकेले-अकेले) या समस्त (मिल कर) जो नाट्य के अंगभूत रूप में प्रयुक्त होता है वह पूर्वरंग है। (वही, अभि०)

भा० प्र० में अंगों के नाम १९ ही हैं लेकिन संख्या २२ होती है। संभवतः आसारित के ज्येष्ठ, मध्य, कनिष्ठ भेदों को अलग ३ और शुष्का तथा अपकृष्टा को अलग दो अंग माना है।

ना०शा० में पूर्वरंग की विधि के ये १९ अंग कहे गये हैं—प्रत्याहार, अवतरण, आरम्भ, आश्रावणा, वक्त्रपाणि, परिघट्टना, संखोटना, मार्गासारित, आसारितत्रय—ये ९ अन्तर्यवनिकागत हैं यानी पर्दे के भीतर होते हैं और तन्त्रीवाद्यप्रधान हैं। गीतक, उत्थापन, परिवर्तन, नान्दी, शुष्कावकृष्टा, रंगद्वार, चारी, महाचारी, त्रिगत, प्ररोचना—ये दस वहिर्यवनिकागत हैं (यानी पर्दा खुलने के बाद होते हैं)। (५/९-१६ ख)

कल्लि० ने भा० प्र० के 'देवस्तुत्याश्रयकृतं' से शुरू करके जो दो श्लोक उद्धृत किये हैं वे एकाध शब्द के अन्तर से ना० शा० में ज्यों के त्यों प्राप्त होते हैं (४/३११-३१२)। उनके अनुसार देवस्तुति के आश्रित अंगों में शंकर के उद्धत अंगहारों से और शृंगार से संबद्ध स्त्री-पुरुषों के आश्रित गान में देवी अर्थात् पार्वती के ललित अंगहारों से नृत्तप्रयोग करना चाहिये। ४/१४ की व्याख्या में अभिनव ने दृष्ट-अदृष्ट फल की चर्चा भी की है।

कल्लि० ने ग्रन्थकार द्वारा कहे दृष्ट-अदृष्ट फल को इस रूप में समझाया कि गीत सुनने और नृत्त देखने से उत्पन्न आनन्द दृष्ट फल है और देवता के प्रसन्न होने से अपूर्वसाध्य परलोक का सुख अदृष्ट फल—ये दोनों नृत्त के सम्यक् प्रयोग से सिद्ध होते हैं।

(अङ्गहारस्य निरुक्तिपूर्वकं लक्षणम्)

अङ्गानामुचिते देशे हरणं सविलासकम्॥ ७९०॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मातृकोत्करसंपाद्यमङ्गहारोऽभिधीयते।
यद्वा हारो हरस्यायं प्रयोगोऽङ्गैरिति स्मृतः ॥ ७९१ ॥

अंगहार का निरुक्तिपूर्वक लक्षण

७९० ग-७९१. (अ०) मातृका-उत्करसंपाद्यं मातृकाओं के समूह से संपन्न होने वाला अङ्गानाम् अंगों का उचिते देशे सविलासकं हरणं योग्य स्थान पर विलासपूर्वक हरण (प्राप्ति, ले जाना) अङ्गहारः अभिधीयते अंगहार कहा जाता है। यत् वा अथवा हरस्य अयं प्रयोगः शंकर का यह प्रयोग(-विशेष) अङ्गैः हारः अंगों के द्वारा (होने वाला) हार (हर का कर्म हरण तथा अंगों की क्रियाओं से गुँथा हुआ हार अर्थात् अंगहार) इति स्मृतः यों (इस नाम से) जाना गया है।

(सर०) कल्लि० ने अंगहार शब्द की निरुक्ति इस प्रकार स्पष्ट की है। अङ्गानां यानी हाथ पैर आदि। उचिते देशे अर्थात् पहले कहे गये पार्श्व, पैर, सिर आदि में से जहाँ जो उचित हो उस स्थान पर। हरणं का अर्थ है हार यानी अन्य स्थान से प्राप्ति (किसी अंग को एक जगह से दूसरी जगह लाना)। कल्लि० ने ध्यान दिलाया कि अगर इतना ही लक्षण दिया जाता तो अंगों की लौकिक क्रिया भी अंगहार हो जाती। ग्रन्थकार ने उसका निराकरण करने के लिये सविलासकं विशेषण का प्रयोग किया। लेकिन फिर भी नृत्तकरणों में इनकी अतिव्याप्ति हो जाती। इसका परिहार करने के लिय मातृकोत्करसंपाद्यं कहा। यद्वा आदि के द्वारा एक अन्य निरुक्ति दी गई है।

करणाभ्यां मातृका स्यात्कलापः करणैस्त्रिभिः।
चतुर्भिः खण्डको ज्ञेयः संघातः पञ्चभिर्मतः ॥ ७९२ ॥

इति संघविशेषेण संज्ञाभेदान् परे जगुः।
करणन्यूनताधिक्यं तेषां मेने मुनिः स्वयम् ॥ ७९३ ॥

द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिर्वेत्येतद्वाशब्दसूचितम्।

७९२-७९४ ख. (अ०) करणाभ्यां दो करणों से मातृका स्यात् मातृका होती है, त्रिभिः करणैः कलापः तीन करणों से कलाप (होता है)। चतुर्भिः चार (करणों) से खण्डकः ज्ञेयः खंडक जाना जाता है। पञ्चभिः पाँच (करणों) से संघातः मतः संघात माना गया है। इति संघविशेषेण यों विशेष समूहों से परे अन्य (आचार्यों) ने संज्ञाभेदान् जगुः नामों के भेद कहे हैं। स्वयं मुनिः स्वयं (भरत) मुनि ने तेषाम् उनमें (अंगहारों में) करणन्यूनता-आधिक्यं मेने करणों की कमी (या) अधिकता मानी है। द्वाभ्यां त्रिभिः चतुर्भिः वा दो, तीन या चार (मातृकाओं) से इति यों (कहे गये) एतत् वा शब्दसूचितं यह 'या' शब्द से सूचित होता है।

(सर०) ना०शा० ४/३१ का अंश ग्रन्थकार ने उद्धृत करके भरत के मत का उल्लेख किया है। भरत ने अंगहारों में ३ से लेकर ९ तक करणों का संयोग कहा है। (वही, ३२-३३)

(अङ्गहारोद्देशः)

(क—चतुरश्राङ्गहाराः)

स्थिरहस्तोऽथ पर्यस्तः सूचीविद्धोऽपराजितः ॥ ७९४ ॥

वैशाखरेचितः पार्श्वस्वस्तिको भ्रमरोऽपरः।
आक्षिप्तकः परिच्छिन्नो मदाद्विलसितस्ततः ॥ ७९५ ॥

आलीढाच्छुरितौ पार्श्वच्छेदसंज्ञोऽपसर्पितः।
मत्ताक्रीडस्तथा विद्युद्भ्रान्तोऽमी षोडशोदिताः ॥ ७९६ ॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चतुरश्रेण मानेनाङ्गहारा मुनिसंमताः।

अंगहारों का उद्देश

क—चतुरश्र अंगहार

७९४ ग-७९७ ख. (अ०) स्थिरहस्त, पर्यस्त, सूचीविद्ध, अपराजित, वैशाखरेचित, पार्श्वस्वस्तिक, भ्रमर, आक्षिप्तक, परिच्छिन्न, मदविलसित, आलीढ, आच्छुरित, पार्श्वच्छेद, अपसर्पित, मत्ताक्रीड और विद्युद्भ्रान्त **अमी षोडश** ये सोलह **मुनिसंमताः अङ्गहाराः** मुनि (भरत) द्वारा संमत अंगहार **चतुरश्रेण मानेन** चतुरश्र (ताल के) माप से **उदिताः** कहे गये हैं।

(सर०) चतुरश्र यानी चच्चत्पुट ताल। उस नाप से यानी समसंख्या की कलाओं में—यह आशय है। कल्लि० ने ध्यान दिलाया कि ये १६ एक-एक गुरुकला में प्रयुक्त होने वाले करणों की समसंख्या के द्वारा चतुरश्र हैं। यहाँ उसने यह शंका उठाई कि सूचीविद्ध आदि कुछ अंगहारों में करणों की कम-ज़्यादा संख्या होने से समसंख्या कैसे होगी और चतुरश्रत्व कैसे होगा? शंका का समाधान यों किया कि करणों के स्थान पर रेचकों से पूर्ति करनी चाहिये, यह संप्रदाय है। इसीलिये (वद्याध्याय के विषयों का) उद्देश करते समय ग्रन्थकार ने भी **अङ्गहाराः सरेचकाः** के द्वारा रेचकों को अंगहारों के अंग के रूप में सूचित किया (६/४३ घ)। गतिमण्डल आदि त्र्यश्र अंगहारों में भी रेचकों के द्वारा करणों की विषम संख्या का संपादन करना समझना चाहिये।

(ख—त्र्यश्राङ्गहाराः)

विष्कम्भापसृतो मत्तस्खलितो गतिमण्डलः॥ ७९७॥

अपविद्धश्च विष्कम्भोद्घट्टिताक्षिप्तरेचिताः।
रेचितोऽर्धनिकुट्टश्च वृश्चिकापसृतस्ततः॥ ७९८॥

अलातकः परावृत्ताः परिवृत्तादिरेचितः।
उद्वृत्तकश्च संभ्रान्तसंज्ञः स्वस्तिकरेचितः॥ ७९९॥

षोडशेति त्र्यश्रमाना द्वात्रिंशदुभये मताः।

ख—त्र्यश्र अंगहार

७९७ ग-८०० ख. (अ०) विष्कंभापसृत, मत्तस्खलित, गतिमंडल, अपविद्ध, विष्कंभ, उद्घट्टित, आक्षिप्तरेचित, रेचित, अर्धनिकुट्ट, वृश्चिकापसृत, अलातक, परावृत्त, परिवृत्तरेचित, उद्वृत्त, संभ्रान्त, स्वस्तिकरेचित **इति षोडश** ये सोलह **त्र्यश्रमानाः** त्र्यश्र (ताल के) नाप वाले (अंगहार हैं)। **उभये** दोनों (मिला कर) **द्वात्रिंशत् मताः** बत्तीस माने गये हैं।

करणव्रातसंदर्भानन्त्यात्तेषामनन्तता॥ ८००॥

द्वात्रिंशत्ते तथाप्युक्ताः प्राधान्यविनियोगतः।

८०० ग-८०१ ख. (अ०) **करणव्रातसंदर्भ-आनन्त्यात्** करणों के समूहों के संदर्भ की अनन्तता होने से **तेषाम् अनन्तता** उनकी (भी) अनन्तता (होती है) **तथा-अपि** फिर भी **प्राधान्यविनियोगतः** प्रधान विनियोग के अनुसार **ते** वे **द्वात्रिंशत् उक्ताः** बत्तीस कहे गये हैं।

(तेषां कालप्रमाणम्)

एकैकं करणं कार्यं कलया गुरुरूपया॥ ८०१॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सर्वेषामङ्गहाराणामित्याह करणाग्रणीः।

उनका कालप्रमाण

८०१ ग-८०२ ख. (अ०) सर्वेषाम् अङ्गहाराणां सारे अंगहारों के एक-एकं करणम् एक-एक (हरेक) करण गुरुरूपया कलया गुरुरूपा कला के द्वारा कार्यं करना चाहिये इति ऐसा करणाग्रणीः आह करणाग्रणी (शार्ङ्गदेव) कहता है।

(सर०) अंगहारों में हर करण के समय का नाप बताते हुए ग्रन्थकार ने गुरुरूपया कलया—यों गुरुरूपा विशेषण का प्रयोग किया। इस पर कल्लि० ने कहा कि कला शब्द की प्रसिद्धि लघु के रूप में होने से यहाँ गुरुरूपया विशेषण लगाया है।

(अङ्गहाराणां लक्षणम्)

(क—चतुरश्राङ्गहाराः)

(स्थिरहस्तः—१)

लीनं समनखं कृत्वा व्यंसितं चात्र विच्युतौ॥ ८०२॥

करौ कृत्वोज्झितालीढः प्रत्यालीढं व्रजेत्ततः।
निकुट्टकोरूद्वृत्ताख्यस्वस्तिकाक्षिप्तकान्यथ॥ ८०३॥

नितम्बं करिहस्तं च कटीच्छिन्नमिति क्रमात्।
करणैः स्थिरहस्तः स्याद्दशभिः शिववल्लभः॥ ८०४॥

अङ्गहारेषु सर्वेषु प्रत्यालीढान्तमादितः।
प्रयोक्तव्यमिति प्राहुः केचिन्नाट्यविशारदाः॥ ८०५॥

इति स्थिरहस्तः (१)

अंगहारों के लक्षण

क—चतुरश्र अंगहार

स्थिरहस्त—१

८०२ ग-८०५. (अ०) अत्र इसमें लीनं समनखं व्यंसितं च कृत्वा लीन, समनख और व्यंसित करके करौ विच्युतौ कृत्वा दोनों हाथ विच्युत करके, उज्झित-आलीढः आलीढ (स्थान) छोड़ कर प्रत्यालीढं व्रजेत् प्रत्यालीढ (स्थान) पर जायँ। ततः फिर निकुट्टक-ऊरूद्वृत्त-आख्यस्वस्तिक-आक्षिप्तकानि निकुट्टक, उरूद्वृत्त नामक, स्वस्तिक और आक्षिप्तक अथ इसके बाद नितम्बं करिहस्तं कटीछिन्नं च नितंब, करिहस्त और कटीछिन्न इति क्रमात् इस क्रम से दशभिः करणैः दस करणों से शिववल्लभः स्थिरहस्तः स्यात् शिव का प्रिय स्थिरहस्त होता है। केचित् नाट्यविशारदाः कुछ नाट्यविशारद सर्वेषु अङ्गहारेषु सारे अंगहारों में प्रत्यालीढ-अन्तम्-आदितः प्रयोक्तव्यम् आरंभ (के लीन) से प्रत्यालीढ के अंत तक (का लक्षण) प्रयुक्त करना चाहिये इति प्राहुः ऐसा कहते हैं।

(सर०) नाट्यविशारदों के मत का आशय यह है कि स्थिरहस्त में प्रत्यालीढ के बाद के सात करण प्रयुक्त नहीं होंगे।

यह स्थिरहस्त है। (१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(पर्यस्तकः—२)

तलपुष्पपुटं पूर्वमपविद्धं च वर्तितम्।
निकुट्टकोरूद्वृत्ताख्याक्षिप्तोरोमण्डलान्यथ॥ ८०६॥

नितम्बं करिहस्तं च कटीछिन्नमिति क्रमात्।
दशभिः करणैरेभिः प्रोक्तः पर्यस्तको बुधैः॥ ८०७॥

इति पर्यस्तकः (२)

पर्यस्तक—२

८०६-८०७. (अ०) पूर्वं तलपुष्पपुटं पहले तलपुष्पपुट (फिर) अपविद्ध, वर्तित, निकुट्टक, ऊरूद्वृत्त नामक, आक्षिप्त, उरोमंडल अथ इसके बाद नितंब, करिहस्त और कटीछिन्न इति क्रमात् इस क्रम से एभिः दशभिः करणैः इन दस करणों से बुधैः बुधों के द्वारा पर्यस्तकः प्रोक्तः पर्यस्तक कहा गया है।

यह पर्यस्तक है। (२)

(सूचीविद्धः—३)

अर्धसूच्यथ विक्षिप्तमावर्तं च निकुट्टकम्।
ऊरूद्वृत्तमथाक्षिप्तमुरोमण्डलसंज्ञकम्॥ ८०८॥

करिहस्तं कटीछिन्नं नवभिः करणैरिति।
सूचीविद्धाभिधः प्रोक्तोऽङ्गहारो भरतादिभिः॥ ८०९॥

इति सूचीविद्धः (३)

सूचीविद्ध—३

८०८-८०९. (अ०) अर्धसूची अथ इसके बाद विक्षिप्त, आवर्त और निकुट्टक, ऊरूद्वृत्त फिर आक्षिप्त, उरोमंडल संज्ञा वाला, करिहस्त, कटीछिन्न इति नवभिः करणैः इन नौ करणों से भरत-आदिभिः भरत आदि के द्वारा सूचीविद्ध-अभिधः अङ्गहारः सूचीविद्ध नाम वाला अंगहार प्रोक्तः कहा गया है।

यह सूचीविद्ध है। (३)

(अपराजितः—४)

दण्डपादं व्यंसितं च प्रसर्पितकसंज्ञकम्।
निकुट्टार्धनिकुट्टे चाक्षिप्तोरोमण्डले ततः॥ ८१०॥

करिहस्तं कटीछिन्नमिति लक्ष्मापराजिते।
नवभिः करणैर्युक्तमुक्तं निःशङ्कसूरिणा॥ ८११॥

इत्यपराजितः (४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अपराजित—४

८१०-८११. (अ०) दंडपाद, व्यंसित, प्रसर्पित संज्ञा वाला, निकुट्ट, अर्धनिकुट्ट, आक्षिप्त, उरोमंडल, करिहस्त, कटीछिन्न इति नवभिः करणैः युक्तं यों नौ करणों से युक्त अपराजिते लक्ष्म अपराजित में लक्षण निःशङ्कसूरिणा उक्तं शंका रहित विद्वान् (शार्ङ्गदेव) के द्वारा कहा गया है।

यह अपराजित है। (४)

(वैशाखरेचितः—५)

वैशाखरेचितं द्वाभ्यामङ्गाभ्यामथ नूपुरम्।
भुजङ्गत्रासितोन्मत्तमण्डलस्वस्तिकान्यथ॥ ८१२॥

निकुट्टकोरूद्वृत्ताख्याक्षिप्तोरोमण्डलानि च।
करिहस्तं कटीछिन्नमित्येकादशभिः क्रमात्॥ ८१३॥

करणैरङ्गहारः स्यान्नाम्ना वैशाखरेचितः।

इति वैशाखरेचितः (५)

वैशाखरेचित—५

८१२-८१४ ख. (अ०) द्वाभ्याम् अङ्गाभ्यां वैशाखरेचितं दो अंगों से वैशाखरेचित अथ इसके बाद नूपुर, भुजंगत्रासित, उन्मत्त, मंडलस्वस्तिक अथ फिर निकुट्टक, ऊरूद्वृत्त नामक, आक्षिप्त, उरोमंडल, करिहस्त, कटीछिन्न इति क्रमात् इस क्रम से एकादशभिः करणैः ग्यारह करणों से वैशाखरेचितः नाम्ना वैशाखरेचित नाम वाला अङ्गहारः स्यात् अंगहार होता है।

यह वैशाखरेचित है। (५)

(पार्श्वस्वस्तिकः—६)

दिक्स्वस्तिकं ततश्चाङ्गेनैकेनार्धनिकुट्टकम्॥ ८१४॥

पुनर्दिक्स्वस्तिकमथान्याङ्गेनार्धनिकुट्टकम्।
अपविद्धोरूद्वृत्ताख्ये तथाक्षिप्तं नितम्बकम्॥ ८१५॥

करिहस्तं कटीछिन्नमष्टभिः करणैरिति।
स्यात्पार्श्वस्वस्तिकोऽभ्यासात्त्वाद्ययोर्दशभिर्भवेत्॥ ८१६॥

इति पार्श्वस्वस्तिकः (६)

पार्श्वस्वस्तिक—६

८१४ ग-८१६. (अ०) दिक्स्वस्तिकं दिक्स्वस्तिक ततः च और फिर एकेन अङ्गेन एक अंग से अर्धनिकुट्टक पुनः दिक्स्वस्तिकं फिर से दिक्स्वस्तिक अथ इसके बाद अन्य अङ्गेन दूसरे अंग से अर्धनिकुट्टक, अपविद्ध और ऊरूदवृत्त नामक तथा इसी तरह आक्षिप्त, नितंब, करिहस्त, कटीछिन्न इति अष्टभिः करणैः इन आठ करणों से पार्श्वस्वस्तिकः स्यात् पार्श्वस्वस्तिक होता है। आद्ययोः शुरू के दो की अभ्यासात् तु पुनरावृत्ति से तो दशभिः भवेत् दस (करणों) से होता है।

यह पार्श्वस्वस्तिक है। (६)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(भ्रमरः—७)

नूपुराक्षिप्तकच्छिन्नसूचीन्यथ नितम्बकम्।
करिहस्तं च करणमुरोमण्डलकं ततः॥ ८१७॥

कटीछिन्नमिति प्रोक्तः करणैर्भ्रमरोऽष्टभिः।

इति भ्रमरः (७)

भ्रमर—७

८१७-८१८ ख. (अ०) नूपुर, आक्षिप्त, छिन्न, सूची, अथ इसके बाद नितंब, करिहस्त व उरोमंडल करण ततः उसके बाद कटीछिन्न इति अष्टभिः करणैः यों आठ करणों से भ्रमरः प्रोक्तः भ्रमर कहा गया है।

यह भ्रमर है। (७)

(आक्षिप्तकः—८)

कृत्वा नूपुरविक्षिप्तालातान्याक्षिप्तकं ततः॥ ८१८॥

उरोमण्डलसंज्ञं च नितम्बं करिहस्तकम्।
कटीछिन्नं च करणैरेभिराक्षिप्तकोऽष्टभिः॥ ८१९॥

विक्षिप्तालातकाक्षिप्तप्रयोगं द्विः परे जगुः।

इत्याक्षिप्तकः (८)

आक्षिप्त—८

८१८ ग-८२० ख. (अ०) नूपुर, विक्षिप्त और अलात कृत्वा करके ततः उसके बाद आक्षिप्तक, उरोमंडल संज्ञा वाला तथा नितंब, करिहस्त और कटीछिन्न एभिः अष्टभिः करणैः इन आठ करणों से आक्षिप्तः आक्षिप्त (होता है)। परे अन्य (आचार्यों) ने विक्षिप्त, अलात, आक्षिप्त प्रयोगं द्विः जगुः का प्रयोग दो बार कहा है।

यह आक्षिप्त है। (८)

(परिच्छिन्नः—९)

कृत्वा समनखं छिन्नं संभ्रान्तमथ वामतः॥ ८२०॥

भ्रमरं वामपार्श्वार्धसूच्यतिक्रान्तसंज्ञकम्।
भुजङ्गत्रासितादूर्ध्वं करिहस्तं विधीयते॥ ८२१॥

कटीछिन्नं परिच्छिन्नो नवभिः करणैरिति।

इति परिच्छिन्नः (९)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परिच्छिन्न—९

८२० ग-८२२ ख. (अ०) समनख, छिन्न, संभ्रान्त कृत्वा करके अथ फिर वामतः भ्रमरः बाईं ओर भ्रमर, वामपार्श्व-अर्धसूचि-अतिक्रान्तसंज्ञकं बाईं ओर (ही) अर्धसूची, अतिक्रान्त संज्ञा वाला, भुजंगत्रासित (और उस) के बाद करिहस्त (और) कटीछिन्न विधीयते योजित होता है। इति नवभिः करणैः इन नौ करणों से परिच्छिन्नः परिछिन्न (होता है)।

(सर०) आनन्द० और आड्० दोनों संस्करणों में '··· सूच्यङ्घ्रिक्रान्त ···' पाठ है। आनन्द० की पादटिप्पणी में '··· च्यतिक्रा ···' पाठ भेद है जिससे 'अङ्घ्रिक्रान्त' के बजाय 'अतिक्रान्त' मिलता है। सिंह० की टीका में भी 'अतिक्रान्त' ही है। ना०शा० में 'अतिक्रान्त' ही कहा गया है (ना०शा०, ४/२१३)। इस आधार पर हमने मूलपाठ अतिक्रान्त रखा है।

यह परिच्छिन्न है। (९)

(मदविलसितः—१०)

मदस्खलितमत्तल्लितलसंस्फोटितानि च॥ ८२२॥

बहुशश्चित्रगुम्फानि निकुट्टकमतः परम्।
ऊरूद्वृत्तं च करणं करिहस्तसमाह्वयम्॥ ८२३॥

कटीछिन्नं च सप्तेति मदाद्विलसिते जगुः।
करणानि त्रयाणां तु त्रिरभ्यासात्त्रयोदश॥ ८२४॥

अभ्यासांस्त्रिषु वाञ्छन्ति चतुष्पञ्चादिकानपि।

इति मदविलसितः (१०)

मदविलसित—१०

८२२ ग-८२५ ख. (अ०) मदस्खलित, मत्तल्लि और तलसंस्फोटित बहुशः चित्रगुम्फानि कई बार विविध प्रकार की रचनाएँ (करके) अतः परम् इसके बाद निकुट्टक, ऊरूद्वृत्त करण, करिहस्तसमाह्वयं करिहस्त नाम वाला और कटीछिन्न इति सप्त ये सात मदविलसिते जगुः मदविलसित में कहे हैं। त्रयाणां करणानि (शुरू के) तीन करण त्रिः अभ्यासात् तु तीन बार आवृत्ति (प्रयोग) करने से तो त्रयोदश तेरह (हो जाते हैं)। त्रिषु (उन) तीन में चतुः पञ्च-आदिकान् अभ्यासान् अपि चार (या) पाँच आवृत्तियाँ भी वाञ्छन्ति इच्छित होती हैं।

यह मदविलसित है। (१०)

(आलीढः—११)

व्यंसितं सनिकुट्टं स्यान्नूपुरं वामतोऽङ्घ्रितः॥ ८२५॥

अन्यतोऽलातकाक्षिप्ते उरोमण्डलकं ततः।
करिहस्तं कटीछिन्नमित्येभिः करणैः क्रमात्॥ ८२६॥

भवेदष्टभिरालीढोऽङ्गहारो मुनिसंमतः।

इत्यालीढः (११)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आलीढ—११

८२५ ग-८२७ ख. (अ०) सनिकुट्टं व्यंसितं निकुट्टसहित व्यंसित (करके) वामतः अङ्घ्रितः बायें पैर से नूपुरं स्यात् नूपुर होता है अन्यतः (और) दूसरे (दाहिने पैर) से अलातक, आक्षिप्त, उरोमंडल ततः उसके बाद करिहस्त और कटीछिन्न इति क्रमात् इस क्रम से एभिः अष्टभिः करणैः इन आठ करणों से मुनिसंमतः मुनि (भरत) संमत आलीढः अङ्गहारः भवेत् आलीढ अंगहार होता है।

यह आलीढ है। (११)

(आच्छुरितः—१२)

नूपुरं भ्रमरं चाथ व्यंसितालातके ततः॥ ८२७॥

नितम्बं सूचिसंज्ञं च करिहस्तमतः परम्।
कटीछिन्नं च करणान्यष्टेत्याच्छुरिते विदुः॥ ८२८॥

इत्याच्छुरितः (१२)

आच्छुरित—१२

८२७ ग-८२८. (अ०) नूपुर और भ्रमर अथ इसके बाद व्यंसित और अलात, ततः उसके बाद नितंब, सूची नाम वाला और करिहस्त अतः परम् इसके बाद कटीछिन्न इति अष्ट करणानि ये आठ करण आच्छुरिते विदुः आच्छुरित में जानते हैं।

यह आच्छुरित है। (१२)

(पार्श्वच्छेदः—१३)

वृश्चिकाद्यं कुट्टितं स्यादूर्ध्वजानु ततः परम्।
आक्षिप्तस्वस्तिकं कृत्वा त्रिकस्य परिवर्तनम्॥ ८२९॥

उरोमण्डलसंज्ञं च नितम्बं करिहस्तकम्।
कटीछिन्नं च करणं पार्श्वच्छेदेऽष्टमं मतम्॥ ८३०॥

इति पार्श्वच्छेदः (१३)

पार्श्वछेद—१३

८२९-८३०. (अ०) वृश्चिक-आद्यं कुट्टितं वृश्चिक से शुरू होने वाला कुट्टित (वृश्चिककुट्टित), ऊर्ध्वजानु, ततः परम् उसके बाद आक्षिप्त और स्वस्तिक कृत्वा करके त्रिकस्य परिवर्तनं त्रिक का परिवर्तन (और फिर) उरोमंडल नाम वाला और नितंब, करिहस्त, कटीछिन्न अष्टमं करणम् आठवाँ करण पार्श्वच्छेदे मतं पार्श्वछेद में माना गया है।

यह पार्श्वछेद है। (१३)

(अपसर्पितः—१४)

अपक्रान्तं व्यंसितस्य केवलं करयोः क्रिया।
करिहस्तं चार्धसूचि विक्षिप्ताख्यं कटीयुतम्॥ ८३१॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

छिन्नमूरूद्वृत्तसंज्ञमाक्षिप्तं करिहस्तकम्।
कटीछिन्नं च सप्तेति करणान्यपसर्पिते॥ ८३२॥

सार्धानि द्विः कटीछिन्नकरिहस्तकृतेर्नव।

इत्यपसर्पितः (१४)

अपसर्पित—१४

८३१-८३३ ख. (अ०) अपक्रान्तम् अपक्रान्त, व्यंसितस्य व्यंसित की केवलं करयोः क्रिया केवल हाथों की क्रिया, करिहस्तं करिहस्त, अर्धसूचि च अर्धसूची, विक्षिप्त-आख्यं विक्षिप्त नामक, कटीयुतं छिन्नं कटियुक्त छिन्न (कटीछिन्न), ऊरूद्वृत्तसंज्ञम् ऊरूद्वृत्त संज्ञा वाला आक्षिप्तम् (और) आक्षिप्त, (पुनः) करिहस्तकं करिहस्त कटीछिन्नं च और कटीछिन्न इति इस प्रकार (वास्तव में) सार्धानि सप्तकरणानि साढ़े सात करण अपसर्पिते अपसर्पित में (होते हैं)। द्विः कटीछिन्नकरिहस्तकृतेः दो बार कटीछिन्न और करिहस्त करने के कारण (सार्धानि) नव (साढ़े) नौ (करण हो जाते हैं)।

(सर०) यहाँ संगत अर्थ प्राप्त करने के लिये अन्वय में 'पुनः' का अध्याहार करना पड़ा है और 'सार्धानि' को 'सप्त' और 'नव' दोनों के साथ संबद्ध किया गया है।

यह अपसर्पित है। (१४)

(मत्ताक्रीडः—१५)

भ्रमरं नूपुराख्यं च भुजङ्गत्रासिताभिधम्॥ ८३३॥

दक्षिणाङ्गेनैव कृत्वा कुर्याद्वैशाखरेचितम्।
आक्षिप्तच्छिन्नकरणे भ्रमरव्यंसिते ततः॥ ८३४॥

उरोमण्डलसंज्ञं च नितम्बं करिहस्तकम्।
कटीछिन्नं च करणैरेभिर्द्वादशभिः क्रमात्॥ ८३५॥

एकादशभिरभ्यासाद्गणना भ्रमरस्य तु।
मत्ताक्रीडाभिधानः स्यादङ्गहारो हरप्रियः॥ ८३६॥

इति मत्ताक्रीडः (१५)

मत्ताक्रीड—१५

८३३ ग-८३६. (अ०) भ्रमर और नूपुर नामक (करके) भुजंगत्रासित नाम वाला दक्षिण-अङ्गेन एव कृत्वा दाहिने अंग से ही करके वैशाखरेचितं कुर्यात् वैशाखरेचित करना चाहिये। ततः उसके बाद आक्षिप्त और छिन्न करण, भ्रमर और व्यंसित, उरोमंडल संज्ञा वाला और नितंब, करिहस्त, कटीछिन्न क्रमात् क्रम से एभिः द्वादशभिः करणैः इन बारह करणों से (और) भ्रमरस्य तु भ्रमर की तो अभ्यासात् गणना पुनरावृत्ति (में दो बार प्रयुक्त भ्रमर को एक करण मानने) से गिनाई (करने पर) एकादशभिः ग्यारह (करणों) से हरप्रियः शंकर का प्रिय मत्ताक्रीड-अभिधानः मत्ताक्रीड नाम वाला अङ्गहारः स्यात् अंगहार होता है।

यह मत्ताक्रीड है। (१५)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(विद्युद्भ्रान्तः—१६)

वामाङ्गेनार्धसूचि स्याद्विद्युद्भ्रान्तं तु दक्षिणे।
पुनरङ्गविपर्यासाद् द्वयं छिन्नमतः परम्॥ ८३७॥

अतिक्रान्तं वामतोऽथ लतावृश्चिकमाचरेत्।
कटीछिन्नं च षडिति द्वयोरभ्यासतः पुनः॥ ८३८॥

करणान्यष्टसंख्यानि विद्युद्भ्रान्ते विदुर्बुधाः।

इति विद्युद्भ्रान्तः (१६)

इति चतुरश्रमानेन षोडशाङ्गहाराः

विद्युद्भ्रान्त—१६

८३७-८३९ ख. (अ०) वाम-अङ्गेन अर्धसूचि बायें अंग से अर्धसूची विद्युद्भ्रान्तं तु दक्षिणे (और) विद्युद्भ्रान्त तो दाहिने (अंग) में स्यात् (योजित) होता है। अङ्गविपर्यासात् द्वयं अंग बदल कर दोनों पुनः फिर से, अतः परम् इसके बाद छिन्नम् अतिक्रान्तं छिन्न (और) अतिक्रान्त, अथ अब वामतः बायें (अंग) से लतावृश्चिकम् आचरेत् लतावृश्चिक योजित करना चाहिये कटीछिन्नं च और कटीछिन्न इति षद् इस प्रकार छ (और) द्वयोः दो (अर्धसूची और विद्युद्भ्रान्त) के पुनः अभ्यासात् फिर से आवृत्त होने से विद्युद्भ्रान्ते विद्युद्भ्रान्त में बुधाः विद्वान् अष्टसंख्यानि करणानि आठ संख्या वाले करण विदुः जानते हैं।

यह विद्युद्भ्रान्त है। (१६)

चतुरश्र मान के सोलह अंगहार समाप्त

(ख—त्र्यश्राङ्गहाराः)

(विष्कम्भापसृतः—१)

निकुट्टाख्यं करणं विधायार्धनिकुट्टकम्॥ ८३९॥

भुजङ्गत्रासितादूर्ध्वं भुजङ्गत्रस्तरेचितम्।
आक्षिप्तोरोमण्डले च क्रमात्कृत्वा लताकरम्॥ ८४०॥

कटीछिन्नं सप्तमं तु विष्कम्भापसृते भवेत्।

इति विष्कम्भापसृतः (१)

ख—त्र्यश्र अंगहार

विष्कंभापसृत—१

८३९ ग-८४१ ख. (अ०) निकुट्टक-आख्यं करणं विधाय निकुट्ट नामक करण योजित करके अर्धनिकुट्टकं भुजङ्गत्रासितात् ऊर्ध्वम् अर्धनिकुट्ट (फिर) भुजंगत्रासित के बाद भुजंगत्रस्तरेचित, आक्षिप्त व उरोमंडल क्रमात् कृत्वा क्रम से करके लताकरं लताकर (और) सप्तमं तु कटीछिन्नं सातवाँ तो कटीछिन्न विष्कम्भापसृते भवेत् विष्कंभापसृत में होता है।

यह विष्कंभापसृत है। (१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(मत्तस्खलितः—२)

मत्तल्लिगण्डसूच्याख्ये लीनमप्यपविद्धकम्॥ ८४१॥

तद्द्रुतत्वेन कर्तव्यं तलसंस्फोटितं ततः।
करिहस्तं कटीछिन्नं करणानि क्रमादिति॥ ८४२॥

सप्ताङ्गहारे प्रोक्तानि मत्तस्खलितसंज्ञके।

इति मत्तस्खलितः (२)

मत्तस्खलित—२

८४१ ग-८४३ ख. (अ०) मत्तल्लि, गंडसूची नामक, लीन (और) अपविद्ध **तद् द्रुतत्वेन कर्तव्यं** वह द्रुत गति से करना चाहिये। **ततः** उसके बाद तलसंस्फोटित, करिहस्त, कटीछिन्न करण **क्रमात् इति सप्त** क्रम से ये सात **मत्तस्खलितसंज्ञके अङ्गहारे** मत्तस्खलित नामक अंगहार में **प्रोक्तानि** कहे गये हैं।

(सर०) सिंह० की टीका में मत्तल्लि, गंडसूची, लीन और अपविद्ध को लेकर 'त्रितयं' कहा है और 'करणाष्टक' के द्वारा संख्या आठ कही है। ये दोनों ही अशुद्ध हैं। मत्तल्लि से अपविद्ध तक चार करण होते हैं और करणाष्टक के बजाय 'करणसप्तकं' होना चाहिये।

यह मत्तस्खलित है। (२)

(गतिमण्डलः—३)

मण्डलस्वस्तिकादूर्ध्वं निवेशोन्मत्तसंज्ञके॥ ८४३॥

उद्घट्टिताख्यं मत्तल्लि स्यादाक्षिप्तमतः परम्।
उरोमण्डलकं छिन्नं कट्यादि गतिमण्डले॥ ८४४॥

इत्यष्टौ करणानि स्युरिति निःशङ्कभाषितम्।

इति गतिमण्डलः (३)

गतिमंडल—३

८४३ ग-८४५ ख. (अ०) मंडलस्वस्तिक के बाद निवेश और उन्मत्त संज्ञा वाले, उद्घट्टित नाम वाला, मत्तल्लि और आक्षिप्त होता है। **अतः परम्** इसके बाद उरोमंडल, कटीछिन्न **इति अष्टौ करणानि** ये आठ करण **गतिमण्डले स्युः** गतिमंडल में होते हैं **इति निःशङ्कभाषितम्** ऐसा निःशंक (शार्ङ्गदेव) ने कहा है।

यह गतिमंडल है। (३)

(अपविद्धः—४)

अपविद्धं प्रथमतः सूचीविद्धमथो करौ॥ ८४५॥

उद्वेष्टिते समं चार्या बद्धया वलयेत्त्रिकम्।
ऊरूद्वृत्तं च करणमुरोमण्डलकं ततः॥ ८४६॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कटीछिन्नं पञ्चमं चेदपविद्धस्तदा भवेत्।

इत्यपविद्धः (४)

अपविद्ध—४

८४५ ग-८४७ ख. (अ०) प्रथमतः अपविद्धं सबसे पहले अपविद्ध अथः सूचीविद्धम् अब सूचीविद्ध, उद्वेष्टिते करौ उद्वेष्टित दोनों हाथ (करके) बद्धया चार्या समं बद्धा चारी के साथ त्रिकं वलयेत् त्रिक को घुमायें, (फिर) ऊरूद्वत्त और उरोमंडल करण, ततः उसके बाद पञ्चमं कटीछिन्नं चेत् यदि पाँचवाँ कटीछिन्न (हो) तदा तो अपविद्धः भवेत् अपविद्ध होता है।

यह अपविद्ध है। (४)

(विष्कम्भः—५)

निकुट्टकाख्यं करणं स्यान्निकुञ्चितमञ्चितम्॥ ८४७॥

ऊरूद्वृत्तं ततोऽप्यर्धनिकुट्टकरणं ततः।
भुजङ्गत्रासितं हस्तोद्वेष्टने भ्रमरं ततः॥ ८४८॥

करिहस्तं कटीछिन्नं विष्कम्भे नवमं भवेत्।

इति विष्कम्भः (५)

विष्कंभ—५

८४७ ग-८४९ ख. (अ०) विष्कम्भे विष्कंभ में निकुट्टक-आख्यं करणं निकुट्टक नाम वाला करण स्यात् (योजित) होता है। ततः उसके बाद निकुञ्चितम् अञ्चितम् ऊरूद्वृत्तं निकुंचित, अंचित, ऊरूद्वृत्त, ततः अपि उसके बाद अर्धनिकुट्ट करणम् अर्धनिकुट्ट करण, ततः फिर भुजङ्गत्रासितं भुजंगत्रासित, हस्त-उद्वेष्टने भ्रमरं उद्वेष्टन हस्त होने पर (अर्थात् के द्वारा) भ्रमर, ततः उसके बाद करिहस्तं करिहस्त (और) नवमं कटीछिन्नं नवाँ कटीछिन्न भवेत् होता है।

(सर०) 'हस्तोद्वेष्टने भ्रमरं' के 'उद्वेष्टने' में सप्तमी है जिसकी व्याख्या सिंह० ने 'करोद्वेष्टनेन भ्रमरं' की है। अर्थ है उद्वेष्टन हस्त के द्वारा भ्रमर। इस अर्थ से ही विष्कंभ में नौ करण होते हैं इसलिये ऊपर अर्थ इसी प्रकार दिया है।

यह विष्कंभ है। (५)

(उद्घट्टितः—६)

उद्घट्टिते निकुट्टाख्यमुरोमण्डलकं ततः॥ ८४९॥

नितम्बं करिहस्तं स्यात्कटीछिन्नं च पञ्चमम्।

इत्युद्घट्टितः (६)

उद्घट्टित—६

८४९ ग-८५० ख. (अ०) उद्घट्टिते उद्घट्टित में निकुट्ट-आख्यम् उरोमण्डलकं निकुट्ट नामक, उरोमंडल ततः नितम्बं करिहस्तं उसके बाद नितंव, करिहस्त पञ्चमं च कटीछिन्नं स्यात् और पाँचवाँ कटीछिन्न होता है।

यह उद्घट्टित है। (६)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(आक्षिप्तरेचितः—७)

स्वस्तिकाद्यं रेचितं स्यात्पृष्ठस्वस्तिकसंज्ञकम्॥ ८५०॥

दिक्स्वस्तिकं कटीपूर्वं समं घूर्णितनामकम्।
भ्रमरं वृश्चिकाद्यं च रेचितं पार्श्वपूर्वकम्॥ ८५१॥

निकुट्टकमुरःपूर्वं मण्डलं संनतं ततः।
सिंहाकर्षितकं नागापसर्पितसमाह्वयम्॥ ८५२॥

अथ वक्षःस्वस्तिकं तु केचिदिच्छन्ति सूरयः।
दण्डपक्षं च करणं ललाटतिलकाह्वयम्॥ ८५३॥

वृश्चिकं तु लताद्यं च भवेदथ निशुम्भितम्।
विद्युद्भ्रान्ताभिधादूर्ध्वं गजविक्रीडितं ततः॥ ८५४॥

नितम्बविष्णुक्रान्ताख्योरूद्वृत्ताक्षिप्तकानि च।
उरोमण्डलसंज्ञं च नितम्बं करिहस्तकम्॥ ८५५॥

वैकल्पिकं कटीछिन्नमिच्छन्त्याक्षिप्तरेचिते।
पञ्चविंशतिसंख्यानि करणानि पुरातनाः॥ ८५६॥

नितम्बोरोमण्डलयोस्त्वावृत्त्या सप्तविंशतिः।
ये वक्षःस्वस्तिकं नात्र कटीछिन्नं च मन्वते॥ ८५७॥

पञ्चविंशतिरेव स्यादावृत्तावपि तन्मते।

इत्याक्षिप्तरेचितः (७)

आक्षिप्तरेचित—७

८५० ग-८५८ ख. (अ०) **स्वस्तिक-आद्यं रेचितं** स्वस्तिक से शुरू होने वाला रेचित (स्वस्तिकरेचित), **पृष्ठस्वस्तिकसंज्ञकं** पृष्ठस्वस्तिक संज्ञा वाला **स्यात्** (योजित) होता है। **दिक्स्वस्तिकं कटीपूर्वं समं** दिक्स्वस्तिक, कटी पूर्व वाला सम (कटीसम), **घूर्णितनामकम्** घूर्णित नाम वाला, **भ्रमरं** भ्रमर **वृश्चिक-आद्यं च रेचितम्** और वृश्चिक शुरू वाला रेचित (वृश्चिकरेचित), **पार्श्वपूर्वकं निकुट्टं** पार्श्व पूर्व वाला निकुट्ट (पार्श्वनिकुट्ट), **उरःपूर्वं मण्डलम्**, उरः पूर्व वाला मंडल (उरोमंडल), **संनतं ततः** उसके बाद सिंहाकर्षित, नागापसर्पित नामक, **अथ** अब **केचित् सूरयः तु** कोई विद्वान् तो **वक्षःस्वस्तिकम् इच्छन्ति** वक्षःस्वस्तिक इच्छित करते हैं। दंडपक्ष करण, ललाटतिलक नाम वाला, **लता-आद्यं तु वृश्चिकं** लता से शुरू होने वाला वृश्चिक (लतावृश्चिक), **अथ** इसके बाद **निशुम्भितं भवेत्** निशुंभित होता है। (फिर) विद्युद्भ्रान्त नाम वाले के बाद गजविक्रीडित, **ततः** उसके बाद नितंब, विष्णुक्रान्त नामक, ऊरूद्वृत्त और आक्षिप्त, उरोमंडल संज्ञा वाला, नितंब और करिहस्त **वैकल्पिकं कटीछिन्नं** विकल्प से कटीछिन्न (ये) **पञ्चविंशतिसंख्यानि करणानि** पच्चीस संख्या वाले करण **पुरातनाः** प्राचीन (आचार्य) **आक्षिप्तरेचिते** आक्षिप्तरेचित में **इच्छन्ति** इच्छा करते हैं। **नितम्ब-उरोमण्डलयोः आवृत्त्या तु** नितंब और उरोमंडल की आवृत्ति से तो **सप्तविंशतिः** सत्ताईस (संख्या होती है)। **ये** जो **अत्र** इसमें **वक्षःस्वस्तिकं कटीछिन्नं च** वक्षःस्वस्तिक और कटीछिन्न **न मन्वते** नहीं मानते **तत्-मते अपि** उनके मत में भी **आवृत्तौ अपि** आवृत्ति होने पर भी **पञ्चविंशतिः एव स्यात्** पच्चीस (संख्या) ही होती हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) आनन्द० और आड्० संस्करणों में ८५१ क में 'कटीछिन्नं समं' पाठ है। आनन्द० की पादटिप्पणी में 'कटीपूर्वं समं' (७/८५७) पाठभेद दिया है। सिंह० की टीका में भी 'कटीसमं' है। अभि० में भी 'कटीसमं' ही है। 'कटीछिन्नं समं' के बजाय **कटीपूर्वं समं** ही संगत है इसलिये इसी का ग्रहण ऊपर किया गया है।

यह आक्षिप्तरेचित है। (७)

(रेचितः—८)

स्वस्तिकाद्यं रेचितं स्यादर्धरेचितकं ततः॥ ८५८॥

वक्षःस्वस्तिकमुन्मत्तसंज्ञमाक्षिप्तरेचितम्।
अर्धमत्तल्लिकरणं स्याद्रेचकनिकुट्टकम्॥ ८५९॥

भुजङ्गत्रस्तपूर्वं च रेचितं नूपुरं ततः।
वैशाखरेचितं कृत्वा भुजङ्गाञ्चितमाचरेत्॥ ८६०॥

दण्डरेचितकं चक्रमण्डलं वृश्चिकादिमम्।
रेचितं वृश्चिकादूर्ध्वं विवृत्तविनिवृत्तके॥ ८६१॥

विवर्तितं च गरुडप्लुतकं ललितं भवेत्।
मयूराद्यं सर्पितं च स्खलिताख्यं प्रसर्पितम्॥ ८६२॥

तलसंघट्टितमथो वृषभक्रीडितं ततः।
लोलितं षड्विंशतिर्या करणानामितीरिता॥ ८६३॥

तां कृत्वा विषमैर्भागैश्चतुर्धा दिक्चतुष्टये।
परिवृत्तिप्रकारेण प्रयुज्यान्ते समाचरेत्॥ ८६४॥

उरोमण्डलकं यत्र कटीछिन्नं स रेचितः।

इति रेचितः (८)

रेचित—८

८५८ ग-८६५ ख. (अ०) **स्वस्तिक-आद्यं रेचितं स्यात्** (पहले) स्वस्तिक पूर्व वाला रेचित (स्वस्तिकरेचित) (योजित) होता है। **ततः** उसके बाद अर्धरेचित, वक्षःस्वस्तिक, उन्मत्त संज्ञा वाला, आक्षिप्तरेचित (और) अर्धमत्तल्लि करण **स्यात्** होता है। (फिर) रेचकनिकुट्ट, भुजंगत्रस्त पूर्व वाला रेचित (भुजंगत्रस्तरेचित), नूपुर **ततः** उसके बाद वैशाखरेचित (योजित) करके भुजंगांचित **आचरेत्** करना चाहिये। दंडरेचित, चक्रमंडल, वृश्चिकरेचित, वृश्चिक (और उस) के बाद विवृत्त, विनिवृत्त, विवर्तित, गरुडप्लुत और ललित **भवेत्** (योजित) होता है। मयूरसर्पित, स्खलित, प्रसर्पित, तलसंघट्टित **अथ** अब वृषभक्रीडित, **ततः** उसके बाद लोलित **इति** यों **करणानां** करणों की **या** जो **षट्-विंशतिः ईरिता** छब्बीस (की संख्या) कही गई है **तां कृत्वा** उसे करके **विषमैः भागैः** विषम भागों से **चतुर्धा** चार प्रकार से **दिक्चतुष्टये** चार दिशाओं में **परिवृत्तिप्रकारेण** परिवृत्ति के प्रकार से **प्रयुज्य** प्रयुक्त करके **यत्र** जिसमें **अन्ते** अन्त में उरोमंडल (और) कटीछिन्न **समाचरेत्** योजित किया जाता है **सः रेचितः** वह रेचित (अंगहार होता है)।

यह रेचित है। (८)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(अर्धनिकुट्टकः—९)

नूपुराख्यं विवृत्तं च निकुट्टार्धनिकुट्टके॥ ८६५॥

अर्धरेचितकादूर्ध्वं स्याद्रेचकनिकुट्टकम्।
ललिताख्यं च वैशाखरेचितं चतुरं ततः॥ ८६६॥

दण्डरेचितकादूर्ध्वं भवेद्वृश्चिककुट्टितम्।
निकुट्टकं पार्श्वपूर्वं संभ्रान्तोद्घट्टिते ततः॥ ८६७॥

उरोमण्डलकादूर्ध्वं करिहस्तसमाह्वयम्।
कटीछिन्नं सप्तदश भवेदर्धनिकुट्टके॥ ८६८॥

इत्यर्धनिकुट्टकः (९)

अर्धनिकुट्टक—९

८६५ ग-८६८. (अ०) नूपुर नामक, विवृत्त, निकुट्ट, अर्धनिकुट्ट, अर्धरेचित के बाद रेचकनिकुट्टक (योजित) होता है। ललित नामक, वैशाखरेचित, चतुर, उसके बाद दंडरेचित फिर वृश्चिककुट्टित होता है। निकुट्टक, पार्श्वसंभ्रान्त, उद्घट्टित उसके बाद उरोमंडल, उसके बाद करिहस्त नामक (और) कटीछिन्न (ये) सप्तदश सत्रह (करण) **अर्धनिकुट्टके भवेत्** अर्धनिकुट्टक में (प्रयुक्त) होते हैं।

यह अर्धनिकुट्टक है। (९)

(वृश्चिकापसृतः—१०)

लतावृश्चिकमादौ स्यान्निकुञ्चितमतः परम्।
मत्तल्लि च नितम्बाख्यं करणं करिहस्तकम्॥ ८६९॥

कटीछिन्नं स्मृतं षष्ठं वृश्चिकापसृते बुधैः।
अत्र स्थाने नितम्बस्य भ्रमरं केचिदूचिरे॥ ८७०॥

इति वृश्चिकापसृतः (१०)

वृश्चिकापसृत—१०

८६९-८७०. (अ०) **आदौ** शुरू में **लतावृश्चिकं स्यात्** लतावृश्चिक होता है। **अतः परं** इसके बाद **निकुञ्चितं** निकुंचित, मत्तल्लि, नितंब नामक करण, करिहस्त और **षष्ठं कटीछिन्नं** छठा कटीछिन्न **बुधैः** विद्वानों के द्वारा **वृश्चिकापसृते स्मृतं** वृश्चिकापसृत में कहा गया है। **अत्र** इसमें **केचित्** किन्हीं (आचार्यों) ने **नितम्बस्य स्थाने** नितंब के स्थान पर **भ्रमरम् ऊचिरे** भ्रमर कहा है।

यह वृश्चिकापसृत है। (१०)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(अलातकः—११)

स्वस्तिकं व्यंसितं द्विरलाताख्योर्ध्वजानुनी।
निकुञ्चितार्धसूच्याख्यविक्षिप्तोद्वृत्तकान्यथ॥ ८७१॥

आक्षिप्तं करिहस्तं स्यात्कटीछिन्नमलातके।
एकादश स्युः करणान्येकं द्विर्व्यंसितेऽधिकम्॥ ८७२॥

इत्यलातकः (११)

अलातक—११

८७१-८७२. (अ०) स्वस्तिक, व्यंसितं द्विः व्यंसित दो बार, अलात नामक, ऊर्ध्वजानु, निकुंचित, अर्धसूची नामक, विक्षिप्त और उद्वृत्त, अथ इसके बाद आक्षिप्त, करिहस्त, कटीछिन्न स्यात् (योजित) होता है। अलातके अलातक में एकादश करणानि स्युः (ये) ग्यारह करण होते हैं। व्यंसिते द्विः व्यंसित दो बार होने पर एकम् अधिकम् एक अधिक (होता है)।

यह अलातक है। (११)

(परावृत्तः—१२)

दक्षिणाङ्गेन जनितं शकटास्यमलातकम्।
भ्रमरं वाममङ्गं च निकुट्टितकरान्वितम्॥ ८७३॥

करिहस्तं कटीछिन्नं करणानि क्रमादिति।
परावृत्ते षडुक्तानि श्रीमत्सोढलसूनुना॥ ८७४॥

नमनोन्नमनं तज्ज्ञैरङ्गस्योक्तं निकुट्टकम्।

इति परावृत्तः (१२)

परावृत्त—१२

८७३-८७५ ख. (अ०) दक्षिण-अङ्गेन जनितं दाहिने अंग से जनित, (फिर) शकटास्य, अलातक, भ्रमर, वामम् अङ्गं बायें अंग वाले निकुट्टित हस्तयुक्त करिहस्त, कटीछिन्न करण इति क्रमात् इस क्रम से षट् छ (करण) श्रीमत्-सोढलसूनुना श्रीमान् सोढलपुत्र (शार्ङ्गदेव) के द्वारा परावृत्ते उक्तानि परावृत्त में कहे गये हैं। तत्-ज्ञैः उसके ज्ञाताओं के द्वारा अङ्गस्य नमन-उन्नमनम् अंग का नीचे और ऊपर आना-जाना निकुट्टकम् उक्तं निकुट्टक कहा गया है।

यह परावृत्त है। (१२)

(परिवृत्तकरेचितः—१३)

नितम्बं करणं कृत्वा कुर्यात्स्वस्तिकरेचितम्॥ ८७५॥

विक्षिप्ताक्षिप्तकमथो लतावृश्चिकसंज्ञकम्।
उन्मत्तं करिहस्तं च भुजङ्गत्रासितं ततः॥ ८७६॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आक्षिप्तकं नितम्बं च नितम्बान्तान्यमून्यथ।
नव भ्रमरकाख्येण परिवृत्तं समाचरेत्॥ ८७७॥

दिगन्तरमुखे कृत्वा व्यावृत्य परयोर्दिशोः।
करिहस्तकटीछिन्ने कुर्यादाद्यदिशि स्थितः॥ ८७८॥

यत्र तं प्राहुराचार्याः परिवृत्तकरेचितम्।
परिवृत्तविधिश्चायं त्यक्त्वान्त्यं करणद्वयम्॥ ८७९॥

सर्वेषामङ्गहाराणां शार्ङ्गदेवेन सूरिणा।
भट्टाभिनवगुप्तादिमतज्ञेन निगद्यते॥ ८८०॥

इति परिवृत्तकरेचितः (१३)

परिवृत्तकरेचित—१३

८७५ ग-८८०. (अ०) **नितम्बं करणं कृत्वा** नितंब करण करके **स्वस्तिकरेचितं कुर्यात्** स्वस्तिकरेचित करें। **अथ** इसके बाद विक्षिप्ताक्षिप्तक, लतावृश्चिक नाम वाला, उन्मत्त, करिहस्त और भुजंगत्रासित, ततः उसके बाद आक्षिप्त और नितंब, **नितम्ब-अन्तानि अमूनि नव** नितंब के अन्त (तक) वाले ये नौ **भ्रमरक-आख्येण** भ्रमर नाम वाले (करण) से **परिवृत्तं** परिवर्तन करके **दिक्-अन्तरमुखे कृत्वा** दूसरी दिशा में मुँह करके **समाचरेत्** (योजित) करें। **परयोः दिशोः** दूसरी दो दिशाओं में **व्यावृत्त** घूम कर **आद्यदिशि स्थितः** पहली दिशा में (मुँह करके) खड़े होकर **यत्र** जिसमें करिहस्त और कटीछिन्न **कुर्यात्** करे **तम्** उसे **आचार्याः** आचार्य **परिवृत्तकरेचितं प्राहुः** परिवृत्तकरेचित कहते हैं। **अन्त्यं करणद्वयं त्यक्त्वा** अन्तिम दो करण छोड़ कर **अयं परिवृत्तविधिः** यह परिवर्तन की विधि **भट्ट-अभिनवगुप्त-आदिमतज्ञेन सूरिणा शार्ङ्गदेवेन** भट्ट अभिनवगुप्त आदि के मत को जानने वाले विद्वान् शार्ङ्गदेव के द्वारा **सर्वेषाम् अङ्गहाराणां निगद्यते** सारे अंगहारों में कहा जाता है (कहा गया है)।

यह परिवृत्तकरेचित है। (१३)

(उद्वृत्तकः—१४)

नूपुरात्करणादूर्ध्वं भुजङ्गाञ्चितमाचरेत्।
गृध्रावलीनकं द्वे च विक्षिप्ते पृथगङ्गजे॥ ८८१॥

उद्वृत्तमथ सूच्याख्यं नितम्बमथ वृश्चिकम्।
लतापूर्वं कटीछिन्नं नवभिः करणैरिति॥ ८८२॥

उद्वृत्तको द्विर्विक्षिप्तोद्वृत्ताख्यमधिकं द्वयम्।

इत्युद्वृत्तकः (१४)

उद्वृत्त—१४

८८१-८८३ ख. (अ०) **नूपुरात् करणात् ऊर्ध्वं** नूपुर करण के बाद **भुजङ्गाञ्चितम् आचरेत्** भुजंगांचित (योजित) करना चाहिये। (फिर) गृध्रावलीनक, **पृथक् अङ्गजे** अलग-अलग अंग से उत्पन्न होने वाले (किये जाने वाले) **द्वे विक्षिप्ते** दो विक्षिप्त, **उद्वृत्तम् अथ सूचि-आख्यम् च** उद्वृत्त फिर सूची नामक, नितंब, अब **लतापूर्वं वृश्चिकं** लता पूर्व वाला वृश्चिक (लतावृश्चिक),

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कटीछिन्न इति नवभिः करणैः इस प्रकार नौ करणों से उद्वृत्तकः उद्वृत्त (होता है)। विक्षिप्त-उद्वृत्त-आख्यं द्विः विक्षिप्त (और) उद्वृत्त नाम वाले दो बार होने पर द्वयम्-अधिकं दो अधिक (अर्थात् ग्यारह करण होते हैं)।

(सर०) आनन्द० और आड्० दोनों में 'उद्वृत्तमध्येर सूचाख्यं' पाठ है। 'मध्येर' की अर्थसंगति नहीं है और उससे पाद में एक अक्षर बढ़ जाने से छन्द के नियम का भी भंग होता है। अन्य कोई पाठान्तर प्राप्त नहीं है। किन्तु यहाँ 'मध्येर' के स्थान पर 'मथ' करने से उद्वृत्तमथ हो जाने पर दोनों विसंगतियाँ दूर हो जाती हैं इसलिये डॉ० तारळेकर के आधार पर यही रखा है।

यह उद्वृत्त है। (१४)

(संभ्रान्तः—१५)

विक्षिप्तमञ्चितं गण्डसूचि सर्वान्तिमं ततः॥ ८८३॥

अर्धसूचि ततो दण्डपादं वामाङ्गसाधितम्।
चतुरं भ्रमरं चाथ नूपुराक्षिप्तनामके॥ ८८४॥

अर्धस्वस्तिकसंज्ञं च नितम्बं करिहस्तकम्।
उरोमण्डलसंज्ञं च कटीछिन्नमिति क्रमात्॥ ८८५॥

करणैः पञ्चदशभिः संभ्रान्तमभणन्बुधाः।

इति संभ्रान्तः (१५)

संभ्रान्त—१५

८८३ ग-८८६ ख. (अ०) विक्षिप्त, अंचित, गंडसूचि, सर्व-अन्तिमं सबसे अन्त वाला (गंगावतरण), उसके बाद अर्धसूचि, फिर वाम-अङ्गसाधितं दण्डपादं बायें अंग से किया हुआ दंडपाद, चतुर, भ्रमर, अब नूपुर और आक्षिप्त नाम वाले, अर्धस्वस्तिक संज्ञक, नितंब, करिहस्त, उरोमंडल संज्ञा वाला और कटीछिन्न इति क्रमात् इस क्रम से पञ्चदशभिः करणैः पन्द्रह करणों से बुधाः विद्वानों ने संभ्रान्तम् अभणन् संभ्रान्त कहा है।

(सर०) श्लोक ८८३ क में 'गण्डसूचीचि' में बीच में 'ची' अतिरिक्त आ गया है इसलिये उसे छोड़ कर 'सूचि' रखा है।

यह संभ्रान्त है। (१५)

(स्वस्तिकरेचितः—१६)

वैशाखरेचितादूर्ध्वं वृश्चिकं द्विरिदं द्वयम्॥ ८८६॥

निकुट्टकाभिधादूर्ध्वं क्रमावाप्तलताकरम्।
कटीछिन्नं चतुर्थं चेत्तदा स्वस्तिकरेचितम्॥ ८८७॥

ज्ञेयमाद्यद्वयाभ्यासादधिकं करणद्वयम्।

इति स्वस्तिकरेचितः (१६)

इति त्र्यश्रमानेन षोडशाङ्गहाराः

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्वस्तिकरेचित—१६

८८६ ग-८८८ ख. (अ०) वैशाखरेचित के बाद वृश्चिक इदं द्वयं द्विः ये दोनों दो बार, निकुट्टक नामक के बाद **क्रम-अवाप्तलताकरं** क्रम प्राप्त हुआ लताकर **चतुर्थं कटीछिन्नं चेत्** (और) यदि चौथा कटीछिन्न (हो) **तदा** तब **स्वस्तिकरेचितं ज्ञेयं** स्वस्तिकरेचित समझना चाहिये। **आद्यद्वय-अभ्यासात्** शुरू के दो की आवृत्ति से **करणद्वयम् अधिकं** दो करण अधिक (होते हैं)।

यह स्वस्तिकरेचित है। (१६)

त्र्यश्र मान वाले सोलह अंगहार समाप्त

मृदङ्गैर्गोमुखैर्भम्भाभेरीपटहडिण्डिमैः॥ ८८८॥

पणवैर्दर्दुराद्यैश्च वाद्यैस्ताललयानुगैः।
वर्धमानासारितेषु पाणिकागीतकादिषु॥ ८८९॥

पूर्वरङ्गस्य चाङ्गेषु धीरैरुत्थापनादिषु।
अङ्गहाराः प्रयोक्तव्याः श्रेयः परमभीप्सुभिः॥ ८९०॥

विनियोगोऽङ्गहारेषु करणानामितीरितः।
आहुः पृथक्प्रयोगेऽपि करणानां महत्फलम्॥ ८९१॥

इति द्वात्रिंशदङ्गहारलक्षणम्

८८८ ग-८९१. (अ०) मृदंग, गोमुख, भंभा, भेरी, पटह और डिंडिम, पणव और दर्दुर आदि **तालय-अनुगैः वाद्यैः** ताल और लय का अनुसरण करने वाले वाद्यों के द्वारा **वर्धमान-आसारितेषु** वर्धमान और आसारितों में, **पाणिकागीतक-आदिषु** पाणिका और गीतक आदि में **पूर्वरङ्गस्य उत्थापन-आदि-अङ्गेषु च** और पूर्वरंग के उत्थापन आदि अंगों में **परं श्रेयः अभीप्सुभिः धीरैः** परम श्रेय पाने की इच्छा रखने वाले विद्वानों के द्वारा **अङ्गहाराः प्रयोक्तव्याः** अंगहारों का प्रयोग करना चाहिये। **अङ्गहारेषु** अंगहारों में **करणानां विनियोगः** करणों का विनियोग **इति ईरितः** इस प्रकार कहा गया है। **करणानां पृथक् प्रयोगे अपि** करणों के अलग-अलग (स्वतंत्र) प्रयोग में भी **महत्फलम् आहुः** (आचार्य) महान् फल कहते हैं।

बत्तीस अंगहारों के लक्षण समाप्त

(रेचकाः)

रेचकानथ वक्ष्यामश्चतुरो भरतोदितान्।
पादयोः करयोः कट्या ग्रीवायाश्च भवन्ति ते॥ ८९२॥

रेचक

८९२. (अ०) **अथ** अब **भरत-उदितान्** भरत द्वारा कहे गये **चतुरः रेचकान्** चार रेचकों को **वक्ष्यामः** कहेंगे। **ते** वे **पादयोः** दोनों पैरों के, **करयोः** दोनों हाथों के, **कट्याः** कमर के **ग्रीवायाः च** और गर्दन के **भवन्ति** होते हैं।

(पादरेचकः)

पाष्ण्र्यङ्गुष्ठाग्रयोरन्तर्बहिश्च सततं गतिः।
नमनोन्नमनोपेता प्रोच्यते पादरेचकः॥ ८९३॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पादरेचक

८९३. (अ०) पार्ष्णि-अङ्गुष्ठ-अग्रयोः एड़ी और अँगूठों की नोकों के नमन-उन्नमन-उपेता नीचे जाने और ऊपर आने से युक्त अन्तः बहिः च अन्दर और बाहर सततं गतिः निरन्तर होने वाली गति पादरेचकः प्रोच्यते पादरेचक कहा जाता है।

(सर०) नमन-उन्नमन-उपेता को स्पष्ट करते हुए कल्लि० ने कहा कि जब एड़ी की नमनयुक्त अन्तर्गति हो तो अँगूठे के अग्र की भी नमनयुक्त अन्तर्गति और अँगूठे के अग्र की उन्नमनयुक्त बहिर्गति हो तो एड़ी की भी वैसी ही गति समझनी चाहिये।

(कररेचकः)

परितो भ्रमणं तूर्णं हस्तयोर्हंसपक्षयोः।
यत्पर्यायेण रचितं स भवेत्कररेचकः॥ ८९४॥

विरलप्रसृताङ्गुष्ठाङ्गुलेस्तिर्यग्भ्रमेण च।

कररेचक

८९४-८९५ ख. (अ०) हंसपक्षयोः हस्तयोः दोनों हंसपक्ष हस्तों का पर्यायेण पर्याय से परितः सब ओर यत् तूर्णं भ्रमणं जो द्रुत भ्रमण रचितं योजित (होता है) सः वह कररेचकः भवेत् कररेचक होता है। विरलप्रसृत-अङ्गुष्ठ-अङ्गुलेः (वह) अलग-अलग (और) फैले हुए अँगूठे और उँगली का तिर्यक् भ्रमेण च तिरछा भ्रमण होने पर भी (होता है)।

(कटीरेचकः)

सर्वतो भ्रमणं कट्याः कटीरेचकमूचिरे॥ ८९५॥

कटीरेचक

८९५ ग-घ. (अ०) कट्याः कमर का सर्वतः भ्रमणं चारों ओर घूमना कटीरेचकम् ऊचिरे कटीरेचक कहा गया है।

(कण्ठरेचकः)

ग्रीवाया विधुतभ्रान्तिः कथ्यते कण्ठरेचकः।

कंठरेचक

८९६ क-ख. (अ०) ग्रीवायाः विधुतभ्रान्तिः गर्दन का गोल घूमना कण्ठरेचकः कथ्यते कंठरेचक (अर्थात् ग्रीवारेचक) कहा जाता है।

अङ्गहाराङ्गमप्येते जनयन्ति पृथक् फलम्॥ ८९६॥

इति रेचकलक्षणम्

८९६ ग-घ. (अ०) एते ये अङ्गहार-अङ्गम्-अपि अंगहारों के अंग (के रूप में) भी (हों तो) पृथक् फलम् अलग फल जनयन्ति उत्पन्न करते हैं।

रेचकों के लक्षण समाप्त

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(चार्यः)

विचित्रमङ्घ्रिजङ्घोरुकटीकर्म समं कृतम्।
चारी स्यात्करणे ङीषि चरेरिञ्प्रत्ययान्ततः॥ ८९७॥

चारी

८९७. (अ०) **समं कृतं** युगपत् (एकसाथ) किया हुआ **विचित्रं** सौंदर्यपूर्ण **अङ्घ्रिजङ्घा-ऊरुकटीकर्म** पैर, टाँग, जाँघ (और) कमर का कर्म **चारी स्यात्** चारी होता है। **चरेः** 'चर्' (धातु) से **करणे** करण (अर्थात् साधन अर्थ) में **'इञ्'** ('इ') **प्रत्ययान्ततः** प्रत्ययान्त (चारि) होने से (उसमें फिर स्त्रीलिंग सूचक) **ङीषि** 'ङीष्' (प्रत्यय) ('ई') होने पर (चारी शब्द बनता है)।

(सर०) श्लोक में पहले चारी का यह सामान्य लक्षण दिया गया कि पैर, टाँग आदि की क्रिया चारी होती है। लेकिन कल्लि० ने यह स्पष्ट किया कि इन अंगों का कर्म चारी होता है इतना ही कहने से पैर आदि में से हरेक की क्रिया चारी हो जाती इसलिये **समं** कहा यानी अलग-अलग नहीं बल्कि एकसाथ हुई क्रिया। फिर भी लौकिक कर्म में भी चारी की अतिव्याप्ति हो जाती इसलिये **विचित्रं** कहा क्योंकि विचित्रता नर्तन में ही होती है अन्यत्र नहीं।

चारी शब्द की जो व्युत्पत्ति ग्रन्थकार ने दी है उसे कल्लि० ने यों स्पष्ट किया है। गति और भक्षण अर्थ वाली 'चर्' धातु से गति अर्थ में 'चार्यते' यानी हिलाना अर्थ लेकर ऐसे 'करण' यानी साधन के अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय के द्वारा 'चारि' शब्द बनता है। फिर 'चारि' में स्त्रीलिंग प्रत्यय 'ङीष्' लगाने पर चारी रूप संपन्न होता है।

हस्तो वाभिनये गत्यां चरणो यो यदेप्सितः।
तत्संपत्त्युचिता चारी कार्या तदुचिता परा॥ ८९८॥

एवमन्योन्यनियमात्सैव व्यायाम उच्यते।
चारी च करणं खण्डो मण्डलं चेति तद्भिदाः॥ ८९९॥

८९८-८९९. (अ०) **अभिनये** अभिनय में **हस्तः वा** हाथ के अनुसार, **गत्यां** गति में **यः चरणः** जो पैर **यदा ईप्सितः** जब इष्ट हो **तत् संपत्ति-उचिता** उसके स्वरूप की निष्पत्ति के योग्य **चारी कार्या** चारी करनी चाहिये। **तत्-उचिता परा** (पहली चारी) के योग्य दूसरी (चारी करनी चाहिये।) **एवम् अन्योन्यनियमात्** इसी तरह एक दूसरी से संबद्ध नियम से **सा एव** वही (चारी ही) **व्यायामः उच्यते** व्यायाम कहा जाता है। **चारी च करणं खण्डः मण्डलं च इति** चारी और करण, खंड और मंडल ये **तत् भिदाः** उस ('व्यायाम') के भेद (होते हैं)।

(सर०) चारी की इतिकर्तव्यता (कैसे करना चाहिये) यहाँ बताई गई है। कल्लि० ने कहा कि **वा** शब्द उपमान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है यानी अभिनय करते समय जैसा हस्त हो उसके अनुसार चरण होना चाहिये। **संपत्ति** का अर्थ सिंह० ने रूप की निष्पत्ति दिया है। कल्लि० ने इसी को गति के अनुकरण में अंचित आदि पादभेदों में से जो चरण अभीष्ट हो उस चरण के संपादन के योग्य चारी कह कर स्पष्ट किया। **तदुचिता** यानी पहली चारी के अनुसार दूसरी चारी और **अन्योन्यनियमात्** अर्थात् दूसरी चारी के अनुसार तीसरी आदि चारी करनी चाहिये।

तत्रैकपादनिष्पाद्या चारी चार्येव कीर्तिता।
पादद्वयेन करणं तन्नृत्तकरणात्पृथक्॥ ९००॥

करणैः स्यात्त्रिभिः खण्डो मण्डलं खण्डकैस्त्रिभिः।
चतुर्भिर्वा क्रमात्ताले त्र्यश्रे च चतुरश्रके॥ ९०१॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

९००-९०१. (अ०) तत्र उनमें एकपादनिष्पाद्या चारी एक पैर से निष्पन्न की जाने वाली चारी चारी एव कीर्तिता चारी ही कही गई है। पादद्वयेन करणं दोनों पैरों से करण (होता है)। तत् वह नृत्तकरणात् पृथक् नृत्तकरण से अलग (है)। त्रिभिः करणैः तीन करणों से खण्डः स्यात् खंड होता है। त्रिभिः चतुर्भिः वा खण्डकैः तीन या चार खंडकों से क्रमात् क्रम से त्र्यश्रे च चतुरश्रके ताले त्र्यश्र और चतुरश्र ताल में मण्डलं मंडल (होता है)।

(सर०) कल्लि० ने यह स्पष्टीकरण दिया कि नृत्तकरण हाथ और पैर की क्रिया से होता है और चारी का भेदरूप करण केवल पादक्रिया से होता है। इस रूप में दोनों भिन्न हैं। क्रमात् यानी त्र्यश्र चाचपुट ताल में तीन खण्डकों से और चतुरश्र चच्चत्पुट ताल में चार खंडकों से मंडल होता है।

भौमी चाकाशिकीत्येषा द्वेधा भौम्योऽत्र षोडश।

९०२ क-ख. (अ०) एषा यह (चारी) भौमी च आकाशिकी इति द्वेधा भौमी और आकाशिकी यों दो प्रकार की (होती है)। अत्र इनमें से भौम्यः षोडश भौमी सोलह (होती हैं)।

(सर०) कल्लि० ने कहा कि एक पैर से निष्पन्न होने वाली प्रकृता चारी मानी जाती है। भूमि संबन्धी भौमी और आकाश संबन्धी आकाशिकी होती है। इसका आशय यह है कि जिसमें पैर की क्रिया मुख्यतः भूमि पर हो वह भौमी और जिसमें मुख्यतः भूमि से ऊपर हो वह आकाशिकी होती है।

(मार्गचारीषु भौमी नामुद्देशः)

समपादा स्थितावर्ता शकटास्या च विच्यवा॥ ९०२॥

अध्यर्धिका चाषगतिरेडकाक्रीडिता तथा।
समोत्सरितमत्तल्ली मत्तल्ल्युत्स्पन्दिताड्डिता॥ ९०३॥

स्पन्दितावस्पन्दिताख्या बद्धा च जनिताभिधा।
ऊरूद्वृत्तेत्यथ ब्रूमः षोडशाकाशिकीरिमाः॥ ९०४॥

इति भौम्यः

मार्ग चारियों में भौमी का उद्देश

९०२ ग-९०४. (अ०) समपादा, स्थितावर्ता, शकटास्या और विच्यवा, अध्यर्धिका, चाषगति, एडकाक्रीडिता, समोत्सरितमत्तल्ली, मत्तल्ली, उत्स्पन्दिता, अड्डिता, स्पन्दिता, अवस्पन्दिता नाम वाली, बद्धा और जनिता नामक (और) ऊरूद्वृत्ता इति ये (सोलह भौमी चारी हैं)। अथ अब इमाः ये षोडश आकाशिकीः ब्रूमः सोलह आकाशिकी (चारी) कहते हैं।

(सर०) आड्० में उद्देश में स्यन्दिता और अवस्यन्दिता पाठ है लेकिन लक्षण निरूपण में स्पन्दिता और अवस्पन्दिता है। सिंह० की टीका में भी यही है इसलिये हमने भी यही रखा है।

यहाँ ग्रन्थकार ने मार्ग और देशी में चारियों का विभाजन नहीं किया। लेकिन श्लोक ९०७ ग-घ में ग्रन्थकार ने स्वयं कहा कि अब देशी चारी कहेंगे और सारी चारियों के उद्देश के अन्त में 'मार्गदेशीगताश्चार्यः' कहा (श्लो० ९१६ ग)। इस आधार हमने यहाँ 'मार्ग' शीर्षक में ही रख दिया है।

ये भौमी (चारी) हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(मार्गचारीषु आकाशिकीनामुद्देशः)

अतिक्रान्ताप्यपक्रान्ता पार्श्वक्रान्ता मृगप्लुता।
ऊर्ध्वजानुरलाता च सूची नूपुरपादिका॥ ९०५॥

डोलापादा दण्डपादा विद्युद्भ्रान्ता भ्रमर्यपि।
भुजङ्गत्रासिताक्षिप्ताविद्धोद्वृत्तेति कीर्तिताः॥ ९०६॥

भरताभिमताश्चार्यो द्वात्रिंशन्मिलितास्तु ताः।
देशीप्रसिद्धाः सन्त्यन्यास्ताः संप्रत्यभिदध्महे॥ ९०७॥

इत्याकाशिक्याः

मार्ग चारियों में आकाशिकी का उद्देश

९०५-९०७. (अ०) अतिक्रान्ता, अपक्रान्ता, पार्श्वक्रान्ता, मृगप्लुता, ऊर्ध्वजानु और अलाता, सूची, नूपुरपादिका, डोलापादा, दंडपादा, विद्युद्भ्रान्ता और भ्रमरी, भुजंगत्रासिता, आक्षिप्ता, आविद्धा और उद्वृत्ता इति यों ताः वे मिलिताः तु (दोनों) मिला कर तो भरत-अभिमताः भरत संमत द्वात्रिंशत् चार्यः कीर्तिताः बत्तीस चारियाँ कही गई हैं। अन्याः अन्य देशीप्रसिद्धाः सन्ति देशीप्रसिद्ध (चारी) होती हैं। संप्रति अब ताः अभिदध्महे उन्हें कहते हैं (कहेंगे)।

ये आकाशिकी (चारी) हैं।

(देशीचारीषु भौमीनामुद्देशः)

रथचक्रा परावृत्ततला नूपुरविद्धका।
तिर्यङ्मुखा मराला च करिहस्ता कुलीरिका॥ ९०८॥

विश्लिष्टा कातरा पार्ष्णिरेचिताप्यूरुताडिता।
ऊरुवेणी तलोद्वृत्ता हरिणत्रासिका परा॥ ९०९॥

अर्धमण्डलिका तिर्यक्कुञ्चिता च मदालसा।
संचारितोत्कुञ्चिता च स्तम्भक्रीडनिका ततः॥ ९१०॥

चारी लङ्घितजङ्घाख्या स्फुरिताप्यवकुञ्चिता।
अपि संघट्टिता खुत्ता स्वस्तिका तलदर्शिनी॥ ९११॥

पुराट्यर्धपुराटी च सरिका स्फुरिका ततः।
निकुट्टिका लताक्षेपाप्यड्डुस्खलितिका परा॥ ९१२॥

समस्खलितिका भौम्यः पञ्चत्रिंशदितीरिताः।

इति देशीचारीषु भौम्यः

देशीचारियों में भौमी का उद्देश

९०८-९१३ ख. (अ०) रथचक्रा, परावृत्ततला, नूपुरविद्धका, तिर्यङ्मुखा, मराला और करिहस्ता, कुलीरिका, विश्लिष्टा,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कातरा, पार्ष्णिरेचिता और ऊरुताडिता, ऊरुवेणी, तलोद्वृत्ता, हरिणत्रासिका, अर्धमंडलिका, तिर्यक्कुंचिता और मदालसा, संचारिता, उत्कुंचिता, स्तंभक्रीडनिका, उसके बाद लंघितजंघा नामक चारी, स्फुरिता और अवकुंचिता, संघट्टिता और खुत्ता, स्वस्तिका, तलदर्शिनी, पुराटी, अर्धपुराटी और सरिका, स्फुरिका, उसके बाद निकुट्टिका, लताक्षेपा, अड्डुस्खलिता और समस्खलिता इति यों पञ्चत्रिंशत् पैंतीस भौम्यः ईरिताः (देशी) भौमी (चारी) कही गई हैं।

ये देशीचारियों में भौमी हैं।

(देशीचारीष्वाकाशिकीनामुद्देशः)

विद्युद्भ्रान्ता पुरःक्षेपा विक्षेपा हरिणप्लुता॥ ११३॥

अपक्षेपा च डमरी दण्डपादाङ्घ्रिताडिता।
जङ्घालङ्घनिकालाता जङ्घावर्ता च वेष्टनम्॥ ११४॥

उद्वेष्टनमथोत्क्षेपः पृष्ठोत्क्षेपश्च सूचिका।
विद्धा प्रावृतमुल्लोल इत्यत्रैकोनविंशतिः॥ ११५॥

व्योमगा उभयास्तु स्याच्चतुष्पञ्चाशदूचिरे।
मार्गदेशीगताश्चार्यः षडशीतिरिमा मताः॥ ११६॥

इति देशीचारीष्वाकाशिक्यः

देशीचारियों में आकाशिकी का उद्देश

११३ ग-११६. (अ०) विद्युद्भ्रान्ता, पुरःक्षेपा, विक्षेपा, हरिणप्लुता, अपक्षेपा और डमरी, दंडपादा, अङ्घ्रिताडिता, जंघालंघनिका, अलाता, जंघावर्ता और वेष्टन, उद्वेष्टन, इसके बाद उत्क्षेप, पृष्ठोत्क्षेप, सूचिका, विद्धा, प्रावृत्त और उल्लोल इति यों अत्र एकोनविंशतिः यहाँ (देशी में) इक्कीस व्योमगा आकाशिकी (होती हैं)। उभयाः तु दोनों मिला कर तो चतुः पञ्चाशत् ऊचिरे स्यात् चौपन कही गई हैं। मार्गदेशीगताः मार्ग (और) देशी में (कुल) इमाः षट्-अशीतिः ये छियासी चार्यः मताः चारियाँ मानी गई हैं।

ये देशीचारियों में आकाशिकी हैं।

(तासां लक्षणानि)

(तत्र भौम्यः—क)

अथ भौम्यः—

लक्षणानि क्रमात्तासां चारीणामभिदध्महे।

उनके लक्षण

उनमें से भौमी—क

११७ क-ख. (अ०) अथ भौम्यः अब भौमी (चारियों के लक्षण)—

क्रमात् क्रम से तासां चारीणां लक्षणानि उन चारियों के लक्षण अभिदध्महे कहते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) चारियों का उद्देश करते समय उन्हें दो वर्गों में रखा है जिनमें से दूसरे वर्ग को देशीचारी कहा है लेकिन पहले वर्ग को कोई नाम नहीं दिया है। मार्ग और देशी शब्दों के संदर्भ में यह स्मरण रखना चाहिये कि ना०शा० के परवर्ती काल में भरतोक्त सभी रूप मार्ग के अन्तर्ग आ गये और शेष देशी में। इस दृष्टि से यहाँ कही गई पहले वर्ग की चारी मार्ग चारी कही जायँगी।

प्रस्तुत श्लोक से ग्रन्थकार मार्ग चारियों के लक्षण दे रहे हैं।

(समपादा—१)

निरन्तरौ समनखौ पादौ कृत्वा स्थितो यदा॥ ९१७॥

स्थानेन समपादेन समपादा तदोदिता।
प्रचारयोग्यतामात्राच्चारी स्थानेऽप्यसौ मता॥ ९१८॥

इति समपादा (१)

समपादा—१

९१७ ग-९१८. (अ०) **निरन्तरौ** एक साथ मिलाये हुए **समनखौ पादौ कृत्वा** दोनों समनख पैर करके **यदा** जब (नर्तक) **समपादेन स्थानेन** समपाद स्थान से **स्थितः** खड़ा होता है **तदा** तब **समपादा उदिता** समपादा (चारी) कही गई है। **प्रचारयोग्यतामात्रात्** प्रचार (गति) की योग्यता मात्र से **चारी** (यह) चारी (मानी जाती है)। **असौ** यह **स्थाने अपि मता** स्थानकों में भी (समपादा) मानी गई है।

(सर०) इस कारिका पर कल्लि० की टीका इस प्रकार है। **निरन्तरौ** अर्थात् एक साथ मिलाये हुए। **समनखौ** अर्थात् दोनों के नख समान हों ऐसी एकसी एड़ियों और ऊपर के सिरे वाले। पहले पैर इस तरह करके फिर समपाद में खड़े हुए। दोनों पैरों में एक वितस्ति का अन्तर रहे। **स्थितः** पुल्लिंग प्रयोग नर्तकपरक होते हुए भी नर्तकी के लिये भी समझना चाहिये। **प्रचारेत्यादि** यानी समपादा में गति का अभाव होने पर भी प्रचार यानी गति की योग्यता होने से चारी कही जाती है यह समझना चाहिये। वास्तव में तो यह **स्थाने** स्थानकों में समपादा है। लेकिन चारी और स्थानक दोनों में यह संभव है।

यह समपादा है। (१)

(स्थितावर्ता—२)

चरणान्तरपार्श्वं चेद्गत्वाग्रतलसंचरः।
अन्तर्जानुः स्वस्तिकत्वं प्राप्तः पादस्तथेतरः॥ ९१९॥

विश्लिष्य पार्श्वं स्वंनीतः स्थितावर्ता तदोच्यते।

इति स्थितावर्ता (२)

स्थितावर्ता—२

९१९-९२० ख. (अ०) **अग्रतलसंचरः** (एक पैर) अग्रतलसंचर (करके) **चरणान्तरपार्श्वं गत्वा चेत्** यदि दूसरे पैर की बाजू में (बाहर के भाग की ओर) जाकर **अन्तर्जानुः** घुटने के भीतर (की ओर) **स्वस्तिकं प्राप्तः** स्वस्तिक प्राप्त हो (करे) **इतरः पादः** (और) दूसरा पैर **तथा** उसी तरह (यानी अग्रतलसंचर होकर) **विश्लिष्य** अलग होकर (स्वस्तिक करके) **स्वं पार्श्वं नीतः** स्वयं की बाजू की ओर ले जाया गया (हो) **तदा** तब **स्थितावर्ता उच्यते** स्थितावर्ता कही जाती है।

यह स्थितावर्ता है। (२)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(शकटास्या—३)

यत्र धृत्वा पूर्वकायं पादोऽग्रतलसंचरः॥ ९२०॥

प्रसार्योद्वाहितमुरः शकटास्या तदा भवेत्।
आस्यं क्षेप्यं हि शकटं चारीमेनामुपाश्रितैः॥ ९२१॥

इति शकटास्या (३)

शकटास्या—३

९२० ग-९२१. (अ०) यत्र जिसमें पूर्वकायं धृत्वा शरीर का सामने का (ऊपर का आधा) भाग (यत्न से, संतुलन सँभाल कर) धारण करके अग्रतलसंचरः पादः एक अग्रतलसंचर पैर प्रसार्य फैला कर उरः उद्वाहितं छाती उद्वाहित (करें) तदा तो (वह) शकटास्या भवेत् शकटास्या होती है। एनाम् चारीम् उपाश्रितैः इस चारी का अवलंब लेने वालों (इसे धारण करने वालों) के द्वारा शकटम् आस्यं हि क्षेप्यं शकट (गाड़ी) आस्य (यानी) क्षेप्य (गाड़ी आगे खींचने का अभिनय) करना चाहिये।

(विच्यवा—४)

उद्धृत्य समपादायाः पादौ यदि तलाग्रतः।
निकुट्टयेतां धरणीमुच्यते विच्यवा तदा॥ ९२२॥

इति विच्यवा (४)

विच्यवा—४

९२२. (अ०) समपादायाः समपादा के पादौ उद्धृत्य दोनों पैर ऊपर उठा कर यदि यदि धरणीं धरती को तल-अग्रतः तलुए के आगे की नोक से निकुट्टयेतां निकुट्टित करें तदा तो (उसे) विच्यवा उच्यते विच्यवा कहते हैं।

यह विच्यवा है। (४)

(अध्यर्धिका—५)

दक्षिणाङ्घ्रेः पार्ष्णिदेशे वामः पादो निधीयते।
दक्षिणस्त्वपसृत्य स्वे पार्श्वे त्र्यश्रतया स्थितः॥ ९२३॥

सार्धतालान्तरत्वेन दक्षिणोऽप्येवमेव चेत्।
वामपार्ष्णौ स च त्र्यश्रो भवेदध्यर्धिका तदा॥ ९२४॥

इत्यध्यर्धिका (५)

अध्यर्धिका—५

९२३-९२४. (अ०) दक्षिण-अङ्घ्रेः दाहिनी पैर की पार्ष्णिदेशे एड़ी पर वामः पादः विधीयते बायाँ पैर रखा जाता है दक्षिणः तु और दाहिना अपसृत्य दूर ले जाकर स्वे पार्श्वे अपनी बाजू में सार्धतालान्तरत्वेन डेढ़ ताल के अन्तर पर त्र्यश्रतया स्थितः तिकोना रखा हुआ (हो) सः च दक्षिणः अपि और वह दाहिना (पैर) भी एवम् एव चेत् यदि इसी तरह वामपार्ष्णौ बाईं एड़ी पर त्र्यश्रः तिकोना (रखा हो) तदा तो अध्यर्धिका भवेत् अध्यर्धिका होती है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) ताल एक नापविशेष है जिसका लक्षण अँगूठे और फैलाई हुई मध्यमा उँगली की नोकों के बीच की दूरी है। (श्लो० १०३६)

यह अध्यर्धिका है। (५)

(चाषगतिः—६)

तालमात्रं पुरः कृत्वा द्वितालं पृष्ठतो गते।
दक्षिणेऽङ्घ्रौ समं पादौ किंचिदुत्प्लुतिपूर्वकम्॥ ९२५॥

उपसृत्यापसर्पेतामपसृत्योपसर्पतः।
यत्र सत्रासगत्यादौ सैषा चाषगतिर्मता॥ ९२६॥

इति चाषगतिः (६)

चाषगति—६

९२५-९२६. (अ०) यत्र जिसमें दक्षिणे अङ्घ्रौ दाहिने पैर में तालमात्रं पुरः कृत्वा एक ताल आगे करके (आगे ले जाकर) द्वितालं पृष्ठतः गते दो ताल पीछे जाने पर समं पादौ दोनों समपाद किंचित् उत्प्लुतिपूर्वकम् अपसृत्य थोड़ा सा ऊपर उछल कर पास आकर अपसर्पेतां दूर जायँ (और) अपसृत्य उपसर्पतः दूर जाकर पास आते हों सत्रासगति-आदौ भययुक्त गति आदि में सा एषा वह ऐसी चाषगतिः मता चाषगति मानी गई है।

यह चाषगति है। (६)

(एडकाक्रीडिता—७)

किंचिदुत्प्लुत्य चरणौ यत्राग्रतलसंचरौ।
पर्यायशो निपततः सैडकाक्रीडिता मता॥ ९२७॥

इत्येडकाक्रीडिता (७)

एडकाक्रीडिता—७

९२७. (अ०) यत्र जिसमें अग्रतलसंचरौ चरणौ दोनों अग्रतलसंचर पैर किंचित् उत्प्लुत्य कुछ ऊँचा उछल कर पर्यायशः क्रम से निपततः नीचे आते हैं सा वह एडकाक्रीडिता मता एडकाक्रीडिता मानी गई है।

(सर०) एडका यानी बकरी। इसलिये बकरी के उछलने जैसी एडकाक्रीडिता चारी है।

यह एडकाक्रीडिता है। (७)

(समोत्सरितमत्तल्ली—८)

अभ्यन्तरेऽङ्घ्रेरन्यस्य पादेऽग्रतलसंचरे।
सजङ्घास्वस्तिकेऽथान्यपादेऽग्रतलसंचरे॥ ९२८॥

कृतेऽङ्घ्रयोर्घूर्णतोर्यत्रापसृतिश्चोपसर्पणम्।
समोत्सरितमत्तल्ली सा भवेन्मध्यमे मदे॥ ९२९॥

इति समोत्सरितमत्तल्ली (८)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

समोत्सरितमत्तल्ली—८

९२८-९२९. (अ०) **अङ्घ्रेः अभ्यन्तरे** एक पैर के भीतरी भाग में **अन्यस्य** दूसरा **अग्रतलसंचरे पादे** दूसरा अग्रतलसंचर पैर होने पर **अथ** फिर **अग्रतलसंचरे अन्यपादे** अग्रतलसंचर दूसरे पैर में **सजङ्घास्वस्तिके कृते** टाँग स्वस्तिक करने पर **यत्र** जिसमें **घूर्णतोः अङ्घ्रयोः** गोल घूमते हुए पैरों का **अपसृतिः च उपसर्पणं** दूर जाना और पास आना (हो) **सा** वह **समोत्सरितमत्तल्ली** समोत्सरितमत्तल्ली (होती है)। **मध्यमे मदे** (वह) मध्यम मद में **भवेत्** (प्रयुक्त) होती है।

(सर०) कल्लि० ने यह उल्लेख किया कि 'समप्रसृता' (समान रूप में फैली हुई) के लिये 'समोत्सरिता'—यह प्राकृत शब्द मुनि ने प्रयुक्त किया है, यह समझना चाहिये। मत्त जैसी चेष्टा के कारण 'मत्तल्ली' संज्ञा समझनी चाहिये। इस प्रकार समोत्सरितमत्तल्ली नाम हुआ।

यह समोत्सरितमत्तल्ली है।(८)

(मत्तल्ली—९)

भूमिश्लिष्टाखिलतलौ जङ्घास्वस्तिकसंयुतौ।
अर्धत्र्यश्रौ यदा पादौ घूर्णन्तौ वोपसर्पतः॥ ९३०॥

यद्वापसर्पतः सा स्यान्मत्तल्ली तरुणे मदे।

इति मत्तल्ली (९)

मत्तल्ली—९

९३०-९३१ ख. (अ०) **यदा** जब **अखिलतलौ भूमिश्लिष्टौ** पूरे तलुए धरती से लगे हुए **जङ्घास्वस्तिकसंयुतौ** दोनों टाँग स्वस्तिक से युक्त **अर्धत्र्यश्रौ पादौ** आधे तिकोने दोनों पैर **घूर्णन्तः वा** गोल घूमते हुए से **उपसर्पतः** पास आते हुए **यत् वा अपसर्पतः** अथवा दूर जाते हुए (हों) **सा मत्तल्ली** वह मत्तल्ली **तरुणे मदे स्यात्** तरुण मद में (योजित) होती है।

यह मत्तल्ली है।(९)

(उत्स्पन्दिता—१०)

कनिष्ठाङ्गुलिभागेनाङ्गुष्ठभागेन च क्रमात्॥ ९३१॥

रेचकस्यानुकारेण शनैरङ्घ्रिर्गतागतम्।
कुरुते यत्र सा चारी बुधैरुत्स्पन्दितोदिता॥ ९३२॥

औदासीन्याधश्च्युतिस्तु स्पन्द इत्यभिधीयते।
रेचितं नृत्तहस्तं च केचिदत्र प्रचक्षते॥ ९३३॥

इत्युत्स्पन्दिता (१०)

उत्स्पन्दिता—१०

९३१ ग-९३३. (अ०) **यत्र** जिसमें **क्रमात्** क्रम से **कनिष्ठा-अङ्गुलिभागेन** कनिष्ठा उँगली जितना **अङ्गुष्ठभागेन च** और अँगूठे जितना **रेचकस्य अनुकारेण** रेचक का अनुकरण करते हुए **शनैः** धीरे-धीरे **अङ्घ्रिः गत-आगतं कुरुते** पैर जाना (और) आना करे **सा** वह **बुधैः** विद्वानों के द्वारा **उत्स्पन्दिता चारी उदिता** उत्स्पन्दिता चारी कही गई है। **औदासीन्य-अधः च्युतिः**

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तु उदासीनता से नीचे गिरना तो (इसमें) स्पन्द इति अभिधीयते स्पन्द कहा जाता है। केचित् कोई (आचार्य) अत्र इसमें रेचितं नृत्तहस्तं च रेचित नृत्तहस्त भी प्रचक्षते कहते हैं।

यह उत्स्पन्दिता है। (१०)

(अड्डिता—११)

समाङ्घ्रेरग्रपृष्ठाभ्यामन्योऽग्रतलसंचरः।
निघृष्टश्चरणो यत्र क्रमात्तामड्डितां विदुः॥ ९३४॥

इत्यड्डिता (११)

अड्डिता—११

९३४. (अ०) यत्र जहाँ सम-अङ्घ्रेः अग्रपृष्ठाभ्यां समपाद की नोक और पिछले भाग से अन्यः दूसरा अग्रतलसंचरः चरणः अग्रतलसंचर पैर क्रमात् निघृष्टः क्रम से घिसता है ताम् अड्डितां विदुः उसे अड्डिता जानते हैं।

यह अड्डिता है। (११)

(स्पन्दिता—१२)

निषण्णोरुः समो वामो दक्षिणोऽङ्घ्रिः प्रसारितः।
पञ्चतालान्तरं तिर्यग्यस्यां सा स्पन्दिता मता॥ ९३५॥

इति स्पन्दिता (१२)

स्पन्दिता—१२

९३५. (अ०) यस्यां जिसमें समः वामः सम बायाँ (पैर) निषण्ण-ऊरुः बैठी हुई (स्थिति की) जाँघ वाला दक्षिणः अङ्घ्रिः दाहिना पैर पञ्चताल-अन्तरं पाँच ताल के अन्तर पर तिर्यक् प्रसारितः तिरछा फैलाया हुआ (हो) सा वह स्पन्दिता मता स्पन्दिता मानी गई है।

यह स्पन्दिता है। (१२)

(अवस्पन्दिता—१३)

अङ्घ्रिचारविपर्यासात्सैवावस्पन्दिता मता।

इत्यवस्पन्दिता (१३)

अवस्पन्दिता—१३

९३६ क-ख. (अ०) अङ्घ्रिचारविपर्यासात् पैरों की क्रिया उलट देने से सा एव वही (स्पन्दिता ही) अवस्पन्दिता मता अवस्पंदिता मानी गई है।

यह अवस्पन्दिता है। (१३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(बद्धा—१४)

ऊरुद्वयस्य वलनं जङ्घास्वस्तिकसंयुतम्॥ ९३६॥

भङ्क्त्वा वा स्वस्तिकं पादतलाग्रे मण्डलभ्रमम्।
कृत्वा पार्श्वं गते स्वं स्वं यत्र बद्धेति सा मता॥ ९३७॥

इति बद्धा (१४)

बद्धा—१४

९३६ ग-९३७. (अ०) **यत्र** जहाँ **जङ्घास्वस्तिकसंयुतं** स्वस्तिकयुक्त टाँगों वाली **ऊरुद्वयस्य वलनं** दोनों जाँघों का वलन (घुमाव हो) **स्वस्तिकं भङ्क्त्वा वा** अथवा स्वस्तिक को तोड़ कर (छोड़ कर, दूर करके) **पादतल-अग्रे** तलुओं की नोकों पर **मण्डलभ्रमणं कृत्वा** गोलाकार घूम कर **स्वं स्वं पार्श्वं गते** अपनी-अपनी बाजू में जाने पर (जायँ तो) **सा** वह **बद्धा इति मता** बद्धा मानी गई है।

यह बद्धा है। (१४)

(जनिता—१५)

चारी सा जनिता यस्यां पादोऽग्रतलसंचरः।
मुष्टिर्वक्षसि हस्तोऽन्यो यथाशोभं प्रवर्तते॥ ९३८॥

अङ्घ्रिक्रिया प्रधानं स्यादितिकर्तव्यतेतरा।

इति जनिता (१५)

जनिता—१५

९३८-९३९ ख. (अ०) **यस्यां** जिसमें **पादः** पैर **अग्रतलसंचरः** अग्रतलसंचर, **वक्षसि मुष्टिः हस्तः** छाती पर मुष्टिहस्त, **अन्यः** दूसरा **यथाशोभं प्रवर्तते** शोभा के अनुसार प्रवृत्त हो **सा जनिता चारी** वह जनिता चारी (होती है)। **अङ्घ्रिक्रिया** (इस चारी में) पैरों की क्रिया **प्रधानं स्यात्** मुख्य होती है **इतरा** इतर (यानी हाथों की क्रिया) **इतिकर्तव्यता** साधनस्वरूप (अर्थात् गौण होती है)।

(सर०) कल्लि० ने ध्यान दिलाया कि चारियों में हाथ की क्रिया को लक्षण के रूप में ग्रहण नहीं करना चाहिये अन्यथा चारी और करण में कोई भेद नहीं रहेगा।

यह जनिता है। (१५)

(ऊरूद्वृत्ता—१६)

पार्ष्णिः पादस्य चेदग्रतलसंचरसंज्ञितः॥ ९३९॥

अन्याङ्घ्रिपृष्ठाभिमुखी विपर्यासोऽथवा भवेत्।
अभ्यन्यजङ्घं वलिता जङ्घा चेन्नतजानुका॥ ९४०॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ऊरूद्वृत्ता तदा चारी लज्जेर्ष्यादौ नियुज्यते।

इत्यूरूद्वृत्ता (१६)

ऊरूद्वृत्ता—१६

९३९ ग-९४१ ख. (अ०) अग्रतलसंचरसंज्ञितः पादस्य पार्ष्णिः चेत् यदि अग्रतलसंचर पैर की एड़ी अन्य-अङ्घ्रिपृष्ठ-अभिमुखी दूसरे पैर के पीछे के भाग की ओर घूमी हुई (हो) अथवा या विपर्यासः भवेत् (इससे) उलटी हुई हो (और) नतजानुका जङ्घा चेत् यदि झुके हुए घुटने वाली टाँग अभि-अन्यजङ्घं वलिता दूसरी टाँग के पास मुड़ी हुई (हो) तदा तो ऊरूद्वृत्ता चारी ऊरूद्वृत्ता चारी (होती है)। लज्जा-ईर्ष्या-आदौ नियुज्यते (वह) लज्जा, ईर्ष्या आदि में योजित होती है।

यह ऊरूद्वृत्ता है। (१६)

नियुद्धे चाङ्गहारेषु नाट्ये चैताः प्रतिष्ठिताः॥ ९४१ ॥

अनादिवेदमूलेन नाट्यवेदेन कीर्तिताः।

इति षोडश भौम्यचार्यः

९४१ ग-९४२ ख. (अ०) नियुद्धे मुष्टि युद्ध में अङ्गहारेषु च और अंगहारों में नाट्ये च नाट्य में भी एताः ये (चारियाँ) प्रतिष्ठिताः प्रतिष्ठित हैं। अनादिवेदमूलेन नाट्यवेदेन (ये) अनादि वेदों के मूल वाले नाट्यवेद के द्वारा कीर्तिताः कही गई हैं।

(सर०) कल्लि० ने स्पष्ट किया कि अंगहारों से नृत्त समझना चाहिये। नाट्ये च में च में नृत्य का भी ग्रहण समझना चाहिये।

नाट्यवेद का मूल चार वेदों में है यह पहले कहा जा चुका है। (श्लो० ३, ९)

सोलह भौमी चारियों के लक्षण समाप्त

(आकाशिकी—ख)

(अतिक्रान्ता—१)

अथाकाशिक्यः—

गुल्फक्षेत्रेऽन्यपादस्योद्वृत्याङ्घ्रिं कुञ्चितं पुरः॥ ९४२ ॥

किंचित्प्रसार्य चोत्क्षिप्य यथाप्रकृति लोकवत्।
चतुस्तालाद्यन्तरेण ततोऽग्रेण निपातयेत्॥ ९४३ ॥

यत्र चारीमतिक्रान्तां निःशङ्कस्तामकीर्तयत्।

इत्यतिक्रान्ता (१)

आकाशिकी—ख

अतिक्रान्ता—१

अथ अब आकाशिक्यः आकाशिकी (चारियाँ)—

९४२ ग-९४४ ख. (अ०) यत्र जिसमें कुञ्चितम् अङ्घ्रिं एक कुंचित पैर को अन्यपादस्य दूसरे पैर के गुल्फक्षेत्रे टखने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के पास उद्वृत्य ऊपर ले जाकर पुरः सामने किंचित् प्रसार्य कुछ फैला कर उत्क्षिप्य च और ऊपर उठा कर यथाप्रकृति (पात्र की उत्तम, मध्यम, अधम) प्रकृति के अनुसार लोकवत् लोक के आधार पर चतुः ताल-आदि-अन्तरेण चार ताल आदि के अन्तर से ततः अग्रेण निपातयेत् नोक से (धरती पर) गिराया (टिकाया) जाता है ताम् उसे निःशङ्कः निःशंक (शार्ङ्गदेव) ने अतिक्रान्तां चारीम् अतिक्रान्ता चारी कीर्तयेत् कहा है।

(सर०) पात्रों की उत्तम, मध्यम, अधम—ये तीन प्रकार की प्रकृति कही जा चुकी हैं (२८९-२९०)। भरत ने इन पात्रों की प्रकृति के आधार पर उनके पादक्षेप यानी एक पैर और दूसरा पैर रखने (क़दम) की दूरी क्रम से चतुस्ताल, द्विताल और एक ताल कही है। (ना०शा०, १२/९-१०)

यह अतिक्रान्ता है। (१)

(अपक्रान्ता—२)

बद्धां विधाय चारीं चेदुद्वृत्याङ्घ्रिं च कुञ्चितम्॥ ९४४॥
पार्श्वे विनिक्षिपेच्चारीमपक्रान्तां तदादिशेत्।

इत्यपक्रान्ता (२)

अपक्रान्ता—२

९४४ ग-९४५ ख. (अ०) बद्धां चारीं विधाय चेत् यदि बद्धा चारी योजित करके कुञ्चितम् अङ्घ्रिं च उद्वृत्य और कुंचित पैर ऊपर उठा कर पार्श्वे बाजू में विनिक्षिपेत् नीचे लाया जाता है तत् (तो) उसे अपक्रान्तां चारीं अपक्रान्ता चारी आदिशेत् कहना चाहिये।

यह अपक्रान्ता है। (२)

(पार्श्वक्रान्ता—३)

नीत्वोपरि स्वपार्श्वेन कुञ्चितं चरणं ततः॥ ९४५॥
पाष्ण्यां चेत्पातयेद्भूमौ पार्श्वक्रान्ता तदोच्यते।
सा पार्श्वदण्डपादेति प्रसिद्धा लोकवर्त्मनि॥ ९४६॥
अन्योरुक्षेत्रपर्यन्तमुत्क्षिप्य चरणं ततः।
उद्घट्टितं भुवि न्यस्येदस्यामित्यपरे जगुः॥ ९४७॥

इति पार्श्वक्रान्ता (३)

पार्श्वक्रान्ता—३

९४५ ग-९४७. (अ०) कुञ्चितं चरणं कुंचित पैर स्वपार्श्वेन उपरि नीत्वा अपनी बाजू से ऊपर ले जाकर ततः तब पाष्ण्यां एड़ी से भूमौ पातयेत् चेत् यदि भूमि पर गिरायें (रखें) तदा तो पार्श्वक्रान्ता उच्यते पार्श्वक्रान्ता कहते हैं। लोकवर्त्मनि लोकमार्ग (लोक व्यवहार) में सा वह पार्श्वदण्डपादा प्रसिद्धा पार्श्वदंडपादा (नाम से) प्रसिद्ध (है)। अपरे अन्य (आचार्य) अस्याम् इसमें चरणम् एक पैर अन्य-ऊरुक्षेत्रपर्यन्तम् उत्क्षिप्य दूसरी जाँघ तक ऊपर उठा कर ततः उसके बाद उद्घट्टितम् उद्घट्टित (करके) भुवि न्यस्येत् धरती पर रखें इति जगुः ऐसा कहते हैं।

यह पार्श्वक्रान्ता है। (३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(मृगप्लुता—४)

कुञ्चितं पादमुत्क्षिप्योत्प्लुत्य भूमौ निपात्य तम्।
अन्याञ्चिताङ्घ्रिजङ्घां च पश्चाद्देशे क्षिपेद्यदा॥ ९४८॥

तदा मृगप्लुता ज्ञेया सा विदूषककर्तृका।

इति मृगप्लुता (४)

मृगप्लुता—४

९४८-९४९ ख. (अ०) कुञ्चितं पादम् उत्क्षिप्य कुंचित पैर ऊपर उठा कर उत्प्लुत्य उछल कर भूमौ निपात्य भूमि पर गिरा (रख) कर यदा तं जब उसे अन्य-अञ्चित-अङ्घ्रिजङ्घां च दूसरे अंचित पैर की टाँग के पश्चात्-देशे क्षिपेत् पीछे के भाग पर रखें तदा तब मृगप्लुता ज्ञेया मृगप्लुता जानी जाती है। सा वह विदूषककर्तृका विदूषक द्वारा की जाने वाली (होती है)।

यह मृगप्लुता है। (४)

(ऊर्ध्वजानुः—५)

कुञ्चितोत्क्षिप्तपादस्य जानुस्तनसमं यदा। ९४९॥
न्यस्य स्तब्धीकृतोऽन्योऽङ्घ्रिरूर्ध्वजानुस्तदा भवेत्।

इत्यूर्ध्वजानुः (५)

ऊर्ध्वजानु—५

९४९ ग-९५० ख. (अ०) कुञ्चित-उत्क्षिप्तपादस्य जानुः कुंचित ऊपर उठाये हुए पैर का घुटना यदा जब स्तनसमं न्यस्य स्तन के पास रख कर अन्यः अङ्घ्रिः दूसरा पैर स्तब्धीकृतः निश्चल किया हुआ हो तदा तब ऊर्ध्वजानुः भवेत् ऊर्ध्वजानु (चारी) होती है।

यह ऊर्ध्वजानु है। (५)

(अलाता—६)

पृष्ठप्रसारितोऽङ्घ्रिश्चेदन्योर्वभिमुखं तलम्॥ ९५०॥
कृत्वा पार्ष्णिः स्वपार्श्वे क्ष्मान्यस्तालाता तदोदिता।

इत्यलाता (६)

अलाता—६

९५० ग-९५१ ख. (अ०) पृष्ठप्रसारितः अङ्घ्रिः (यदि) पीछे की ओर फैलाया हुआ पैर, तलं तलुआ अन्य-ऊरु-अभिमुखं कृत्वा दूसरे (पैर) की जाँघ के सामने की ओर करके पार्ष्णिः एड़ी स्वपार्श्वे चेत् यदि अपनी बाजू में क्ष्मान्यस्ता भूमि पर रखी हुई हो तदा तब अलाता उदिता अलाता कही गई है।

यह अलाता है। (६)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सूची—७)

उत्क्षिप्य कुञ्चितं पादं जङ्घामस्य प्रसार्य च॥ ९५१॥

जान्वन्तां वोरुपर्यन्तामग्रयोगे नतं भुवि।
चरणं पातयेद्यस्यां सा सूचीति निगद्यते॥ ९५२॥

इति सूची (७)

सूची—७

९५१ ग-९५२. (अ०) यस्यां जिसमें कुञ्चितं पादम् उत्क्षिप्य कुंचित पैर ऊपर उठा कर अस्य जङ्घाम् इसकी टाँग को जानु-अन्ताम् ऊरुपर्यन्तं वा घुटने तक या जाँघ तक प्रसार्य च फैला कर नतं चरणं झुका हुआ पैर अग्रयोगे (उसकी) नोकों से भुवि पातयेत् भूमि पर गिराया (रखा) जाता है सा वह सूची इति निगद्यते सूची इस प्रकार (इस नाम से) कही जाती है।

यह सूची है। (७)

(नूपुरपादिका—८)

पश्चान्नीत्वाञ्चितं पादं तस्य पार्ष्ण्या स्फिजं स्पृशेत्।
तं ततोऽञ्चितजङ्घं च भूमावग्रतलेन चेत्॥ ९५३॥

निपातयेत्तदा चारी प्रोक्ता नूपुरपादिका।

इति नूपुरपादिका (८)

नूपुरपादिका—८

९५३-९५४ ख. (अ०) अञ्चितं पादं पश्चात् नीत्वा अंचित पैर पीछे ले जाकर तस्य पार्ष्ण्या उसकी एड़ी से स्फिजं स्पृशेत् नितंब का स्पर्श करें ततः उसके बाद तम् अञ्चितजङ्घं च उस अंचित टाँग (पैर) को अग्रतलेन भूमौ निपातयेत् चेत् यदि तलुए की नोक से भूमि पर रखें तदा तब नूपुरपादिका चारी प्रोक्ता नूपुरपादिका चारी कही गई है।

यह नूपुरपादिका है। (८)

(डोलापादा—९)

पादं कुञ्चितमुद्धृत्य डोलयित्वा च पार्श्वयोः॥ ९५४॥

न्यस्येत्पार्ष्ण्या स्वपार्श्वे चेड्डोलापादा तदोच्यते।

इति डोलापादा (९)

डोलापादा—९

९५४ ग-९५५ ख. (अ०) कुञ्चितं पादम् उद्धृत्य कुंचित पैर ऊपर उठा कर पार्श्वयोः डोलयित्वा च और दोनों बाजुओं में दोलित करके पार्ष्ण्या एड़ी से स्वपार्श्वे न्यस्येत् चेत् यदि अपनी बाजू में रखा जाता है तदा तब डोलापादा उच्यते डोलापादा कही जाती है।

यह डोलापादा है। (९)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(दण्डपादा—१०)

नूपुरश्चरणोऽन्यस्य पार्ष्णिदेशे विधाय चेत्॥ ९५५॥

स्वदेहक्षेत्राभिमुखं जान्वग्रत्वेन वेगतः।
अग्रे प्रसार्यते चारी दण्डपादा तदोदिता॥ ९५६॥

इति दण्डपादा (१०)

दंडपादा—१०

९५५ ग-९५६. (अ०) नूपुरचरणः नूपुर पैर अन्यस्य पार्ष्णिदेशे विधाय चेत् यदि दूसरे (पैर) की एड़ी पर रख कर स्वदेहक्षेत्र-अभिमुखं जानु-अग्रत्वेन अपने शरीर की ओर घुटने की नोक से वेगतः वेग से अग्रे प्रसार्यते सामने फैलाया जाता है तदा तो दण्डपादा चारी उदिता दंडपादा चारी कही गई है।

यह दंडपादा है। (१०)

(विद्युद्भ्रान्ता—११)

पृष्ठतो वलितं स्पृष्ट्वा शिरो भ्रान्त्वा च सर्वतः।
प्रसृतश्चरणो यत्र विद्युद्भ्रान्ता भवेदसौ॥ ९५७॥

इति विद्युद्भ्रान्ता (११)

विद्युद्भ्रान्ता—११

९५७. (अ०) यत्र जिसमें पृष्ठतः वलितं शिरः स्पृष्ट्वा पीछे की ओर घूमा हुआ सिर छूकर सर्वतः भ्रान्त्वा च चारों ओर घुमा कर चरणः प्रसृतः पैर फैलता है असौ यह विद्युद्भ्रान्ता भवेत् विद्युद्भ्रान्ता होती है।

यह विद्युद्भ्रान्ता है। (११)

(भ्रमरी—१२)

अतिक्रान्तागतं पादं त्र्यश्रस्योरोर्विवर्तनम्।
कृत्वा पादान्तरतलभ्रमेण भ्राम्यते तनुः॥ ९५८॥

यत्र सा भ्रमरी चारी शार्ङ्गदेवेन कीर्तिता।

इति भ्रमरी (१२)

भ्रमरी—१२

९५८-९५९ ख. (अ०) यत्र जिसमें अतिक्रान्तागतं पादम् अतिक्रान्ता चारी वाला पैर त्र्यश्रस्य उरोः विवर्तनं कृत्वा त्रिकोणी जाँघ का विवर्तन करके पादान्तर तलभ्रमेण दूसरे पैर का तलुआ गोल घूमने से (घुमा कर) तनुः भ्राम्यते शरीर गोल घुमाया जाता है सा वह शार्ङ्गदेवेन शार्ङ्गदेव के द्वारा भ्रमरी चारी कीर्तिता भ्रमरी चारी कही गई है।

यह भ्रमरी है। (१२)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(भुजङ्गत्रासिता—१३)

अन्योरुमूलक्षेत्रान्तं पादमुत्क्षिप्य कुञ्चितम्॥ ९५९॥

नितम्बाभिमुखी पार्ष्णिः कुर्याज्जानु स्वपार्श्वगम्।
यत्रोत्तानं पादतलं कटीजानुविवर्तनात्॥ ९६०॥

भुजङ्गत्रासिता सा स्याद् भुजङ्गत्राससूचिका।

इति भुजङ्गत्रासिता (१३)

भुजंगत्रासिता—१३

९५९ ग-९६१ ख. (अ०) यत्र जिसमें कुञ्चितं पादं कुंचित पैर अन्य-ऊरुमूलक्षेत्र-अन्तम् उत्क्षिप्य दूसरे (पैर) की जाँघ के मूल भाग तक ऊपर उठा कर पार्ष्णिः एड़ी नितम्ब-अभिमुखी नितंब की ओर, जानु स्वपार्श्वगं कुर्यात् घुटना अपनी बाजू की ओर किया (ले जाया) जाता है (और) कटीजानुविवर्तनात् कमर व घुटने के विवर्तन (घूमने) से पादतलम् उत्तानं पैर का तलुआ ऊपर (किया जाता है) सा वह भुजङ्गत्राससूचिका साँप का भय सूचित करने वाली भुजङ्गत्रासिता स्यात् भुजंगत्रासिता होती है।

यह भुजंगत्रासिता है। (१३)

(आक्षिप्ता—१४)

तालत्रयान्तरोत्क्षिप्तं कुञ्चितं पादमानयेत्॥ ९६१॥

पार्श्वान्तरं ततो जङ्घां स्वस्तिकीकृत्य पातयेत्।
धरण्यां पार्ष्णिभागेन यत्राक्षिप्ताममूं विदुः॥ ९६२॥

इत्याक्षिप्ता (१४)

आक्षिप्ता—१४

९६१ ग-९६२. (अ०) यत्र जिसमें तालत्रय-अन्तर-उत्क्षिप्तं तीन ताल (नापविशेष) के अन्तर पर ऊपर उठाया हुआ कुञ्चितं पादं कुंचित पैर पार्श्व-अन्तरम् आनयेत् दूसरी बाजू में लायें, ततः फिर जङ्घां स्वस्तिकीकृत्य टाँग स्वस्तिकी करके पार्ष्णिभागेन एड़ी के भाग से धरण्यां पातयेत् धरती पर गिराई (रखी) जाय अमूम् इसे आक्षिप्तां विदुः आक्षिप्ता जानते हैं।

यह आक्षिप्ता है। (१४)

(आविद्धा—१५)

विश्लिष्टजङ्घयोः कृत्वा स्वस्तिकं तस्य कुञ्चितः।
पादः प्रसारितो वक्रः स्वपार्श्वस्थोऽथ पात्यते॥ ९६३॥

पाष्ण्यर्या पाष्ण्यर्यन्तरक्षेत्रे यत्राविद्धा भवत्यसौ।

इत्याविद्धा (१५)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आविद्धा—१५

९६३-९६४ ख. (अ०) **यत्र** जिसमें **विश्लिष्टजङ्घयोः** अलग हुई टाँगों में **स्वस्तिकं कृत्वा** स्वस्तिक (योजित) करके **तस्य कुञ्चितः पादः** उसका कुंचित पैर **प्रसारितः वक्रः स्वपार्श्वस्थः** फैलाया हुआ, वक्र (और) अपनी बाजू में स्थित **अथ** फिर **पाष्ण्यां** एड़ी से **पार्ष्णि-अन्तरक्षेत्रे** दूसरे (पैर) की एड़ी के पास **पात्यते** गिराया (रखा) जाता है **असौ** यह (वह) **आविद्धा भवति** आविद्धा होती है।

यह आविद्धा है। (१५)

(उद्वृत्ता—१६)

आविद्धापादमन्योरुप्रदेशस्थास्नुपार्ष्णिकम्॥ ९६४॥

कृत्वोत्प्लुत्य भ्रमरकं दत्वा यत्र निपातयेत्।
तथान्यं पादमुद्वृत्य सोद्वृत्ताशेषरूपिणी॥ ९६५॥

इत्युद्वृत्ता (१६)

इति षोडश आकाशिक्यश्चार्यः

उद्वृत्ता—१६

९६४ ग-९६५. (अ०) **यत्र** जहाँ **आविद्धापादम्** आविद्धा (चारी वाला) पैर **अन्य-ऊरुप्रदेश-स्थास्नुपार्ष्णिकं** दूसरे (पैर) की जाँघ पर दृढ़तापूर्वक रखी हुई एड़ी वाला **कृत्वा** (योजित) करके **उत्प्लुत्य** उछल कर **भ्रमरकं दत्वा** भ्रमरी देकर (करके) **निपातयेत्** नीचे लाया जाता है **तथा अन्यं पादम् उद्वृत्य** और दूसरे पैर को ऊपर उठाकर (ऊपर उठाया जाता है) **सा** वह **अशेषरूपिणी** पूर्ण स्वरूप वाली **उद्वृत्ता** उद्वृत्ता (होती है)।

यह उद्वृत्ता है। (१६)

सोलह आकाशिकी चारियाँ समाप्त

(चारीणां साधारणविनियोगः)

ललिताङ्गक्रियासाध्याश्चार्यो युद्धनियुद्धयोः।
नृत्ते नाट्ये गतौ चैताः प्रयोक्तव्या मनीषिभिः॥ ९६६॥

चारियों का सामान्य विनियोग

९६६. (अ०) **चार्यः** चारियाँ **ललित-अङ्गक्रिया साध्याः** अंगों की ललित क्रिया से निष्पन्न करनी चाहियें। **एताः** ये **युद्धनियुद्धयोः** युद्ध और नियुद्ध में, **नृत्ते नाट्ये गतौ च** नृत्त, नाट्य और गति में **मनीषिभिः** मनीषियों के द्वारा **प्रयोक्तव्याः** प्रयुक्त करनी चाहियें।

(सर०) कल्लि० ने ललिताङ्ग इत्यादि का यह आशय बताया कि इसके द्वारा दोनों प्रकार की (यानी भौमी और आकाशिकी) चारियों का स्वरूप कहा है। गतौ को नाट्य से अलग कहने से हस्ताभिनय छोड़ कर केवल जाने का अनुकरण समझना चाहिये।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(हस्ताभिनयचार्योः गुणप्रधानभावः)

प्रधानं यो यदा यत्र हस्तः पादोऽथवा भवेत्।
सोऽग्रे तदनुगोऽन्यः स्यात्साम्ये तु समकालता॥ ९६७॥

हस्ताभिनय और चारियों का गौण-प्रधान संबन्ध

९६७. (अ०) **यत्र** जहाँ **यदा** जब **यः** जो **हस्तः अथवा पादः** हस्त या पाद **प्रधानं भवेत्** प्रधान हो **सः अग्रे** वह पहले (योजित) होता है **अन्यः** दूसरा **तत् अनुगः** उसका अनुसरण (करता है)। **साम्ये तु** (दोनों की) समानता में तो **समकालता** एक ही समय (योजना होती है)।

यतः पादस्ततो हस्तो यतो हस्तस्ततस्त्रिकः।
चरणानुचराण्याहुरङ्गोपाङ्गानि सूरयः॥ ९६८॥

एवं चारीप्रधानत्वे स्यादङ्गविनियोजनम्।
प्राधान्ये हस्तकानां तु हस्तमङ्गान्युपासते॥ ९६९॥

९६८-९६९. (अ०) **सूरयः** विद्वान् **यतः पादः** जहाँ पैर **ततः हस्तः** वहाँ हाथ, **यतः हस्तः** जहाँ हाथ **ततः त्रिकः** वहाँ कमर (और) **चरण अनुचराणि** पैरों के अनुचर (अनुसरण करने वाले) **अङ्ग-उपाङ्गानि आहुः** अंग और उपांग कहते हैं। **एवं** इस प्रकार **चारीप्रधानत्वे** चारी की प्रधानता से **अङ्गविनियोजनं स्यात्** अंगों की योजना होती है। **हस्तकानां प्राधान्ये तु** हाथों की प्रधानता होने पर तो **अङ्गानि हस्तम् उपासते** अंग हाथ का अनुसरण करते हैं।

चारं चारं यथा चार्यां चरणः श्रयते महीम्।
कारं कारं करस्तद्वद्विश्राम्यति कटीतटे॥ ९७०॥

९७०. (अ०) **यथा** जैसे **चार्यां** चारियों में **चारं चारं** (पैर की क्रिया) कर-कर के **चरणः महीं श्रयते** पैर भूमि का आश्रय लेता है **तत्-वत्** उसी तरह **करः** हाथ **कारं कारं** (क्रिया) कर-कर के **कटीतटे** कमर पर **विश्राम्यति** विश्राम लेता (अर्थात् टिकता) है।

(सर०) इस पर कल्लि० के स्पष्टीकरण का आशय यह है कि चारियों में पैर टिकाने के लिये धरती के सिवाय कोई दूसरा स्थान कहा नहीं गया है और संभव भी नहीं है। हाथों को कमर पर टिकाने के लिये कहा है यद्यपि अन्य स्थान के रूप में दोनों बाजू भी हैं लेकिन कमर पर कहना प्रचुरता की दृष्टि से अभिप्रेत है।

अर्धचन्द्रः करो नाट्ये संश्रयेत कटीतटम्।
पक्षवञ्चितको नृत्ते पक्षप्रद्योतकोऽथवा॥ ९७१॥

(इति द्वात्रिंशच्चारीलक्षणम्)

९७१. (अ०) **नाट्ये** नाट्य में **अर्धचन्द्रः करः** अर्धचन्द्र हस्त **कटीतटं** कमर के **संश्रयेत** आश्रित करना चाहिये (और) **नृत्ते** नृत्त में **पक्षवञ्चितकः अथवा पक्षप्रद्योतकः** पक्षवंचितक या पक्षप्रद्योतक।

(सर०) कल्लि० ने कहा कि यहाँ कमर का आश्रय लेने में नाट्य और नृत्त की व्यवस्था के द्वारा हाथ संबन्धी नियम कहा है। अर्धचन्द्र इत्यादि में भी नाट्यवेद में कहे जाने से मार्गत्व है यह जो पहले कहा उसका यहाँ अनुसंधान करना चाहिये अर्थात् उसे संबद्ध करना चाहिये।

बत्तीस चारियों के लक्षण समाप्त

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(अथ देशीचार्यः)

(तत्र भौमीचार्यः—क)

(रथचक्रा—१)

चतुरश्र समाश्रित्य भूलग्नौ चेत्प्रसर्पतः।
पुरतः पृष्ठतो वाङ्घ्री रथचक्रा तदोच्यते॥ ९७२॥

इति रथचक्रा (१)

अब देशीचारियाँ

इनमें भौमी चारियाँ—क

रथचक्रा—१

९७२. (अ०) चतुरश्रं समाश्रित्य चतुरश्र का आश्रय करके भूलग्नौ अङ्घ्री धरती से लगे हुए दोनों पैर पुरतः पृष्ठतः वा चेत् यदि सामने या पीछे की ओर प्रसर्पतः सरकते (जाते) हों तदा तब रथचक्रा उच्यते रथचक्रा कही जाती है।

(सर०) कल्लि० की व्याख्या में कहा गया है कि यहाँ चतुरश्र शब्द आगे कहे जाने वाले देशी स्थानक के लिये प्रयुक्त हुआ है वैष्णव स्थानक का अंगों का संनिवेशविशेष नहीं। पैरों का भूमि से लगा रहकर प्रसर्पण ही लोक में निःसरण कहा जाता है, यह भी कल्लि० ने उल्लेख किया है।

यह रथचक्रा है। (१)

(परावृत्ततला—२)

पश्चादुत्तानिततलश्चरणः प्रसृतो बहिः।
यस्यां परावृत्ततला शार्ङ्गदेवेन सोदिता॥ ९७३॥

इति परावृत्ततला (२)

परावृत्ततला—२

९७३. (अ०) यस्यां जिसमें पश्चात्-उत्तानिततलः चरणः पीछे की ओर ऊपर उठाये हुए तलुए वाला पैर बहिः प्रसृतः बाहर फैला हुआ होता है सा वह शार्ङ्गदेवेन शार्ङ्गदेव के द्वारा परावृत्ततला उदिता परावृत्ततला कही गई है।

यह परावृत्ततला है। (२)

(नूपुरविद्धा—३)

स्थित्वा स्वस्तिकबन्धेन पार्ष्ण्योः प्रपदयोस्तथा।
रेचितौ चरणौ यत्र सोक्ता नूपुरविद्धका॥ ९७४॥

इति नूपुरविद्धा (३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नूपुरविद्धा—३

९७४. (अ०) **यत्र** जिसमें **स्वस्तिकबन्धेन स्थित्वा** स्वस्तिक स्थानक में खड़े होकर **चरणौ** दोनों पैर **पार्ष्ण्योः** तथा **प्रपदयोः** एड़ियों और पैरों के अग्र भागों पर **रेचितौ** रेचित किये हुए हों **सा नूपुरविद्धका उक्ता** वह नूपुरविद्धा कही गई है।

यह नूपुरविद्धा है। (३)

(तिर्यङ्मुखा—४)

वर्धमाने स्थितौ स्थाने वामदक्षिणतो यदा।
सरतो द्रुतमानेन पादौ तिर्यङ्मुखा तदा॥ ९७५॥

इति तिर्यङ्मुखा (४)

तिर्यङ्मुखा—४

९७५. (अ०) **यदा** जब **वर्धमाने स्थाने स्थितौ पादौ** वर्धमान स्थानक में स्थित दोनों पैर **द्रुतमानेन** द्रुत गति से **वामदक्षिणतः** बाईं और दाहिनी ओर **सरतः** जाते हैं **तदा तिर्यङ्मुखा** तब तिर्यङ्मुखा (होती है)।

यह तिर्यङ्मुखा है। (४)

(मराला—५)

नन्द्यावर्तस्थितौ पादौ पार्ष्णिपादाग्ररेचितौ।
पुरः प्रसारितौ यस्यां सा मरालाभिधीयते॥ ९७६॥

इति मराला (५)

मराला—५

९७६. (अ०) **यस्यां** जिसमें **नन्द्यावर्तस्थितौ पादौ** नन्द्यावर्त स्थानक में रखे हुए दोनों पैर **पार्ष्णिपाद-अग्ररेचितौ** एड़ी और पैर के अग्र रेचित करके **पुरः प्रसारितौ** सामने फैलाये हुए (होते हैं) **सा मराला अभिधीयते** वह मराला कही जाती है।

यह मराला है। (५)

(करिहस्ता—६)

संहतस्थानके स्थित्वा पार्श्वाभ्यां घर्षतः क्षितिम्।
चरणौ यत्र सा चारी करिहस्ता प्रकीर्तिता॥ ९७७॥

इति करिहस्ता (६)

करिहस्ता—६

९७७. (अ०) **यत्र** जहाँ **संहतस्थानके स्थित्वा** संहत स्थानक में खड़े होकर **चरणौ** दोनों पैर **पार्श्वाभ्यां क्षितिं घर्षतः** बाजुओं से धरती को घिसते हों **सा** वह **करिहस्ता चारी प्रकीर्तिता** करिहस्ता चारी कही गई है।

यह करिहस्ता है। (६)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(कुलीरिका—७)

नन्द्यावर्तस्थयोरङ्घ्र्योस्तिर्यक्सृत्वा कुलीरिका।

इति कुलीरिका (७)

कुलीरिका—७

९७८ क-ख. (अ०) **नन्द्यावर्तस्थयोः अङ्घ्र्योः** नन्द्यावर्त में स्थित दोनों पैरों को **तिर्यक् सृत्वा** तिरछे सरका कर **कुलीरिका** कुलीरिका (होती है)।

यह कुलीरिका है। (७)

(विश्लिष्टा—८)

पार्ष्णिविद्धस्थितौ पादौ चेद्विश्लिष्योपसर्पतः॥ ९७८॥

यद्वापसर्पतः प्रोक्ता सा विश्लिष्टाभिधा बुधैः।

इति विश्लिष्टा (८)

विश्लिष्टा—८

९७८ ग-९७९ ख. (अ०) **पार्ष्णिविद्धस्थितौ पादौ** पार्ष्णिविद्ध स्थानक में रखे हुए दोनों पैर **विश्लिष्य उपसर्पतः चेत्** यदि अलग करके पास आते हैं **यत् वा अपसर्पतः** अथवा दूर जाते हैं **सा** (तो) वह **बुधैः** विद्वानों के द्वारा **विश्लिष्टा अभिधा प्रोक्ता** विश्लिष्टा नामक (चारी) कही गई है।

यह विश्लिष्टा है। (८)

(कातरा—९)

नन्द्यावर्तस्थपादाभ्यां पश्चात्सृत्वा तु कातरा॥ ९७९॥

इति कातरा (९)

कातरा—९

९७९ ग-घ. (अ०) **नन्द्यावर्तस्थ पादाभ्यां** नन्द्यावर्त में स्थित पैरों से **पश्चात् सृत्वा तु** पीछे की ओर सरक कर (सरकने पर) तो **कातरा** कातरा (होती है)।

यह कातरा है। (९)

(पार्ष्णिरेचिता—१०)

पार्ष्णिपार्श्वगते स्थाने स्थित्वा चेद्रेचिता कृता।

पार्ष्णिस्तदोदिता चारी निष्णातैः पार्ष्णिरेचिता॥ ९८०॥

इति पार्ष्णिरेचिता (१०)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पार्ष्णिरेचिता—१०

९८०. (अ०) पार्ष्णिपार्श्वगते स्थाने स्थित्वा पार्ष्णिपार्श्वगत स्थानक में खड़े होकर पार्ष्णिः रेचिता कृता चेत् यदि एड़ी रेचिता की गई हो तदा तब निष्णातैः निष्णातों के द्वारा पार्ष्णिरेचिता चारी उदिता पार्ष्णिरेचिता चारी कही गई है।

यह पार्ष्णिरेचिता है। (१०)

(ऊरुताडिता—११)

एकपादे स्थितः स्थाने भूस्थेन चरणेन चेत्।
ऊरुं ताडयति प्रोक्ता तदा चार्यूरुताडिता॥ ९८१॥

इत्यूरुताडिता (११)

ऊरुताडिता—११

९८१. (अ०) एकपादे स्थाने स्थितः एकपाद स्थान में खड़े होकर भूस्थेन चरणेन चेत् यदि भूमि पर स्थित पैर से ऊरुं ताडयति (नर्तक दूसरे पैर की) जाँघ का ताड़न करता है तदा तब ऊरुताडिता चारी प्रोक्ता ऊरुताडिता चारी कही गई है।

यह ऊरुताडिता है। (११)

(ऊरुवेणी—१२)

ऊरुस्थस्वस्तिकाकारावङ्घ्री संघर्षतो भुवम्।
पार्श्वाभ्यां यत्र तामाहुरूरुवेणीं मनीषिणः॥ ९८२॥

इत्यूरुवेणी (१२)

ऊरुवेणी—१२

९८२. (अ०) यत्र जहाँ ऊरुस्थस्वस्तिक-आकारौ अङ्घ्री जाँघ पर स्वस्तिक आकार वाले दोनों पैर पार्श्वाभ्यां बाजू की ओर से भुवं संघर्षतः धरती को घिसते हैं ताम् उसे मनीषिणः मनीषी ऊरुवेणीम् आहुः ऊरुवेणी कहते हैं।

यह ऊरुवेणी है। (१२)

(तलोद्वृत्ता—१३)

अङ्गुलीपृष्ठभागेन पुरतः सरतो द्रुतम्।
प्रपदे यत्र सा चारी तलोद्वृत्ता मता सताम्॥ ९८३॥

इति तलोद्वृत्ता (१३)

तलोद्वृत्ता—१३

९८३. (अ०) यत्र जहाँ प्रपदे पैरों के अग्र अङ्गुलीपृष्ठभागेन उँगलियों के पीछे के भाग से द्रुतः जल्दी पुरतः सरतः सामने जाते हैं सा वह सतां सज्जनों ने तलोद्वृत्ता चारी मता तलोद्वृत्ता चारी मानी है।

यह तलोद्वृत्ता है। (१३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(हरिणत्रासिका—१४)

कुञ्चिते स्वस्तिकीकृत्य वलितान्ते तले यदा।
अङ्घ्रयोरुत्प्लुत्य निपतेद्धरिणत्रासिका तदा॥ ९८४॥

इति हरिणत्रासिका (१४)

हरिणत्रासिका—१४

९८४. (अ०) **यदा** जब **अङ्घ्रयोः कुञ्चिते तले** दोनों पैरों के कुंचित तलुए **स्वस्तिकीकृत्य** स्वस्तिक करके **वलित-अन्ते** वलित हुए अन्त (नोक) वाले **उत्प्लुत्य** ऊपर उछल कर **निपतेत्** (नर्तक) नीचे गिरता (आता) है **तदा** तब **हरिणत्रासिका** हरिणत्रासिका (होती है)।

यह हरिणत्रासिका है। (१४)

(अर्धमण्डलिका—१५)

भूमिघ्रष्ट्या बहिर्नीतावावर्तेते शनैः क्रमात्।
चरणौ यत्र तामाहुरर्धमण्डलिकां बुधाः॥ ९८५॥

इत्यर्धमण्डलिका (१५)

अर्धमंडलिका—१५

९८५. (अ०) **यत्र** जहाँ **चरणौ** दोनों पैर **भूमिघ्रष्ट्या** भूमि घिसने से (घिसते हुए) **बहिर्नीतौ** बाहर ले जाये हुए (ले जाते हुए) **क्रमात्** क्रम से **शनैः** धीरे-धीरे **आवर्तेते** घूमते हैं **तां बुधाः** उसे विद्वान् **अर्धमण्डलिकाम् आहुः** अर्धमंडलिका कहते हैं।

यह अर्धमंडलिका है। (१५)

(तिर्यक्कुञ्चिता—१६)

यत्राकुञ्च्य तिरश्चीनं चरणं प्रक्षिपेन्मुहुः।
तां तिर्यक्कुञ्चितां चारीमाह श्रीकरणेश्वरः॥ ९८६॥

इति तिर्यक्कुञ्चिता (१६)

तिर्यक्कुंचिता—१६

९८६. (अ०) **यत्र** जिसमें **तिरःचीनं चरणं** तिरछा पैर **आकुञ्च्य** कुंचित करके **मुहुः** बार-बार **प्रक्षिपेत्** (बाजू की ओर) ले जाया जाता है **ताम्** उसे **श्रीकरणेश्वरः** श्रीकरणेश्वर (शार्ङ्गदेव) **तिर्यक्कुञ्चितां चारीम् आह** तिर्यक्कुंचिता चारी कहता है।

यह तिर्यक्कुंचिता है। (१६)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(मदालसा—१७)

इतस्ततश्च चरणौ स्थापयेत विसंस्थुलौ।
मत्तवद्यत्र तामाहुश्चारीं धीरा मदालसाम्॥ ९८७॥

इति मदालसा (१७)

मदालसा—१७

९८७. (अ०) यत्र जहाँ विसंस्थुलौ चरणौ अस्थिर पैर मत्तवत् मत्त (व्यक्ति) की तरह इतः ततः च इधर-उधर (जहाँ तहाँ) स्थापयेत रखे जायँ तां धीराः उसे विद्वान् मदालसां चारीम् आहुः मदालसा चारी कहते हैं।

यह मदालसा है। (१७)

(तिर्यक्संचारिता—१८)

आकुञ्चितोऽङ्घ्रिरुत्क्षिप्योत्क्षिप्यान्येनाङ्घ्रिणा यदा।
युज्यतेऽन्यस्तु संसर्पेत्तिर्यक्संचारिता तदा॥ ९८८॥

इति तिर्यक्संचारिता (१८)

तिर्यक्संचारिता—१८

९८८. (अ०) यदा जब आकुञ्चितः अङ्घ्रिः एक आकुंचित पैर उत्क्षिप्य उत्क्षिप्य ऊपर उठा-उठा कर अन्येन अङ्घ्रिणा दूसरे पैर से युज्यते जोड़ा जाता है अन्यः तु (और) दूसरा तो तियक् संसर्पेत् तिरछा सरकता है तदा तिर्यक्संचारिता तिर्यक्संचारिता (होती है)।

यह तिर्यक्संचारिता है। (१८)

(उत्कुञ्चिता—१९)

उत्क्षिप्य कुञ्चितौ पादौ न्यस्येदेकैकमग्रतः।
यस्यां सोत्कुञ्चिता चारी प्रोक्ता सोढलसूनुना॥ ९८९॥

इत्युत्कुञ्चिता (१९)

उत्कुञ्चिता—१९

९८९. (अ०) यस्यां जिसमें कुञ्चितौ पादौ दोनों कुंचित पैर उत्क्षिप्य ऊपर उठा कर एक-एकम् अग्रतः न्यस्येत् एक-एक आगे रखें सा वह सोढलसूनुना सोढलपुत्र (शार्ङ्गदेव) के द्वारा उत्कुञ्चिता चारी प्रोक्ता उत्कुंचिता चारी कही गई है।

यह उत्कुंचिता है। (१९)

(स्तम्भक्रीडनिका—२०)

तिर्यक्प्रसारितैकाङ्घ्रिपार्श्वमन्यत्तलेन चेत्।
मुहुः संयोजयेदुक्ता स्तम्भक्रीडनिका तदा॥ ९९०॥

इति स्तम्भक्रीडनिका (२०)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्तंभक्रीडनिका—२०

९९०. (अ०) तिर्यक् प्रसारिता एका अङ्घ्रिपार्श्वं तिरछा फैलाये हुए एक पैर की बाजू अन्यत् तलेन चेत् यदि दूसरे (पैर के) तलुए से मुहुः बार-बार संयोजयेत् जोड़ी जाती है तदा तब स्तम्भक्रीडनिका उक्ता स्तंभक्रीडनिका कही गई है।

यह स्तंभक्रीडनिका है। (२०)

(लङ्घितजङ्घिका—२१)

स्थानेऽङ्घ्रिः खण्डसूच्याख्ये तिष्ठन्नाकृष्य वेगतः।
लङ्घ्यतेऽन्याङ्घ्रिणा यत्र सोक्ता लङ्घितजङ्घिका॥ ९९१॥

इति लङ्घितजङ्घिका (२१)

लंघितजंघिका—२१

९९१. (अ०) यत्र जहाँ खण्डसूची आख्ये स्थाने तिष्ठन् खंडसूची नामक स्थान में रखा हुआ अङ्घ्रिः पैर आकृष्य खींच कर वेगतः वेग से अन्य-अङ्घ्रिणा दूसरे पैर से लङ्घ्यते लाँघा जाता है सा वह लङ्घितजङ्घिका उक्ता लंघितजंघिका कही गई है।

यह लंघितजंघिका है। (२१)

(स्फुरिता—२२)

स्फुरिताग्रे सृतौ वेगाद्भूस्पृशोः पादपार्श्वयोः।

इति स्फुरिता (२२)

स्फुरिता—२२

९९२ क-ख. (अ०) भूस्पृशोः पादपार्श्वयोः भूमि का स्पर्श करने वाले पैरों के बाजू वेगात् वेग से अग्रे सृतौ सामने जाने पर स्फुरिता स्फुरिता (होती है)।

यह स्फुरिता है। (२२)

(अवकुञ्चिता—२३)

क्रमादाकुञ्चिताङ्घ्रिभ्यां पश्चाद्गत्यावकुञ्चिता॥ ९९२॥

इत्यवकुञ्चिता (२३)

अवकुंचिता—२३

९९२ ग-घ. (अ०) आकुञ्चित-अङ्घ्रिभ्याम् आकुंचित पैरों से क्रमात् क्रम से पश्चात् गत्या पीछे की ओर जाने से अवकुञ्चिता अवकुंचिता (होती है)।

यह अवकुंचिता है। (२३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(संघट्टिता—२४)

स्थाने विषमसूच्याख्ये स्थित्वोत्प्लुत्य पतन्भुवि।
अङ्घ्री संघट्टयेद्यत्र सोक्ता संघट्टिताभिधा॥ ९९३॥

इति संघट्टिता (२४)

संघट्टिता—२४

९९३. (अ०) **यत्र** जिसमें **विषमसूची-आख्ये स्थाने स्थित्वा** विषमसूची नामक स्थानक में खड़े होकर **उत्प्लुत्य** ऊपर उछल कर **भुवि पतन्** भूमि पर आकर **अङ्घ्री** दोनों पैर **संघट्टयेत्** संघट्टित किये जाते हैं **सा** वह **संघट्टिता-अभिधा** संघट्टिता नामक (चारी) **उक्ता** कही गई है।

यह संघट्टिता है। (२४)

(खुत्ता—२५)

धरण्यां चरणाग्रेण घातः खुत्ता निगद्यते।

इति खुत्ता (२५)

खुत्ता—२५

९९४ क-ख. (अ०) **चरण-अग्रेण** पैर के अग्र से **धरण्यां घातः** धरती पर आघात **खुत्ता निगद्यते** खुत्ता कही जाती है।

यह खुत्ता है। (२५)

(स्वस्तिका—२६)

चरणः स्वस्तिकाकारकारितः स्वस्तिका भवेत्॥ ९९४॥

इति स्वस्तिका (२६)

स्वस्तिका—२६

९९४ ग-घ. (अ०) **चरणः** पैर **स्वस्तिक-आकारकारितः** स्वस्तिक के आकार का किया हुआ **स्वस्तिका भवेत्** स्वस्तिका होती है।

यह स्वस्तिका है। (२६)

(तलदर्शिनी—२७)

यत्राङ्घ्री संहतस्थाने स्थित्वा तिर्यक्पृथक्कृतौ।
स्पृशतो बाह्यपार्श्वाभ्यां भुवं सा तलदर्शिनी॥ ९९५॥

इति तलदर्शिनी (२७)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तलदर्शिनी—२७

९९५. (अ०) यत्र जहाँ अङ्घ्री दोनों पैर संहतस्थाने स्थित्वा संहत स्थानक में रख कर तिर्यक् पृथक् कृतौ तिरछे अलग करने पर बाह्यपार्श्वाभ्यां बाहर की बाजुओं से भुवं स्पृशतः भूमि को छूते हैं सा तलदर्शिनी वह तलदर्शिनी (होती है)।

यह तलदर्शिनी है। (२७)

(पुराटिका—२८)

निकुट्टनान्मिथोऽङ्घ्रिभ्यामुद्धताभ्यां पुराटिका।

इति पुराटिका (२८)

पुराटिका—२८

९९६ क-ख. (अ०) उद्धताभ्याम् अङ्घ्रिभ्याम् दोनों उद्धत पैरों से मिथः निकुट्टनात् परस्पर निकुट्टन करने से पुराटिका पुराटिका (होती है)।

यह पुराटिका है। (२८)

(अर्धपुराटिका—२९)

उद्वृत्तेन निकुट्टेन चरणेन निकुट्टनम्॥ ९९६॥
उद्वृत्तस्यान्यपादस्य यत्र सार्धपुराटिका।

इत्यर्धपुराटिका (२९)

अर्धपुराटिका—२९

९९६ ग-९९७ ख. (अ०) यत्र जहाँ उद्वृत्तेन निकुट्टेन चरणेन एक उद्वृत्त निकुट्ट पैर से उद्वृत्तस्य अन्यपादस्य उद्वृत्त दूसरे पैर का निकुट्टनं निकुट्टन (होता है) सा अर्धपुराटिका वह अर्धपुराटिका (होती है)।

यह अर्धपुराटिका है। (२९)

(सरिका—३०)

चरणोऽग्रे सरत्येको यत्र सा सरिका मता॥ ९९७॥

इति सरिका (३०)

सरिका—३०

९९७ ग-घ. (अ०) यत्र जहाँ एकः चरणः एक पैर अग्रे सरति आगे जाता है सा वह सरिका मता सरिका मानी गई है।

यह सरिका है। (३०)

(स्फुरिका—३१)

पुरःसरणमङ्घ्रिभ्यां समाभ्यां स्फुरिका भवेत्।

इति स्फुरिका (३१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्फुरिका—३१

१९८ क-ख. (अ०) सम पैरों से आगे (सामने) जाना स्फुरिका होती है।

यह स्फुरिका है। (३१)

(निकुट्टिका—३२)

स्थितिस्तु चरणाग्रेण कुञ्चितेन निकुट्टिका॥ ९९८॥

इति निकुट्टिका (३२)

(निकुट्टिका—३२)

९९८ ग-घ. (अ०) कुञ्चितेन चरण-अग्रेण कुंचित पैर के अग्र से स्थितिः तु स्थिति (खड़े रहना) तो निकुट्टिका निकुट्टिका (होती है)।

यह निकुट्टिका है। (३२)

(लताक्षेपः—३३)

पश्चान्न्यस्य पुरस्ताच्च प्रसार्य चरणं यदि।
निकुट्टयेद्भुवं तेन लताक्षेपस्तदोदितः॥ ९९९॥

इति लताक्षेपः (३३)

लताक्षेप—३३

९९९. (अ०) यदि यदि चरणं पश्चात् न्यस्य पैर को पीछे रख कर पुरस्तात् च प्रसार्य सामने फैला कर तेन उससे भुवं निकुट्टयेत् भूमि को निकुट्टित करें तदा तो लताक्षेपः उदितः लताक्षेप कहा गया है।

यह लताक्षेप है। (३३)

(अड्डुस्खलितिका—३४)

स्खलिते चरणे तिर्यगड्डुस्खलितिका भवेत्।

इत्यड्डुस्खलितिका (३४)

अड्डुस्खलितिका—३४

१००० क-ख. (अ०) चरणे तिर्यक् स्खलिते पैर तिरछे लड़खड़ाते होने पर अड्डुस्खलितिका भवेत् अड्डुस्खलितिका होती है।

यह अड्डुस्खलिता है। (३४)

(समस्खलितिका—३५)

पुरतः पृष्ठतस्तिर्यक्चरणौ युगपद्यदा॥ १०००॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्खलतः प्रोच्यते चारी समस्खलितिका तदा।

इति समस्खलितिका (३५)

इति पञ्चत्रिंशद्भौमचार्यः

समस्खलितिका—३५

१००० ग-१००१ ख. (अ०) यदा जब युगपत् एक साथ चरणौ दोनों पैर पुरतः सामने, पृष्ठतः पीछे (और) तिर्यक् तिरछे स्खलतः लड़खड़ाते हैं तदा तब समस्खलितिका चारी प्रोच्यते समस्खलितिका चारी कही जाती है।

यह समस्खलितिका है। (३५)

पैंतीस भौमी चारियाँ समाप्त

(आकाशिकीचार्यः—ख)

(विद्युद्भ्रान्ता—१)

यस्यां पुरोऽङ्घ्रिमुत्क्षिप्य ललाटस्योपरि द्रुतम्॥ १००१॥
भ्रामयित्वा भुवि न्यस्येद्विद्युद्भ्रान्ताममूं विदुः।

इति विद्युद्भ्रान्ता (१)

आकाशिकी चारियाँ—ख

विद्युद्भ्रान्ता—१

१००१ ग-१००२ ख. (अ०) यस्यां जिसमें अङ्घ्रिं पैर को पुरः उत्क्षिप्य सामने ऊपर उठा कर ललाटस्य उपरि ललाट के ऊपर द्रुतं भ्रामयित्वा द्रुत (गति से) घुमा कर भुवि न्यस्येत् भूमि पर रखा जाता है अमूम् उसे विद्युद्भ्रान्तां विदुः विद्युद्भ्रान्ता जानते हैं।

यह विद्युद्भ्रान्ता है। (१)

(पुरःक्षेपा—२)

अङ्घ्रिं कुञ्चितमुत्क्षिप्य पुरो विस्तार्य वेगतः॥ १००२॥
विन्यसेदवनौ यत्र पुरःक्षेपा भवेदसौ।

इति पुरःक्षेपा (२)

पुरःक्षेपा—२

१००२ ग-१००३ ख. (अ०) यत्र जहाँ कुञ्चितम् अङ्घ्रिम् उत्क्षिप्य कुंचित पैर को ऊपर उठा कर वेगतः वेग से पुरः विस्तार्य सामने फैला कर अवनौ विन्यसेत् भूमि पर रखा जाता है असौ यह पुरःक्षेपा भवेत् पुरःक्षेपा होती है।

यह पुरःक्षेपा है। (२)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(विक्षेपा—३)

पुरो गगनभागे चेत्प्रसार्य चरणं मुहुः ॥ १००३ ॥
आकुञ्चयेत्तदा चारी विक्षेपा शार्ङ्गिणोदिता।

इति विक्षेपा (३)

विक्षेपा—३

१००३ ग-१००४ ख. (अ०) चरणं पैर पुरः सामने गगनभागे प्रसार्य आकाश की ओर फैला कर मुहुः बार-बार आकुञ्चयेत् चेत् यदि आकुंचित करें तदा तो (वह) शार्ङ्गिणा शार्ङ्गदेव के द्वारा विक्षेपा चारी उदिता विक्षेपा चारी कही गई है।

यह विक्षेपा है। (३)

(हरिणप्लुता—४)

नताङ्घ्रेरुत्प्लुत्याभीक्ष्णं निपाताद्धरिणप्लुता ॥ १००४ ॥

इति हरिणप्लुता (४)

हरिणप्लुता—४

१००४ ग-घ. (अ०) नत-अङ्घ्रेः मुड़े हुए पैर का अभीक्ष्णम् बार-बार उत्प्लुत्य निपातात् ऊपर उछल कर नीचे गिरने (आने) से हरिणप्लुता हरिणप्लुता (होती है)।

यह हरिणप्लुता है। (४)

(अपक्षेपा—५)

बाह्यपार्श्वेन यत्रोरोः पृष्ठं स्पृष्ट्वेतरत्पदम्।
नितम्बनिकटं याति सापक्षेपा प्रकीर्तिता ॥ १००५ ॥

इत्यपक्षेपा (५)

अपक्षेपा—५

१००५. (अ०) यत्र जहाँ बाह्यपार्श्वेन (एक पैर की) बाहरी बाजू से उरोः पृष्ठं स्पृष्ट्वा जाँघ के पीछे (के भाग को) छूकर इतरत् पदं दूसरा पैर नितम्बनिकटं याति नितंब के पास जाता है सा वह अपक्षेपा प्रकीर्तिता अपक्षेपा कही गई है।

यह अपक्षेपा है। (५)

(डमरी—६)

डमर्याकुञ्चितस्याङ्घ्रेर्वामदक्षिणतो भ्रमात्।

इति डमरी (६)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

डमरी—६

१००६ क-ख. (अ०) **आकुञ्चितस्य अङ्घ्रेः** आकुंचित पैर के **वामदक्षिणतः भ्रमात्** बाएँ दायें गोल घूमने से **डमरी** डमरी (होती है)।

यह डमरी है। (६)

(दण्डपादा—७)

यत्र स्वस्तिकमावर्त्य प्रोत्क्षिपेत्तिर्यगूर्ध्वतः॥ १००६॥

चरणौ दण्डपादा सा चारी निःशङ्ककीर्तिता।

इति दण्डपादा (७)

दंडपादा—७

१००६ ग-१००७ ख. (अ०) **यत्र** जहाँ (नर्तक) **चरणौ** दोनों पैर **स्वस्तिकम् आवर्त्य** स्वस्तिक (आकार में) घुमा कर **तिर्यक् ऊर्ध्वतः** तिरछे (और) ऊपर की ओर **प्रोत्क्षिपेत्** ऊपर फेंकता (सा) है **सा** वह **निःशङ्ककीर्तिता** निःशंक (शार्ङ्गदेव) द्वारा कही गई **दण्डपादा चारी** दंडपादा चारी (है)।

यह दंडपादा है। (७)

(अङ्घ्रिताडिता—८)

विस्तार्याङ्घ्री प्लुतं कृत्वा गगने ताडयेन्मिथः॥ १००७॥

यदा पादतलद्वन्द्वं तदा चार्यङ्घ्रिताडिता।

इत्यङ्घ्रिताडिता (८)

अंघ्रिताडिता—८

१००७ ग-१००८ ख. (अ०) **यदा** जब **अङ्घ्री विस्तार्य** दोनों पैर फैला कर **गगने** आकाश में **प्लुतं कृत्वा** उड़ान भर (उछल) कर **पादतलद्वन्द्वं** दोनों पैरों के तलुओं को **मिथः ताडयेत्** (नर्तक) परस्पर टकराता हो **तदा** तब **अङ्घ्रिताडिता चारी** अंघ्रिताडिता चारी (होती है)।

(सर०) आनन्द० और आड्० संस्करणों में इस कारिका में 'गमनं ताडयेन्मिथः' पाठ है। सिंह० की टीका में 'प्लुतिं कृत्वा' के बाद 'आकाशे ···' है जिसके द्वारा 'आकाश में दोनों तलुए परस्पर टकराये जाते हैं'—यह अभिप्रेत अर्थ प्राप्त होता है। यह आनन्द० की पादटिप्पणी में दिए गए 'गगने' पाठ भेद के अनुसार है। इसलिये हमने गगने पाठ का ग्रहण करके अर्थ दिया है।

यह अंघ्रिताडिता है। (८)

(जङ्घालङ्घनिका—९)

किंचिदाकुञ्चितं पादमङ्घ्रिणान्येन लङ्घयेत्॥ १००८॥

गगने चेत्तदा चारी जङ्घालङ्घनिका मता।

इति जङ्घालङ्घनिका (९)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जंघालंघनिका—९

१००८ ग-१००९ ख. (अ०) **किंचित् आकुञ्चितं पादं** कुछ आकुंचित पैर को **अन्येन अङ्घ्रिणा** दूसरे पैर से **गगने लङ्घयेत् चेत्** यदि आकाश में लाँघते हैं **तदा** तब **जङ्घालङ्घनिका चारी मता** जंघालंघनिका चारी मानी गई है।

यह जंघालंघनिका है। (९)

(अलाता—१०)

अलाताङ्घ्रौ पृष्ठगते शीघ्रमन्याङ्घ्रिलङ्घिते॥ १००९॥

इत्यलाता (१०)

अलाता—१०

१००९ ग-घ. (अ०) **पृष्ठगते अङ्घ्रौ** पीछे की ओर गया हुआ पैर **शीघ्रं** जल्दी से **अन्य-अङ्घ्रिलङ्घिते** दूसरे पैर से लाँघ जाने पर **अलाता** अलाता (होती है)।

यह अलाता है। (१०)

(जङ्घावर्ता—११)

तलमन्तर्भ्रमस्याङ्घ्रेर्जानुपृष्ठे क्षिपेद्यदि।
बहिर्भ्रमस्य तत्पार्श्वे जङ्घावर्ता तदा भवेत्॥ १०१०॥

इति जङ्घावर्ता (११)

जंघावर्ता—११

१०१०. (अ०) **यदि अन्तःभ्रमस्य अङ्घ्रेः तलं** यदि भीतर की ओर गोल घूमते हुए पैर का तलुआ **जानुपृष्ठे** घुटने के पीछे **बहिर्भ्रमस्य** बाहर की ओर गोल घुमाते हुए **तत् पार्श्वे** (नर्तक) उसकी (दूसरे पैर या घुटने की) बाजू में **क्षिपेत्** रखता है **तदा** तब **जङ्घावर्ता भवेत्** जंघावर्ता होती है।

यह जंघावर्ता है। (११)

(वेष्टनम्—१२)

अङ्घ्रिणैकेन चेदन्यं वेष्टयेद्वेष्टनं तदा।
तदेव वलनं केचिदवदन्नृत्तकोविदाः॥ १०११॥

इति वेष्टनम् (१२)

वेष्टन—१२

१०११. (अ०) **एकेन अङ्घ्रिणा** एक पैर से **अन्यं वेष्टयेत् चेत्** यदि दूसरे (पैर) को लपेटा जाता है **तदा वेष्टनं** तो वेष्टन होता है। **केचित् नृत्तकोविदाः** कुछ नृत्त के प्रवीणों ने **तत् एव** उसे ही **वलनम् अवदन्** वलन कहा है।

यह वेष्टन है। (१२)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(उद्वेष्टनम्—१३)

उद्वेष्टनं वेष्टयित्वा पृष्ठतोऽङ्घ्रौ प्रसारिते।

इत्युद्वेष्टनम् (१३)

उद्वेष्टन—१३

१०१२ क-ख. (अ०) पृष्ठतः वेष्टयित्वा पीछे से लपेट कर अङ्घ्रौ प्रसारिते पैर फैलाने पर उद्वेष्टनम् उद्वेष्टन (होता है)।

यह उद्वेष्टन है। (१३)

(उत्क्षेपः—१४)

आकुञ्चितस्य पादस्य पुरतः पृष्ठतस्तथा॥ १०१२॥

उत्क्षेपो जानुपर्यन्तमुत्क्षेपः कथ्यते बुधैः।

इत्युत्क्षेपः (१४)

उत्क्षेप—१४

१०१२ ग-१०१३ ख. (अ०) आकुञ्चितस्य पादस्य आकुंचित पैर का पुरतः सामने तथा पृष्ठतः और पीछे जानुपर्यन्तम् उत्क्षेपः घुटने तक ऊपर उठाना बुधैः बुधों के द्वारा उत्क्षेपः कथ्यते उत्क्षेप कहा जाता है।

यह उत्क्षेप है। (१४)

(पृष्ठोत्क्षेपः—१५)

स चेत्पृष्ठत एव स्यात्पृष्ठोत्क्षेपममुं विदुः॥ १०१३॥

इति पृष्ठोत्क्षेपः (१५)

पृष्ठोत्क्षेप—१५

१०१३ ग-घ. (अ०) सः वह (उत्क्षेप) पृष्ठतः एव स्यात् चेत् यदि पीछे की ओर ही होता है (तो) अमुम् उसे पृष्ठोत्क्षेपं विदुः पृष्ठोत्क्षेप जानते हैं।

यह पृष्ठोत्क्षेप है। (१५)

(सूची—१६)

ऊरौ पार्श्वेन विन्यस्य पदं यत्र प्रसारयेत्।
तीक्ष्णाग्रीकृत्य तामाह सूचीं श्रीकण्ठवल्लभः॥ १०१४॥

इति सूची (१६)

सूची—१६

१०१४. (अ०) यत्र जहाँ पार्श्वेन ऊरौ विन्यस्य बाजू की ओर से जाँघ पर रख कर तीक्ष्ण-अग्रीकृत्य पदं प्रसारयेत् तीक्ष्ण अग्र (नोक) करके पैर को फैलाये तां श्रीकण्ठवल्लभः (तो) उसे शिवप्रिय (शार्ङ्गदेव) सूचीम् आह सूची कहता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) आड्० में 'उरः पार्श्वेन' पाठ है, सिंह० का यही पाठ है। लेकिन आनन्द० में ऊरौ पार्श्वेन पाठ है जो मान० के 'ऊरोरुपरि' के अनुसार संगत है उससे अभीष्ट अर्थ प्राप्त होता है इसलिये हमने ऊरौ रखा है।

यह सूची है। (१६)

(विद्धा—१७)

पादयोः स्वस्तिकेऽस्यैकः किंचिदान्दोलितः पुरः।
कुञ्चितश्चरणो यत्र सा विद्धा बोधिता बुधैः॥ १०१५॥

इति विद्धा (१७)

विद्धा—१७

१०१५. (अ०) **यत्र** जहाँ **स्वस्तिके पादयोः** दोनों स्वस्तिक पैरों में (से) **अस्य एकः कुञ्चितः चरणः** इसका एक कुंचित पैर **पुरः किंचित् आन्दोलितः** सामने की ओर थोड़ा आंदोलित (हो) **सा** वह **बुधैः** विद्वानों के द्वारा **विद्धा बोधिता** विद्धा बताई गई है।

(सर०) सिंह० ने इसकी व्याख्या यों की है—जहाँ एक पैर स्वस्तिक होकर कुछ आन्दोलित होता है और दूसरा कुंचित होता है वह बद्धा है। मूल पाठ के अनुसार क्रिया एक ही पैर में कही गई है दोनों में नहीं। 'पादयोः स्वस्तिके' में सप्तमी द्विवचन है और 'एकः कुञ्चितः चरणः' में प्रथमा एकवचन। इसलिये वही अर्थ संगत है जो हमने ऊपर दिया है।

यह विद्धा है। (१७)

(प्रावृतम्—१८)

ललिता वलिता मूर्तिरुद्वृत्तश्चरणो भवेत्।
यत्र तत्प्रावृतं ज्ञेयं मकरध्वजजीवनम्॥ १०१६॥

इति प्रावृतम् (१८)

प्रावृत—१८

१०१६. (अ०) **यत्र** जहाँ **मूर्तिः** देह **ललिता वलिता** ललित और वलित (तथा) **चरणः उद्वृतः भवेत्** पैर उद्वृत्त होता है **तत्** वह **मकरध्वजजीवनं** मकर (मगर से चिह्नित) ध्वज वाले (कामदेव) का जीवन स्वरूप **प्रावृतं ज्ञेयं** प्रावृत जाना गया है।

यह प्रावृत है। (१८)

(उल्लोलः—१९)

उल्लोलः स्याच्चरणयोः क्रमेणोल्लोलनाद्दिवि।

इत्युल्लोलः (१९)

इत्येकोनविंशत्याकाशचार्यः

इति षडशीतिर्मार्गदेशीचार्यः

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उल्लोल—१९

१०१७ क-ख. (अ०) **दिवि** आकाश में **चरणयोः** दोनों पैरों के **क्रमेण उल्लोलनात्** क्रम से चंचलता से हिलने से **उल्लोलः स्यात्** उल्लोल होता है।

यह उल्लोल है। (१९)

ये उन्नीस आकाशिकी चारियाँ हैं।

छियासी मार्ग देशी चारियाँ समाप्त

(सर०) ग्रन्थकार ने ३५ भौमी और १९ आकाशिकी—यों कुल ५४ देशी चारियों का लक्षण दिया। कल्लि० ने उल्लेख किया कि इन ५४ चारियों में देशीत्व है और भरत द्वारा नहीं कही गईं, लेकिन कोहल ने कही हैं। लोक में मधुप नामक जो विशेष चारी हैं वे देशी चारियों में ही अन्तर्भूत हैं। कोहल द्वारा निरूपित २५ चारियाँ कल्लि० ने उद्धृत की हैं। उसके शुरू में ही कहा गया है कि पादनिकुट्ट नामक चारी ही लोक में मधुप कही जाती है और उसके बहुत भेद हैं। उनमें से कुछ ही यहाँ कही हैं।

(स्थानकानि)

स्थानं स्थितिर्गतिश्चारी स्थानमाद्यन्तयोर्गतेः॥ १०१७॥

स्थित्वा गच्छति गत्वा च तिष्ठतीत्यविनाकृताः।
चार्यः स्थानेन ताभ्योऽतोऽनन्तरं स्थानमुच्यते॥ १०१८॥

स्थानक

१०१७ ग-१०१८. (अ०) **स्थानं स्थितिः** स्थान अर्थात् स्थिति (स्थिर रहना) (और) **चारी गतिः** चारी अर्थात् गति (है)। **गतेः आद्य-अन्तयोः** गति के आदि (शुरू) और अन्त में **स्थानं** स्थान (होता है)। **स्थित्वा गच्छति** स्थिर (खड़े) होकर जाता है **गत्वा च तिष्ठति** और जाकर खड़ा (स्थिर) होता है। **इति** इस प्रकार **चार्यः** चारियाँ **स्थानेन** स्थान से **अविनाकृताः** नित्य संबन्धयुक्त हैं। **अतः** इसलिये **ताभ्यः अनन्तरम्** उनके (चारियों के) बाद **स्थानम् उच्यते** स्थान कहा जाता है (कह रहा हूँ)।

(सर०) कल्लि० ने व्याख्या में स्थान और चारी शब्दों की व्युत्पत्ति के द्वारा दोनों का संबन्ध स्पष्ट किया है। 'इसमें स्थित यानी खड़े होते हैं' (वह स्थान) इस व्युत्पत्ति से अधिकरण का साधन न समझा जाय बल्कि स्थान शब्द को भाव का साधन दिखाने के लिये ग्रन्थकार ने **स्थानं स्थितिः** कहा। और 'इसके द्वारा चलते हैं' इस व्युत्पत्ति से गति ही चारी शब्द के द्वारा कही जाती है इसलिये कहा—**गतिः चारी**। वह स्थान गति के शुरू और अन्त में नियमतः होता है इसलिये कहा—**स्थानमाद्यन्तयोर्गतेः**। यही अर्थ लोक से सिद्ध करने के लिये कहा—**स्थित्वा गच्छति** के द्वारा शुरू में स्थिति का नियम और **गत्वा च तिष्ठति** के द्वारा अन्त में स्थिति का नियम दिखाया। यहाँ स्थान और चारी में उसी तरह का व्याप्तिनियम या संबन्ध है जैसा न्यायशास्त्र के अग्नि और धूम के उदाहरण में है। जैसे आग से धुआँ व्याप्त होता है, धुएँ से आग नहीं उसी तरह स्थान से चारी व्याप्त होती है चारी से स्थान नहीं क्योंकि आग और स्थान व्यापक हैं तथा धुआँ और चारी व्याप्य।

संनिवेशविशेषोऽङ्गे निश्चलः स्थानमुच्यते।

१०१९ क-ख. (अ०) **अङ्गे** शरीर में **निश्चलः संनिवेशविशेषः** चलन (क्रिया) रहित विशिष्ट निवेश (अंगों की योजना) **स्थानम् उच्यते** स्थान (स्थानक) कहा जाता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) विशेषः के द्वारा 'बुद्धिपूर्वक किया गया' यह अर्थ है जिसके द्वारा लौकिक अंगसंनिवेश को 'स्थान' से अलग किया गया है, यह कल्लि० ने स्पष्ट किया।

(स्थानकानामुद्देशः)

वैष्णवं समपादं च वैशाखं मण्डलं तथा॥ १०१९॥

आलीढप्रत्यालीढे च स्थानानीति नरेषु षट्।
अथ स्थानानि वक्ष्यामस्त्रीणि स्त्रीणां मुनेर्मतात्॥ १०२०॥

आयताख्यावहित्थाश्वक्रान्तान्यन्यच्चतुष्टयम्।
अथापि चेति वदता मुनिना सूचितं ब्रुवे॥ १०२१॥

गतागतं च वलितं मोटितं विनिवर्तितम्।

स्थानकों का उद्देश

१०१९ ग-१०२२ ख. (अ०) वैष्णव, समपाद और वैशाख, मंडल तथा आलीढ और प्रत्यालीढ इति ये नरेषु षट् स्थानानि पुरुषों के छ स्थानक (होते हैं)। अथ अब मुनेः मतात् (भरत) मुनि के मत से स्त्रीणां स्त्रियों के त्रीणि स्थानानि वक्ष्यामः तीन स्थान कहेंगे। आयत नामक, अवहित्थ, अश्वक्रान्त (ये तीन हैं)। अन्यत् चतुष्टयम् अन्य चार अथ-अपि च 'और भी' इति वदता यह कहने वाले मुनिना सूचितं मुनि के द्वारा सूचित किये हुए ब्रुवे कहता हूँ—गतागत, वलित, मोटित और विनिवर्तित।

(देशीस्थानकोद्देशः)

अथ देशीस्थानकानां त्रयोविंशतिरुच्यते॥ १०२२॥

स्वस्तिकं वर्धमानाख्यं नन्द्यावर्तं च संहतम्।
समपादं चैकपादं पृष्ठोत्तानतलं तथा॥ १०२३॥

चतुरश्रं पार्ष्णिविद्धं पार्ष्णिपार्श्वगतं तथा।
एकपार्श्वगतं च स्यादेकजानुनताभिधम्॥ १०२४॥

परावृत्ताह्वयं सूचि समादि विषमाद्यपि।
खण्डसूचि ततो ब्राह्मं वैष्णवं शैवगारुडे॥ १०२५॥

कूर्मासनं नागबन्धं वृषभासनमित्यपि।

देशीस्थानकों का उद्देश

१०२२ ग-१०२६ ख. (अ०) अथ अब देशीस्थानकानां देशी स्थानकों की त्रयोविंशतिः उच्यते तेईस संख्या कही जा रही है। स्वस्तिक, वर्धमान नामक, नन्द्यावर्त और संहत, समपाद और एकपाद, पृष्ठोत्तानतल तथा चतुरश्र, पार्ष्णिविद्ध तथा पार्ष्णिपार्श्वगत, एकपार्श्वगत और एकजानुनत नामक, परावृत्त नामक, सूचि सम-आदि विषम-आदि अपि सूचि सम से शुरू होने वाली और विषम से शुरू होने वाली सूचि (अर्थात् समसूचि, विषमसूचि), खंडसूचि, उसके बाद ब्राह्म, वैष्णव, शैव और गारुड, कूर्मासन, नागबन्ध, वृषभासन—ये (तेईस) हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(अन्यानि स्थानकानि)

स्वस्थं मदालसं क्रान्तं स्याद्विष्कम्भितमुत्कटम्॥ १०२६॥

स्त्रस्तालसं जानुगतं मुक्तजानु विमुक्तकम्।
उपविष्टस्थानकानि नवेति भरतोऽब्रवीत्॥ १०२७॥

सममाकुञ्चितं स्थानं प्रसारितविवर्तिते।
उद्वाहितं नतं चेति सुप्तस्थानानि सन्ति षट्॥ १०२८॥

इति स्थानानि षट्पुंसां स्त्रीणां सप्तापराण्यपि।
त्रयोविंशतिरुक्तानि नव स्थानानि चासने॥ १०२९॥

सुप्तस्थानानि षट् तानि सर्वाणि मिलितानि तु।
एकपञ्चाशदाचष्ट निःशङ्कः करणाग्रणीः॥ १०३०॥

सर्वेषां वच्मि लक्ष्मैषामिदानीं तद्विदां मतम्।

अन्य स्थानक

१०२६ ग-१०३१ ख. (अ०) स्वस्थ, मदालस, क्रान्त, विष्कंभित, उत्कट, स्त्रस्तालस, जानुगत, मुक्तजानु, विमुक्त इति नव उपविष्ट स्थानकानि ये नौ बैठने के स्थानक भरतः अब्रवीत् भरत ने कहे हैं। सम, आकुंचित स्थानक, प्रसारित और विवर्तित, उद्वाहित और नत इति षट् ये छ सुप्तस्थानानि सन्ति सुप्त स्थान (सोने के) होते हैं। इति यों षट् पुंसां स्थानानि छ पुरुषों के स्थान, स्त्रीणां स्त्रियों के अपराणि अपि अन्य भी सप्त सात (ये सब तथा) उक्तानि त्रयोविंशतिः पहले कहे गये तेईस (देशी स्थानक), आसने (फिर) बैठने में नव स्थानानि नौ स्थानक, सुप्तस्थानानि षट् सोने के छ स्थान तानि सर्वाणि मिलितानि तु वे सब मिला कर तो करणाग्रणीः निःशङ्कः करणाग्रणी निःशंक (शार्ङ्गदेव) ने एकपञ्चाशत् आचष्ट इक्कावन कहे हैं। एषां सर्वेषाम् इन सबके तत् विदां मतं लक्ष्म उनके वेत्ताओं के माने हुए लक्षण इदानीं वच्मि अब कहता हूँ।

(सर०) श्लो० १०२६ ग-१०२७ में भरत द्वारा कहे गये ७ बैठने के स्थानक दिये हैं। ना०शा० के बड़ौदा सं० के गति प्रचार नामक १२वें अध्याय में ये उपलब्ध नहीं हैं। लेकिन इस अध्याय का जो भिन्न पाठ दिया है (पृ० १७६-१९५) उसमें आसनविधि के अन्तर्गत श्लो० २०४-२२३ में ये स्थानक लक्षण और विनियोग सहित दिए गए हैं।

(स्थानकानां लक्षणानि)

(पुरुषस्थानकानि)

(वैष्णवम्—१)

एकः समस्थितः पादस्त्र्यश्रः पक्षस्थितोऽपरः॥ १०३१॥

सार्धद्वितालान्तरालो जङ्घा किंचिन्नता भवेत्।
सौष्ठवं यत्र तज्ज्ञेयं वैष्णवं विष्णुदैवतम्॥ १०३२॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रकृतिस्थस्य संलापे नानाकार्यान्तरान्विते।
प्रयोज्यं तन्मुनिः प्राह नृभिरुत्तममध्यमैः॥ १०३३॥

विष्णुवेषधरेणैव नटेनेत्यपरे जगुः।
सूत्रधारादिना नाट्यस्थितिकर्त्रेति चापरे॥ १०३४॥

पक्षस्थितोऽसौ चरणो यः पार्श्वाभिमुखाङ्गुलिः।
त्र्यश्रः स एव किंचिच्चेत्पुरोदेशाभिमुख्यभाक्॥ १०३५॥

अङ्गुष्ठमध्यमाङ्गुल्यौ ये हस्तस्य प्रसारिते।
तदग्रयोरन्तरालं तालमाहुर्मनीषिणः १०३६॥

कटी जानुसमा यत्र कूर्परांसशिरः समम्।
उरः समुन्नतं सन्नं गात्रं तत्सौष्ठवं भवेत्॥ १०३७॥

सन्नं स्वस्थानविश्रान्तं निषण्णं त्वचलस्थिति।
चलपादमनत्युच्चमचञ्चलमकुब्जकम्॥ १०३८॥

सौष्ठवेऽङ्गं भवेत्तच्च कार्यमुत्तममध्यमैः।
एतच्च वैष्णवं स्थानं चतुरश्रस्य जीवनम्॥ १०३९॥

वैष्णवं स्थानकं यत्र कटीनाभिचरौ करौ।
पृथक्समुन्नतं वक्षश्चतुरश्रं तदुच्यते॥ १०४०॥

इति वैष्णवम् (१)

स्थानकों के लक्षण

पुरुषों के स्थानक

वैष्णव—१

१०३१ ग-१०४०. (अ०) **एकः पादः** एक पाद **समस्थितः** सम रखा हुआ (और) **अपरः** दूसरा **स-अर्धद्वितल-अन्तरालः** ढाई ताल की दूरी पर **पक्षस्थितः त्र्यश्रः** पक्षस्थित त्र्यश्र (रखा हुआ), **जङ्घा किंचित् नता भवेत्** टाँग कुछ झुकी हुई होती है **यत्र** (और) जहाँ **सौष्ठवं** सौष्ठव (हो) **तत्** वह **विष्णुदैवतं** विष्णु देवता वाला **वैष्णवं ज्ञेयं** वैष्णव (स्थानक) जाना गया है। **तत्** वह **प्रकृतिस्थस्य** स्वाभाविक अवस्था वाले (पात्र) के **नानाकार्यान्तर-अन्विते संलापे** अनेक भिन्न-भिन्न कार्यों से संबद्ध बातचीत में **उत्तममध्यमैः नृभिः** उत्तम और मध्यम पुरुषों के द्वारा **प्रयोज्यं** योजित होना चाहिये (ऐसा) **मुनिः प्राह** (भरत) मुनि ने कहा है। **अपरे** अन्य (आचार्यों) ने **विष्णुवेषधरेण नटेन एव** विष्णु का वेश धारण किए हुए नट के द्वारा ही (योजित होना चाहिये) **इति जगुः** ऐसा कहा है। **अपरे च** और दूसरे (आचार्यों) ने **नाट्यस्थितिकर्त्रा** नाट्य की स्थिति निर्मित करने वाले **सूत्रधार-आदिना** सूत्रधार आदि के द्वारा (योजित हो) **इति** ऐसा (कहा है)।

यः जो **पार्श्व-अभिमुख-अङ्गुलिः चरणः** बाजू की ओर उँगलियों वाला पैर (है) **असौ** वह **पक्षस्थितः** पक्षस्थित (होता है)। **स एव** वही **किंचित् पुरोदेश-अभिमुख्यभाक् चेत्** यदि कुछ सामने के भाग की ओर मुँह किये हो (तो) **त्र्यश्रः** त्र्यश्र (होता है)।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हस्तस्य हाथ का **अङ्गुष्ठमध्यमा-अङ्गुल्यौ प्रसारिते** अँगूठा और मध्यमा (इन दोनों के) फैलाने पर **तत्-अग्रयोः अन्तरालम्** उनके अगले भागों (नोकों) के बीच की दूरी **मनीषिणः तालम् आहुः** मनीषी ताल कहते हैं।

यत्र जहाँ **कटी जानुसमा** कमर और घुटने सम हों, **कूर्पर-अंसशिरः समं** (दोनों) कोहनी, (दोनों) कंधे और सिर सम (हों), **उरः समुन्नतं** छाती उचित रूप में ऊँची उठी हुई और **गात्रं सन्नं** शरीर सन्न (हो) **तत्** वह **सौष्ठवं भवेत्** सौष्ठव होता है।

सन्नं सन्न (का अर्थ है) **स्वस्थानविश्रान्तम्** अपने स्थान पर विश्रान्त (और) **निषण्णं तु** निषण्ण तो **अचलस्थिति** अचल रहना (है)।

सौष्ठवे सौष्ठव में **अङ्गं** शरीर **चलपादं** चलते हुए (जैसा गतिशील) पैर वाला, **अनति-उच्चं** बहुत ऊँचा नहीं, **अचञ्चलं** चंचल नहीं (और) **अकुब्जं** कुबड़ेपन वाला नहीं **भवेत्** होता है। **तत् च** और वह **उत्तममध्यमैः** उत्तम और मध्यम (प्रकृति के पात्रों) के द्वारा **कार्यं** प्रयुक्त होना चाहिये। **एतत् च** यह **वैष्णवं स्थानं** वैष्णव स्थानक **चतुरश्रस्य जीवनं** चतुरश्र का जीवन (होता है)।

यत्र जहाँ **वैष्णवं स्थानकं** वैष्णव स्थानक (होने पर) **करौ** दोनों हाथ **कटीनाभिचरौ** कमर और नाभि पर संचार करने वाले (और) **वक्षः** छाती **पृथक् समुन्नतं** स्वतंत्र रूप से समुचित उन्नत हुई हो **तत्** वह **चतुरश्रम् उच्यते** चतुरश्र कहा जाता है।

(सर०) वैष्णव स्थानक के लक्षण में आये हुए पक्षस्थित, त्र्यश्र, ताल, सौष्ठव शब्दों के लक्षण अथवा अर्थ और इन पदों के संदर्भ में प्रयुक्त सन्न, निषण्ण के अर्थ भी ग्रन्थकार ने यहाँ दे दिये हैं।

यह वैष्णव है। (१)

(समपादम्—२)

प्रधानं सौष्ठवं पादावेकतालान्तरौ समौ।
यत्र तत्समपादं स्याच्चतुराननदैवतम्॥ १०४१॥

एतच्च विप्रदत्ताशीःस्वीकारेऽथ निरीक्षणे।
मध्यमानां विहङ्गानां कन्यावरकुतूहले॥ १०४२॥

लिङ्गिव्रतिविमानस्थस्यन्दनस्थेषु चेष्यते।

इति समपादम् (२)

समपाद—२

१०४१-१०४३ ख. (अ०) **यत्र** जहाँ **सौष्ठवं प्रधानं** सौष्ठव प्रधान (हो), **एकताल-अन्तरे** एक ताल की दूरी पर **पादौ** दोनों पैर **समौ** सम (हों) **तत्** वह **समपादं स्यात्** समपाद होता है। **चतुराननदैवतम्** (उसका) चतुरानन (ब्रह्मा) देवता (है)। **एतत् च** और यह **विप्रदत्त-आशीःस्वीकारे** ब्राह्मण द्वारा दिया गया आशीर्वाद स्वीकार करने में **अथ** और **मध्यमानां विहंगानां निरीक्षणे** मध्यम (प्रकार के) पक्षियों का निरीक्षण करने में, **कन्यावरकुतूहले** कन्या और वर के (परस्पर देखने के) कुतूहल (उत्सुक होने) में तथा **लिङ्गिव्रतिविमानस्थस्यन्दनस्थेषु** लिंगी (संन्यासी), **व्रती** व्रत धारण किये हुए, विमान में स्थित और रथ पर चढ़े हुओं में **इष्यते** माना गया है।

यह समपाद है। (२)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(वैशाखम्—३)

भूमेरूर्ध्वनिषण्णौ चेत्सार्धतालत्रयान्तरे॥ १०४३॥

नभस्यूरू चरणयोस्तावदेवान्तरं भुवि।
त्र्यश्रपक्षस्थयोः स्थानं वैशाखं कथितं तदा॥ १०४४॥

विशाखदैवतं तच्च स्थूलपक्षीक्षणे भवेत्।
युद्धादौ प्रेरणेऽश्वानां वेगादाने च वाहने॥ १०४५॥

इति वैशाखम् (३)

वैशाख—३

१०४३ ग-१०४५. (अ०) भूमेः ऊर्ध्वनिषण्णौ ऊरू भूमि से ऊपर उठी हुई दोनों निषण्ण जाँघ नभसि आकाश में सार्धतालत्रय-अन्तरे साढ़े तीन ताल की दूरी पर (स्थित) चरणयोः दोनों पैरों में भी भुवि तावत् एव अन्तरं भूमि पर उतनी ही दूरी हो त्रयपक्षस्थयोः चेत् (और) यदि वे दोनों पैर त्र्यश्र पक्षस्थित हों तदा तो वैशाखं स्थानं कथितं वैशाख स्थान कहा गया है। विशाखदैवतं कार्तिकेय (उसका) देवता है तत् च और वह स्थूलपक्षी-ईक्षणे स्थूल पक्षी देखने में, युद्ध-आदौ युद्ध आदि में अश्वानां प्रेरणे घोड़ों को प्रेरित करने में वाहने वेग-आ-दाने च और वाहन में वेग लाने में भवेत् (योजित) होता है।

यह वैशाख है। (३)

(मण्डलम्—४)

पक्षस्थौ चरणौ त्र्यश्रावेकतालान्तरौ भुवि।
कटीजानुसमौ व्योम्नि सार्धतालद्वयान्तरे॥ १०४६॥

ऊरू यत्र निषण्णौ तन्मण्डलं शक्रदैवतम्।
धनुर्वज्रादिशस्त्राणां प्रयोगे गजवाहने॥ १०४७॥

वीक्षणे गरुडादीनामिदं मुनिरुपादिशत्।
चतुस्तालान्तरौ पादौ मण्डलेऽन्ये प्रचक्षते॥ १०४८॥

इति मण्डलम् (४)

मंडल—४

१०४६-१०४८. (अ०) यत्र जहाँ पक्षस्थौ त्र्यश्रौ चरणौ पक्षस्थित त्र्यश्र दोनों पैर एकताल-अन्तरौ (बीच में) एक ताल की दूरी रख कर भुवि भूमि पर (रखे हों), ऊरू सार्धतालद्वय-अन्तरे जाँघों के बीच में ढाई ताल की दूरी रख कर व्योम्नि निषण्णौ आकाश में अचल (हों और) कटीजानुसमौ कमर और घुटने सम (हों) तत् मण्डलं वह मंडल (होता है)। शक्रदैवतं इन्द्र (उसका) देवता है। धनुः वज्र-आदिशस्त्राणं प्रयोगे धनुष, वज्र आदि शस्त्रों के प्रयोग में, गजवाहने हाथी पर चढ़े होने (के अभिनय) में; गरुड-आदीनां वीक्षणे गरुड आदि को देखने में इदम् इसका मुनिः उपादिशत् (भरत) मुनि ने उपदेश किया। अन्ये अन्य (आचार्य) पादौ दोनों पैर चतुःताल अन्तरौ चार ताल के अन्तर वाले प्रचक्षते कहते हैं।

यह मंडल है। (४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(आलीढम्—५)

वामो यत्र निषण्णोरुरम्बरे पूर्वमानतः।
दक्षिणश्चरणश्चाग्रे पञ्चतालं प्रसारितः॥ १०४९॥

त्र्यश्रौ द्वावपि तद्विद्यादालीढं रुद्रदैवतम्।
ईर्ष्याक्रोधकृतो जल्पः कार्यस्तेनोत्तरोत्तरः॥ १०५०॥

वीररौद्रकृतं मल्लसंघर्षास्फोटनादिकम्।
तथा संधाय शस्त्राणि प्रत्यालीढं समाश्रयेत्॥ १०५१॥

इत्यालीढम् (५)

आलीढ—५

१०४९-१०५१ ख. (अ०) **यत्र** जहाँ **वामः ऊरुः** बाईं जाँघ **अम्बरे** आकाश में **पूर्वमानतः** पहले वाले (मंडल में कहे गये) प्रमाण से **निषण्णः** अचल (होकर), **दक्षिणः चरणः** दाहिना पैर **अग्रे** सामने की ओर **पञ्चतालं प्रसारितः** पाँच ताल प्रसारित (हो और) **द्वौ अपि** दोनों ही (पैर) **त्र्यश्रौ** त्र्यश्र (हों) **तत्** वह **आलीढं विद्यात्** आलीढ जाना गया है। **रुद्रदैवतं** रुद्र (उसका) देवता (है)। **तेन** उस (आलीढ) के द्वारा **ईर्ष्याक्रोधकृतः** ईर्ष्या और क्रोध से उत्पन्न हुआ **उत्तरः उत्तरः** आगे-आगे बढ़ता जाने वाला **जल्पः कार्यः** वाद-विवाद करना चाहिये। **वीररौद्रकृतं** वीर (और) रौद्र (रसों) में, **मल्लसंघर्ष-आस्फोटन-आदिकं** मल्लयुद्ध में, (उनके द्वारा) ताल ठोकने आदि में **तथा शस्त्राणि संधाय** और शस्त्र संधान में **प्रत्यालीढं समाश्रयेत्** प्रत्यलीढ का आश्रय करना चाहिये।

यह आलीढ है। (५)

(प्रत्यालीढम्—६)

आलीढाङ्गविपर्यासात्प्रत्यालीढमुदीरितम्।
आलीढकृतसंधानशस्त्रमेतेन मोक्षयेत्॥ १०५२॥

रुद्रं च दैवतं तत्र भाषते शंभुवल्लभः।

इति प्रत्यालीढम् (६)

प्रत्यालीढ—६

१०५२-१०५३ ख. (अ०) **आलीढ-अङ्गविपर्यासात्** आलीढ के अंगों को उलट कर करने से **प्रत्यालीढम् उदीरितं** प्रत्यालीढ कहा गया है। **आलीढकृतसंधानशस्त्रम्** आलीढ से किया गया शस्त्रसंधान **एतेन मोक्षयेत्** इसके द्वारा छोड़ना चाहिये। **तत्र च** और उसमें **शंभुवल्लभः** शंभुप्रिय (शार्ङ्गदेव) **रुद्रं दैवतं भाषते** रुद्र देवता कहता है।

यह प्रत्यालीढ है। (६)

एषामाद्यानि चत्वारि दृष्यन्ते नाट्यनृत्तयोः॥ १०५३॥

प्रयोगस्त्वन्त्ययोस्तज्ज्ञैरिष्टो नाट्यैकगोचरः।
अन्ये पञ्चविधेऽप्याहुर्नर्तने स्थानकानि षट्॥ १०५४॥

इति षट्पुरुषस्थानकानि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१०५३ ग-१०५४. (अ०) **एषाम्** इनमें से **आद्यानि चत्वारि** शुरू के चार **नाट्यनृत्तयोः दृश्यन्ते** नाट्य और नृत्त में दिखाई देते हैं। **अन्त्ययोः प्रयोगः तु** अन्तिम दो का प्रयोग तो **तत्-ज्ञैः** उसके ज्ञाताओं के द्वारा **नाट्य-एकगोचरः** केवल नाट्य में होने वाला **इष्टः** इष्ट माना गया है। **अन्ये** अन्य (आचार्य) **पञ्चविधे अपि नर्तने** पाँचों प्रकार के नर्तन में **षट् स्थानकानि आहुः** छ स्थानक कहते हैं।

(सर०) कल्लि० ने पञ्चविधे के संदर्भ में कहा कि नाट्य, नृत्य, नृत्त, लास्य और ताण्डव—नर्तन के ये पूर्वोक्त पाँच प्रकार समझने चाहियें। (श्लो० १७-१८, २६ ग-२८)

ये छ पुरुषस्थानक हैं।

(स्त्रीस्थानकानि)

आयतम्—१

वामस्तालान्तरस्त्र्यश्रो दक्षिणश्चरणः समः।
प्रसन्नं वदनं वक्षः समुन्नतमनुन्नता॥ १०५५॥

कटीनितम्बगो हस्तो दक्षिणोऽन्यो लताकरः।
यत्रायतं तदाख्यातं कमला चात्र देवता॥ १०५६॥

स्त्रियों के स्थानक

आयत—१

१०५५-१०५६. (अ०) **यत्र** जहाँ **वामः** बायाँ (पैर) **ताल-अन्तरः** (एक) ताल की दूरी पर **त्र्यश्रः** त्र्यश्र, **दक्षिणः चरणः** दाहिना पैर **समः** सम **वदनं प्रसन्नं** चेहरा प्रसन्न **वक्षः समुन्नतं** छाती ऊँची उठी हुई, **कटी अनुन्नता** कमर ऊँची (उभारी हुई) न हो, **दक्षिणः हस्तः** दाहिना हाथ **नितम्बगः** नितंब पर रखा हुआ (और) **अन्यः** दूसरा (बायाँ) **लताकरः** लताहस्त (हो) **तत् आयतम् आख्यातं** वह आयत कहा गया है **अत्र च** और इसमें **कमला देवता** कमला देवता (है)।

स्थानं चिकीर्षितासु स्यात्क्षतासु च गतिष्विदम्।
आभाषणे च कर्तव्ये सखीप्रियतमादिभिः॥ १०५७॥

रङ्गावतरणारम्भे पुष्पाञ्जलिविसर्जने।
अमर्षे चाभिलाषेर्ष्याप्रभवेऽङ्गुलिमोटने॥ १०५८॥

तर्जने प्रतिषेधे च कार्यं मानावलम्बने।
गर्वगाम्भीर्यमौने स्यादावाहनविसर्जने॥ १०५९॥

१०५७-१०५९. (अ०) **इदं स्थानं** यह स्थान **चिकीर्षितासु** साभिप्राय (किसी हेतु वाली) **क्षतासु गतिषु च** और घायल हुओं की गति में, **सखीप्रियतम-आदिभिः** सखी, प्रियतम आदि से **आभाषणे च** संभाषण में **कर्तव्यः** (योजित) करना चाहिये। **रङ्ग-अवतरण-आरम्भे** रंगभूमि में (पात्र के प्रथम) प्रवेश के शुरू में, **पुष्प-अञ्जलिविसर्जने** फूलों की अंजलि विसर्जित करने में, **अभिलाष-ईर्ष्याप्रभवे** अभिलाषा और ईर्ष्या से उत्पन्न होने वाले **अमर्षे** ईर्ष्या युक्त क्रोध में **अङ्गुलिमोटने च** उँगलियों की मरोड़ (उँगलियों को मरोड़ने) में, **तर्जने** धमकी देने में **प्रतिषेधे** नकारने में **मान-अवलम्बने च कार्यं** मान ठानने में (प्रयोग) करना चाहिये। **गर्वगाम्भीर्यमौने** गर्व तथा गांभीर्य के सूचक मौन में, **आवाहनविसर्जने स्यात्** (देवों के) आवाहन तथा विसर्जन में (योजित) होता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पूर्वरङ्गे स्त्रीभिरेव प्रयोज्यं केचिदूचिरे।
नरो नार्योऽथवा कुर्युः प्रवेशे स्थानकं स्त्रियाः॥ १०६०॥

स्थानं यथाभिनेयं स्यात्प्रविष्टेष्विति चापरे।
आयतानन्तरं कार्या रङ्गावतरणादयः॥ १०६१॥

हस्तपादप्रचारस्तु तेषु ज्ञेयो यथोचितम्।
भट्टाभिनवगुप्तस्य मतमेतदुदीरितम्॥ १०६२॥

इत्यायतम् (१)

आयत—१

१०६०-१०६२. (अ०) पूवरङ्गे पूर्वरंग में **स्त्रीभिः एव** स्त्रियों के द्वारा ही **प्रयोज्यं** (यह स्थानक) प्रयुक्त किया जाना चाहिये। **केचित् ऊचिरे** किन्हीं (आचार्यों) ने कहा (कि) **नरः अथवा नार्यः** एक पुरुष अथवा अनेक स्त्रियाँ **प्रवेशे** प्रवेश में **स्त्रियाः स्थानकं कुर्युः** (यह) स्त्री स्थानक करें। **अपरे च** और दूसरे आचार्य (ऐसा कहते हैं कि) **प्रविष्टेषु इति स्थानं** प्रवेश किये हुए (पात्र) में यह स्थानक **यथा-अभिनेयं स्यात्** अभिनेय के अनुरूप (योजित) होता है। **आयत-अनन्तरम्** आयत के बाद **रङ्गावतरण-आदयः कार्याः** रंगावतरण आदि करने चाहियें। **तेषु** उनमें **हस्तपादप्रचारः तु** हाथ-पैरों का प्रचार तो **यथा-उचितं ज्ञेयः** यथायोग्य जानना चाहिये। **एतत्** यह **भट्ट-अभिनवगुप्तस्य मतं** भट्ट अभिनवगुप्त का मत **उदीरितं** (मैंने) कहा है।

यह आयत है। (१)

(अवहित्थम्—२)

अवहित्थं तदेव स्याद्विपर्यासेन पादयोः।
चिन्तावितर्कयोस्तोषे संलापे च निसर्गजे॥ १०६३॥

विस्मये भूरिसौभाग्यगर्वजे स्वाङ्गवीक्षणे।
लीलाविलासलावण्यवरमार्गविलोकने॥ १०६४॥

कार्यं दौर्गमिदं स्थानमवहित्थस्य सूचकम्।

इत्यवहित्थम् (२)

अवहित्थ—२

१०६३-१०६५ ख. (अ०) **पादयोः विपर्यासेन** दोनों पैरों (की क्रिया) को उलट देने से **तत् एव** वही (आयत स्थानक ही) **अवहित्थं स्यात्** अवहित्थ होता है। **चिन्तावितर्कयोः** चिन्ता और वितर्क में, **तोषे** संतोष में **निसर्गजे संलापे च** और सहज वार्तालाप में, **विस्मये** विस्मय में, **भूरिसौभाग्यगर्वजे** बहुत सौभाग्य से उत्पन्न गर्व में, **स्व-अङ्गवीक्षणे** अपने अंगों को देखने में, **लीलाविलासलावण्यवरमार्गविलोकने** लीला, विलास, लावण्य में और वर का रास्ता देखने में **इदम् अवहित्थस्य सूचकं** यह अवहित्था (संचारी भाव) का सूचक **दौर्गं** दुर्गा देवता वाला (अवहित्थ) **स्थानं कार्यं** स्थानक (योजित) करना चाहिये।

यह अवहित्थ है। (२)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(अश्वक्रान्तम्—३)

समस्यैकस्य पादस्य पार्ष्णिदेशगतोऽपरः॥ १०६५॥

सूचीपादः स्वपार्श्वे वा समस्तालान्तरे स्थितः।
यत्राश्वारोहणारम्भे तदश्वक्रान्तमुच्यते॥ १०६६॥

स्खलिते विगलद्वस्त्रधारणे गोप्यगोपने।
प्रसूनस्तबकादाने तरुशाखावलम्बने॥ १०६७॥

नैसर्गिके च संलापे बिभ्रमे ललिते तथा।
प्रयोक्तव्यमिदं स्थानं भारती चात्र देवता॥ १०६८॥

इत्यश्वक्रान्तम् (३)

अश्वक्रान्त—३

१०६५ ग-१०६८. (अ०) **एकस्य समस्य पादस्य** एक समपाद की **पार्ष्णिदेशगतः** एड़ी के भाग पर **अपरः सूचीपादः** दूसरा (पैर) सूचीपाद (हो) **स्वपार्श्वे वा** अथवा अपनी बाजू में **समः** सम(पाद) **ताल-अन्तरे स्थितः** एक ताल की दूरी पर रखा हो, **तत् अश्वक्रान्तम् उच्यते** वह अश्वक्रान्त कहा जाता है। **अश्व-आरोहण-आरम्भे स्खलिते** घोड़े पर चढ़ते समय डगमगाने में, **विगलत् वस्त्रधारणे** खिसकते हुए वस्त्र को पकड़ कर धारण करने में, **गोप्यगोपने** गुप्त (बात/वस्तु) को छिपाने में, **प्रसूनस्तबक-आदाने** फूलों का गुच्छा लेने में, **तरुशाखा-अवलम्बने** पेड़ की डाल का आधार लेने में **नैसर्गिके संलापे च** और सहज वार्तालाप में **बिभ्रमे** तथा **ललिते** विभ्रम और ललित में **इदं स्थानं प्रयोक्तव्यं** यह स्थानक प्रयुक्त करना चाहिये। **भारती च अत्र देवता** और इसमें भारती देवता है।

यह अश्वक्रान्त है। (३)

(गतागतम्—४)

गत्युन्मुखी च यत्रैकं पदमुद्धृत्य नर्तकी।
उदास्ते तद्गतिस्थित्योर्निरोधात्स्याद्गतागतम्॥ १०६९॥

इति गतागतम् (४)

गतागत—४

१०६९. (अ०) **यत्र** जहाँ **गति-उन्मुखी च नर्तकी** गति के लिये तैयार नर्तकी **एकं पदम् उद्धृत्य** एक पैर उठा कर **उदास्ते** पैर ऊपर उठाए वैसी ही रह जाती है **तत्** वह **गतिस्थित्योः निरोधात्** गति और स्थिति के रुक जाने के कारण **गतागतं स्यात्** गतागत होता (कहलाता है)।

यह गतागत है। (४)

(वलितम्—५)

शरीरमीषद्वलितं पादो वलितदिग्भवः।
कनिष्ठाश्लिष्टभूरन्यो भूलग्नाङ्गुष्ठको यदा॥ १०७०॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तदा वलितमाख्यातं साभिलाषविलोकने।

इति वलितम् (५)

वलित—५

१०७०- १०७१ ख. (अ०) **यदा** जब **शरीरम् ईषत् वलितं** शरीर थोड़ा मुड़ा हुआ, **वलितदिक्भवः** मुड़ी हुई दिशा में होने वाला **पादम्** एक पैर **कनिष्ठाश्लिष्टभूः** भूमि से लगी हुई कनिष्ठा (उँगली) वाला हो (और) **अन्यः** दूसरा (पैर) **भूलग्न-अङ्गुष्ठकः** भूमि से लगे हुए अँगूठे वाला (हो) **तदा** तब **वलितम् आख्यातं** वलित कहा गया है। **साभिलाषविलोकने** (वह) अभिलाषासहित देखने में (प्रयुक्त होता है)।

यह वलित है। (५)

(मोटितम्—६)

एकः समोऽङ्घ्रिरन्यस्तु कुञ्चितोऽर्धतलाङ्गुलिः ॥ १०७१ ॥

अग्रे यदोर्ध्वगौ हस्तौ कर्कटौ मोटितं तदा।
कामावस्थासु सर्वासु विनियोगोऽस्य कीर्तितः ॥ १०७२ ॥

इति मोटितम् (६)

मोटित—६

१०७१ ग-१०७२. (अ०) **यदा** जब **एकः अङ्घ्रिः समः** एक पैर सम (हो) **अन्यः तु** और दूसरा **कुञ्चितः अर्धतल-अङ्गुलिः** कुंचित अर्धतलअंगुलि वाला हो, **कर्कटौ हस्तौ** दोनों कर्कट हाथ **अग्रे** सामने की ओर **ऊर्ध्वगौ** ऊपर उठे हुए (हों) **तदा मोटितं** तब मोटित (होता है)। **काम-अवस्थासु सर्वासु** काम की सभी अवस्थाओं में **अस्य विनियोगः कीर्तितः** इसका विनियोग कहा गया है।

यह मोटित है। (६)

(विनिवर्तितम्—७)

पृष्ठतोऽङ्गपरावृत्त्या तदेव विनिवर्तितम्।

इति विनिवर्तितम् (७)

इति सप्त स्त्रीथानकानि

विनिवर्तित—७

१०७३-क-ख. (अ०) **तत् एव** वही (मोटित ही) **पृष्ठतः अङ्ग-परावृत्त्या** पीछे की ओर शरीर घुमाने से **विनिवर्तितं** विनिवर्तित (होता है)।

यह विनिवर्तित है। (७)

ये सात स्त्रीस्थानक हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(देशीस्थानकानि)

(स्वस्तिकम्—१)

स्वस्तिकौ हंसकस्थाने चरणौ कुञ्चितौ यदा॥ १०७३॥

मिथः श्लिष्टकनिष्ठौ च तदाहुः स्वस्तिकं बुधाः।

इति स्वस्तिकम् (१)

देशीस्थानक

स्वस्तिक—१

१०७३ ग-१०७४ ख. (अ०) **यदा हंसकस्थाने** जब पैंजनी के स्थान पर **स्वस्तिकौ कुञ्चितौ चरणौ** स्वस्तिक (और) कुंचित दोनों पैर **मिथः श्लिष्टकनिष्ठौ च** परस्पर जुड़ी हुई उँगलियों वाले (हों) **तत्** उसे **बुधाः** बुधजन **स्वस्तिकम् आहुः** स्वस्तिक कहते हैं।

(सर०) आड्० में 'स्वस्तिको' पाठ है। आनन्द० की पादटिप्पणी के और सिंह० की व्याख्या के अनुसार **स्वस्तिकौ** होता है। द्विवचन 'चरणौ' के साथ एकवचन 'स्वस्तिकः' का अन्वय संगत नहीं है। इसलिए हमने **स्वस्तिकौ** का ग्रहण किया है।

यह स्वस्तिक है। (१)

(वर्धमानम्—२)

वर्धमाने तु चरणौ तिर्यञ्चौ पार्ष्णिसंगतौ॥ १०७४॥

इति वर्धमानम् (२)

वर्धमान—२

१०७४ ग-घ. (अ०) **वर्धमाने तु** और वर्धमान में **चरणौ तिर्यञ्चौ** दोनों पैर तिरछे होकर **पार्ष्णिसंगतौ** एड़ियों से जुड़े हुए (होते हैं)।

यह वर्धमान है। (२)

(नन्द्यावर्तम्—३)

अस्यैव चेच्चरणयोरन्तरं स्यात्षडङ्गुलम्।
वितस्तिमात्रमथवा नन्द्यावर्तं तदोदितम्॥ १०७५॥

इति नन्द्यावर्तम् (३)

नन्द्यावर्त—३

१०७५. (अ०) **अस्य एव** इसी (वर्धमान) के **चरणयोः अन्तरं** दोनों पैरों की दूरी **षट् अङ्गुलं चेत्** यदि ६ अंगुल **अथवा** या **वितस्तिमात्रं स्यात्** एक वितस्ति भर हो **तदा** तब (उसे) **नन्द्यावर्तम् उदितं** नन्द्यावर्त कहा गया है।

यह नन्द्यावर्त है। (३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(संहतम्—४)

देहः स्वाभाविकोऽङ्गुष्ठौ पादयोश्चेन्मिथो युतौ।
गुल्फौ च संहतं तत्स्यात्पुष्पाञ्जलिविसर्जने॥ १०७६॥

इति संहतम् (४)

संहत—४

१०७६. (अ०) देहः स्वाभाविकः शरीर स्वाभाविक (हो), पादयोः अङ्गुष्ठौ गुल्फौ च दोनों पैरों के अँगूठे और टख़ने मिथः युतौ चेत् यदि परस्पर जुड़े (हों) तत् वह संहतं स्यात् संहत होता है। पुष्पाञ्जलिविसर्जने (वह) फूलों की अंजलि देने में (योजित होता है)।

यह संहत है। (४)

(समपादम्—५)

वपुः स्वाभाविकं पादौ वितस्त्यन्तरितावृजू।
यत्र तत्समपादाख्यं शार्ङ्गदेवः समादिशत्॥ १०७७॥

इति समपादम् (५)

समपाद—५

१०७७. (अ०) यत्र जहाँ वपुः स्वाभाविकं शरीर स्वाभाविक (और) पादौ दोनों पैर वितस्ति-अन्तरितौ ऋजू एक वितस्ति की दूरी पर सीधे (रखे हों) तत् वह (उसे) शार्ङ्गदेवः शार्ङ्गदेव ने समपाद-आख्यं समपाद नामक (स्थानक) समादिशत् निर्दिष्ट किया है।

यह समपाद है। (५)

(एकपादम्—६)

समस्याङ्घ्रेस्तु जानूर्ध्वं बाह्यपार्श्वे यदीतरः।
बाह्यपार्श्वेन लग्नोऽङ्घ्रिरेकपादं तदोच्यते॥ १०७८॥

इत्येकपादम् (६)

एकपाद—६

१०७८. (अ०) यदि यदि समस्य-अङ्घ्रेः तु समपाद के बाह्यपार्श्वे बाहर की ओर से जानु-ऊर्ध्वं घुटने के ऊपर इतरः अङ्घ्रिः दूसरा पैर बाह्यपार्श्वेन लग्नः (अपने) बाहर की बाजू से लगा हुआ (हो) तदा तो एकपादम् उच्यते एकपाद कहा जाता है।

यह एकपाद है। (६)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(पृष्ठोत्तानतलम्—७)

भूलग्नाङ्गुलिपृष्ठोऽङ्घ्रिः पश्चादेकोऽपरः पुरः।
समो यत्र समादिष्टं पृष्ठोत्तानतलं बुधैः॥ १०७९॥

इति पृष्ठोत्तानतलम् (७)

पृष्ठोत्तानतल—७

१०७९. (अ०) यत्र जहाँ एकः अङ्घ्रिः एक पैर पश्चात् पीछे की ओर से भूलग्न-अङ्गुलिपृष्ठः भूमि से लगी हुई उँगलियों वाला हो (और) अपरः दूसरा पैर पुरः सामने समः सम (पाद हो) तत् वह बुधैः बुद्धिमानों के द्वारा पृष्ठोत्तानतलम् आदिष्टं पृष्ठोत्तानतल कहा गया है।

यह पृष्ठोत्तानतल है। (७)

(चतुरश्रम्—८)

नन्द्यावर्तस्य चेदङ्घ्र्योर्भवेदष्टादशाङ्गुलम्।
अन्तरं चतुरैः स्थानं चतुरश्रं तदोदितम्॥ १०८०॥

इति चतुरश्रम् (८)

चतुरश्र—८

१०८०. (अ०) नन्द्यावर्तस्य अङ्घ्र्योः चेत् नन्द्यावर्त के दोनों पैरों में यदि अष्टादश-अङ्गुलम् अन्तरं भवेत् अठारह अंगुल की दूरी हो तदा तब चतुरैः कुशल (आचार्यों) के द्वारा चतुरश्रं स्थानम् उदितं चतुरश्र स्थानक कहा गया है।

यह चतुरश्र है। (८)

(पार्ष्णिविद्धम्—९)

पार्ष्णिरङ्गुष्ठसंश्लिष्टा पार्ष्णिविद्धे विधीयते।

इति पार्ष्णिविद्धम् (९)

पार्ष्णिविद्ध—९

१०८१ क-ख. (अ०) पार्ष्णिविद्धे पार्ष्णिविद्ध में पार्ष्णिः (एक पैर की) एड़ी अङ्गुष्ठसंश्लिष्टा विधीयते (दूसरे पैर के) अँगूठे से लगी हुई रखी जाती है।

(सर०) लक्षण में यह कहा नहीं गया है कि एक पैर की एड़ी दूसरे पैर के अँगूठे से लगाई जाती है। लेकिन यह अन्वित है क्योंकि किसी एक पैर की एड़ी उसी पैर के अँगूठे से नहीं लगाई जा सकती।

यह पार्ष्णिविद्ध है। (९)

(पार्ष्णिपार्श्वगतम्—१०)

पार्ष्णिपार्श्वगते पार्ष्णिरन्तः पार्श्वान्तरस्थितः॥ १०८१॥

इति पार्ष्णिपार्श्वगतम् (१०)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पार्ष्णिपार्श्वगत—१०

१०८१ ग-घ. (अ०) पार्ष्णिपार्श्वगते पार्ष्णिपार्श्वगत में पार्ष्णिः अन्तः एक एड़ी का भीतर (का भाग) पार्श्व-अन्तरस्थितः दूसरी बाजू की ओर रखा हुआ (होता) है।

यह पार्ष्णिपार्श्वगत है। (१०)

(एकपार्श्वगतम्—११)

समस्याङ्घ्रेः पुरः किंचिदपरश्चरणो यदा।
स्याद्बाह्यपार्श्वगस्तिर्यगेकपार्श्वगतं तदा॥ १०८२॥

इत्येकपार्श्वगतम् (११)

एकपार्श्वगत—११

१०८२. (अ०) यदा जब समस्य अङ्घ्रेः पुरः एक समपाद के सामने अपरः चरणः दूसरा पैर किंचित् तिर्यक् कुछ तिरछा बाह्यपार्श्वगः बाहर की बाजू की ओर रखा हुआ हो तदा तो एकपार्श्वगतं स्यात् एकपार्श्वगत होता है।

यह एकपार्श्वगत है। (११)

(एकजानुनतम्—१२)

एकः समोऽङ्घ्रिरन्यश्चेदन्तरे चतुरङ्गुले।
तिर्यक्कुञ्चितजानुः स्यादेकजानुनतं तदा॥ १०८३॥

इत्येकजानुनतम् (१२)

एकजानुनत—१२

१०८३. (अ०) एक समः अङ्घ्रिः चेत् यदि एक समपाद (और) अन्यः दूसरा चतुः अङ्गुले अन्तरे चार अंगुल की दूरी पर तिर्यक्कुञ्चितजानुः तिरछे कुंचित घुटने वाला (हो) तदा तब एकजानुनतं स्यात् एकजानुनत होता है।

यह एकजानुनत है। (१२)

(परावृत्तम्—१३)

परावृत्ते समे स्यातां पार्ष्ण्याङ्गुष्ठकनिष्ठिके।

इति परावृत्तम् (१३)

परावृत्त—१३

१०८४ क-ख. (अ०) परावृत्ते परावृत्त में अङ्गुष्ठकनिष्ठिके अँगूठा और कनिष्ठा (उँगली) पार्ष्ण्या एड़ी से समे स्यातां सम होते हैं।

(सर०) यहाँ यह समझना चाहिये कि एक पैर का अँगूठा और कनिष्ठा दूसरे पैर की एड़ी से सम यानी एक स्थान

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पर होने चाहियें। एक ही पैर की एड़ी और अँगूठे व उँगली का समत्व संभव नहीं है। कल्लि० ने अपनी व्याख्या में इस तथ्य को कुछ विस्तार से स्पष्ट किया है।

यह परावृत्त है। (१३)

(समसूचि—१४)

पार्ष्णिजङ्घोरुसंलग्नधरणी चरणौ यदा॥ १०८४॥

तिर्यक्प्रसारितौ स्यातां समसूचि तदोच्यते।

इति समसूचि (१४)

समसूचि—१४

१०८४ ग-१०८५ ख. (अ०) यदा जब पार्ष्णिजङ्घा-ऊरुसंलग्नधरणी चरणौ एड़ी, टाँग और जाँघ धरती से लगे (छूते) हुए दोनों पैर तिर्यक् प्रसारितौ स्यातां तिरछे फैलाए हुए होते हैं तदा तब समसूचि उच्यते समसूचि कहा जाता है।

यह समसूचि है। (१४)

(विषमसूचि—१५)

सूचीपादौ पृथग्यत्र पुरः पश्चात्प्रसारितौ॥ १०८५॥

युगपद्गदितं तज्ज्ञैः स्थानं विषमसूचि तत्।
भूलग्नजानुगुल्फौ तौ चरणौ केचिदूचिरे॥ १०८६॥

इति विषमसूचि (१५)

विषमसूचि—१५

१०८५ ग-१०८६. (अ०) यत्र जहाँ सूचीपादौ दोनों सूचीपाद पुरः पश्चात् सामने और पीछे पृथक् अलग-अलग युगपत् प्रसारितौ एक साथ फैलाये हुए होते हैं तत् वह तत्-ज्ञैः उसके ज्ञाताओं के द्वारा विषमसूचि स्थानं गदितं विषमसूचि स्थानक कहा गया है। केचित् ऊचिरे किन्हीं (आचार्यों) ने कहा है कि तौ चरणौ वे दोनों पैर भूलग्नजानुगुल्फौ भूमि से लगे हुए घुटने और टख़ने वाले (हों)।

यह विषमसूचि है। (१५)

(खण्डसूचि—१६)

एकोऽङ्घ्रिः कुञ्चितोऽन्यस्तु भूसंलग्नोरुपार्ष्णिकः।
तिर्यक्प्रसारितो यत्र खण्डसूचि तदोच्यते॥ १०८७॥

इति खण्डसूचि (१६)

खंडसूचि—१६

१०८७. (अ०) यत्र जहाँ एकः अङ्घ्रिः कुञ्चितः एक पैर कुंचित (और) अन्यः तु और दूसरा भूसंलग्न-

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ऊरुपार्ष्णिकः भूमि से लगी हुई जाँघ और एड़ी वाला **तिर्यक् प्रसारितः** तिरछा फैलाया हुआ (हो) **तदा** तब (उसे) **खण्डसूचि उच्यते** खंडसूचि कहा जाता है।

यह खंडसूचि है। (१६)

(ब्राह्मम्—१७)

एकः समोऽङ्घ्रिरन्यश्चेत्कुञ्चितीकृत्य पृष्ठतः।
जानुसंधिसमत्वेनोत्क्षिप्तो ब्राह्मं तदुच्यते॥ १०८८॥

इति ब्राह्मम् (१७)

ब्राह्म—१७

१०८८. (अ०) **एकः अङ्घ्रिः समः चेत्** यदि एक पैर सम (हो) **अन्यः** (और) दूसरा **कुञ्चितीकृत्य** कुंचित करके **पृष्ठतः** पीछे की ओर **जानुसंधिसमत्वेन उत्क्षिप्तः** घुटने के जोड़ के साथ समत्व से ऊपर उठाया हुआ (हो) **तत्** वह **ब्राह्मम् उच्यते** ब्राह्म कहा जाता है।

यह ब्राह्म है। (१७)

(वैष्णवम्—१८)

सममेकं विधायाङ्घ्रिमन्यश्चेत्कुञ्चितो मनाक्।
पुरः प्रसारितस्तिर्यक्पदं स्याद्वैष्णवं तदा॥ १०८९॥

इति वैष्णवम् (१८)

वैष्णव—१८

१०८९. (अ०) **एकम् अङ्घ्रिं समं विधाय** एक पैर को सम रख कर **अन्यः चेत्** यदि दूसरा **मनाक् कुञ्चितः** थोड़ा कुंचित (करके) **तिर्यक् पदं** तिरछे डग (से) **पुरः प्रसारितः** सामने की ओर फैलाया गया हो **तदा** तब **वैष्णवं स्यात्** वैष्णव होता है।

यह वैष्णव है। (१८)

(शैवम्—१९)

अङ्घ्रेः समस्य वामस्य जानुशीर्षसमोऽपरः।
उद्धृतः कुञ्चिताकारो यत्र शैवं तदुच्यते॥ १०९०॥

इति शैवम् (१९)

शैव—१९

१०९०. (अ०) **यत्र** जहाँ **वामस्य समस्य अङ्घ्रेः** बायें समपाद के **जानुशीर्षसमः** घुटने की नोक के बराबर **अपरः** दूसरा (दाहिना पैर) **कुञ्चित-आकारः** कुंचित आकार वाला **उद्धृतः** ऊपर उठाया हुआ (हो) **तत्** वह **शैवम् उच्यते** शैव कहा जाता है।

यह शैव है। (१९)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(गारुडम्—२०)

आकुञ्चितः पुरो वामः पश्चादन्यस्तु जानुना।
भुवं गतौ यदा पादौ गारुडं गदितं तदा॥ १०९१॥

इति गारुडम् (२०)

गारुड—२०

१०९१. (अ०) यदा जब आकुञ्चितः वामः आकुंचित बायाँ (पैर) पुरः सामने अन्यः तु और दूसरा (दाहिना) पश्चात् पीछे (की ओर आकुंचित करके) पादौ (इस तरह) दोनों पैर जानुना भुवं गतौ घुटने से भूमि पर रखे हुए (हों) तदा तब (उसे) गारुडं गदितं गारुड कहा गया है।

यह गारुड है। (२०)

(कूर्मासनम्—२१)

दक्षिणश्चरणो जानुबाह्यगुल्फमिलत्क्षितिः।
वामः समो भवेद्यत्र कूर्मासनमदो विदुः॥ १०९२॥

इति कूर्मासनम् (२१)

कूर्मासन—२१

१०९२. (अ०) यत्र जहाँ दक्षिणः चरणः दाहिना पैर जानुबाह्यगुल्फमिलत् क्षितिः घुटने के बाहरी भाग (और) टख़ने से भूमि पर लगा हुआ (ऐसा हो और) वामः बायाँ (पैर) समः सम (हो) अदः यह (उसे) कूर्मासनं विदुः कूर्मासन जानते हैं।

यह कूर्मासन है। (२१)

(नागबन्धम्—२२)

यदोपविश्य वामोरोः पृष्ठे न्यस्यति दक्षिणाम्।
जङ्घां तदा नागबन्धमभ्यधात्करणाग्रणीः॥ १०९३॥

इति नागबन्धम् (२२)

नागबन्ध—२२

१०९३. (अ०) यदा जब (नर्तक) उपविश्य बैठ कर वाम-ऊरोः पृष्ठे बाईं जाँघ की पीठ पर दक्षिणां जङ्घां न्यस्यति दाहिनी टाँग को रखता है तदा तब (उसे) करणाग्रणीः करणाग्रणी (शार्ङ्गदेव) ने नागबन्धम् अभ्यधात् नागबन्ध कहा है।

यह नागबन्ध है। (२२)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(वृषभासनम्—२३)

वियुते संयुते वा चेज्जानुनी संस्थिते क्षितौ।
वृषभासनमाख्यातं सौष्ठवाधिष्ठितं तदा॥ १०९४॥

इति वृषभासनम् (२३)

इति त्रयोविंशतिर्देशीस्थानानि

वृषभासन—२३

१०९४. (अ०) वियुते संयुते वा जानुनी चेत् यदि अलग किये हुए या मिले हुए दोनों घुटने क्षितौ संस्थिते भूमि पर रखे हुए हों तदा तब सौष्ठव-अधिष्ठितं सौष्ठव युक्त वृषभासनम् आख्यातं वृषभासन कहा गया है।

यह वृषभासन है। (२३)

तेईस देशीस्थानक समाप्त

(उपविष्टस्थानकानि)

(स्वस्थम्—१)

विस्तारिताञ्चितावङ्घ्री यत्रोरः किंचिदुन्नतम्।
करावूरुकटिन्यस्तौ स्वस्थं स्थानं तदुच्यते॥ १०९५॥

इति स्वस्थम् (१)

बैठने के स्थानक

स्वस्थ—१

१०९५. (अ०) यत्र जहाँ अङ्घ्री दोनों पैर विस्तारित-अञ्चितौ फैलाये हुए अंचित (हों), उरः किंचित् उन्नतं छाती कुछ उठी हुई (और) करौ दोनों हाथ ऊरुकटिन्यस्तौ जाँघ और कमर पर रखे हुए (हों) तत् वह स्वस्थं स्थानम् उच्यते स्वस्थ स्थानक कहा जाता है।

यह स्वस्थ (स्थानक) है। (१)

(मदालसम्—२)

एकः प्रसारितः किंचिदन्योऽङ्घ्रिस्त्वासनाश्रितः।
शिरः पार्श्वगतं यत्र तन्मदालसमिष्यते॥ १०९६॥

मदे विपदि निर्वेदेऽप्यौत्सुक्ये विरहे भवेत्।

इति मदालसम् (२)

मदालस—२

१०९६-१०९७ ख. (अ०) एकः अङ्घ्रिः एक पैर किंचित् प्रसारितः कुछ फैलाया हुआ (हो) अन्यः तु और दूसरा आसन-आश्रितः आसन के आश्रित (टिका हुआ हो) शिरः पार्श्वगतं सिर बाजू की ओर घूमा हुआ (हो) तत् वह मदालसम्

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इष्यते मदालस माना जाता है। मदे (यह) मद में, विपदि विपत्ति में, निर्वेदे निर्वेद में औत्सुक्ये उत्सुकता में विरहे अपि भवेत् और विरह में (योजित) होता है।

यह मदालस है। (२)

(क्रान्तम्—३)

हस्तौ चिबुकविन्यस्तौ बाहुशीर्षश्रितं शिरः॥ १०९७॥

ईषद्बाष्पे च नयने यत्र क्रान्तमुदाहृतम्।
निर्जने निगृहीते च शोकग्लाने भवेदिदम्॥ १०९८॥

इति क्रान्तम् (३)

क्रान्त—३

१०९७ ग-१०९८. (अ०) यत्र जहाँ हस्तौ दोनों हाथ चिबुकविन्यस्तौ ठोडी पर रखे हुए (हों), शिरः सिर बाहुशीर्षश्रितं बाँहों के शिखर (अर्थात् कंधों) पर रखा (हो) नयने च और आँखें ईषद्-बाष्पे कुछ आँसू युक्त (भीगी हों) (वह) क्रान्तम् उदाहृतं क्रान्त कहा गया (है)। इदं यह निर्जने निर्जन में, निगृहीते पकड़े जाने में शोकग्लाने च और शोक से उत्पन्न ग्लानि में भवेत् (योजित) होता है।

यह क्रान्त है। (३)

(विष्कम्भितम्—४)

ऊरू विस्तारितौ बाहू पादौ विस्तारिताञ्चितौ।
यदा निमीलिते नेत्रे विष्कम्भं भणितं तदा॥ १०९९॥

योगे ध्याने भवेदेतत्स्वभावेन यदासने।

इति विष्कम्भितम् (४)

विष्कंभित—४

१०९९-११०० ख. (अ०) यदा जब ऊरू विस्तारितौ दोनों जाँघ फैलाई हुई (हों), बाहू पादौ दोनों बाँहें (और) दोनों पैर विस्तारित-अञ्चितौ विस्तारित और अंचित (हों और) नेत्रे दोनों आँखें निमीलिते मुँदी हुई (हों) तदा तब विष्कम्भं भणितं विष्कंभ कहा गया (है)। एतत् यह योगे ध्याने योग (और) ध्याने में यत् स्वभावेन आसने (और) स्वाभाविक रूप से बैठने में भवेत् (योजित) होता है।

यह विष्कंभित है। (४)

(उत्कटम्—५)

समे पार्ष्णी सह स्फिग्भ्यां भूतले चरणौ समौ॥ ११००॥

यदा तदोत्कटं योगध्यानसंध्याजपादिषु।

इत्युत्कटम् (५)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उत्कट—५

११०० ग-११०१ ख. (अ०) यदा जब स्फिग्भ्यां सह नितंबों के साथ पार्ष्णी समे एड़ियाँ सम (एकसाथ होकर) चरणौ दोनों पैर भूतले समौ भूमि पर सम (रखे) हों तदा उत्कटं तब उत्कट (होता है)। योगध्यानसंध्याजप-आदिषु योग, ध्यान, संध्या, जप आदि में (योजित होता है)।

यह उत्कट है। (५)

(स्रस्तालसम्—६)

हस्तौ स्रस्तौ विमुक्तौ च शरीरमलसं यदा॥ ११०१॥

लोचने मन्थराकारधरे स्रस्तालसं तदा।
हानिग्लानिमदव्याधिमूर्छाभीतिषु तद्भवेत्॥ ११०२॥

इति स्रस्तालसम् (६)

स्रस्तालस—६

११०१ ग-११०२. (अ०) यदा जब हस्तौ दोनों हाथ स्रस्तौ विमुक्तौ च ढीले और अलग-अलग हुए (हों), शरीरम् अलसं शरीर आलस्ययुक्त (और) लोचने दोनों आँखें मन्थर-आकारधरे जड़ स्वरूप धारण किये हुए (हों) तदा स्रस्तालसं तब स्रस्तालस (होता है)। तत् वह हानिग्लानिमदव्याधिमूर्छाभीतिषु भवेत् हानि, ग्लानि, मद, व्याधि, मूर्छा और भय में (योजित) होता है।

यह स्रस्तालस है। (६)

(जानुगतम्—७)

जानुभ्यां भूमिसंस्थाभ्यां स्थानं जानुगतं मतम्।
होमे देवार्चने दीनयाचने मृगदर्शने॥ ११०३॥

कुसत्त्वत्रासने चेदं भवेत्क्रुद्धप्रसादने।

इति जानुगतम् (७)

जानुगत—७

११०३-११०४ ख. (अ०) जानुभ्यां भूमिसंस्थाभ्यां दोनों घुटने भूमि पर रखने से (रख कर) बैठने से जानुगतं स्थानं मतं जानुगत स्थानक माना गया है। इदं यह होमे देव-अर्चने होम, देवता की पूजा, दीनयाचने दीनता से याचना करने में, मृगदर्शने हिरन के दर्शन, कुसत्त्वत्रासने दुष्ट को धमकाने/पीड़ा देने में क्रुद्धप्रसादने च और क्रोधित हुए को प्रसन्न करने में भवेत् (योजित) होता है।

यह जानुगत है। (७)

(मुक्तजानु—८)

उत्कटस्यैव जान्वैकं धरापृष्ठमधिष्ठितम्॥ ११०४॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यत्रैतन्मुक्तजानु स्यान्मानिनीनां प्रसादने।
हवने सज्जनानां च सान्त्वने साधुकर्तृके॥ ११०५॥

इति मुक्तजानु (८)

मुक्तजानु—८

११०४ ग-११०५. (अ०) यत्र जहाँ उत्कटस्य एव एकं जानु उत्कट (स्थानक) का ही एक घुटना धरापृष्ठम् अधिष्ठितं भूमि पर रखा हुआ (हो) एतत् वह मुक्तजानु स्यात् मुक्तजानु होता है। मानिनीनां प्रसादने (वह) मानिनी स्त्रियों को प्रसन्न करने, हवने हवन करने में साधुकर्तृके सज्जनानां च और साधु पुरुषों के (द्वारा) सज्जनों को सान्त्वने सान्त्वना देने में (योजित होता है)।

यह मुक्तजानु है। (८)

(विमुक्तम्—९)

विमुक्तं भूप्रपतनं हावक्रन्दादिषु स्मृतम्।

इति विमुक्तम् (९)

इति नवोपविष्टस्थानकानि

विमुक्त—९

११०६ क-ख. (अ०) भूप्रपतनं भूमि पर ज़ोर से गिरना विमुक्तं विमुक्त होता है (जो) हावक्रन्द-आदिषु स्मृतं हाव, रोने आदि में कहा गया है।

यह विमुक्त है। (९)

ये नौ बैठने के स्थानक हैं।

(सुप्तस्थानकानि)

(समम्—१)

सुप्तमुत्तानवक्त्रं च स्रस्तमुक्तकरं समम्॥ ११०६॥

इति समम् (१)

सोने के स्थानक

सम—१

११०६ ग-घ. (अ०) स्रस्तमुक्तकरं नीचे ढीले (होकर) रखे हुए खुले हाथ उत्तानवक्त्रं सुप्तं च और ऊपर की ओर मुँह से सोना समं सम (होता है)।

यह सम है। (१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(आकुञ्चितम्—२)

आकुञ्चिताङ्गमाविद्धजान्वाकुञ्चितमुच्यते।
प्रयोगस्तस्य शीतार्ताभिनये शार्ङ्गिणोदितः॥ ११०७॥

इत्याकुञ्चितम् (२)

आकुंचित—२

११०७. (अ०) **आकुञ्चित-अङ्गं** सिकोड़े हुए शरीर (और) **आविद्धजानु** मुड़े हुए घुटने वाला **आकुञ्चितम् उच्यते** आकुंचित कहा जाता है। **शार्ङ्गिणा** शार्ङ्गदेव के द्वारा **तस्य प्रयोगः** उसका प्रयोग **शीत-आर्त-अभिनये** ठंड से पीड़ित होने के अभिनय में **उदितः** कहा गया है।

यह आकुंचित है। (२)

(प्रसारितम्—३)

उपधाय भुजामेकां यत्प्रसारितजानुकम्।
सुप्तं प्रसारितं स्थानं सुखसुप्ते तदिष्यते॥ ११०८॥

इति प्रसारितम् (३)

प्रसारित—३

११०८. (अ०) **एकां भुजाम् उपधाय** एक बाँह को तकिये की तरह (सिर के नीचे) रख कर (लगा कर) **यत्** जो **प्रसारितजानुकं** फैलाये हुए घुटनों वाला **सुप्तं** सोना (है वह) **प्रसारितं स्थानं** प्रसारित स्थान (होता है)। **तत्** वह **सुखसुप्ते** सुख से सोने में **इष्यते** माना जाता है।

यह प्रसारित है। (३)

(विवर्तितम्—४)

विवर्तितमधोवक्त्रं सुप्तं शस्त्रक्षतादिषु।

इति विवर्तितम् (४)

विवर्तित—४

११०९ क-ख. (अ०) **अधोवक्त्रं सुप्तं** नीचे मुँह करके सोना **विवर्तितं** विवर्तित (होता है)। **शस्त्रक्षत-आदिषु** शस्त्र से घायल होने आदि में (योजित होता है)।

यह विवर्तित है। (४)

(उद्वाहितम्—५)

स्कन्धन्यस्तशिरः सुप्तं कूर्पराधिष्ठितक्षिति॥ ११०९॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यत्तदुद्वाहितं प्रोक्तं लीलयावस्थितौ प्रभोः।

इत्युद्वाहितम् (५)

उद्वाहित—५

११०९ ग-१११० ख. (अ०) यत् जो स्कन्धन्यस्तशिरः कंधे पर रखे हुए सिर (और) कूर्पर-अधिष्ठितक्षिति सुप्तं भूमि पर रखी कोहनी वाला सोना तत् वह उद्वाहितं प्रोक्तम् उद्वाहित कहा गया है। प्रभोः लीलया अवस्थितौ प्रभु की लीलायुक्त स्थिति में (योजित होता है)।

यह उद्वाहित है। (५)

(नतम्—६)

ईषत्प्रसृतजङ्घं यत्सुप्तं स्रस्तकरद्वयम्॥ १११०॥

तन्नतं स्थानकं खेदश्रमालस्यादिषु स्मृतम्।

इति नतम् (६)

इति षट्सुप्तस्थानकानि

इत्येकपञ्चाशत्स्थानप्रकरणम्

नत—६

१११० ग-११११ ख. (अ०) यत जो ईषत् प्रसृतजङ्घं कुछ फैली हुई टाँग (और) स्रस्तकरद्वयं नीचे रखे हुए दोनों हाथों वाला सुप्तं सोना तत् नतं स्थानकं वह नत स्थानक (होता है)। खेदश्रम-आलस्य-आदिषु स्मृतं (वह) थकान, श्रम, आलस्य आदि में माना गया है।

यह नत है। (६)

ये छ सोने के स्थानक हैं।

इक्कावन स्थानकों का प्रकरण समाप्त

(वृत्तिः)

वाङ्मनःकायजा चेष्टा पुरुषार्थोपयोगिनी॥ ११११॥

वृत्तिः,

वृत्ति

११११ ग-घ. (अ०) पुरुषार्थ-उपयोगिनी पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ और काम) में उपयोगी वाक्-मनः-कायजा चेष्टा वाणी, मन और शरीर से उत्पन्न होने वाली क्रिया वृत्तिः वृत्ति (कहलाती है)।

(सर०) इस अंश में वृत्ति का सामान्य लक्षण दिया है। कल्लि० ने कहा कि पुरुषार्थ शब्द से धर्म, अर्थ और काम—ये तीन ही समझने चाहियें, मोक्ष नहीं क्योंकि उसमें ये वृत्तियाँ उपयोगी नहीं हैं। चेष्टा का अर्थ व्यापार यानी वाचिक, मानसिक क्रिया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सा भारती सात्त्वत्यारभट्यथ कैशिकी।
चतुर्विधेति विज्ञेया तासामुत्पत्तिरुच्यते॥ १११२॥

१११२. (अ०) **सा** वह (वृत्ति) **भारती सात्त्वती आरभटी** भारती, सात्त्वती, आरभटी **अथ कैशिकी** और कैशिकी—इति यों **चतुर्विधा विज्ञेया** चार प्रकार की जानी गई है। **तासाम् उत्पत्तिः** उनकी उत्पत्ति **उच्यते** कही जा रही है।

(सर०) ना०शा० के २०वें वृत्ति अध्याय और उस पर अभि० में विस्तार से वृत्तियों की उत्पत्ति, लक्षण और विनियोग का निरूपण हुआ है। विशेष रूप से भारती, सात्त्वती, कैशिकी और आरभटी का लक्षण क्रम से श्लोक २६, ४१, ५३ और ६४ में दिया है। शार्ङ्ग० ने उसी को अत्यन्त संक्षेप में यहाँ कहा है। लेकिन ना०शा० में स्पष्टतः भारती को 'स्त्रीवर्जिता' और कैशिकी को 'स्त्रीसंयुता' कहा है।

ऋग्वेदाद्भारती जाता यजुर्वेदात्तु सात्त्वती।
अथर्वणादारभटी सामवेदात्तु कैशिकी॥ १११३॥

१११३. (अ०) **ऋग्वेदात् भारती जाता** ऋग्वेद से भारती उत्पन्न हुई। **यजुर्वेदात् तु सात्त्वती** यजुर्वेद से सात्त्वती, **अथर्वणात् आरभटी** अथर्ववेद से आरभटी **सामवेदात् तु कैशिकी वृत्तिः** और सामवेद से कैशिकी वृत्ति (उत्पन्न हुई)।

(सर०) यहाँ चारों वृत्तियों की चार वेदों से उत्पत्ति कह कर उनकी वेदमूलकता दिखाई है।

(तासां लक्षणानि)

(तत्र भारती)

वृत्तिः संस्कृतवाक्यैकप्रधाना भरतैर्नृभिः।
प्रयुज्यमाना वाग्वृत्तिः प्राधान्याद्भारती मता॥ १११४॥

(इति भारती)

उनके लक्षण

भारती

१११४. (अ०) **संस्कृतवाक्य-एकप्रधाना** संस्कृत वाक्यों की ही प्रधानता वाली, **नृभिः भरतैः प्रयुज्यमाना** (प्रधान रूप से) पुरुष भरतों (नटों) के द्वारा प्रयुक्त होने वाली (और) **वाक्वृत्तिः प्राधान्या** वाणी के व्यापार की प्रधानता वाली वृत्ति **भारती मता** भारती मानी गई है।

(सर०) यहाँ भारती वृत्ति के लक्षण के साथ-साथ इस शब्द की व्युत्पत्ति भी दे दी गई है। **वाक्वृत्तिः** के द्वारा वाणी के व्यापार की प्रधानता कह कर मन और काय व्यापार की अप्रधानता सूचित की है और संस्कृत भाषा की प्रधानता भी कह दी है। भरतों के द्वारा प्रयुक्त होने वाली भारती—यों व्युत्पत्ति दिखाई है। नाटक में अभिनय करने वाले सूत्रधार आदि अभिनेता भरत कहलाते हैं इसलिए **भरतैः** कहा है।

यह भारती है।

(सात्त्वती)

सत्त्वप्रकाशकं यत्स्यात्तद्युक्तं सत्त्वमुच्यते।
मनस्तत्प्रभवा हर्षशौर्यत्यागास्तु सात्त्वताः॥ १११५॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तत्प्रधाना सात्त्वती स्याद्वीररौद्राद्भुतोत्कटा।
हीना शृङ्गारनिर्वेदकरुणैरुद्धताश्रयात्॥ १११६॥

(इति सात्त्वती)

सात्त्वती

१११५-१११६. (अ०) सत्त्वप्रकाशकं यत् स्यात् सत्त्व का प्रकाशक जो होता है तत् युक्तम् उससे युक्त सत्त्वं मनः उच्यते सत्त्व को मन कहा जाता है। तत् प्रभवाः उस (मन) से उत्पन्न होने वाले हर्षशौर्यत्यागाः तु हर्ष, शौर्य, त्याग ही सात्त्वताः सात्त्वत (सत्त्व से उत्पन्न होने वाले होते हैं)। तत्प्रधाना सात्त्वती स्यात् उसकी प्रधानता वाली सात्त्वती होती है। वीररौद्र-अद्भुत-उत्कटा (वह) वीर, रौद्र, अद्भुत (प्रखर रसों) से उत्कट (समृद्ध) और उद्धत-आश्रयात् उद्धत के आश्रय के कारण शृङ्गारनिर्वेदकरुणैः हीना शृंगार, निर्वेद, करुण (रसों) से रहित (होती है)।

(सर०) सत्त्व से युक्त सात्त्वती कह कर उसकी निरुक्ति दी है। इसके द्वारा सात्त्वती में मन के व्यापार की प्रधानता दिखाई है।

यह सात्त्वती है।

(आरभटी)

आरादुत्साहिनो ये स्युर्भटास्तत्कायसंभवा।
भवेदारभटी वृत्ती रौद्रादावुद्धते रसे॥ १११७॥

मायेन्द्रजालबहुला चित्रयुद्धप्रवर्धिनी।

(इत्यारभटी)

आरभटी

१११७-१११८ ख. (अ०) ये जो आरात् शीघ्र उत्साहिनः भटाः स्युः उत्साही योद्धा होते हैं तत् कायसंभवा उनके शरीर से उत्पन्न होने वाली आरभटी वृत्तिः भवेत् आरभटी वृत्ति होती है। रौद्र-आदौ उद्धते रसे (वह) रौद्र आदि उद्धत रसों में (योजित होती है और) माया-इन्द्रजालबहुला माया (और) इन्द्रजाल से भरी (तथा) चित्रयुद्धप्रवर्धिनी विविध प्रकार के युद्धों में वृद्धि करने वाली (होती है)।

(सर०) यहाँ आरभटी की निरुक्ति देते हुए उसमें शरीर के व्यापार की प्रधानता दिखाई है।

यह आरभटी है।

(कैशिकी)

वागङ्गाभिनयानां या सौकुमार्येण निर्मिता॥ १११८॥

उल्लसद्गीतनृत्ताद्या शृङ्गाररसनिर्भरा।
निःशङ्कः कैशिकीं ब्रूते तां सौन्दर्यैकजीविताम्॥ १११९॥

सौन्दर्यसौकुमार्याभ्यां रौद्रादावप्यसौ भवेत्।

(इति कैशिकी)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कैशिकी

१११८ ग-११२० ख. (अ०) या जो **वाक्-अङ्ग-अभिनयानां** वाक्, अंग (तथा मन) के अभिनय की **सौकुमार्येण निर्मिता** सुकुमारता से निर्मित हुई, **उल्लसत् गीतनृत्त-आढया** उल्लासयुक्त गीत, नृत्त से भरी हुई, **शृङ्गाररसनिर्भरा** शृंगार रस पर निर्भर (भरी हुई) **सौंदर्य-एक जीवितां** सौंदर्य ही जिसका जीवन है **तां निःशङ्कः** उसे निःशंक (शार्ङ्गदेव) **कैशिकीं ब्रूते** कैशिकी (वृत्ति) कहता है। **असौ** यह **सौंदर्यसौकुमार्याभ्यां** सुन्दरता और सुकुमारता से **रौद्र-आदौ अपि** रौद्र आदि में भी **भवेत्** (योजित) होती है।

(सर०) कल्लि० व सिंह० के अनुसार वागङ्ग के द्वारा कैशिकी में वाणी, मन और काया तीनों के व्यापारों की समान प्रधानता समझनी चाहिये। कैशिकी को रूढ़ शब्द समझना चाहिये। अथवा 'कैशिकी' यानी केशों के समूह के समान मृदुता और फूलों जैसी सुन्दरता के आधार पर कैशिकी शब्द की व्युत्पत्ति दी है, कल्लि० ने यह ध्यान दिलाया है।

यह कैशिकी है।

(वृत्तीनामवान्तरभेदाः)

आमुखं च प्रहसनं तथा वीथी प्ररोचना॥ ११२०॥

अंशाः स्युरिति चत्वारो ये भारत्या मुनेर्मताः॥
उद्घात्यकावलगिते कथोद्घातः प्रवर्तकम्॥ ११२१॥

प्रयोगातिशयश्चेति भेदाः पञ्चामुखस्य ये।
उत्थापकाभिधो भेदः सात्त्वत्याः परिवर्तकः॥ ११२२॥

संलापकश्चतुर्थस्तु यः संघात्यकसंज्ञकः।
संक्षिप्तकं चावपातः स्याद्वस्तूत्थापनं तथा॥ ११२३॥

संफेटश्चारभट्यां यदिति भेदचतुष्टयम्।
कैशिक्यां यन्मतं नर्म नर्मस्पुञ्जस्तथापरः॥ ११२४॥

नर्मस्फोटो नर्मगर्भश्चेति भेदचतुष्टयम्।
परिचित्ताक्षेपकं च परोपालम्भकं तथा॥ ११२५॥

रोषेर्ष्यासूचकं चेति नर्मभेदास्त्रयश्च ये।
सोदाहरणलक्ष्माणस्तेऽमी नाटकगोचराः॥ ११२६॥

विस्तरत्रस्तचित्तेन निःशङ्केन न तेनिरे।
काव्यं गीतं तथा नृत्तं वृत्तिहीनं न शोभते॥ ११२७॥

अतो वृत्तीर्विजानीयादेता भरतभाषिताः।

इति वृत्तिलक्षणम्

वृत्तियों के अवान्तर भेद

११२० ग-११२८ ख. (अ०) **भारत्याः** भारती के **आमुखं च प्रहसनं वीथी तथा प्ररोचना** आमुख और प्रहसन, वीथी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तथा प्ररोचना इति ये ये जो चत्वारः अंशाः चार भाग हैं मुनेः मताः स्युः (वे) भरत मुनि के माने हुए हैं; उद्घात्यक-अवलगिते उद्घात्य और अवलगित, कथोद्घातः प्रवर्तकम् प्रयोगातिशयः च कथोद्घात, प्रवर्तक और प्रयोगातिशय इति आमुखस्य आमुख के ये पञ्चभेदाः जो पाँच भेद (हैं वे), सात्त्वत्याः सात्त्वती के उत्थापक-अभिधः उत्थापक नाम वाला, परिवर्तकः संलापकः परिवर्तक, संलापक चतुर्थः तु और चौथा यः जो संघात्यकसंज्ञकः संघात्यक नामक (ये चार भेद); संक्षिप्तकं अवपातः च संक्षिप्तक और अवपात, वस्तूत्थापनं वस्तूत्थापन तथा सफेटः च और संफेट इति आरभट्यां ये आरभटी के यत् जो भेद चतुष्टयं स्यात् चार भेदों का समूह होता है; कैशिक्यां कैशिकी का नर्मः नर्मस्पुञ्जः नर्म, नर्मस्पुंज तथा अपरः और अन्य नर्मस्फोटः नर्मगर्भः च इति नर्मस्फोट और नर्मगर्भ यह यत् जो भेदचतुष्टयं मतं चार भेदों का समूह माना गया है; परिचित्ताक्षेपकं परिचित्ताक्षेपक परोपालम्भकं च और परोपालंभक तथा तथा रोषेर्ष्यासूचकं च इति रोषेर्ष्यासूचक ये त्रयः च ये तीन नर्मभेदाः नर्मभेद अमी ये (सारे भेद) नाटकगोचराः नाटक में दिखाई देते हैं। विस्तरत्रस्तचित्तेन निःशङ्केन विस्तार के भय से युक्त चित्त वाले निःशंक (शार्ङ्गदेव) के द्वारा सोदाहरण लक्ष्माणः उदाहरण सहित लक्षण (देकर) ते वे (उनका) न तेनिरे विस्तार नहीं किया गया। काव्यं गीतं तथा नृत्तं काव्य, गीत और नृत्त वृत्तिहीनं न शोभते वृत्ति के बिना शोभित नहीं होते। अतः एताः इसलिये ये भरतभाषिताः वृत्तीः भरत द्वारा कही गई वृत्तियाँ विजानीयात् विशेष रूप से जाननी चाहियें।

(सर०) कल्लि० ने कहा कि नृत्त में वृत्तियों का विशेष उपयोग नहीं होता। फिर यह शंका उठाई कि तब नृत्त के प्रकरण में वृत्ति क्यों कही? ग्रन्थकार के काव्यं गीतं आदि के संदर्भ में यह स्पष्ट किया कि यद्यपि वृत्ति के बिना काव्य आदि के स्वरूप की निष्पत्ति नहीं होती लेकिन नृत्त आदि में अतिशय शोभा लाने में वृत्ति भी उपयोग होती है इसलिये नृत्त में भी उनकी योजना करनी चाहिये, यह आशय है।

ग्रन्थकार ने वृत्ति का संक्षिप्त निरूपण किया है क्योंकि नृत्त में उसकी बहुत उपयोगिता नहीं है। लेकिन शरीर के अलावा वाणी और मन भी नृत्त की शोभा में वृद्धि करते हैं इसलिये भरत के अनुसार उनका निरूपण किया है। लेकिन, जैसा पहले कहा जा चुका है कि नाट्य में वृत्ति का विशेष स्थान है इसलिये ना०शा० में पूरा बीसवाँ अध्याय वृत्ति पर है।

वृत्ति का लक्षण समाप्त

(न्यायाः)

युद्धे परात्मशस्त्राणां क्रमाद्रक्षणपातने॥ ११२८॥

विधातुमुचिता गात्रवर्तना न्याय उच्यते।

न्याय

११२८ ग-११२९ ख. (अ०) युद्धे युद्ध में पर-आत्मशस्त्राणां दूसरे (अर्थात् शत्रु) के और अपने शस्त्रों का क्रमात् क्रम से रक्षणे पातने विधातुं रक्षण (शत्रु के शस्त्र से अपना बचाव) और (शत्रु पर) प्रहार करने में उचिता गात्रवर्तना शरीर (के अंगों) का उचित व्यापार न्यायः उच्यते न्याय कहा जाता है।

(सर०) क्रमात् का अर्थ है शत्रु के शस्त्रों से अपनी रक्षा और अपने शस्त्रों से शत्रु पर प्रहार करना। उचिता को कल्लि० ने 'नाट्योचित' कहा।

भारतः सात्त्वतो वार्षगण्यः कैशिकसंज्ञकः॥ ११२९॥

भेदास्तस्येति चत्वारः क्रमाद् वृत्तिचतुष्टये।

तेषां लक्षणसिद्ध्यर्थं प्रविचारान् ब्रुवेऽधुना॥ ११३०॥

११२९ ग-११३०. (अ०) भारतः सात्त्वतः वार्षगण्यः कैशिकसंज्ञकः भारत, सात्त्वत, वार्षगण्य (और) कैशिक नाम

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वाले इति ये तस्य चत्वारः भेदाः उसके चार भेद क्रमात् वृत्तिचतुष्टये क्रम से चार वृत्तियों में (योजित होते हैं)। तेषां लक्षणसिद्धि-अर्थम् उनके लक्षण सिद्ध होने के लिये अधुना अब प्रविचारान् ब्रुवे प्रविचारों को कहता हूँ।

(सर०) क्रमात् यानी भारती में भारत, सात्त्वती में सात्त्वत, आरभटी में वार्षगण्य और कैशिकी में कैशिक समझने चाहियें।

याः प्रकृष्टा विचित्राश्च गतयस्ते परिक्रमाः।
त एव प्रविचाराः स्युः शस्त्रमोक्षणगोचराः॥ ११३१॥

११३१. (अ०) याः जो प्रकृष्टाः विचित्राः च गतयः प्रकृष्ट और विचित्र गतियाँ हैं ते परिक्रमाः वे परिक्रम (होती हैं)। ते एव वे ही शस्त्रमोक्षणगोचराः शस्त्र छोड़ने में दिखाई देने वाले प्रविचाराः स्युः प्रविचार होते हैं।

(सर०) कल्लि० ने कहा कि अपने शरीर की रक्षा करने में भी शस्त्र छोड़ने में प्रवीणता ही प्रविचारों की प्रवीणता होती है, यह अर्थ है।

फलकं वामहस्तेन खड्गं दक्षिणपाणिना।
गृहीत्वापसृतौ कृत्वा करावाक्षिप्य तौ ततः॥ ११३२॥

फलकभ्रामणं कृत्वा पार्श्वयोरुभयोरथ।
परितः शिरसः शस्त्रं भ्रामयित्वा तु खड्गिनम्॥ ११३३॥

करं शिरः कपोलान्तरुद्वेष्ट्य मणिबन्धतः।
फलकस्याप्युपशिरः परिभ्रमणमाचरेत्॥ ११३४॥

विधिरेष सकृत्कट्यां शस्त्रपातश्च भारते।
सात्त्वतेऽप्येवमेव स्याच्छत्रभ्रान्तिस्तु पृष्ठतः॥ ११३५॥

कर्तव्यः शस्त्रपातस्तु पादयोरिह तद्विदा।
प्रविचारः सात्त्वतवद्वार्षगण्ये विधीयते॥ ११३६॥

पृष्ठतः फलकस्यापि भ्रमणं स्यादिहाधिकम्।
स्कन्धे वक्षसि वा शस्त्रहस्तस्योद्वेष्टनं तथा॥ ११३७॥

प्रहारपातनं चात्र वक्षस्थलगतं मतम्।
कैशिके स्याद्भारतवच्छस्त्रपातस्तु मूर्धनि॥ ११३८॥

११३२-११३८. (अ०) वामहस्तेन फलकं बायें हाथ से ढाल (और) दक्षिणपाणिना दाहिने हाथ से खड्गं गृहीत्वा तलवार पकड़ कर करौ अपसृतौ कृत्वा दोनों दूर हटा कर तौ आक्षिप्य फिर वे (उन्हें एक दूसरे पर) फेंकते हुए (से) ततः उसके बाद उभयोः पार्श्वयोः दोनों बाजुओं में फलकभ्रामणं कृत्वा ढाल घुमा कर अथ फिर शिरसः परितः सिर के चारों ओर शस्त्रं भ्रामयित्वा तु शस्त्र घुमा कर खड्गिनं करं तलवार वाला हाथ शिरः कपोल-अन्तः सिर (या) गाल के पास मणिबन्धतः उद्वेष्ट्य कलाई से उद्वेष्टित करके फलकस्य अपि ढाल का भी उपशिरः सिर के पास परिभ्रमणम् आचरेत् गोल घुमाव करना चाहिये (अर्थात्) गोल घुमाना चाहिये। एषः विधिः यह विधि सकृत् एक बार (करके) भारते भारती रीति के युद्ध में कट्यां शस्त्रपातः च कमर पर शस्त्रप्रहार (करना चाहिये)। सात्त्वते अपि सात्त्वत (रीति से युद्ध दिखाने) में भी एवम् एव ऐसा ही (होता है।) शस्त्रभ्रान्तिः तु (लेकिन) शस्त्र घुमाना तो पृष्ठतः स्यात् पीछे की ओर से होता है। तत् विदाः

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उसके (न्याय के) वेत्ताओं के द्वारा इह इसमें शस्त्रपातः तु शस्त्र प्रहार तो पादयोः कर्तव्यः पैरों पर करना चाहिये। वार्षगण्ये वार्षगण्य में सात्त्वतवत् सात्त्वत के समान प्रविचाराः विधीयते प्रविचार योजित किया जाता है (किये जाते हैं)। इह इसमें अधिकम् (इतना) अधिक (है कि) फलकस्य अपि भ्रमणं फलक का भी भ्रमण पृष्ठतः स्यात् पीछे की ओर से होता है। तथा उसी तरह शस्त्रहस्तस्य उद्वेष्टनं शस्त्र वाले हाथ का उद्वेष्टन स्कन्धे वक्षसि वा कंधे या छाती पर अत्र प्रहारपातनं च (और) इसमें शस्त्र का प्रहार भी वक्षस्थलगतं मतं छाती पर माना गया है। भारतवत् भारत के समान (ही) कैशिके स्यात् कैशिक में होता है। शस्त्रपातः तु मूर्धनि (लेकिन) शस्त्रप्रहार सिर पर (होता है)।

(सर०) भारती आदि चार वृत्तियों के अनुसार भारत आदि युद्ध में किया जाने वाला शस्त्रप्रयोग किस विधि से और शरीर के किस अंग पर किया जाना चाहिये इसे प्रविचार के रूप में ग्रन्थकार ने यहाँ बताया है।

शक्तिकुन्तादिशस्त्राणि धनुर्वज्रादिकान्यपि।
न्यायेष्वेषु प्रयुञ्जीत सौष्ठवेन समन्वितः॥ ११३९॥

प्रविचारा न शोभन्ते सौष्ठवेन विना कृताः।
संज्ञामात्रेण कर्तव्यः प्रहारो न तु वास्तवः॥ ११४०॥

मायेन्द्रजालैरथवा प्रहारमिव दर्शयेत्।
एते न्यायाः प्रयोक्तव्याश्चारीभिः शस्त्रमोक्षणे॥ ११४१॥

इति न्यायलक्षणम्

११३९-११४१. (अ०) शक्तिकुन्त-आदिशस्त्राणि शक्ति, भाले आदि शस्त्र (और) धनुः वज्र-आदिकानि अपि धनुष, वज्र आदि (शस्त्र) भी सौष्ठवेन समन्वितः (नर्तक/नर्तकी को) सौष्ठव से युक्त (होकर) एषु न्यायेषु इन न्यायों में प्रयुञ्जीत प्रयुक्त करने चाहियें। सौष्ठवेन विना कृताः प्रविचाराः सौष्ठव के बिना किये गये प्रविचार न शोभन्ते शोभित नहीं होते। प्रहारः प्रहार संज्ञामात्रेण कर्तव्यः केवल नाम से करने चाहियें न तु वास्तवः वास्तव में नहीं। अथवा या माया-इन्द्रजालैः माया और इन्द्रजाल से प्रहारम् इव दर्शयेत् प्रहार (करने) जैसा दिखायें। एते न्यायाः ये न्याय चारीभिः चारियों के द्वारा शस्त्रमोक्षणे शस्त्रप्रहार में प्रयोक्तव्याः प्रयुक्त करने चाहियें।

न्याय का लक्षण समाप्त

(मण्डलानि)

चारीचयविशेषः प्राङ्मण्डलं प्रतिपादितम्।
तद्भेदानधुना धीमान्वक्ति श्रीकरणाग्रणीः॥ ११४२॥

मंडल

११४२. (अ०) चारी चयविशेषः चारियों का विशिष्ट समुदाय प्राक् पहले मण्डलं प्रतिपादितं मंडल (कह कर) प्रतिपादित किया गया है। तत् भेदान् उनके भेदों को धीमान् श्रीकरणाग्रणीः बुद्धिमान् श्रीकरणाग्रणी (शार्ङ्गदेव) अधुना वक्ति अब कहता है।

(सर०) तीन या चार खंडकों से त्र्यश्र और चतुरश्र ताल में मंडल होता है यह कारिका ९०१ में कहा जा चुका है। उसी की याद दिलाते हुए अब मंडल के प्रकारों के लक्षण ग्रन्थकार अगले श्लोकों में दे रहे हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(मण्डलभेदानामुद्देशः)

भ्रमरास्कन्दितावर्तशकटास्यानि चाड्डितम्।
समोत्सरितमध्यर्धमेडकाक्रीडितं ततः॥ ११४३॥

पिष्टकुट्टं चाषगतं भौमानीति दशावदन्।
अतिक्रान्तं दण्डपादं क्रान्तं ललितसञ्चरम्॥ ११४४॥

सूचीविद्धं वामविद्धं विचित्रं विहृतं ततः।
अलातं ललितं चेति व्योमजानि दशाब्रुवन्॥ ११४५॥

मंडल के भेदों का नाम सूचन

११४३-११४५. (अ०) भ्रमर, आस्कंदित, आवर्त, शकटास्य और अड्डित, समोत्सरित, अध्यर्ध, एडकाक्रीडित उसके बाद पिष्टकुट्ट (और) चाषगत इति दश ये दस भौमानि अवदन् भौम (मंडल) कहे गये हैं। अतिक्रान्त, दंडपाद, क्रान्त, ललितसंचर, सूचीविद्ध, वामविद्ध, विचित्र, विहृत उसके बाद अलात और ललित इति दश ये दस व्योमजानि अब्रुवन् आकाशिक कहे गये हैं।

भौमाकाशिकचारीणां प्राचुर्यान्मण्डलान्यपि।
भौमान्याकाशिकानीति व्यपदेशं प्रपेदिरे॥ ११४६॥

एतेषां विनियोगश्च विज्ञेयः शस्त्रमोक्षणे।
नभोभवानां प्राधान्यं बोध्यं युद्धपरिक्रमे॥ ११४७॥

चारीनाम्नात्र चरणं वक्ष्ये चारीविवक्षया।
चारीणां न्यूनताधिक्यं न दूषयति मण्डलम्॥ ११४८॥

११४६-११४८. (अ०) भौम-आकाशिकचारीणां प्राचुर्यात् भौम और आकाशिक चारियों की प्रचुरता से मण्डलानि अपि मंडलों ने भी भौमानि आकाशिकानि भौम और आकाशिक व्यपदेशं प्रपेदिरे नाम प्राप्त किया है। एतेषां विनियोगः च इनका विनियोग भी शस्त्रमोक्षणे शस्त्र फेंकने में विज्ञेयः जानना चाहिये। नभोभवानां प्राधान्यम् आकाशिक (मंडलों) का प्राधान्य युद्धपरिक्रमे युद्ध के पैंतरे बदलने में बोध्यं समझना चाहिये। चारीविवक्षया चारी कहने की इच्छा से चारीनाम्ना चारी नाम से अत्र यहाँ चरणं वक्ष्ये चरण कहता हूँ। चारीणां न्यूनता-आधिक्यं चारियों की कमी या अधिकता (कम या अधिक संख्या) मण्डलं न दूषयति मंडल को दूषित नहीं करती (स्वरूप को बाधित नहीं करती)।

(सर०) कल्लि० ने यह स्पष्ट किया कि जैसे चतुरश्र और त्र्यश्र तालयुक्त अंगहारों में करण कम ज्यादा होते हैं उसी तरह चतुरश्र-त्र्यश्र मान वाले मंडलों में भी चारियों की संख्या कम या अधिक होने से मंडल का स्वरूप बिगड़ता नहीं। उस स्थिति में जैसे अंगहारों में रेचकों से पूर्ति की जाती है उसी तरह मंडल में भी किया जाता है और उससे कोई दोष नहीं होता।

(मण्डलानां लक्षणानि)

(भौममण्डलानि)

(भ्रमरम्—१)

दक्षिणो जनितो वामः स्पन्दितो दक्षिणः पुनः।
शकटास्यस्तथा वामः पादोऽवस्पन्दितोऽथवा॥ ११४९॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दक्षिणो भ्रमरो वामः स्पन्दितोऽङ्घ्रिरथेतरः।
शकटास्यश्चाषगतिर्वामोऽन्यो भ्रमरो भवेत्॥ ११५०॥

वामोऽन्ते स्पन्दितो यत्र तदूचे भ्रमरं बुधैः।

इति भ्रमरम् (१)

भ्रमर—१

११४९-११५१ ख. (अ०) दक्षिणः जनितः दाहिना (पैर) जनित, वामः स्पन्दितः बायाँ स्पंदित, पुनः फिर दक्षिणः शकटास्यः दाहिना शकटास्य तथा और वामः पादः बायाँ पैर अवस्पन्दितः अवस्पंदित अथवा या दक्षिणः भ्रमरः दाहिना भ्रमर, वामः स्पन्दितः बायाँ स्पंदित अथ अब इतरः अङ्घ्रिः दूसरा (दाहिना) पैर शकटास्यः शकटास्य, वामः चाषगतिः बायाँ चाषगति, अन्यः दूसरा (दाहिना) भ्रमरः भवेत् भ्रमर होता है (और) यत्र जहाँ अन्ते वामः अन्त में बायाँ स्पन्दितः स्पंदित (हो) तत् वह बुधैः विद्वानों के द्वारा भ्रमरम् ऊचे भ्रमर कहा गया है।

(सर०) सिंह० का पाठ संभवतः वामोऽन्ते है क्योंकि उसने 'अन्ते वामः स्पन्दितश्च भवति' कहा है। इसके अनुसार अर्थ भी संगत प्राप्त होता है इसलिये हमने इसी का ग्रहण किया है।

यह भ्रमर है। (१)

(आस्कन्दितम्—२)

दक्षिणो भ्रमरो वामोऽड्डितोऽथ भ्रमरः स चेत्॥ ११५१॥

दक्षिणः शकटास्यत्वं गत्वोरूद्वृत्ततां गतः।
वामो वाध्यर्धिकीभूय भ्रमरो दक्षिणः पुनः॥ ११५२॥

स्पन्दितः शकटास्यस्तु वामस्तेनैव भूतलम्।
स्फुटमास्फोटितं धीरैस्तदास्कन्दितमिष्यते॥ ११५३॥

इत्यास्कन्दितम् (२)

आस्कंदित—२

११५१ ग-११५३. (अ०) दक्षिणः भ्रमरः दाहिना भ्रमर, वामः अड्डितः बायाँ अड्डित, अथ अब सः भ्रमरः चेत् यदि वह (दाहिना) भ्रमर (किया हो), दक्षिणः दाहिना शकटास्यत्वं गत्वा शकटास्य स्वरूप प्राप्त करके (अर्थात् शकटास्य करके) ऊरूद्वृत्ततां गतः ऊरूद्वृत्त स्वरूप प्राप्त करे व वामः और बायाँ अध्यर्धिकीभूय अध्यर्धिकी होकर भ्रमरः भ्रमर, पुनः दक्षिणः फिर दाहिना स्पन्दितः स्पंदित, वामः तु और बायाँ शकटास्यः शकटास्य, तेन एव उसी से भूतलं धरती पर स्फुटम् आस्फोटितं स्पष्ट रूप से आघात किया जाए तदा तब धीरैः विद्वानों के द्वारा आस्कन्दितम् इष्यते आस्कंदित माना जाता है।

यह आस्कंदित है। (२)

(आवर्तम्—३)

दक्षिणो जनितो वामः स्थितावर्तस्ततः परम्।
शकटास्यो भवेत्पश्चादेडकाक्रीडिताह्वयः॥ ११५४॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ऊरूद्वृत्तोऽड्डितश्चारीं जनितामाश्रितस्ततः।
समोत्सरितमत्तल्लिः क्रमादङ्घ्रिस्तु दक्षिणः॥ ११५५॥

शकटास्यः क्रमादूरूद्वृत्तश्च स्यादथेतरः।
पादश्चाषगतिर्द्विः स्याद्दक्षिणः स्पन्दितस्ततः॥ ११५६॥

वामाङ्घ्रिः शकटास्यः स्यादन्योऽङ्घ्रिर्भ्रमरस्ततः।
वामश्चाषगतिर्यत्र तदावर्तमवादिषुः॥ ११५७॥

इत्यावर्तम् (३)

आवर्त—३

११५४-११५७. (अ०) दक्षिणः जनितः दाहिना जनित, वामः स्थितावर्तः बायाँ स्थितावर्त, ततः परं शकटास्यः उसके बाद शकटास्य (हो), पश्चात् इसके बाद क्रमात् क्रम से एडकाक्रीडित-आह्वयः एडकाक्रीडित नाम वाला, ऊरूद्वृत्तः ऊरूद्वृत्त, अड्डितचारीं जनिताम् आश्रितः अड्डित चारी (और) जनिता के आश्रित होकर, ततः तब समोत्सरितमत्तल्लिः समोत्सरितमत्तल्लि दक्षिणः अङ्घ्रिः तु और दाहिना पैर क्रमात् क्रम से शकटास्यः ऊरूद्वृत्तः च शकटास्य और ऊरूद्वृत्त स्यात् होता है। अथ अब इतरः पादः दूसरा (बायाँ) पैर द्विः चाषगतिः स्यात् दो बार चाषगति हो, दक्षिणः स्पन्दितः दाहिना स्पंदित ततः (और) उसके बाद वाम-अङ्घ्रिः बायाँ पैर शकटास्यः स्यात् शकटास्य हो, अन्यः अङ्घ्रिः भ्रमरः दूसरा (दाहिना) पैर भ्रमर ततः उसके बाद यत्र जहाँ वामः चाषगतिः बायाँ चाषगति (हो) तत् उसे आवर्तम् अवादिषुः आवर्त कहा गया है।

यह आवर्त है। (३)

(शकटास्यम्—४)

जनितः सप्तपूर्वोक्तस्थितावर्तादि भेदभाक्।
क्रमेण शकटास्यश्च दक्षिणः स्पन्दितोऽपरः॥ ११५८॥

शकटास्यस्ततः पादो यावन्मण्डलपूरणम्।
क्रमेण यत्र तज्ज्ञेयं शकटास्याभिधं बुधैः॥ ११५९॥

इति शकटास्यम् (४)

शकटास्य—४

११५८-११५९. (अ०) यत्र जहाँ दक्षिणः जनितः दाहिना जनित (और) पूर्व-उक्त पहले (आवर्त में) कहे गये स्थितावर्त आदि स्थितावर्त इत्यादि सप्त भेदभाक् सात भेद क्रमेण क्रम से (योजित करके) शकटास्यः च शकटास्य भी (योजित हो), अपरः पादः स्पन्दितः दूसरा (बायाँ) पैर स्पंदित ततः फिर शकटास्य शकटास्य क्रमेण क्रम से मण्डलपूरणं यावत् मंडल पूरा होने तक (योजित हो) तत् वह बुधैः विद्वानों के द्वारा शकटास्य-अभिधं ज्ञेयं शकटास्य नाम वाला जाना गया है।

यह शकटास्य है। (४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(अड्डितम्—५)

उद्घट्टितस्ततो बद्धः समोत्सरितपूर्वकः।
मत्तल्लिरर्धमत्तल्लिरपक्रान्तश्च दक्षिणः॥ ११६०॥

उद्वृत्तो विद्युद्भ्रान्तश्च भ्रमरः स्पन्दितश्च सः।
वामस्तु शकटास्योऽन्यो द्विः स्याच्चाषगतिस्ततः॥ ११६१॥

वामोऽड्डितोऽध्यर्धिकस्तु क्रमाच्चाषगतिः परः।
समोत्सरितमत्तल्लिर्मत्तल्लिर्भ्रमरस्तथा॥ ११६२॥

वामोऽथ स्पन्दितो भूत्वा भूतटास्फोटनं यदा।
कुरुते दक्षिणः प्राहुरड्डितं मण्डलं तदा॥ ११६३॥

इत्यड्डितम् (५)

अड्डित—५

११६०-११६३. (अ०) **दक्षिणः** दाहिना (पैर) **उद्घट्टितः** उद्घट्टित **ततः** उसके बाद **बद्धः** बद्ध, **समोत्सरितपूर्वकः मत्तल्लिः** समोत्सरितमत्तल्लि, **अर्धमत्तल्लिः** अर्धमत्तल्लि **अपक्रान्तः च** और अपक्रान्त (करके) **सः** वह **उद्वृत्तः विद्युद्भ्रान्तः च** उद्वृत्त और विद्युद्भ्रान्त, **भ्रमरः स्पन्दितः च** भ्रमर और स्पन्दित, **वामः तु** बायाँ तो **शकटास्यः** शकटास्य, **अन्यः** दूसरा (दाहिना) **द्विः** दो बार **चाषगतिः स्यात्** चाषगति होता है। **ततः** उसके बाद **वामः अड्डितः** बायाँ अड्डित **अध्यर्धिकः तु** और अध्यर्धिक, **परः** दूसरा (दाहिना) **क्रमात्** क्रम से **चाषगतिः** चाषगति, **समोत्सरितमत्तल्लिः** समोत्सरितमत्तल्लि, **मत्तल्लिः** मत्तल्लि **तथा भ्रमरः** तथा भ्रमर, **अथ वामः** अब बायाँ **स्पन्दितः भूत्वा** स्पंदित होकर **यदा** जब **दक्षिणः भूतट-आस्फोटनं कुरुते** दाहिना (पैर) भूमि पर आघात करता है **तदा** तब **अड्डितं मण्डलं प्राहुः** अड्डित मंडल कहते हैं।

यह अड्डित है। (५)

(समोत्सरितम्—६)

स्थानेन समपादेन स्थित्वा हस्तौ प्रसारयेत्।
निरन्तरावूर्ध्वकृतावावेष्ट्योद्वेष्ट्य च क्षिपेत्॥ ११६४॥

कटीतटे ततः पादौ भ्रामयेद्दक्षिणे ततः।
क्रमेणानन्तरं वामं पुनः पादं प्रसारयेत्॥ ११६५॥

एवं भ्रान्त्वा क्रमाद्यत्र मण्डलभ्रमणं भवेत्।
चतुर्दिक्कं तदाख्यातं समोत्सरितसंज्ञकम्॥ ११६६॥

इति समोत्सरितम् (६)

समोत्सरित—६

११६४-११६६. (अ०) **समपादेन स्थानेन स्थित्वा** समपाद स्थानक में खड़े होकर **हस्तौ** दोनों हाथ **प्रसारयेत्** फैलाएँ। **निरन्तरौ ऊर्ध्वकृतौ** पास-पास ऊपर उठा कर (दोनों हाथ) **आवेष्ट्य उद्वेष्ट्य च** आवेष्टित और उद्वेष्टित करके **कटीतटे क्षिपेत्** कमर पर रखें। **ततः** उसके बाद **पादौ** दोनों पैर **क्रमेण** क्रम से **दक्षिणे भ्रामयेत्** दाहिनी ओर गोल घुमायें। **ततः** तब

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वामं पादं बायाँ पैर **पुनः प्रसारयेत्** फिर से फैलायें। **एवम्** इस प्रकार **चतुःदिक्कं** चारों दिशाओं में **क्रमात्** क्रम से **यत्र** जिसमें **मण्डलभ्रमणं भवेत्** मंडल भ्रमण होता है **तत्** वह **समोत्सरितसंज्ञकं** समोत्सरित नाम वाला (मंडल) **आख्यातं** कहा गया है।

यह समोत्सरित है। (६)

(अध्यर्धम्—७)

क्रमेण दक्षिणः पादो जनितः स्पन्दितस्ततः।
अड्डितोक्ताश्चतुर्भेदा वामस्याध्यर्धिकादिका॥ ११६७॥

दक्षिणः शकटास्यः स्याद्यत्रान्ते दिक्चतुष्टये।
मण्डलभ्रमणं तत्तु नियुद्धेऽध्यर्धमण्डलम्॥ ११६८॥

इत्यध्यर्धम् (७)

अध्यर्ध—७

११६७-११६८. (अ०) **दक्षिणः पादः** दाहिना पैर **क्रमेण** क्रम से **जनितः स्पन्दितः** जनित (और) स्पंदित (हो), **ततः** उसके बाद **अड्डित-उक्ताः** अड्डित में कहे गये **वामस्य** बायें (पैर) के **चतुर्भेदाः** चार भेद, **दक्षिणः** दाहिना **शकटास्यः स्यात्** शकटास्य होता है **यत्र अन्ते** और जिसमें अन्त में **दिक्चतुष्टये** चारों दिशाओं में **मण्डलभ्रमणं** मंडल भ्रमण (किया जाता है) **तत् तु** वह **अध्यर्धमण्डलम्** अध्यर्धमंडल (कहलाता है) **नियुद्धे** (और) वह द्वन्द्व युद्ध में (योजित होता है)।

(सर०) आड्० के 'अड्डितोक्ता चतुर्भेदा' पाठ के स्थान पर आनन्द० की पादटिप्पणी का **अड्डितोक्ताश्चतुर्भेदा** पाठ सही है। इसके अनुसार सिंह० का 'वामस्तु अड्डितोक्तभेदचतुष्टयवान्' अर्थ भी संगत होता है। अड्डित में बायें पैर के चार भेद ये कहे गये हैं—शकटास्य, अड्डित, अध्यर्धिक और स्पंदित। (११६१ ग-११६३ क)

यह अध्यर्ध है। (७)

(एडकाक्रीडितम्—८)

भूयुक्तैश्चरणैः सूचीविद्धं करणमाश्रितैः।
सूचीविद्धाभिधे चार्यावेडकाक्रीडितैरथ॥ ११६९॥

संपूर्णैर्भ्रमरैः प्राग्वत्सूचीविद्धाङ्घ्रिभिस्ततः।
आक्षिप्तैर्मण्डलभ्रान्त्या दिक्चतुष्टययुक्तया॥ ११७०॥

अन्ते रचितया ज्ञेयमेडकाक्रीडिताह्वयम्।

इत्येडकाक्रीडितम् (८)

एडकाक्रीडित—८

११६९-११७१ ख. (अ०) **सूचीविद्धं करणम् आश्रितैः** सूचीविद्ध करण के आश्रित **भूयुक्तैः चरणैः** भूमि पर लगे (रखे) हुए दोनों पैरों से **सूचीविद्ध-अभिधे चार्यौ** सूचीविद्ध नाम वाली दो चारियाँ (किए हुए) **अथ** फिर **एडकाक्रीडितैः** एडकाक्रीडितयुक्त **संपूर्णैः भ्रमरैः** संपूर्ण भ्रमरों से **प्राक्-वत्** पहले की तरह **सूचीविद्ध-अङ्घ्रिभिः** सूचीविद्ध पैरों से **ततः** तब **आक्षिप्तैः** आक्षिप्तों से **अन्ते** अन्त में **दिक्-चतुष्टययुक्तया रचितया मण्डलभ्रान्त्या** चारों दिशाओं में योजित मंडल भ्रमण से **एडकाक्रीडित-आह्वयं ज्ञेयम्** एडकाक्रीडित नाम वाला जाना गया है।

यह एडकाक्रीडित है। (८)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(पिष्टकुट्टम्—९)

सूची दक्षिणपादः स्याद्वामोऽपक्रान्तकस्ततः॥ ११७१॥

सव्यवामौ च बहुशो भुजङ्गत्रासितौ क्रमात्।
यत्रान्ते मण्डलभ्रान्तिः पिष्टकुट्टं तदुच्यते॥ ११७२॥

इति पिष्टकुट्टम् (९)

पिष्टकुट्ट—९

११७१ ग-११७२. (अ०) यत्र जहाँ दक्षिणपादः सूची दाहिना पैर सूची (और) वामः बायाँ अपक्रान्तः स्यात् अपक्रान्त होता है, ततः तब सव्यवामौ च बहुशः दाहिना और बायाँ बहुत बार क्रमात् क्रम से भुजंगत्रासितौ भुजंगत्रासित (करके) अन्ते अन्त में मण्डलभ्रान्तिः मंडल भ्रमण (योजित हो) तत् वह पिष्टकुट्टम् उच्यते पिष्टकुट्ट कहा जाता है।

यह पिष्टकुट्ट है। (९)

(चाषगतम्—१०)

चरणैश्चाषगतिभिः समस्तैर्मण्डलभ्रमम्।
अन्ते दधच्चाषगतं नियुद्धविषयं भवेत्॥ ११७३॥

इति चाषगतम् (१०)

इति दश भौममण्डलानि

चाषगत—१०

११७३. (अ०) चाषगतिभिः समस्तैः चरणैः चाषगति वाले सारे पैरों से अन्ते अन्त में मण्डलभ्रमणं दधत् मंडलभ्रमण धारण करते हुए चाषगतं भवेत् चाषगत होता है। नियुद्धविषयं नियुद्ध (द्वन्द्व युद्ध) के विषय में (योजित होता है)।

यह चाषगत है। (१०)

ये दस भौम मंडल हैं।

(आकाशिकमण्डलानि)

(अतिक्रान्तम्—१)

जनितः शकटास्यश्च दक्षिणश्चरणः क्रमात्।
वामोऽलातो दक्षिणस्तु पार्श्वक्रान्तस्ततोऽपरः॥ ११७४॥

सूची स एव भ्रमर उद्वृत्तो दक्षिणो भवेत्।
वामस्त्वलातको वाङ्घ्री छिन्नाख्यकरणाश्रयौ॥ ११७५॥

बाह्यभ्रमरकं यत्र वामाङ्घ्री रेचितं भवेत्।
अतिक्रान्तस्ततो वामो दण्डपादस्तु दक्षिणः॥ ११७६॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अवोचत्तदतिक्रान्तं मण्डलं शंकरप्रियः।

इत्यतिक्रान्तम् (१)

आकाशिक मंडल

अतिक्रान्त—१

११७४-११७७ ख. (अ०) दक्षिणः चरणः दाहिना पैर क्रमात् क्रम से जनितः शकटास्यः च जनित और शकटास्य, वामः अलातः बायाँ अलात दक्षिणः तु और दाहिना पार्श्वक्रान्तः पार्श्वक्रान्त ततः उसके बाद अपरः दूसरा (बायाँ) सूची सूची स एव भ्रमरः (और फिर) वही भ्रमर, दक्षिणः दाहिना उद्वृत्तः भवेत् उद्वृत्त होता है। वामः तु अलातकः बायाँ तो अलात व अङ्घ्री और दोनों पैर छिन्न-आख्यकरण-आश्रयौ छिन्न नामक करण के आश्रय वाले (और) यत्र जहाँ बाह्यभ्रमरकं वाम-अङ्गं बाह्यभ्रमर (हुआ) बायाँ अंग रेचितं भवेत् रेचित होता है ततः तब वामः अतिक्रान्तः बायाँ अतिक्रान्त दक्षिणः तु और दाहिना पैर दण्डपादः दंडपाद (हो) तत् उसे शंकरप्रियः शंकरप्रिय (शार्ङ्गदेव) ने अतिक्रान्तं मण्डलम् अवोचत् अतिक्रांत मंडल कहा है।

यह अतिक्रान्त है। (१)

(दण्डपादम्—२)

दक्षिणो जनितो भूत्वा दण्डपादो भवेदथ॥ ११७७॥

सूची च भ्रमरो वाम उद्वृत्तो दक्षिणस्ततः।
अलातो वामचरणः पार्श्वक्रान्तस्तु दक्षिणः॥ ११७८॥

भुजङ्गत्रासितश्चासौ वामोऽतिक्रान्ततां गतः।
दक्षिणो दण्डपादोऽथ सूची च भ्रमरोऽपरः॥ ११७९॥

यत्र तद्दण्डपादाख्यं मण्डलं भणितं बुधैः।

इति दण्डपादम् (२)

दंडपाद—२

११७७ ग-११८० ख. (अ०) यत्र जहाँ दक्षिणः दाहिना (पैर) जनितः भूत्वा जनित होकर दण्डपादः भवेत् दंडपाद होता है, अथ फिर वामः बायाँ सूची भ्रमरः च सूची और भ्रमर, दक्षिणः उद्वृत्तः दाहिना उद्वृत्त, ततः फिर वामचरणः बायाँ पैर अलातः अलात, दक्षिणः तु दाहिना पार्श्वक्रान्तः पार्श्वक्रान्त भुजङ्गत्रासितः च और भुजंगत्रासित, असौ वामः यह बायाँ अतिक्रान्ततां गतः अतिक्रान्त हुआ, दक्षिणः दण्डपादः दाहिना दंडपाद, अथ अपरः अब दूसरा (बायाँ) सूची च भ्रमरः सूची और भ्रमर (हुआ) तत् वह बुधैः विद्वानों के द्वारा दण्डपाद-आख्यं मण्डलं दंडपाद नाम वाला मंडल भणितं कहा गया है।

यह दंडपाद है। (२)

(क्रान्तम्—३)

दक्षिणः सूच्यपक्रान्तो वामोऽङ्घ्रिर्दक्षिणस्ततः॥ ११८०॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पार्श्वक्रान्तस्तथा वामः समन्तान्मण्डलभ्रमः।
सूची यत्राथ वामः स्यादपक्रान्तस्तु दक्षिणः॥ ११८१॥

तदुक्तं कृतिभिः क्रान्तं स्वभावगतिगोचरम्।

इति क्रान्तम् (३)

क्रान्त—३

११८० ग-११८२ ख. (अ०) यत्र जहाँ दक्षिणः अङ्घ्रिः सूची दाहिना पैर सूची (और) वामः अपक्रान्तः बायाँ अपक्रान्त (हो), ततः फिर दक्षिणः पार्श्वक्रान्तः दाहिना पार्श्वक्रान्त तथा और वामः बायाँ समन्तात् मण्डलभ्रमः सब ओर मंडल के आकार में घूमा (हो,) अथ इसके बाद वामः सूची बायाँ सूची (और) दक्षिणः अपक्रान्तः दाहिना अपक्रान्त (हो) तत् वह कृतिभिः विशेषज्ञों के द्वारा क्रान्तम् उक्तं क्रान्त कहा गया है। स्वभावगतिगोचरं (वह) स्वाभाविक गति में दिखाई देता है।

यह क्रान्त है। (३)

(ललितसंचरम्—४)

ऊर्ध्वजानुस्तथा सूची दक्षिणश्चरणः क्रमात्॥ ११८२॥

वामपादस्त्वपक्रान्तः पार्श्वक्रान्तस्तु दक्षिणः।
क्रमात्सूची भ्रमरको वामः पादोऽथ दक्षिणः॥ ११८३॥

पार्श्वक्रान्तस्ततो वामोऽतिक्रान्तो दक्षिणः पुनः।
सूच्यपक्रान्तको वामः पार्श्वक्रान्तोऽपरस्ततः॥ ११८४॥

स्याद्वामाङ्घ्रिरतिक्रान्तश्चरणद्वितयी ततः।
स्याच्छिन्नकरणोक्ता चेद्वामाङ्घ्रिरचितं श्रिताः॥ ११८५॥

बाह्यभ्रमरकं विद्यात्तदा ललितसंचरम्।

इति ललितसंचरम् (४)

ललितसंचर—४

११८२ ग-११८६ ख. (अ०) दक्षिणः चरणः दाहिना पैर क्रमात् क्रम से ऊर्ध्वजानुः तथा सूची ऊर्ध्वजानु और सूची, वामपादः तु अतिक्रान्तः बायाँ पैर अतिक्रान्त दक्षिणः पार्श्वक्रान्तः तु और दाहिना पार्श्वक्रान्त, वामः क्रमात् बायाँ क्रम से सूची भ्रमरकः सूची (और) भ्रमर (हो), अथ इसके बाद दक्षिणः पादः पार्श्वक्रान्तः दाहिना पैर पार्श्वक्रांत, ततः तब वामः अतिक्रान्तः बायाँ अतिक्रांत (और) दक्षिणः पुनः सूची दाहिना फिर से सूची (हो), वामः अपक्रान्तकः बायाँ अपक्रान्त, अपरः पार्श्वक्रान्तः दूसरा (दाहिना) पार्श्वक्रान्त (हो), ततः फिर वामः अङ्घ्रिः बायाँ पैर अतिक्रान्तः स्यात् अतिक्रान्त (योजित) होता है, ततः उसके बाद चरणद्वितयी चेत् यदि दोनों पैर छिन्नकरण-उक्ता छिन्न करण में कहे (अनुसार) वाम-अङ्घ्रिरचितं बायें पैर से किये गये बाह्यभ्रमरकं श्रिता स्यात् बाह्यभ्रमर के आश्रित होते हैं तदा तब ललितसंचरं विद्यात् ललितसंचर जानें।

यह ललितसंचर है। (४)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सूचीविद्धम्—५)

दक्षिणश्चरणः सूची भ्रमरश्च भवेत्ततः॥ ११८६॥

पार्श्वक्रान्तोऽथ वामाङ्घ्रिरपक्रान्तोऽथ दक्षिणः।
सूची वामस्त्वपक्रान्तः पार्श्वक्रान्तस्तु दक्षिणः॥ ११८७॥

यत्र तन्मण्डलं प्रोक्तं सूचीविद्धं पुरातनैः।

इति सूचीविद्धम् (५)

सूचीविद्ध—५

११८६ ग-११८८ ख. (अ०) यत्र जहाँ दक्षिणः चरणः दाहिना पैर सूची भ्रमरः च सूची और भ्रमर भवेत् होता है, ततः उसके बाद वाम-अङ्घ्रिः बायाँ पैर पार्श्वक्रान्तः पार्श्वक्रान्त, अथ अपक्रान्तः फिर अपक्रान्त, अथ दक्षिणः सूची फिर दाहिना सूची वामः तु अपक्रान्तः और बायाँ अपक्रान्त दक्षिणः पार्श्वक्रान्तः तु और दाहिना पार्श्वक्रान्त (योजित होता है) तत् उसे पुरातनैः प्राचीन आचार्यों के द्वारा सूचीविद्धं मण्डलं प्रोक्तं सूचीविद्ध मंडल कहा गया है।

यह सूचीविद्ध है। (५)

(वामविद्धम्—६)

सूच्यङ्घ्रिर्दक्षिणो वामस्त्वपक्रान्तोऽथ दक्षिणः॥ ११८८॥

दण्डपादोऽथ सूची स्याद्वामो भ्रमरकश्च सः।
पार्श्वक्रान्तो दक्षिणः स्यादाक्षिप्तो दक्षिणेतरः॥ ११८९॥

दक्षिणो दण्डपादः स्यादूरूद्वृत्तोऽप्यनन्तरम्।
वामश्च सूची भ्रमरोऽलातश्च क्रमतो भवेत्॥ ११९०॥

पार्श्वक्रान्तो दक्षिणः स्याद्वामोऽतिक्रान्ततां व्रजेत्।
यत्र तद्वामविद्धाख्यं मण्डलं शार्ङ्गिणोदितम्॥ ११९१॥

इति वामविद्धम् (६)

वामविद्ध—६

११८८ ग-११९१. (अ०) दक्षिणः अङ्घ्रिः सूची दाहिना पैर सूची वामः तु अपक्रान्तः और बायाँ अपक्रान्त अथ फिर दक्षिणः दण्डपादः दाहिना दंडपाद, अथ फिर वामः सूची बायाँ सूची, सः भ्रमरकः वही भ्रमर दक्षिणः च पार्श्वक्रान्तः स्यात् और दाहिना पार्श्वक्रान्त होता है। दक्षिण-इतरः आक्षिप्तः दाहिने से इतर (बायाँ) आक्षिप्त, दक्षिणः दण्डपादः दाहिना दंडपाद ऊरूद्वृत्तः अपि स्यात् (और) ऊरूद्वृत्त भी (योजित) होता है। अनन्तरम् इसके बाद वामः च बायाँ क्रमतः क्रम से सूची भ्रमरः अलातः च सूची, भ्रमर और अलात भवेत् होता है यत्र (और) जहाँ दक्षिणः पार्श्वक्रान्तः दाहिना पार्श्वक्रान्त स्यात् होता है, वामः बायाँ अतिक्रान्ततां व्रजेत् अतिक्रान्त स्वरूप को जाता (प्राप्त करता) है तत् वह शार्ङ्गिणा शार्ङ्गदेव के द्वारा वामविद्ध-आख्यं मण्डलम् उदितं वामविद्ध नामक मंडल कहा गया है।

यह वामविद्ध है। (६)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(विचित्रम्—७)

दक्षिणो जनितोऽङ्घ्रिः स्यादूरूद्वृत्तश्च विच्यवः।
ततः सप्तस्थितावर्ताद्यावर्तोदितभेदभाक् ॥ ११९२॥

स्पन्दितो वामपादः स्यात्पार्श्वक्रान्तस्तु दक्षिणः।
भुजङ्गत्रासितो वामोऽतिक्रान्तो दक्षिणो भवेत्॥ ११९३॥

उद्वृत्तश्चैव वामस्तु स्यादलातोऽथ दक्षिणः।
पार्श्वक्रान्तोऽथवा सूची वामो विक्षिप्य दक्षिणम्॥ ११९४॥

वामोऽपक्रान्ततां नीतस्तद्विचित्रं प्रचक्षते।

इति विचित्रम् (७)

विचित्र—७

११९२-११९५ ख. (अ०) दक्षिणः अङ्घ्रिः दाहिना पैर जनितः ऊरूद्वृत्तः विच्यवः च जनित, ऊरूद्वृत्त और विच्यव स्यात् हो, ततः उसके बाद सप्तस्थितावर्त-आदि-आवर्त-उदितभेदभाक् स्थितावर्त आदि आवर्त में कहे गये सात भेद (हों), वामपादः स्पन्दितः स्यात् बायाँ पैर स्पंदित हो, दक्षिणः पार्श्वक्रान्तः दाहिना पार्श्वक्रान्त, वामः तु भुजङ्गत्रासितः और बायाँ भुजंगत्रासित (तथा) दक्षिणः अतिक्रान्तः भवेत् दाहिना अतिक्रान्त हो वामः तु उद्वृत्तः एव च और बायाँ उद्वृत्त ही हो, अथ फिर दक्षिणः अलातः स्यात् दाहिना अलात हो। वामः पार्श्वक्रान्तः अथवा सूची बायाँ पार्श्वक्रान्त या सूची (हो), दक्षिणं विक्षिप्य दाहिने को विक्षिप्त करके वामः अपक्रान्ततां नीतः बायाँ अपक्रान्त किया गया (हो) तत् उसे विचित्रं प्रचक्षते विचित्र कहा जाता है।

(सर०) आड्यार० में ११९२ ग-घ में 'सप्तस्थितावर्तोद्वयावर्तोदित…' है और आनन्द० में 'समस्थितावर्तोद्वयावर्तोदित…' है (१२०१)। दोनों से ही संगत अर्थ नहीं निकलता। आनन्द० की पादटिप्पणी में 'वर्तोद्वयाव' के स्थान पर 'वर्ताद्याव' पाठ दिया है। इसके द्वारा 'स्थितावर्तादि आवर्त में कहे गये' यह अर्थ प्राप्त होता है जो इष्ट है। इसलिये हमने इसी का ग्रहण किया है।

यह विचित्र है। (७)

(विहृतम्—८)

दक्षिणो विच्यवो भूत्वा स्पन्दितोऽनन्तरं भवेत्॥ ११९५॥

पार्श्वक्रान्तो दक्षिणोऽङ्घ्रिर्वामस्तु स्पन्दितस्ततः।
उद्वृत्तो दक्षिणोऽलातो वामः सूची तु दक्षिणः॥ ११९६॥

पार्श्वक्रान्तस्तु वामाङ्घ्रिराक्षिप्तीभूय दक्षिणः।
भ्रान्त्वा सव्यापसव्येन दण्डपादत्वमागतः॥ ११९७॥

वामः क्रमेण सूची स्याद् भ्रमरश्चाथ दक्षिणः।
भुजङ्गत्रासितो वामोऽतिक्रान्तो विहृताभिधे॥ ११९८॥

इति विहृतम् (८)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विहृत—८

११९५ ग-११९८. (अ०) दक्षिणः विच्यवः भूत्वा दाहिना (पैर) विच्यव होकर अनन्तरं स्पन्दितः भवेत् उसके बाद स्पंदित हो, दक्षिणः पार्श्वक्रान्तः दाहिना पार्श्वक्रान्त वामः अङ्घ्रिः तु और बायाँ पैर स्पन्दितः स्पंदित (हो), ततः उसके बाद उद्वृत्तः उद्वृत्त, दक्षिणः अलातः दाहिना अलात, वामः तु सूची बायाँ सूची दक्षिणः पार्श्वक्रान्तः तु और दाहिना पार्श्वक्रान्त, वाम-अङ्घ्रिः आक्षिप्तीभूय बायाँ पैर आक्षिप्त होकर, दक्षिणः सव्य-अपसव्येन दाहिना (पैर) बायें और दाहिने भ्रान्त्वा घूम कर दण्डपादत्वम् आगतः दंडपाद स्वरूप को प्राप्त कर ले, वामः क्रमेण बायाँ क्रम से सूची भ्रमरः च स्यात् सूची और भ्रमर हो जाय, अथ इसके बाद दक्षिणः भुजङ्गत्रासितः दाहिना भुजंगत्रासित (और) वामः अतिक्रान्तः बायाँ अतिक्रान्त विहृत-अभिधे विहृत नाम वाले (मंडल में होता है)।

यह विहृत है। (८)

(अलातम्—९)

सूचीं च भ्रमरीं वामे क्रमात्पादे तु दक्षिणे।
भुजङ्गत्रासितां चारीमलातां दक्षिणेतरे॥ ११९९॥

षट्कृत्वः सप्तकृत्वो वा कृत्वा चारीरिमाः क्रमात्।
चतुर्दिक्षु द्रुतं भ्रान्त्वा परिमण्डलाकृतिः॥ १२००॥

दक्षिणाङ्घ्रावपक्रान्तां वामे तु चरणे क्रमात्।
अतिक्रान्ताभ्रमरिके ललितैश्चरणक्रमैः॥ १२०१॥

करोति यत्र तत्प्राहुरलातं मण्डलं बुधाः।

इत्यलातम् (९)

अलात—९

११९९-१२०२ ख. (अ०) वामे पादे तु बायें पैर में तो क्रमात् क्रम से सूचीं च भ्रमरीं सूची और भ्रमरी दक्षिणे भुजङ्गत्रासितां चारीं और दाहिने में भुजंगत्रासिता चारी दक्षिण-इतरे अलातां दाहिने से अन्य (बायें) में अलाता (चारी की जाय), इमाः चारीः ये चारियाँ क्रमात् क्रम से षट्कृत्वः सप्तकृत्वः वा कृत्वा छ या सात बार करके, चतुर्दिक्षु चारों दिशाओं में परिमण्डलित-आकृतिः गोल-गोल वाली आकृति में द्रुतं भ्रान्त्वा द्रुत गति से घूम कर यत्र जहाँ दक्षिण-अङ्घ्रौ अपक्रान्तां दाहिने पैर में अपक्रान्ता वामे चरणे तु और बायें पैर में क्रमात् क्रम से अतिक्रान्ताभ्रमरिके अतिक्रान्ता और भ्रमरी (चारी) ललितैः चरणक्रमैः ललित डगों से करोति (नर्तक) करता है तत् उसे बुधाः विद्वान् अलातं मण्डलं प्राहुः अलात मंडल कहते हैं।

यह अलात है। (९)

(ललितम्—१०)

सूच्यङ्घ्रिर्दक्षिणो वामस्त्वपक्रान्तोऽथ दक्षिणः॥ १२०२॥

पार्श्वक्रान्तत्वमागत्य भुजङ्गत्रासितो भवेत्।
अतिक्रान्तस्तु वामाङ्घ्रिराक्षिप्तो दक्षिणस्ततः॥ १२०३॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वामोऽतिक्रान्ततां नीत्वोरूद्वृत्तोऽलातकः क्रमात्।
पार्श्वक्रान्तो दक्षिणः स्याद्वामः सूच्यथ दक्षिणः॥ १२०४॥

अपक्रान्तो वामपादस्त्वतिक्रान्तीकृतो यदा।
ललितं संचरेदुक्तं ललितं मण्डलं तदा॥ १२०५॥

इति ललितम् (१०)

इति दशाकाशिकमण्डलानि

इति मण्डललक्षणम्

ललित—१०

१२०२ ग-१२०५. (अ०) **दक्षिणः अङ्घ्रिः सूची** दाहिना पैर सूची **वामः तु अपक्रान्तः** और बायाँ अपक्रान्त हो, **अथ** फिर **दक्षिणः पार्श्वक्रान्तम् आगत्य** दाहिना पार्श्वक्रान्त होकर **भुजङ्गत्रासितः भवेत्** भुजंगत्रासित हो, **वामः अङ्घ्रिः तु अतिक्रान्तः** बायाँ पैर अतिक्रान्त हो, **ततः** तब **दक्षिणः आक्षिप्तः** दाहिना आक्षिप्त, **वामः** बायाँ **अतिक्रान्ततां नीत्वा** अतिक्रान्त करके **क्रमात्** क्रम से **ऊरूद्वृत्तः अलातकः** ऊरूद्वृत्त (और) अलात हो, **दक्षिणः पार्श्वक्रान्तः** दाहिना पार्श्वक्रान्त, **वामः सूची स्यात्** बायाँ सूची हो। **अथ** अब **दक्षिणः अपक्रान्तः** दाहिना अपक्रान्त **वामपादः तु** और बायाँ पैर **यदा** जब **अतिक्रान्तीकृतः** अतिक्रान्त किया जाकर **ललितं संचरेत्** ललित रीति से संचार करता है **तदा ललितमण्डलम् उक्तं** ललितमंडल कहा गया है।

यह ललित है।

ये दस आकाशिक मंडल हैं।

मंडल लक्षण समाप्त

(लास्याङ्गानि)

चालिश्चालिवडश्चाथ लढिः सूकमुरोङ्गणम्।
धसकश्चाङ्गहारः स्यादोयारो विहसी मनः॥ १२०६॥

लास्याङ्गानि दशैतानि देश्यां देशीविदो विदुः।

लास्यांग

१२०६-१२०७ ख. (अ०) **चालिः चालिवडः च** चालि और चालिवड, **अथ लढिः** फिर लढि, **सूकम् उरोङ्गणं** सूक, उरोंगण, **धसकः अङ्गहारः च** धसक और अंगहार **ओयारः विहसी मनः स्यात्** ओयार, विहसी (और) मन होता है **एतानि दश लास्याङ्गानि** ये दस लास्यांग **देशीविदः** देशी के वेत्ता **देश्यां विदुः** देशी में जानते हैं।

(लास्याङ्गलक्षणानि)

(चालिः—१)

कोमलं सविलासं च मधुरं तालसाम्ययुक्॥ १२०७॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नातिद्रुतं नातिमन्दं त्र्यश्रताप्रचुरं तथा।
पादोरुकटिबाहूनां यौगपद्येन चालनम्॥ १२०८॥
चालिः,

इति चालिः (१)

चालि—१

१२०७ ग-१२०९ क. (अ०) कोमलं सविलासं मधुरं च कोमल, विलासयुक्त और मधुर, तालसाम्ययुक् ताल के साम्य से युक्त, न अतिद्रुतं न अतिमन्दं न तो बहुत द्रुत (और) न बहुत मंद तथा त्र्यश्रताप्रचुरं तथा त्र्यश्रताप्रचुर, पाद-ऊरूकटिबाहुनां पैर, जाँघ, कमर और बाहों का यौगपद्येन चालनं चालिः एकसाथ चालन चालि (है)।

(सर०) आनन्द० और आड्० दोनों में 'ताललास्ययुक्' पाठ है लेकिन 'लास्य' के कारण संगत अर्थ प्राप्त नहीं होता। सिंह० की टीका में तालसाम्ययुक् है। इससे सही अर्थ प्राप्त होता है इसलिये इसी का यहाँ ग्रहण किया है।

यह चालि है। (१)

(चालिवडः—२)

सा शैध्र्यसांमुख्यप्राया चालिवडो भवेत्।

इति चालिवडः (२)

चालिवड—२

१२०९ क-ख. (अ०) सा वह (चालि ही) शैघ्र्यसांमुख्यप्राया जल्दी (और) प्रायः सामने (योजित होने पर) चालिवडः भवेत् चालिवड होता है।

यह चालिवड है। (२)

(लढिः—३)

सुकुमारं तिरश्चीनं विलासरसिकं च यत्॥ १२०९॥
युगपत्कटिबाहूनां चालनं सा लढिर्मता।

इति लढिः (३)

लढि—३

१२०९ ग-१२१० ख. (अ०) यत् जो कटिबाहूनां कमर और बाँहों का सुकुमारं सुकुमार, तिरश्चीनं तिरछा विलासरसिकं च और विलासयुक्त रसिक (विलास में रस दिखाता हुआ) युगपत् चालनं युगपत् चालन सा वह लढिः मताः लढि मानी गई है।

यह लढि है। (३)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सूकम्—४)

कर्णयोर्हावबहुलं लसल्लीलावतंसयोः॥ १२१०॥

विलम्बेनाविलम्बेन सूकं तल्लयचालनम्।

इति सूकम् (४)

सूक—४

१२१० ग-१२११ ख. (अ०) लीलालसत् अवतंसयोः लीला से शोभित कानों के आभूषणों का हावबहुलं हाव से भरा विलम्बेन अविलम्बेन विलंबित या अविलंबित लयचालनं लय में हिलाया जाना तत् सूकं वह सूक (होता है)।

यह सूक है। (४)

(उरोङ्गणम्—५)

विलम्बेनाविलम्बेन कुचयोर्भुजशीर्षयोः॥ १२११॥

ललितं चालनं तिर्यक्तज्ज्ञाः प्राहुरुरोङ्गणम्।

इत्युरोङ्गणम् (५)

उरोंगण—५

१२११ ग-१२१२ ख. (अ०) कुचयोः भुजशीर्षयोः दोनों स्तनों का और कंधों का विलम्बेन अविलम्बेन विलंबित और द्रुत गति से तिर्यक् ललितं चालनं तिरछा ललित चालन तत्-ज्ञाः उसके ज्ञाता उरोङ्गणं प्राहुः उरोंगण कहते हैं।

ये उरोंगण है। (५)

(धसकः—६)

धसकः स्यात्सुललितं स्तनाधोनमनं लयात्॥ १२१२॥

इति धसकः (६)

धसक—६

१२१२ ग-घ. (अ०) लयात् लय से (लय के अनुसार) सुललितं स्तन-अधोनमनं लालित्य से स्तन का नीचे झुकना धसकः स्यात् धसक होता है।

यह धसक है। (६)

(अङ्गहारः—७)

सतालललितोपेता क्रमात्कायार्धयोर्नतिः।

धनुर्वदङ्गहारः स्यादिति निःशङ्कभाषितम्॥ १२१३॥

इत्यङ्गहारः (७)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अंगहार—७

१२१३. (अ०) **सतालललित-उपेता** ताल और लालित्य से युक्त **काया-अर्धयोः** शरीर के दोनों आधे भागों का **क्रमात्** क्रम से **धनुः वत्** धनुष की तरह **नतिः** झुकना **अङ्गहारः स्यात्** अंगहार होता है **इति** ऐसा **निःशङ्कभाषितं** निःशंक (शार्ङ्गदेव) ने कहा है।

यह अंगहार है। (७)

(ओयारकः—८)

किंचित्तिर्यगधो मूर्ध्नो गतिरोयारको मतः।

इत्योयारकः (८)

ओय़ारक—८

१२१४ क-ख. (अ०) **मूर्ध्नोः** सिर की **किंचित् तिर्यक्** कुछ तिरछी **अधः नतिः** नीचे की ओर गति **ओयारकः मतः** ओयारक माना गया है।

यह ओयारक है। (८)

(विहसी—९)

स्मितं स्याद्विहसी यस्तु शृङ्गाररसनिर्भरः॥ १२१४॥

अभ्यस्तादन्य एवातिसूक्ष्मप्रत्यग्रभङ्गिभाक्।

इति विहसी (९)

विहसी—९

१२१४ ग-१२१५ ख. (अ०) **यः तु** जो **शृङ्गाररसनिर्भरः** शृंगार रस से परिपूर्ण, **अभ्यस्तात् अन्यः एव** अभ्यास किये हुए से भिन्न ही **अतिसूक्ष्मप्रत्यग्रभङ्गिभाक्** अत्यन्त सूक्ष्म प्रत्यग्र (नवीन, सुन्दर) भंगी वाला **स्मितं** स्मित **विहसी स्यात्** विहसी होता है।

यह विहसी है। (९)

(मनः—१०)

गीतादेरागतः स्थायस्तल्लयात्तन्मनो मतम्॥ १२१५॥

इति मनः (१०)

(इति दश लास्याङ्गानि)

मन—१०

१२१५ ग-घ. (अ०) **गीत-आदेः आगतः स्थायः** गीत आदि से प्राप्त (जो) स्थाय **तत् लयात्** उस लय से (युक्त) **तत्** वह **मनः मतं** मन माना गया है।

यह मन है। (१०)

दस लास्यांग समाप्त

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(रेखा)

शिरोनेत्रकरादीनामङ्गानां मेलने सति।
कायस्थितिर्मनोनेत्रहारी रेखा प्रकीर्तिता॥ १२१६॥

इति रेखालक्षणम्

रेखा

१२१६. (अ०) शिरोनेत्रकर-आदीनाम् अङ्गानां सिर, आँख, हाथ अंगों का मेलने सति (सुन्दर) निवेश होने पर **मनोनेत्रहारी कायस्थितिः** मन (और) नेत्र का हरण करने (लुभाने) वाली शरीर की स्थिति **रेखा प्रकीर्तिता** रेखा कही गई है।

यह रेखा का लक्षण है।

(श्रमः)

अथ श्रमविधिः—

विघ्नेशं भारतीं देवीं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्।
रङ्गं तद्देवतास्तालवाद्यभाण्डानि च क्रमात्॥ १२१७॥

उपाध्यायं नृत्तकन्याः स्तम्भयुग्मं च दण्डिकाम्।
कस्तूरिकाचन्दनाद्यैः सामोदैरनुलेपनैः॥ १२१८॥

शुभ्रैः सुगन्धिभिः पुष्पैर्धूपैरारात्रिकैरपि।
नैवेद्यैर्विविधैर्वस्त्रैस्ताम्बूलैर्बलिभिस्तथा॥ १२१९॥

अर्चयित्वा शुभे लग्ने प्रारभेत श्रमं सुधीः।

श्रम

१२१७-१२२० ख. (अ०) **अथ श्रमविधिः** अब श्रम (नर्तन के अभ्यास) की विधि—

क्रमात् क्रम से **विघ्नेशं** गणेश, **भारतीं देवीं** सरस्वती देवी, **ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्** ब्रह्मा, विष्णु और महेश, **रङ्गं** रंगभूमि, **तत् देवताः** उसके देवता, **तालवाद्यभाण्डानि च** ताल (घनवाद्य), वाद्य (अन्य तत और सुषिर वाद्य) और भाण्ड (अवनद्ध वाद्य), **उपाध्यायं** आचार्य (शिक्षक) **स्तम्भयुग्मं** दोनों खंभों, **दडिकां** डंडी को (की) **नृत्तकन्याः** नृत्त (सीखने वाली) कन्या **कस्तूरिकाचन्दन-आद्यैः** कस्तूरी, चंदन आदि से, **सामोदैः अनुलेपनैः** सुगन्धित पदार्थों के अनुलेपन से, **शुभ्रैः सुगन्धिभिः पुष्पैः** शुभ्र सुगंधित फूलों से, **धूपैः** धूपों से, **आरात्रिकैः** दीपों की आरतियों से, **नैवेद्यैः** नैवेद्यों से, **विविधैः वस्त्रैः** विविध वस्त्रों से, **ताम्बूलैः** पानों से तथा **बलिभिः** तथा बलि (भेंट, उपहार) से **अर्चयित्वा** अर्चना करके **शुभे लग्ने** शुभ लग्न में **सुधीः** सुबुद्धि वाला **श्रमं प्रारभेत** नर्तन का अभ्यास शुरू करे।

स्तम्भद्वयोपरिन्यस्येत्कन्याहृदयसंमिताम्॥ १२२०॥

हस्तग्राह्यां तिरश्चीनामवष्टम्भाय दण्डिकाम्।
वसित्वा वसनं शुभ्रं दृढमादाय कञ्चुकम्॥ १२२१॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दण्डिकालम्बिनी कन्याभ्यस्येदङ्गविवर्तनम्।
वलनं स्थापनं रेखां तालसाम्यं लयानपि॥ १२२२॥

अङ्गादीनि पुरोक्तानि लास्याङ्गान्यखिलान्यपि।
गीतवाद्यानुगमनं शिक्षेत सुमनाः सती॥ १२२३॥

इति श्रमविधिः

१२२० ग-१२२३. (अ०) स्तम्भद्वय-उपरि दोनों खंभों पर कन्याहृदयसंमितां कन्या (नर्तकी) की छाती तक के नाप की, हस्तग्राह्यां हाथ से पकड़ने योग्य तिरश्चीनां दण्डिकाम् आड़ी डंडी अवष्टम्भाय न्यस्येत् आधार के लिये रखें। शुभ्रं वसनं वसित्वा शुभ्र वस्त्र पहन कर, कञ्चुकं दृढम् आदाय कंचुकी कस कर बाँध कर, दण्डिका अवलम्बिनी कन्या डंडी का आधार लिये हुए कन्या अङ्गविवर्तनम् अभ्यस्येत् अंगों के विवर्तन (घुमाने, फिराने) का अभ्यास करे। सुमनाः सती अच्छे मन वाली हुई (वह) वलनं वलन, स्थापनं स्थापन, रेखां रेखा, तालसाम्यं ताल का साम्य लयान् अपि और लयों, पुरा उक्तानि पहले कहे गये अङ्ग-आदीनि अंग आदि, अखिलानि लास्याङ्गानि अपि सारे लास्यांग और गीतवाद्य-अनुगमनं गीत और वाद्य का अनुसरण शिक्षेत सीखे।

(सर०) आड्० में दिये गये '........न्यस्येत्कन्या हृदयसंमितां' की अपेक्षा आनन्द० की पादटिप्पणी में दिये गये '........स्येत्कन्याहृ.......' के आधार पर अर्थसंगति होने से ऊपर न्यस्येत्कन्याहृदयसंमितां पाठ रखा है।

यह श्रमविधि है।

(पात्रम्)

पात्रं स्यान्नर्तनाधारो नृत्ते प्रायेण नर्तकी।
मुग्धं मध्यं प्रगल्भं च पात्रं त्रेधेति कीर्तितम्॥ १२२४॥

मुग्धादेर्लक्षणं प्रोक्तं यौवनत्रितयं क्रमात्।
लीनाधरस्तनाभोगकपोलजघनोरुकम्॥ १२२५॥

सुरतं प्रति सोत्साहं प्रथमं यौवनं मतम्।
पीनोरुजघनं पीनकठिनोच्चघनस्तनम्॥ १२२६॥

जीवनं मन्मथस्योक्तं द्वितीयं यौवनं बुधैः।
उन्मादकं श्रिया जुष्टं संपन्नरतिनैपुणम्॥ १२२७॥

कामशिक्षितभावं च तृतीयं यौवनं विदुः।
यौवनं तुर्यमप्यस्ति मन्दोत्साहमनो भवेत्॥ १२२८॥

म्लानाधरस्तनाभोगकपोलजघनं च तत्।
अतिप्रगल्भमेतस्माद्यौवनात्पात्रमुच्यते॥ १२२९॥

तज्जराभिमुखं शोभाविकलं नादृतं बुधैः।
बालं मनोविहीनत्वान्न पात्रं तज्ज्ञरञ्जकम्॥ १२३०॥

इति पात्रलक्षणम्

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पात्र (नर्तकी)

१२२४-१२३०. (अ०) **नृत्ते** नृत्त में **प्रायेण** प्राय: **नर्तकी** नर्तकी **नर्तन-आधारः पात्रं स्यात्** नर्तन का आधार (होने से) पात्र होती है। **पात्रं** (वह) पात्र **मुग्धं मध्यं प्रगल्भं च** मुग्ध, मध्य और प्रगल्भ **इति** यों **त्रेधा कीर्तितं** तीन प्रकार से कही गई है। **मुग्धः आदेः लक्षणं** मुग्ध आदि का लक्षण **यौवनत्रितयं क्रमात् प्रोक्तं** यौवन के तीन प्रकारों के क्रम से कहा गया है। **लीन-अधरस्तन-आभोगकपोलजघन-ऊरुकं** दबे हुए (उभरे नहीं) ओठ, स्तनों का ऊपरी भाग, गाल, नितंब, जाँघ वाला (और) **सुरतं प्रति स-उत्साहं** सुरत के लिये उत्साहयुक्त **प्रथमं यौवनं मतं** पहला यौवन माना गया है। **पीन-ऊरूजघनं** पुष्ट जाँघ (और) नितंब, **पीनकठिन-उच्चघनस्तनं** पुष्ट, कठिन, ऊँचे (और) भरे हुए स्तन, **मन्मथस्य जीवितं** कामदेव का जीवन **बुधैः** बुद्धिमानों के द्वारा **द्वितीयं यौवनम् उक्तं** दूसरा यौवन कहा गया है। **उन्मादकम्** उत्तेजित करने वाला, **श्रिया जुष्टं** शोभा संपन्न, **संपन्नरतिनैपुणं** रति की संपन्नता में निपुण **कामशिक्षितभावं च** और काम से शिक्षित भाव वाला **तृतीयं यौवनं विदुः** तीसरा यौवन जाना गया है।

तुर्यं यौवनम् अपि अस्ति चौथा यौवन भी होता है। **मन्द-उत्साहमनः** (वह) मंद उत्साहयुक्त मन वाला (होता है) **तत्** (और) वह **म्लान-अधरस्तन-आभोगकपोलजघनं च** म्लान अधर, स्तन प्रदेश, गाल और नितंब वाला (होता है)। **एतस्मात् यौवनात्** इस यौवन से **पात्रं** पात्र **अतिप्रगल्भम् उच्यते** अति प्रगल्भ कहा जाता है। **तत्** वह **जरा-अभिमुखं** वृद्धावस्था की ओर झुकता हुआ (और) **शोभाविकलं** शोभा से रहित (होने से) **बुधैः** विद्वानों के द्वारा **न आदृतम्** आदृत (आदर पाया) नहीं हुआ। **बालं पात्रं** बाल पात्र **मनोविहीनत्वात्** मनरहित होने से **न तज्ज्ञरञ्जकं** वेत्ताओं को रंजक नहीं लगता।

(सर०) कल्लि० ने कहा कि नृत्त का आधार (पात्र) नर्तकी होती है। नर्तक भी नर्तन का आधार होता है लेकिन लोक में नर्तकी को ही नृत्त में पात्र कहा जाता है, नर्तक को नहीं। **यौवनत्रितयं क्रमात्** अर्थात् प्रथम यौवनयुक्त पात्र मुग्ध, द्वितीय यौवनयुक्त मध्य और तृतीय यौवनयुक्त पात्र प्रगल्भ होता है, यह क्रम है।

यह पात्रलक्षण है।

(पात्रगुणाः)

सौष्ठवं रूपसंपत्तिश्चारुविस्तीर्णवक्त्रता।
विशालनेत्रता बिम्बाधरता कान्तदन्तता॥ १२३१ ॥

सुकम्बुकण्ठता वेल्लल्लता सरलबाहुता।
तनुमध्योन्नतिस्थूलनितम्बकरभोरुता॥ १२३२ ॥

अत्युच्चखर्वपीनत्वराहित्यमशिरालता।
लावण्यकान्तिमाधुर्यधैर्यौदार्यप्रगल्भता॥ १२३३ ॥

गौरता श्यामता वेति तज्ज्ञैः पात्रगुणा मताः।
यत्पात्रं गात्रविक्षेपैः कोमलैर्विलसल्लयैः॥ १२३४॥

सुतालैरक्षराणीव प्रोद्गिरद्गीतवाद्ययोः।
गीतवाद्यध्वनिं चाङ्गैश्चाक्षुषत्वमिवानयत्॥ १२३५ ॥

सुमनांसीव गात्राणि रसपूर्णतया दधत्।
नृत्यत्युत्तममाचष्ट तदिदं करणाग्रणीः॥ १२३६ ॥

इति पात्रगुणाः

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पात्र के गुण

१२३१-१२३६. (अ०) सौष्ठवं सौष्ठव (युक्त), रूपसंपत्तिः रूपसंपन्न, चारूविस्तीर्णवक्त्रता सुन्दर चौड़ा फैला मुख, विशालनेत्रता बड़ी आँखें, बिम्ब-अधरता बिंब जैसे (लाल) ओठ, कान्तदन्तता सुन्दर दाँत, सुकम्बकुण्ठता सुन्दर शंख जैसी गर्दन, वेल्लत् लतासरलबाहुता हिलती हुई लता जैसी सरल (लचीली सीधी) बाँहें, तनुमध्य-उन्नतिस्थूलनितम्बकरभ-ऊरुता पतली कमर, ऊँचे स्थूल नितंब, हाथी (की सूँड) जैसी जाँघें, अति-उच्चखर्वपीनराहित्यं बहुत ऊँचेपन, ठिगनेपन, मोटापे से रहित, अशिरालता नसें न दिखना, लावण्यकान्तिमाधुर्यधैर्य-औदार्यप्रगल्भता लावण्य, कान्ति, माधुर्य, धैर्य, औदार्य, प्रगल्भता, गौरता श्यामता वा गोरापन या साँवलापन इति तत्-ज्ञैः ये उसके वेत्ताओं के द्वारा पात्रगुणाः मताः पात्र के गुण माने गए हैं।

यत् पात्रं जो पात्र कोमलैः गात्रविक्षेपैः कोमल गात्रविक्षेपों से, विलसत् लयैः शोभित लयों से, सुतालैः अच्छे तालों से गीतवाद्ययोः अक्षराणि गीत और वाद्य के अक्षरों को प्र-उद्गिरत् इव सुस्पष्ट बाहर निकालते हुए उच्चारण करने जैसा, गीतवाद्यध्वनिं गीत और वाद्य की ध्वनि को अङ्गैः अंगों के द्वारा चाक्षुषत्वम् इव आनयत् आँखों का विषय (दृश्य) बनाने जैसा लाकर (प्रस्तुत करके) सुमनांसि इव सुगन्धित पुष्पों के समान गात्राणि रसपूर्णतया दधत् अंगों को रस से परिपूर्ण करते हुए नृत्यति नाचती है तत् इदं वह यह (पात्र) करणाग्रणीः करणाग्रणी (शार्ङ्गदेव) ने उत्तमम् आचष्ट उत्तम कहा है।

ये पात्रगुण हैं।

(पात्रदोषाः)

व्यस्तानां वा समस्तानांमेषां दोषो विपर्ययः।
गुणदोषौ परीक्षेत पात्रे नृत्तस्य सिद्धये॥ १२३७॥

मार्कण्डेयपुराणोक्ता नृत्ते पात्रैकतन्त्रता।
नृत्तेनामलरूपेण सिद्धिर्नान्येन रूपतः॥ १२३८॥

चार्वधिष्ठानवन्नृत्तं नृत्तमन्यद्विडम्बना।

इति पात्रदोषाः

पात्र के दोष

१२३७-१२३९ ख. (अ०) एषाम् इन (गुणों) का व्यस्तानां वा समस्तानां विपर्ययः अकेले-अकेले या सबका विपरीत होना दोषः दोष है। नृत्तस्य सिद्धये नृत्त की सिद्धि के लिये पात्रे पात्र में गुणदोषौ परीक्षेत गुण और दोषों का परीक्षण करना चाहिये। नृत्ते नृत्त में पात्र-एकतन्त्रता पात्रों की एकतंत्रता (अर्थात् पात्रों के आधार पर ही नृत्तसिद्धि) मार्कण्डेयपुराण-उक्ता मार्कण्डेय पुराण में कही गई है। अमलरूपेण नृत्तेन शुद्ध स्वरूप वाले नृत्त से सिद्धिः सिद्धि (होती है), न अन्येन अन्य स्वरूप से नहीं। रूपतः चारु-अधिष्ठानवत् नृत्तं नृत्तं रूप से सुन्दर अधिष्ठान वाला नृत्त (ही) नृत्त होता है अन्यत् अन्य (नृत्त) तो विडम्बना विडंबना (उपहास है)।

ये पात्र के दोष हैं।

(पात्रमण्डनानि)

सुनीलस्निग्धविस्तीर्णकेशपाशनिवेशितः॥ १२३९॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ग्रन्थिर्विलुलितः पृष्ठे लसत्पुष्पावतंसकः।
वेणी वा सरला दीर्घा मुक्ताजालविराजितैः॥ १२४०॥

कलितं कुन्तलैर्भालं कस्तूरीचन्दनादिना।
रचितं चित्रकं भाले नेत्रे तन्वञ्जनाञ्चिते॥ १२४१॥

उल्लसत्कान्तिवलये तालपत्रे च कर्णयोः।
दन्तपङ्क्तिः प्रभाजालप्रोज्ज्वलीकृतरङ्गभूः॥ १२४२॥

कस्तूरीपत्रभङ्गाङ्कौ कपोलौ कण्ठलम्बिता।
ताराहारावली स्थूलमौक्तिका स्तनमण्डना॥ १२४३॥

प्रकोष्ठौ न्यस्तसद्रत्नसौवर्णवलयान्वितौ।
अङ्गुल्यो धृतमाणिक्यनीलवज्रादिमुद्रिकाः॥ १२४४॥

चन्दनैर्धूसरं गात्रं यद्वा कुङ्कुमरञ्जितम्।
क्षीरोदकं दुकूलादि वस्त्रं कूर्पासकस्तनुः॥ १२४५॥

सकञ्चुकं वा चलनं तत्तद्देशानुसारतः।
एतन्मण्डनमन्यद्वा पात्रयोः श्यामगौरयोः॥ १२४६॥

यथोचितं विधातव्यमित्याह शिववल्लभः।

इति पात्रमण्डनानि

पात्र के अलंकरण (भूषण)

१२३९ ग-१२४७ ख. (अ०) सुनीलस्निग्धविस्तीर्णकेशपाशनिवेशितः सुन्दर (चमकते) काले, स्निग्ध (घने) लम्बे बाल सँवारे हुए (हों), ग्रन्थिः विलुलितः (जूड़े की ढीली) गाँठ ढलकती सी, पृष्ठे लसत् पीठ पर लहराती (हो), पुष्प-अवतंसकः फूलों के आभूषण (से सजी) सरला दीर्घा वा वेणी या सीधी लंबी वेणी (हो), मुक्ताजालविराजितैः मोतियों के जाल से शोभित कुन्तलैः कलितं भालं बालों की लटों से सुशोभित भाल, भाले (उस) भाल पर कस्तूरीचन्दन-आदिना रचितं कस्तूरी, चन्दन आदि से बनाये हुए चित्रकं चित्रांकन (हों), तनु-अञ्जन-अञ्चिते नेत्रे हल्के से काजल से शोभित दोनों आँखें, कर्णयोः दोनों कानों में उल्लसत्-कान्तिवलये तालपत्रे चमकती कान्ति से युक्त वलय (गोल) वाले तालपत्र (बाली जैसे आभूषण-विशेष हों), प्रभाजालप्रोज्ज्वलीकृतरङ्गभूः दन्तपङ्क्तिः कान्ति के समूह से रंगभूमि को उज्ज्वल बनाने वाली दाँतों की पंक्ति (हो), कस्तूरीपत्रभङ्ग-अङ्कौ कपोलौ कस्तूरी से पत्रभंग (आकृति विशेष) अंकित दोनों गाल, कण्ठलम्बिता कंठ में लटकती हुई स्थूलमौक्तिका बड़े मोतियों वाली स्तनमण्डना स्तनों को अलंकृत करने वाली ताराहारावली तारों जैसे चमकते (मोतियों) की मालाएँ, न्यस्तसत् रत्नसौवर्णवलय-अन्वितौ प्रकोष्ठौ बढ़िया रत्न जडे हुए सोने के कड़ों से अन्वित कलाइयाँ, धृतमाणिक्यनीलवज्र-आदिमुद्रिकाः अङ्गुल्यः माणिक्य, नीलम, हीरे से जड़ी अँगूठियाँ पहनी हुई उँगलियाँ, चन्दनैः धूसरं चन्दन से लेप किया हुआ यत् वा अथवा कुङ्कुमरञ्जितं गात्रं कुंकुम से रँगा हुआ शरीर, क्षीरोदकं दुकूल-आदि वस्त्रं क्षीरोदक (वृक्ष से तैयार किये गये वस्त्र), रेशमी वस्त्र, तनुः कूर्पासकः छोटी चोली, सकञ्चुकं वा अथवा कंचुकयुक्त (मंडन और) तत् तत्देश-अनुसारतः उस-उस देश (प्रदेश विशेष) के अनुसार चलनं चलन एतत् अन्यत् वा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यह या अन्य **श्यामगौरयोः पात्रयोः मण्डनं** साँवले और गोरे पात्रों का मण्डन **यथा-उचितं विधातव्यं** यथायोग्य करना चाहिये **इति** ऐसा **शिवल्लभः आह** शिववल्लभ (शार्ङ्गदेव) कहता है।

यह पात्र का मंडन है।

(उपाध्यायलक्षणम्)

रूपवान्नृत्ततत्त्वज्ञो ग्रहमोक्षविचक्षणः॥ १२४७॥

समादिग्रहविज्ञश्च वाद्यवादनवेदिता।
संप्रदायागतज्ञानो ध्वनिमाधुर्यतत्त्ववित्॥ १२४८॥

स्थायाधिक्योनताभिज्ञः कुशलो लयतालयोः।
वाद्यप्रबन्धनिर्माता मुखवाद्येषु कोविदः॥ १२४९॥

उद्भेत्ता नूत्नभङ्गीनां शिष्यशिक्षणदक्षिणः।
प्रतिष्ठापयिता नृत्तगीतवाद्यव्यवस्थितेः॥ १२५०॥

प्रविष्टो हृदयं यद्वा पात्रस्य हृदि च स्वयम्।
रञ्जकः स्यादुपाध्यायो नृत्तदोषविधानवित्॥ १२५१॥

इत्युपाध्यायलक्षणम्

उपाध्याय का लक्षण

१२४७ ग-१२५१. (अ०) **रूपवान्** रूपवान्, **नृत्ततत्त्वज्ञः** नृत्त के तत्त्व का ज्ञाता, **ग्रहमोक्षविचक्षणः** (गीत, वाद्य के) ग्रह और मोक्ष में निष्णात, **सम-आदिग्रह-विज्ञः च** सम आदि ग्रहों का वेत्ता, **वाद्यवादनवेदिता** वाद्यों के वादन को जानने वाला, **संप्रदाय-आगतज्ञानः** संप्रदाय से प्राप्त ज्ञानवान्, **ध्वनि-माधुर्यतत्त्ववित्** ध्वनि (नाद) के माधुर्य के तत्त्व को जानने वाला, **स्थाय-आधिक्य-ऊनता-अभिज्ञः** स्थायों में अधिकता और कमी का जानकार, **लयतालयोः कुशलः** लय और ताल में कुशल, **वाद्यप्रबन्धनिर्माता** (अवनद्ध के) वाद्यप्रबन्धों का रचनाकार, **मुखवाद्येषु कोविदः** मुखवाद्यों (अवनद्ध से उत्पन्न होने वाले वर्णों का मुख से उच्चारण, 'पढ़न्त') में कुशल, **नूत्नभङ्गीनाम् उद्भेत्ता** नये प्रकार बनाने वाला, **शिष्यशिक्षणदक्षिणः** शिष्य के शिक्षण में निपुण, **नृत्तगीतवाद्यव्यवस्थितेः** नृत्त, गीत और वाद्य की व्यवस्था में **प्रतिष्ठापयिता** स्थिरता लाने वाला, **हृदयं प्रविष्टः** पात्र द्वारा अपने हृदय में प्रविष्ट हुआ (अर्थात् पात्र उपाध्याय के हृदय में प्रविष्ट हुआ) **यत् वा** अथवा **पात्रस्य हृदि च स्वयं** पात्र के हृदय में स्वयं (प्रविष्ट हुआ), **नृत्तदोषविधानवित्** नृत्त में दोष और विधान का वेत्ता (और) **रञ्जकः** रंजक **उपाध्यायः स्यात्** उपाध्याय होता है (होना चाहिये)।

(सर०) कल्लि० ने इस पर लंबी व्याख्या की है जो इस प्रकार है। **उपाध्यायः** अर्थात् भरत के शास्त्र का ज्ञाता और अभिनय की शिक्षा देने वाला विद्वान्। **नृत्ततत्वज्ञः** गात्रविक्षेपमात्र नृत्त होता है—इस पूर्वोक्त लक्षण के तत्त्व और स्वरूप तथा ताल, ताल के आश्रयत्व आदि को जानने वाला। **ग्रहमोक्षविचक्षणः** यानी गीत और वाद्य के आरंभ और समापन को जानने वाला **समादिग्रह ...** अर्थात् सम, अतीत, अनागत आदि का विशेष जानकार। कल्लि० के अनुसार, **ध्वनिमाधुर्यतत्त्ववित्** का अर्थ है जिस राग को जिस नादविशेष पर करने से विशेष रक्ति हो वह ध्वनि-माधुर्य, उसके तत्त्व और स्वरूप का वेत्ता होना। लय, ताल में कुशल होने का उसने यह अर्थ बताया कि जो लय और ताल चल रहा हो उससे भिन्न लय और ताल करने में कुशलता। **प्रविष्टः हृदयं यद्वा ...** इत्यादि का यह आशय कहा कि उपाध्याय और पात्र के हृदयों में एकीभाव होना अन्यथा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सात्त्विक अभिनय की शिक्षा का ग्रहण पात्र द्वारा नहीं हो सकेगा। रञ्जकः यानी अभिनय की शिक्षा और शास्त्रगोष्ठी में लोगों के चित्त को आकर्षक लगना।

अन्त में कल्लि० ने कहा कि उपाध्याय को नृत्त आदि सब लक्ष्यों का तत्त्वज्ञ होना चाहिये, उन-उन कर्मों का कर्ता नहीं।

वाद्यप्रबन्ध से आशय अवनद्ध के उन वाद्यप्रबन्धों से है जिनके लक्षण सं०र०, ६/९४६-१०१९, (वाद्याध्याय, तृतीय खण्ड) में दिये गये हैं।

उपाध्याय का लक्षण समाप्त

(संप्रदायलक्षणम्)

यत्रैको मुखरी श्रेष्ठस्तथा प्रतिमुखर्यपि।
द्वावावजधरावड्डावजौ च करटाधरौ॥ १२५२॥

द्वात्रिंशन्मर्दलधरा वरास्तालधरद्वयम्।
कांस्यतालधरास्त्वष्टाविष्टाः काहलिकद्वयम्॥ १२५३॥

वांशिकौ रसिकौ व्यक्तसुरक्तप्रचुरध्वनी।
चत्वारो मधुरध्वाना भवन्त्यनुकरास्तयोः॥ १२५४॥

द्वौ मुख्यगायनौ सार्धमष्टभिः सह गायनैः।
मुख्यगायनिके चाष्टौ सहगायनिकास्तयोः॥ १२५५॥

संप्रदायसमुल्लासि पात्रमेकं गुणान्वितम्।
सर्वेऽमी रूपवन्तः स्युश्चित्रालंकरणान्विताः॥ १२५६॥

गीतादिसाम्यनिपुणाः प्रहर्षोत्फुल्लचेतसः।
उत्तमः संप्रदायोऽसौ लोके कुटिलमुच्यते॥ १२५७॥

तदर्धं मध्यमो न्यूनोऽस्मात्कनिष्ठो निगद्यते।

इति संप्रदायलक्षणम्

संप्रदाय का लक्षण

१२५२-१२५८ ख. (अ०) यत्र जहाँ एकः श्रेष्ठः मुखरी एक श्रेष्ठ मुखरी तथा और प्रतिमुखरी अपि प्रतिमुखरी भी (हो), द्वौ आवजधरौ दो आवजधारी, अड्डावजौ करटाधरौ च दो अड्डावज और दो करटाधारी, द्वात्रिंशत् वराः मर्दलधराः बत्तीस श्रेष्ठ मर्दलधारी, तालधरद्वयं दो तालधारी, कांस्यतालधराः तु अष्ट आविष्टाः (ताल में पगे हुए) आठ कांस्यतालधारी, काहलिकद्वयं दो काहलावादक, रसिकौ व्यक्तसुरक्तप्रचुरध्वनी वांशिकौ रसयुक्त, स्पष्ट, रंजक और प्रचुर नाद (उत्पन्न करने) वाले दो वांशिक, तयोः उन (दो वांशिकों) के मधुरध्वाना चत्वारः अनुकराः मधुर (वंशी)-ध्वनि वाले चार अनुकर (अनुकरण करने वाले) भवन्ति होते हैं, अष्टभिः गायनैः सह आठ गायकों के साथ द्वौ मुख्यगायनौ सार्धं दो मुख्य गायक सहित मुख्यगायनिके दो मुख्य गायिकाएँ तयोः अष्टौ सहगायनिकाः च और उनकी आठ सहगायिकाएँ, संप्रदायसमुल्लासि संप्रदाय को उल्लसित करने वाला एकं गुणान्वितं पात्रम् एक गुणान्वित पात्र होता है (नर्तकी होती है), अमी सर्वे ये सभी रूपवन्तः रूपवान्, चित्र-अलंकरण-अन्विताः विविध अलंकारों से युक्त, गीत-आदिसाम्यनिपुणाः गीत आदि से साम्य

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(स्थापित करने) में निपुण **प्रहर्ष-उत्फुल्ल-चेतसः** हर्ष से प्रफुल्लित चित्त वाले **स्युः** होते हैं **असौ** यह **उत्तमः संप्रदायः** उत्तम संप्रदाय (है और) **लोके** लोक में **कुटिलम् उच्यते** कुटिल कहा जाता है। **तत् अर्धं मध्यमः** उसका आधा मध्यम (और) **तस्मात् न्यूनः** उससे (भी) कम **कनिष्ठः निगद्यते** कनिष्ठ कहा जाता है।

(सर०) कल्लि० ने उल्लेख किया कि नर्तन में उपयोगी गायक वादकों का बृन्द (समूह) लोकरूढ़ि से संप्रदाय कहा जाता है।

मुखरी और प्रतिमुखरी का लक्षण दिया जा चुका है। (६/१०५९-६१)

संप्रदाय का लक्षण समाप्त

(संप्रदायगुणदोषाः)

अनुवृत्तिर्मुखरिणस्तल्लयो न्यूनपूरणम्॥ १२५८॥

तालानुवृत्तिरित्येते चत्वारः कुटिले गुणाः।
संप्रदायस्य दोषः स्यादेतद्गुणविपर्ययः॥ १२५९॥

इति संप्रदायगुणदोषाः

संप्रदाय के गुण-दोष

१२५८ ग-१२५९. (अ०) **मुखरिणः अनुवृत्तिः** मुखरी का अनुसरण, **तत् लयः** उसकी लय (का अनुसरण), **न्यूनपूरणं** कमी को पूरा करना (और) **ताल-अनुवृत्तिः** ताल का अनुसरण करना **इति** इस प्रकार **कुटिले** कुटिल में **एते चत्वारः गुणाः** ये चार गुण (होते हैं)। **एतत् गुणविपर्ययः** इन गुणों का विपरीत (होना) **संप्रदायस्य दोषः स्यात्** संप्रदाय का दोष होता है।

(सर०) 'तल्लयोर्न्यूनपूरणं' के स्थान पर सिंह० की टीका के 'तस्य लयः' के आधार पर **तल्लयो न्यूनपूरणं** का ऊपर ग्रहण किया है।

ये संप्रदाय के गुण दोष हैं।

(संप्रदायस्य शुद्धपद्धतिः)

अथ शुद्धपद्धतिः—

संगीतज्ञैर्बुधैः सार्धं नायके प्रेक्षके स्थिते।
प्रविश्य रङ्गभूमिं ते तिष्ठन्तः सांप्रदायिकाः॥ १२६०॥

वाद्यानां नादसाम्यं च कृत्वावस्थितमानसाः।
मेलापकं वादयेयुः प्रबन्धं गजरं ततः॥ १२६१॥

ततो जवनिकान्तर्धौ दधानं कुसुमाञ्जलिम्।
पात्रं तिष्ठेदधिष्ठाय स्थानकं सौष्ठवान्वितम्॥ १२६२॥

संप्रदाय की शुद्ध पद्धति

१२६०-१२६२. (अ०) **अथ शुद्ध पद्धतिः** अब शुद्ध पद्धति—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संगीतज्ञैः बुधैः सार्धं संगीतज्ञ विद्वानों के साथ **नायके प्रेक्षके स्थिते** नायक प्रेक्षक (मुख्य प्रेक्षक) के स्थित होने पर **रङ्गभूमिं प्रविश्य** रंगभूमि में प्रवेश करके **तिष्ठन्तः** खड़े रह कर **ते** वे **सांप्रदायिकाः** संप्रदाय के वादक **वाद्यानां** वाद्यों का **नादसाम्यं च कृत्वा** नादसाम्य (एक स्वर में मिला) करके **अवस्थितमानसाः** स्थिर मन से **मेलापकं वादयेयुः** मेलापक (वाद्य प्रबन्ध) बजायें। **ततः गजरं प्रबन्धं** तब गजर प्रबन्ध, **ततः** उसके बाद **जवनिका-अन्तर्धौ** पर्दे के भीतर **कुसुम-अञ्जलिं दधानं पात्रं** पुष्पांजलि धारण करने वाला (किये हुए) पात्र **सौष्ठव-अन्वितं स्थानकम् अधिष्ठाय** सौष्ठवयुक्त स्थानक योजित करके **तिष्ठेत्** खड़ा (खड़ी) रहे।

ततश्चोपशमारम्भेऽन्तर्धाने चापसारिते।
सभाजनमनोहारि पात्रं रङ्गभुवं विशेत्॥ १२६३॥

वाद्यमाने प्रबन्धे चोपशमादौ च वादकैः।
सुभङ्गि रङ्गपीठस्य मध्ये पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्॥ १२६४॥

यतः स्वयं सुरज्येष्ठो मध्येरङ्गमधिष्ठितः।

१२६३-१२६५ ख. (अ०) **ततः च** और तब **उपशम-आरम्भे** उपशम (वाद्यप्रबन्ध) के आरंभ में **अन्तर्धाने च अपसारिते** पर्दा हटाया जाकर **सभाजनमनोहारि पात्रं** सभाजनों के मन का हरण हरने वाला पात्र (नर्तकी) **रङ्गभुवं विशेत्** रंगभूमि में प्रवेश करे। **वादकैः च** वादकों के द्वारा **उपशम-आदौ च प्रबन्धे वाद्यमाने** उपशम आदि प्रबन्ध बजाये जाते हुए **सुभङ्गिः** सुन्दर भङ्गिमा वाली (नर्तकी) **रङ्गपीठस्य मध्ये** रंगभूमि के बीच में **पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्** पुष्पांजलि छोड़े **यतः रङ्गं मध्ये** क्योंकि रंगभूमि के बीच में **स्वयं सुरज्येष्ठः अधिष्ठितः** स्वयं सुरों में ज्येष्ठ (ब्रह्मा/इन्द्र) अधिष्ठित होते हैं।

ततः प्रहर्षसंपन्नं नृत्ताङ्गैरेव केवलैः॥ १२६५॥

वाद्येनोपशमेनात्र नृत्येत्पात्रं मनोन्वितम्।
पदमोता च कवितं मलपावत्सकावपि॥ १२६६॥

रिगोणी तुडुकेत्येभिः प्रबन्धैर्नियतक्रमैः।
स्वेच्छाकृतक्रमैर्यद्वा वाद्यमानैः समन्ततः॥ १२६७॥

समाङ्गैर्विषमाङ्गैर्वोभयैर्वा नृत्तमाचरेत्।

१२६५ ग-१२६८ ख. (अ०) **ततः** तब **प्रहर्षसंपन्नं मनः-अन्वितं पात्रम्** अत्यन्त आनन्द से संपन्न और मन से अन्वित पात्र **केवलैः नृत्ताङ्गैः** केवल नृत्तांगों से ही **अत्र** अब **उपशमेन वाद्येन** उपशम वाद्य के द्वारा **नृत्येत्** नृत्य करे। **पदम् ओता च कवितं** पद, ओता और कवित, **मलप-अवत्सकौ अपि** मलक और अवत्सक भी, **रिगोणी तुडुका** रिगोणी (और) तुडुका **इति एभिः प्रबन्धैः** यों इन प्रबन्धों से **नियतक्रमैः** नियत क्रमों से **यत् वा** अथवा **स्वेच्छाकृत् क्रमैः** स्वेच्छा से बनाये क्रमों से **समन्ततः वाद्यमानैः** भलीभाँति बजाए जाते हुए (वाद्यों के साथ) **सम-अङ्गैः** सम अंगों से **विषम-अङ्गैः वा** अथवा विषम अंगों से **उभयैः वा** अथवा दोनों से **नृत्तम् आचरेत्** नृत्त करे।

(सर०) कल्लि० ने बताया कि **सम-अङ्गैः** का अर्थ है चतुरश्र के आश्रित और **विषमाङ्गैः** यानी त्र्यश्र के आश्रित अंग।

ततः शुद्धप्रबन्धैश्च गीयमानैर्निजेच्छया॥ १२६८॥

पात्रं विधाय त्रिविधं नर्तनं स्थानमाचरेत्।
गजरानन्तरं नास्ति यदोपशमवादनम्॥ १२६९॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पात्रं तदा तदारम्भे प्रविशेदिति तद्विदः।
इति पद्धतिरुक्तेयं प्रोक्ता परिविडिर्जने॥ १२७०॥

१२६८ ग-१२७०. (अ०) ततः उसके बाद निज-इच्छया अपनी इच्छा से गीयमानैः गाये जाते हुए शुद्धप्रबन्धैः च (एला आदि) शुद्ध प्रबन्धों से पात्रं पात्र त्रिविधं नर्तनं विधाय त्रिविध नर्तन (नाट्य, नृत्य और नृत्त) करके स्थानम् आचरेत् स्थान योजित करे। यदा जब गजर-अनन्तरं गजर के बाद उपशमवादनं न अस्ति उपशम का वादन नहीं होता तदा तब तत् आरम्भे उसके (गजर के) आरंभ में पात्रं प्रविशेत् पात्र प्रवेश करे इति तत् विदः ऐसा उसके (नृत्त के) जानकार (कहते हैं)। इति उक्ता इयं पद्धतिः ऐसी कही गई यह पद्धति जने लोगों में परिविडिः उक्ता परिविडि कही गई है।

(सर०) त्रिविध नर्तन यानी गीत के अर्थ का रसाश्रित अभिनय करने से नाट्य, गीत के भाव के भावाश्रित अभिनय से नृत्य और केवल गात्रविक्षेप से गीतमात्र का अनुकरण करने से नृत्त होता है।

वादनं समहस्तस्य प्राक्प्रवेशात्परे जगुः।
समहस्तादिभिः पाटैः सुवृत्तैः पृष्ठसौष्ठवैः॥ १२७१॥

स्थितेन समपादेन प्रवेशं ते प्रचक्षते।
केचिदाहुः केवलयोः प्रयोगं गीतवाद्ययोः॥ १२७२॥

एकैकशः प्रयोगोऽपि गीतादेः कैश्चिदिष्यते।

इति शुद्धपद्धतिः

१२७१-१२७३ ख. (अ०) परे अन्य (आचार्य) प्रवेशात् प्राक् प्रवेश से पहले समहस्तस्य वादनं समहस्त का वादन जगुः कहते हैं। ते वे समहस्त-आदिभिः पाटैः समहस्त आदि पाटों से (और) सुवृत्तैः पृष्ठसौष्ठवैः भली प्रकार पीठ के सौष्ठव से समपादेन स्थितेन समपाद स्थान से प्रवेशं प्रचक्षते प्रवेश कहते हैं। केचित् कोई केवलयोः गीतवाद्ययोः प्रयोगं केवल गीत और वाद्य का प्रयोग आहुः कहते हैं। कैःचित् किन्हीं द्वारा गीत-आदेः गीत आदि का एक-एकशः प्रयोगः अपि एक-एक का प्रयोग भी इष्यते माना जाता है।

(सर०) गीतवाद्ययोः में वाद्य का अर्थ, कल्लि० के अनुसार, मुखवाद्य है और इससे यति आदि वाद्यप्रबन्ध समझने चाहियें। इसका अर्थ यह है कि एलादि गीतप्रबन्ध और यति आदि वाद्यप्रबन्धों से आशय है। एकैकशः यानी केवल गीतप्रबन्धों का या केवल वाद्यप्रबन्धों का प्रयोग, यह अन्य मत है।

श्लोक १२२४ क-ख में और उस पर कल्लि० की टीका में यह कहा जा चुका है कि नर्तन में पात्र नर्तकी होती है, पुरुष नर्तक नहीं। इसलिये सब जगह तदनुरूप अनुवाद किया है।

यह शुद्ध पद्धति है।

(गौण्डलीविधिः)

अथ गौण्डलीविधिः—

वाद्यप्रबन्धैः कठिनैस्त्यक्तमेलादिभिस्तथा॥ १२७३॥

गीतैः सालगसूडस्थैः प्रबन्धैर्यद् ध्रुवादिभिः।
लास्याङ्गैः केवलैरङ्गैः कोमलैश्चैव नृत्यति॥ १२७४॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्वयं गायति वाद्यं च त्रिवलीं वादयेत्स्वयम्।
तत्पात्रं गौण्डली केचिद्वादनं नात्र मन्वते॥ १२७५॥

त्रिवलीधारणं स्कन्धे ग्राम्यत्वं कुरुते स्त्रियाः।
अगायन्ती त्वशारीरा सैव स्यान्मूकगौण्डली॥ १२७६॥

गौण्डल्या मण्डनं प्रोक्तं तज्ज्ञैः कर्णाटदेशजम्।
तस्याश्च नर्तनं प्राहुर्गौण्डलीं लक्षणाश्रयात्॥ १२७७॥

तत्रत्यां पद्धतिं प्राहुस्तद्विदो गौण्डलीविधिम्।
सा देशीपद्धतिस्तूक्ता तल्लक्ष्म ब्रूमहेऽधुना॥ १२७८॥

गौण्डली विधि

१२७३ ग-१२७८. (अ०) यत् जो कठिनैः वाद्यप्रबन्धैः कठिन वाद्यप्रबन्धों तथा और एला-आदिभिः गीतैः त्यक्तम् एला आदि गीतों को छोड़ कर सालगसूडस्थैः ध्रुव-आदिभिः प्रबन्धैः सालगसूड में आये हुए ध्रुव आदि प्रबन्धों से लास्य-अङ्गैः (चारी आदि) लास्य अंगों से कैवलैः कोमलैः अङ्गैः एव च और केवल कोमल अंगों से ही नृत्यति नृत्य करती है, स्वयं गायति स्वयं गाती है त्रिवलीं वाद्यं च और त्रिवली वाद्य को स्वयं वादयेत् स्वयं बजाती है तत् पात्रं वह नर्तकी गौण्डली गौण्डली (होती है)। केचित् कोई अत्र इसमें वादनं न मन्वते वादन नहीं मानते। स्त्रियाः स्त्री के द्वारा स्कन्धे कंधे पर त्रिवलीधारणं त्रिवली को धारण करना ग्राम्यत्वं कुरुते ग्राम्यता लाता है। अशारीरा शारीर (अच्छी कंठध्वनि) से रहित अगायन्ती तु गायन न करने वाली (होने पर) तो सा एव वही (गौण्डली ही) मूकगौण्डली स्यात् मूकगौण्डली होती है। तत्-ज्ञैः उसके ज्ञाताओं के द्वारा गौण्डल्याः मण्डनं गौण्डली का मंडन (अलंकार) कर्णाटदेशजं प्रोक्तं कर्णाट प्रदेश से उत्पन्न कहा है। तस्याः नर्तनं च उसके (गौण्डली के) नर्तन को भी लक्षणा-आश्रयात् लक्षणा (वृत्ति) के आश्रय से गौण्डलीं प्राहुः गौण्डली कहते हैं। तत्रत्यां पद्धतिम् उसमें (गौण्डली में) होने वाली पद्धति को तत्-विद् उसके वेत्ता गौण्डलीविधिं प्राहुः गौण्डलीविधि कहते हैं। सा तु वह तो देशीपद्धतिः उक्ता देशी पद्धति कही गई है। अधुना अब तत् लक्ष्म ब्रूमहे उसका लक्षण कहते हैं।

(सर०) १२७७ क में दोनों संस्करणों में 'मण्डलं' पाठ है लेकिन मण्डल की कोई संगति नहीं है। सिंह० की टीका में आये 'कर्णाटदेशमण्डनं' का मण्डनं पाठ उचित है, उसी का ग्रहण यहाँ किया है।

लक्षणाश्रयात् पर कल्लि० ने कहा कि जैसे 'गङ्गायां घोषः' में गंगा का अर्थ लक्षणा वृत्ति के आधार पर तट किया जाता है उसी तरह यहाँ भी गौण्डली और नर्तन में आश्रय-आश्रयी भाव होने से गौण्डली के नर्तन को भी गौण्डली कहा जाता है।

देशीपद्धतिस्तु में तु के द्वारा लक्षणा से शुद्ध पद्धति का मार्गत्व सूचित होता है।

(गौण्डलीलक्षणम्)

कर्णाटमण्डलैर्युक्तास्तत्र स्युः साम्प्रदायिकाः।
पूर्ववत्समनादत्वमातोद्यानां विधीयते॥ १२७९॥

मेलापकं वादयेयुरेकताल्या समाहिताः।
येन केनापि तालेन गजरे वादिते सति॥ १२८०॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

निःसारुणैकताल्या वारब्धस्योपशमे सति।
पात्रं प्रविश्य रङ्गस्य मध्ये पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्॥ १२८१॥

गौण्डली का लक्षण

१२७९-१२८१. (अ०) **तत्र** उसमें (गौण्डली में) **सांप्रदायिकाः** सांप्रदायिक **कर्णाटमण्डलैः युक्ताः स्युः** कर्णाट प्रदेश वाले होते हैं। **पूर्ववत्** पहले की तरह **आतोद्यानां** वाद्यों का **समनादत्वं** समान नादत्व (एक ही स्वर में मिलाना) **विधीयते** किया जाता है। **समाहिताः** एकाग्र हुए (एकाग्र चित्त वाले वादक) **एकताल्या** एकताली (ताल) से **मेलापकं वादयेयुः** मेलापक बजायें। **येन केन अपि तालेन** किसी भी एक ताल से **गजरे वादिते सति** गजर बजाने पर **निः सारुणा एकताल्या वा** निःसारु या एकताली से **आरब्धस्य** आरंभ हुए के (बाद) **उपशमे सति** उपशम होने पर **पात्रं प्रविश्य** नर्तकी प्रवेश करके **रङ्गस्य मध्ये** रंग(पीठ) के बीच में **पुष्प-अञ्जलिं क्षिपेत्** पुष्पांजलि छोड़े।

(सर०) गौण्डली के लक्षण में एकताली, निःसारु, मंठ, प्रतिमंठ, अड्डुताल विविध ताल हैं जिनके लक्षण तालाध्याय (सं० र०, खण्ड ३, अ० ५) में दिये गये हैं। मेलापक, गजर, उपशम, रिगोणी, अवत्सक, कवित, उट्टवण, जक्का वाद्यप्रबन्धों के लक्षण वाद्याध्याय (वही) में दिये गये हैं। ध्रुव, ध्रुवपद गीतप्रबन्ध हैं जिनके लक्षण प्रबन्धाध्याय (वही, खण्ड २, अ० ४) में हैं। श्लो० १२८६ में कही जाने वाली चतुर्विध आलप्ति से चार स्वस्थानों में संपन्न होने वाली रागालप्ति और विविध आलप्ति से प्रतिग्रहणिका, भंजनी आदि भेदों वाली रूपकालप्ति अभिप्रेत है। इनके लक्षण प्रकीर्णकाध्याय (वही, अ० ३) में उपलब्ध हैं। श्लो० १२८१ क में 'निःसारण' पाठ दोनों संस्करणों में है लेकिन ताल का नाम निःसारु है, निःसार नहीं। सिंह० की व्याख्या में भी **निःसारुणा** है। इसलिये ऊपर मूल में यही पाठ रखा है।

आविष्कुर्वत्सव्यवामपुरोङ्गाण्यथ नृत्यतः।
गजरोपशमेनैव ततः सर्वाङ्गनर्तनम्॥ १२८२॥

अड्डुतालं निःसारुं चैकतालीं श्रितया ततः।
रिगोण्या तालनियमरहिताभ्यामतः परः॥ १२८३॥

अवत्सकविताभ्यां च क्रमान्नर्तनमाचरेत्।

१२८२-१२८४ ख. (अ०) **अथ** अब **सव्यवामपुरः अङ्गाणि** दाहिने, बायें और सामने के अंग **आविष्कुर्वत्** आविष्कृत करते हुए **नृत्यतः** नृत्य करते हुए **गजर-उपशमेन एव** गजर और उपशम के साथ ही **सर्वाङ्गनर्तनं** सर्वांग नर्तन (करे)। **ततः** तब **अड्डुतालं निःसारुम् एकतालीं च श्रितया** अड्डुताल, निःसारु और एकताली (तालों) के आधार पर, **ततः** तब **रिगोण्या तालनियमरहिताभ्यां** रिगोणी से और ताल के नियम के बिना, **अतः परः** फिर **अवत्सकविताभ्यां च क्रमात्** अवत्सक और कवित के क्रम से **नर्तनम् आचरेत्** नर्तन करे।

(सर०) **सव्यवामपुरोङ्गाणि** का, कल्लि० के अनुसार, आशय यह है—(शरीर के) दाहिने भाग से, बायें भाग से और सामने के भाग से प्रवर्तित होने वाले अंग।

नानाविधं पुनर्नृत्येद्रिगोण्योट्टवणात्मना॥ १२८४॥

निवारितेषु वाद्येषु दत्ते स्थानेऽथ वांशिकैः।
सह गायति संयुक्तैस्तैः सार्धमथ गौण्डली॥ १२८५॥

उच्चार्य स्थायिनं कुर्याद्रागालप्तिं चतुर्विधाम्।
अन्या वा गायनी मुख्या विविधालप्तिमाचरेत्॥ १२८६॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१२८४ ग-१२८६. (अ०) **पुनः** फिर **उद्दवण-आत्मना रिगोण्या** उद्दवण स्वरूप वाली रिगोणी से **नानाविधं नृत्येत्** विविध प्रकार से नृत्य करे। **वाद्येषु निवारितेषु** वाद्यों के रोके जाने पर (अर्थात् रोक कर) **वांशिकैः स्थाने दत्ते** वांशिकों के द्वारा स्थान (आधार स्वर अथवा मन्द्रादि कोई एक स्थान) देने पर **अथ** अब **गौण्डली** गौण्डली (नर्तकी) **तैः सह संयुक्तैः** उनके साथ मिल कर **गायति** गाती है। **स्थायिनम् उच्चार्य** स्थायी स्वर लगा कर **चतुर्विधां रागालप्तिं कुर्यात्** चार प्रकार की रागलप्ति करे। **अन्या वा मुख्या गायनी** अथवा दूसरी मुख्य गायिका **विविध-आलप्तिम् आचरेत्** विविध आलप्ति करे।

(सर०) **स्थाने दत्ते** में स्थान का अर्थ कल्लि० ने मन्द्रादि में से कोई एक स्थान देना किया है। लेकिन स्थान का अर्थ आधार स्वर भी हो सकता है क्योंकि मन्द्रादि स्थान का प्रयोजन भी गायिका की दृष्टि से आधार स्वर की प्राप्ति है।

मण्ठकात्प्रतिमण्ठाच्च तालेनान्येन संयुतम्।
सकलं ध्रुवकं गीत्वा जक्कया वाद्यमानया॥ १२८७॥

श्लक्ष्णं ध्रुवाख्यखण्डेन गीयमानेन संततम्।
गायनैर्मेलकोपेतैर्मनोव्यक्तिमनोहरम्॥ १२८८॥

नृत्तं किंचिद्विधायाथ शान्तयोर्गीतवाद्ययोः।
विधाय विविधस्थायान्मुहुर्ध्रुवपदं व्रजेत्॥ १२८९॥

१२८७-१२८९. (अ०) **मण्ठकात् प्रतिमण्ठात् च** मण्ठ और प्रतिमण्ठ से **अन्येन तालेन संयुतं** किसी अन्य ताल से (अर्थात् मण्ठ, प्रतिमण्ठ को छोड़ कर किसी दूसरे ताल से) युक्त **सकलं ध्रुवकं गीत्वा** पूरा ध्रुवक गाकर, **जक्कया वाद्यमानया** जक्का(वाद्यप्रबन्ध) बजाये जाते हुए, **गायनैः** गायकों के द्वारा **मेलक-उपेतैः** मेलापकयुक्त **संततं श्लक्ष्णं** लगातार मृदु (मृदुता से) **गीयमानेन ध्रुव-आख्यखण्डेन** गाये जाते हुए ध्रुव नामक खण्ड के द्वारा **मनोव्यक्तिमनोहरं नृत्तं** मन को अभिव्यक्त करने वाला मनोहर नृत्त **किंचित् विधाय** थोड़ा सा योजित करके **अथ** फिर **गीतवाद्ययोः शान्तयोः** गीत और वाद्य शान्त होने पर (रोक कर) **विविध स्यायान् विधाय** विविध स्थायों को योजित करके **मुहुः** बार-बार **ध्रुवपदं व्रजेत्** ध्रुवपद को जाय (अर्थात् ध्रुवपद का नर्तन करे)।

(सर०) **मनोव्यक्तिमनोहरं** में मन पर कल्लि० ने कहा कि मन पहले कहा गया लास्यांग है।

कांश्चिद्गीतस्य तालेन गीततालाक्षरैः परान्।
नातिदीर्घान्नातिनीचान्माधुर्यप्रौढिपेशलान्॥ १२९०॥

रक्तियुक्तान्विना तालं यदि वादौ विधाय तान्।
सुतालकलितप्रान्तान् ध्रुवखण्डे कलासयेत्॥ १२९१॥

कलासे वाद्यघातं च कुर्युः साम्येन वादकाः।
कलासेषु भवेत्पात्रं लीनं चित्रार्पितं यथा॥ १२९२॥

एवं कुर्वत्प्रक्रियायां कृतायां पूर्ववत्पुनः।
नृत्तं समाचरेत्पात्रं गीयमाने ध्रुवांशके॥ १२९३॥

१२९०-१२९३. (अ०) **कांश्चित् गीतस्य तालेन** किन्हीं को (स्थाय) गीत के ताल से **परान्** (और) दूसरों को **गीतताल-अक्षरैः** गीत के ताल और अक्षरों से **न अति दीर्घान् न अति नीचान्** न बहुत लंबे, न बहुत छोटे, **माधुर्यप्रौढिपेशलान्** माधुर्य और प्रौढ़ता से मनोहर (और) **रक्तियुक्तान्** रक्ति से युक्त (योजित करें)। **यदि वा** अथवा **आदौ** शुरू में **तालं विना**

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विधाय ताल के बिना योजित करके तान् उन (स्थायों) को सुतालकलित प्रान्तान् शोभन तालों से युक्त अन्तिम भाग को ध्रुवखण्डे ध्रुवखंड में कलासयेत् (नर्तन का) समापन करें। कलासे कलास (समापन) के समय वादकाः वादक साम्येन एक साथ वाद्यघातं कुर्युः वाद्य पर आघात करें। कलासेषु कलासों में पात्रं नर्तकी चित्र-अर्पितं यथा चित्रलिखित की तरह लीनं भवेत् निश्चल हो जाय। एवं कुर्वत् ऐसा करते हुए पूर्ववत् पुनः प्रक्रियायां कृतायां पूर्ववत् फिर से प्रक्रिया करते हुए ध्रुव-अंशके गीयमाने ध्रुव के अंश (ध्रुवखंड) के गाये जाते हुए पात्रं नृत्तं समाचरेत् पात्र नृत्त करे।

(सर०) कल्लि० के अनुसार 'कलास' का अर्थ समापन है।

आभोगेनाथ नृत्येच्च वाद्यमानेन वादकैः।
गौण्डल्योजोन्विता सा स्यात्त्यागे संनिहिते सति॥ १२९४॥

नानाविधप्रौढचारीचालकं नृत्तमाचरेत्।
अत्र प्रहरणं वाद्यमाभोगेऽप्येतदिष्यते॥ १२९५॥

कृत्वाथ वाद्यसाम्येन त्यागं विश्रान्तिमाचरेत्।

१२९४-१२९६ ख. (अ०) अथ अब वादकैः वादकों के द्वारा वाद्यमानेन आभोगेन च बजाये जाते हुए आभोग से नृत्येत् नृत्त करे। त्यागे संनिहिते सति समाप्ति पास होने पर सा गौण्डली वह गौण्डली ओजोन्विता स्यात् ओज से युक्त हो (कर) नानाविधप्रौढचारीचालकं नृत्तम् समाचरेत् अनेक प्रकार की प्रौढ़ चारी और चालकयुक्त नृत्त योजित करे। अत्र इसमें एतत् प्रहरणं वाद्यं यह प्रहरण वाद्य आभोगे अपि इष्यते आभोग में भी माना गया है। अथ अब वाद्यसाम्येन त्यागं कृत्वा वाद्य के साम्य से (नृत्य का) समापन करके विश्रान्तिम् आचरेत् विश्रान्ति करे।

(सर०) आभोगेऽपि में अपि शब्द से ध्रुवखंड के अन्त में भी प्रहरण वाद्य का प्रयोग प्रकट होता है, यह कल्लि० ने स्पष्ट किया।

कृत्वा नृत्तं ध्रुवेणैव ध्रुववन्मण्ठकादिभिः॥ १२९६॥

क्रमान्नृत्येद्विशेषस्तु तेषामेषोऽभिधीयते।
मण्ठादेर्ध्रुवखण्डेन केवलं नर्तनं भवेत्॥ १२९७॥

मण्ठे तु मण्ठतालेन प्रारम्भे नर्तनं मतम्।
ततः स्यादेकताल्यैव मण्ठनृत्तं क्रमात्क्रमात्॥ १२९८॥

नर्तनं प्रतिमण्ठादौ स्वतालेनैव कीर्तितम्।
एषु सालगगीतेषु नृत्तं द्रुतलयाश्रयम्॥ १२९९॥

विलम्बितो लयस्तूक्तस्ताण्डवे पण्डितैः सदा।
रूपकैरेकताल्यन्तैरेवं सालगसूडगैः॥ १३००॥

नर्तित्वा क्रियते त्यागो यत्रासौ गौण्डलीविधिः।

इति गौण्डलीविधिः

१२९६ ग-१३०१ ख. (अ०) ध्रुवेण एव ध्रुव से ही नृत्तं कृत्वा नृत्त करके ध्रुववत् ध्रुव की तरह ही मण्ठक-आदिभिः क्रमात् मण्ठ आदि से क्रम से नृत्येत् नृत्त करे। तेषां तु एषः विशेषः लेकिन उनका यह विशेष (अन्तर) अभिधीयते कहते

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हैं (कहा जा रहा है।) **मण्ठ-आदेः नर्तनं** मण्ठ आदि का नर्तन **केवलं ध्रुवखण्डेन भवेत्** केवल ध्रुवखण्ड से होता है। **मण्ठे तु** मण्ठ में तो **प्रारम्भे** शुरू में **नर्तनं** नर्तन **मण्ठतालेन मतं** मण्ठताल से माना गया है। **ततः** उसके बाद **क्रमात्** क्रमात् क्रम क्रम से **एकताल्या एव** एकताली से ही **मण्ठनृत्तं स्यात्** मण्ठनृत्त होता है। **प्रतिमण्ठ-आदौ** प्रतिमण्ठ आदि में **नर्तनं** नर्तन **स्वतालेन एव कीर्तितम्** अपने-अपने ताल से ही कहा गया है। **एषु सालगगीतेषु** इन सालग गीतों में **नृत्तं** नृत्त **द्रुतलय-आश्रितं** द्रुत लय के आश्रित (होता है)। **विलम्बितः लयः तु** विलंबित लय तो **पण्डितैः** पंडितों के द्वारा **सदा ताण्डवे उक्तः** सदा ताण्डव में कही गई है। **यत्र** जिसमें **एवम्** इस रीति से **एकताली-अन्तैः** एकताली (ताल) से अन्त होने वाले **सालगसूडगैः रूपकैः** सालगसूड रूपकों से **नर्तित्वा** नर्तन करके **त्यागः क्रियते** समाप्ति की जाती है **असौ** यह (वह) **गौण्डलीविधिः** गौण्डलीविधि (है)।

(सर०) **विशेषस्तु** की व्याख्या करते हुए कल्लि० ने कहा कि मण्ठ आदि में ध्रुवखण्ड की तरह स्थाय प्रयोग नहीं करना चाहिये और यह निषेध वहीं है जहाँ ध्रुव से शुरू करके नर्तन किया जाता है। जब मण्ठ आदि में से किसी एक ताल से या मण्ठादि एक-एक की प्रधानता से नर्तन होता है वहाँ स्थायों का प्रयोग करना ही चाहिये यह संप्रदाय है। 'सालग गीतों में नृत्त द्रुतलय के आश्रित करना' इसलिये कहा गया है कि इनमें नृत्त लास्यप्रधान होने से मृदुता होती है, विलंबित लय होने पर अत्यन्त मृदुता आ जाने से सामाजिकों को रुचिकर नहीं होता। ताण्डव में उद्धतता होती है, उसमें द्रुत लय होने पर अत्यन्त उद्धतता प्रतीत होने से पूर्वोक्त दोष उत्पन्न होता है। लेकिन लास्य नृत्त में द्रुत और ताण्डव में विलंबित लय होने से शोभा होती है। जैसे लोक में नीले वस्त्र में लगाये हुए मोती या शुभ्र (श्वेत) वस्त्र में लगाई इन्द्रनील मणि अत्यन्त शोभित होती है।

यह गौण्डली की विधि है।

(पेरणिलक्षणम्)

भस्मादिश्वेतलिप्ताङ्गो बिभ्रन्मुण्डं शिरः शिखाम्॥ १३०१॥

भ्राजद्घर्घरिकाजालजङ्घः शारीरपेशलः।
पञ्चाङ्गकुशलस्तालकलालयविचक्षणः॥ १३०२॥

सभाजनमनोहारी यो नृत्यति स पेरणी।

पेरणी का लक्षण

१३०१ ग-१३०३ ख. (अ०) **भस्म-आदिश्वेतलिप्त-अङ्गः** भस्म आदि श्वेत (पदार्थों से) आलेप किये हुए अंग, **शिखां बिभ्रन्** चोटी धारण किए हुए **मुण्डं शिरः** मुँडे हुए सिर, **भ्राजत्-घर्घरिकाजालजङ्घः** शोभावान् घुँघरुओं के जाल (धारण किये हुए घुटनों से नीचे) वाले पैरों, **शारीरपेशलः** मनोहर शारीर (कंठध्वनि), **पञ्च-अङ्गकुशलः** (पेरणी नृत्य के) पाँच अंगों में कुशल, **तालकलालयविचक्षणः** ताल, कला (और) लय में निष्णात (और) **सभाजनमनोहारी** सभाजनों के मन का हरण करने वाला **यः नृत्यति** जो (नर्तक) नाचता है **सः पेरणी** वह पेरणी (होता है)।

(सर०) पेरणी नृत्त का पात्र पुरुष नर्तक होता है और उसे पेरणी कहा जाता है यह लक्षण से स्पष्ट है। घर्घरिका घुँघरू घन वाद्य है जिसका लक्षण वाद्याध्याय में दिया गया है। कल्लि० ने व्याख्या में कहा कि एक ही घुँघरू से नाद व्यक्त नहीं होता इसलिये जाल कहा गया है। शारीरपेशलः में यह अन्वित है कि पेरणी नर्तक को अवश्य गाना चाहिये इसलिये मनोहर शारीर कहा है।

घर्घर आदि पाँच अंग अब कहे जा रहे हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

घर्घरो विषमं भावाश्रयश्च कविचारकः॥ १३०३॥

गीतं चेति समाचष्ट पञ्चाङ्गानि हरप्रियः।
तत्र घर्घरिकावाद्ये वहनिर्घर्घरो मतः॥ १३०४॥

१३०३ ग-१३०४. (अ०) हरप्रियः शिवप्रिय (शार्ङ्गदेव) ने घर्घरः विषमं भावाश्रयं च कविचारकः गीतं च घर्घर, विषम, भावाश्रय, कविचारक और गीत इति पञ्च-अङ्गानि समाचष्ट ये पाँच अंग कहे हैं। तत्र उनमें से घर्घरिकावाद्ये घर्घरिका वादन में वहनिः घर्घरः मतः वहनि घर्घर माना गया है।

(सर०) दोनों टीकाकारों ने बताया कि घर्घर में अभ्यासविशेष वहनि होता है।

(घर्घरलक्षणम्)

पडिवाटश्चापडपः सिरिपाटोऽलगादिमः।
पाटः सिरिहिराख्यश्च ततः खलुहुलाह्वयः॥ १३०५॥

इति घर्घरभेदाः स्युः षडमी तद्विदां मताः।

घर्घर का लक्षण

१३०५-१३०६ ख. (अ०) पडिवाटः च अपडपः पडिवाट और अपडप, सिरिपाटः सिरिपाट, अलग-आदिमः पाटः अलगपाट, सिरिहिर-आख्यः च सिरिहिर नामक, ततः उसके बाद खलुहुल-आह्वयः खलुहुल नाम वाला इति अमी यों ये षट् घर्घरभेदाः छ घर्घर भेद तत्-विदां मताः स्युः उसके वेत्ताओं के माने हुए हैं।

(सर०) कल्लि० ने कहा कि पडिवाट आदि नाम देशी प्रसिद्ध होने से रूढ़ समझने चाहियें।

(पडिवाटः—१)

भूमिलग्नाग्रयोरङ्घ्र्योः पर्यायाद्भूमिकुट्टनम्॥ १३०६॥

पार्ष्णिद्वयेन पार्ष्ण्या वैकया स्यात्पडिवाटकः।

इति पडिवाटः (१)

पडिवाट—१

१३०६ ग-१३०७ ख. (अ०) भूमिलग्न-अग्रयोः अङ्घ्र्योः भूमि से लगे हुए सिरों (नोकों) वाले पैरों की पर्यायात् क्रम से पार्ष्णिद्वयेन पार्ष्ण्या वा एकेन दोनों एडियों से या एक एड़ी से भूमिकुट्टनं भूमि का कुट्टन करना पडिवाटकः स्यात् पडिवाट होता है।

यह पडिवाट है। (१)

(अपडपः—२)

भवेच्चापडपः पादतलेनावनिकुट्टनम्॥ १३०७॥

इत्यपडपः (२)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अपडप—२

१३०७ ग-घ. (अ०) पादतलेन अवनिकुट्टनं पैरों के तलुओं से भूमि का कुट्टन अपडपः च भवेत् अपडप होता है।

यह अपडप है। (२)

(सिरिपटः—३)

तलेन भूमिलग्नेन पादस्य सरणं पुरः।
तथापसरणं पश्चान्मुहुः सिरिपटो भवेत्॥ १३०८॥

इति सिरिपटः (३)

सिरिपट—३

१३०८. (अ०) भूमिलग्नेन तलेन भूमि से लगे हुए तलुए से पादस्य पैर का मुहुः बार-बार पुरः सरणं सामने सरकना तथा उसी तरह पश्चात् अपसरणं पीछे सरकना सिरिपटः भवेत् सिरिपट होता है।

यह सिरिपट है। (३)

(अलगपाटः—४)

द्वयोश्चरणयोर्व्योम्नि पर्यायेण प्रकम्पनम्।
यत्कृतं कोमलं सोऽत्रालगपाटः प्रकीर्तितः॥ १३०९॥

इत्यलगपाटः (४)

अलगपाट—४

१३०९. (अ०) द्वयोः चरणयोः दोनों पैरों का पर्यायेण क्रम से व्योम्नि आकाश में (अर्थात् भूमि से ऊपर) यत् कोमलं प्रकम्पनं जो कोमल कंपन (अर्थात् हिलना) कृतं किया गया हो सः वह अत्र इसमें (घर्घर भेदों में) अलगपाटः प्रकीर्तितः अलगपाट कहा गया है।

यह अलगपाट है। (४)

(सिरिहिरः—५)

सत्येकस्मिन्समे पादेऽङ्घ्रिः पुरः प्रेरितो भवेत्।
यस्तस्य जङ्घया कम्पः प्रोक्तः सिरिहिरो बुधैः॥ १३१०॥

यद्वा द्वयोः स्वभावेन तिष्ठतोः पादयोर्भुवि।
जङ्घयोः कम्पनं प्राहुर्धीराः सिरिहिरं तदा॥ १३११॥

इति सिरिहिरः (५)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सिरिहिर—५

१३१०-१३११. (अ०) **एकस्मिन् पादे समे सति** एक पैर सम होने पर **यः अङ्घ्रिः** जो (दूसरा) पैर **पुरः प्रेरितः भवेत्** सामने प्रेरित होता है **तस्य जङ्घया** उसकी टाँग से (किया हुआ) **कम्पः** कंपन **बुधैः** विद्वानों के द्वारा **सिरिहिरः प्रोक्तः** सिरिहिर कहा गया है। **यत् वा** अथवा **द्वयोः पादयोः** दोनों पैरों की **भुवि** भूमि पर **स्वभावेन तिष्ठतः** स्वाभाविक रूप से रखी हुई **जङ्घयोः कम्पनं** टाँगों का कंपन (हो) **तदा** तब **धीराः** विद्वान् **सिरिहिरं प्राहुः** सिरिहिर कहते हैं।

यह सिरिहिर है। (५)

(खलुहुलः—६)

भूलग्नाग्रस्य वामाङ्घ्रेः पाष्ण्यां यद्भूमिकुट्टनम्।
भूलग्नाग्रस्य चान्यस्य भ्रमः सव्यापसव्यतः॥ १३१२॥

योऽसौ खलुहुलः प्रोक्तो घर्घरो नृत्तकोविदैः॥
दिशानया परेऽप्यूह्या घर्घराः शोभयान्विताः॥ १३१३॥

सर्वे घर्घरभेदास्ते कार्यास्तालानुगामिनः।

इति खलुहुलः (६)

खलुहुल—६

१३१२-१३१४ ख. (अ०) **भूलग्न-अग्रस्य वाम-अङ्घ्रेः पाष्ण्यां** भूमि से लगी हुई नोक वाली बायें पैर की एड़ी से **यत् भूमिकुट्टनं** जो भूमि का कुट्टन **भूलग्न-अग्रस्य च अन्यस्य** और भूमि से लगी नोक वाले दूसरे (दाहिने पैर) का **यः** जो **सव्य-अपसव्यतः** दाहिनी और बाईं ओर **भ्रमः** घूमना **असौ** वह **नृत्तकोविदैः** नृत्याचार्यों के द्वारा **खलुहुलः घर्घरः प्रोक्तः** खलुहुल घर्घर कहा गया है। **अनया दिशा** इसी दिशा से (इसी तरह) **परे** दूसरे **शोभया अन्विताः घर्घराः अपि** शोभा से युक्त घर्घर भी **ऊह्याः** समझ लेने चाहियें। **ते सर्वे घर्घरभेदाः** वे सब घर्घर के भेद **ताल-अनुगामिनः कार्याः** ताल का अनुसरण करने वाले (योजित) करने चाहियें।

यह खलुहुल है। (६)

(सर०) पेरणी के जो पाँच अंग कहे गये उनमें से पहले अंग घर्घर का लक्षण अभी कहा गया। शेष चार का लक्षण अगली दो कारिकाओं में कहा जा रहा है।

अत्र चोत्प्लुतिपूर्वं स्यात्करणं विषमाभिधम्॥ १३१४॥

विकृतार्थानुकारस्तु बुधैर्भावाश्रयो मतः।
कविचारो भवेदत्रोत्तमनायकवर्णनम्॥ १३१५॥

अत्र स्यात्सालगं गीतं यदुक्तं गौण्डलीविधौ।

इति पेरणिलक्षणम्

१३१४ ग-१३१६ ख. (अ०) **अत्र च** यहाँ (अंगों में) **उत्प्लुतिपूर्वं** उत्प्लुतिपूर्वक (अर्थात् ऊँची उछाल के बाद किया जाने वाला) **विषम-अभिधं करणं स्यात्** विषम नाम वाला करण होता है। **विकृत-अर्थ-अनुकारः तु** विकृत अर्थ का अनुकरण

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तो बुधैः विद्वानों के द्वारा **भावाश्रयः मतः** भावाश्रय माना गया है। **उत्तमनायकवर्णनम्** उत्तम नायक का वर्णन **अत्र** यहाँ **कविचारः भवेत्** कविचार होता है। **गौण्डली-विधौ** गौण्डली विधि में **यत् सालगम् उक्तं** जो सालग कहा गया (वह) **अत्र** यहाँ **गीतं स्यात्** गीत (अंग) होता है।

पेरणी का लक्षण समाप्त

(पेरणीपद्धतिः)

अथ पेरणीपद्धतिः—

गौण्डलीविधिवच्चात्र रङ्गस्थाः सांप्रदायिकाः॥ १३१६॥

कुर्युर्गम्भीरमातोद्यध्वनिं धिधिधिधीति ते।
ततो विलम्बितप्राये रिगोण्युट्टवणाश्रये॥ १३१७॥

पादत्रये वाद्यमाने द्विर्द्विर्निःसारुतालतः।
विशेद्विकृतवाग्वेषभूषो रङ्गेऽट्टबोडकः॥ १३१८॥

तस्मिन्नृत्यति हास्यैकरसे विशति पेरणी।
रिगोण्युपशमेनैष प्रविष्टो नृत्तमाचरेत्॥ १३१९॥

पेरणी पद्धति

१३१६ ग-१३१९. (अ०) **अथ पेरणीपद्धतिः** अब पेरणी पद्धति—

गौण्डलीविधिवत् अत्र च गौण्डलीविधि की तरह यहाँ भी **रङ्गस्थाः ते सांप्रदायिकाः** रंगभूमि में स्थित वे सांप्रदायिक **धिधिधिधि इति** धिधिधिधि ऐसा **गम्भीरम् आतोद्यध्वनिं कुर्युः** वाद्यों का गंभीर नाद उत्पन्न करें। **ततः** तब **विलम्बित प्राये** विलंबितप्राय **रिगोणि-उट्टवण-आश्रये** रिगोणी और उट्टवण के आश्रय वाले **द्विः द्विः वाद्यमाने** दो-दो बार बजाये जाते हुए **पादत्रये** तीन पाद वाले **निःसारु तालतः** निःसारु ताल से **विकृतवाक्वेषभूषः** विकृत भाषा और वेशभूषा वाला **अट्टबोडकः** पूरे मुँडे सिर वाला (नर्तक) **रङ्गे विशेत्** रंगपीठ में प्रवेश करे। **तस्मिन् हास्य-एकरसे नृत्यति** (वह जब) एकमात्र हास्य रस में नृत्त कर रहा हो (तब) **पेरणी विशति** पेरणी प्रवेश करता है। **प्रविष्टः एषः** प्रविष्ट हुआ यह (पेरणी) **रिगोणि-उपशमेन** रिगोणी-उपशम से **नृत्तम् आचरेत्** नृत्त करे।

(सर०) कल्लि० ने कहा कि अट्टबोडक पूरे मुँडे सिर वाले व्यक्ति का वाचक देशी शब्द है।

प्रशान्ते वाद्यसंघाते ततस्तालधरैः समम्।
वाद्यमाने सुनिपुणं ताले गारुगिसंज्ञके॥ १३२०॥

यद्वा सरस्वतीकण्ठाभरणे वादकैस्तथा।
क्रियमाणे मर्दलादेर्मन्द्रं तालसमध्वनौ॥ १३२१॥

पेरणी घर्घरान्कुर्यान्नाना चापडपादिकान्।
ततः कूटनिबद्धेन यद्वा वर्णसरात्मना॥ १३२२॥

कवितेनैष विशमं नृत्येन्निःसारुतालतः।

१३२०-१३२३ ख. (अ०) **वाद्यसंघाते प्रशान्ते** वाद्य समूह के (अर्थात् वादन के) रुकने पर **ततः तालधरैः** तब तालधरों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के द्वारा गारुगिसंज्ञके यत् वा सरस्वती-कण्ठाभरणे ताले गारुगि नाम वाले या सरस्वतीकंठाभरण ताल में सुनिपुणं समं वाद्यमाने अत्यन्त निपुणता से एकसाथ बजाये जाते हुए तथा और वादकैः वादकों के द्वारा मर्दल-आदेः मर्दल आदि का मन्द्रं तालसमध्वनौ क्रियमाणे ताल के साथ मन्द्र नाद उत्पन्न किये जाते हुए (अर्थात् किया जा रहा हो तब) पेरणी पेरणी अपडप-आदिकान् नाना च घर्घरान् अपडप आदि अनेक घर्घरों को कुर्यात् करे। ततः उसके बाद कूटनिबद्धेन यत् वा कूटनिबद्ध या वर्णसर-आत्मना कवितेन वर्णसर स्वरूप वाले कवित से निःसारुतालतः निःसारु ताल से एषः यह (नर्तक) विषमं नृत्येत् विषम (अंग) का नृत्त करे।

ततः सालगसूडेन नृत्ते तत्र च दर्शयेत्॥ १३२३॥

रेखां च स्थापनां हृद्या वहनीर्गीतनर्तनम्।
विषमं च प्रहरणानुगमाभोगवादने॥ १३२४॥

कविचारांस्तथा भावाश्रयान्पेरणिपद्धतौ।

इति पेरणीपद्धतिः

१३२३ ग-१३२५ ख. (अ०) ततः उसके बाद पेरणिपद्धतौ पेरणी पद्धति में सालगसूडेन नृत्ते सालगसूड नृत्त में तत्र च उसमें फिर रेखां स्थापनां च रेखा और स्थापना, हृद्या वहनीः मनोहर वहनियाँ, गीतनर्तनं गीतनर्तन विषमं विषम (अंग), प्रहरण-अनुगम-आभोगवादने च प्रहरण का अनुसरण और आभोगवादन, कविचारान् कविचारों (अंगविशेष) को तथा और भावाश्रयान् भावाश्रयों (अंगों) को दर्शयेत् दिखाये।

पेरणी पद्धति समाप्त

(आचार्यः)

तौर्यत्रये लक्ष्यलक्ष्मवेद्याचार्यः प्रकीर्तितः॥ १३२५॥

वाग्मी सुरूपवेषोऽसौ सरसस्तुतिकोविदः।

सभासु परिहासज्ञो भवेद्वदनवाद्यवित्॥ १३२६॥

इत्याचार्यः

आचार्य

१३२५ ग-१३२६. (अ०) तौर्यत्रये तौर्यत्रय (गीत, वाद्य, नृत्त) के लक्ष्यलक्ष्मवेद्य-आचार्यः प्रकीर्तितः लक्ष्य और लक्षण का वेत्ता आचार्य कहा गया है। असौ यह वाग्मी वाक्पटु, सुरूपवेशः सुन्दर रूप और वेश वाला, सरसस्तुतिकोविदः सरस स्तुति में निष्णात, सभासु परिहासज्ञः सभाओं में विनोद को जानने वाला (और) वदनवाद्यवित् वदनवाद्य (अर्थात् मुखवाद्य) का वेत्ता भवेत् होता है।

(सर०) सिंह० ने वादनवाद्यवित् में प्रयुक्त 'वादन' का अर्थ 'मुखवाद्य' दिया है। इसके अनुसार वादन के स्थान पर 'वदन' होना अधिक संगत है। इसलिये ऊपर वदन ही रखा है।

यह आचार्य है।

(नट)

चतुर्धाभिनयाभिज्ञो नटो भाणादिभेदवित्।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इति नटः

१३२७ क-ख. (अ०) चतुर्धा अभिनय-अभिज्ञः चार प्रकार के अभिनय को जानने वाला (और) **भाण-आदिभेदवित्** भाण आदि (रूपक के) प्रकारों को जानने वाला **नटः** नट (होता है)।

(सर०) नाट्य के दस प्रकार हैं जो रूपक कहलाते हैं। नाटक, प्रकरण, समवकार, ईहामृग, डिम, व्यायोग, अंक, प्रहसन, भाण और वीथी—इन १० में भाण एक है। इसमें एक ही नट सारे पात्रों का अभिनय करता है।

यह नट है।

(नर्तकः)

नर्तकः सूरिभिः प्रोक्तो मार्गनृत्ते कृतश्रमः॥ १३२७॥

इति नर्तकः

नर्तक

१३२७ ग-घ. (अ०) मार्गनृत्ते कृतश्रमः मार्गनृत्त में श्रम (अभ्यास) किया हो (वह) **सूरिभिः** विद्वानों के द्वारा **नर्तकः प्रोक्तः** नर्तक कहा गया है।

(सर०) मार्गनृत्त यानी करण, अंगहार आदि स्वरूप वाला नृत्त, यह दोनों टीकाकारों ने कहा है।

यह नर्तक है।

(वैतालिकः)

सर्वभाषाविशेषज्ञो जनानां नर्मकर्मदः।
पटुः परापवादेषु स्मृतो वैतालिको बुधैः॥ १३२८॥

इति वैतालिकः

वैतालिक

१३२८. (अ०) सर्वभाषाविशेषज्ञः सब भाषाओं का विशेष ज्ञाता, **जनानां** लोगों को **नर्मकर्मदः** शृंगारमय विनोद देने वाला, **पर-अपवादेषु पटुः** दूसरों के दोष उजागर करने में पटु **बुधैः** विद्वानों के द्वारा **वैतालिकः स्मृतः** वैतालिक जाना गया है।

यह वैतालिक है।

(चारणः)

किङ्किणीवाद्यवेदी च वृत्तो विकटनर्तकैः।
मर्मज्ञः सर्वरागेषु चतुरश्चारणो मतः॥ १३२९॥

इति चारणः

चारण

१३२९. (अ०) किङ्किणीवाद्यवेदी किंकिणी के वादन का जानकार **विकटनर्तकैः वृत्तः च** और विकट नर्तकों द्वारा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शिक्षित (अथवा घिरा हुआ), **सर्वरागेषु मर्मज्ञः** सब रागों का मर्म जानने वाला (और) **चतुरः** चतुर **चारणः मतः** चारण माना गया है।

(सर०) किङ्किणी नाम से कोई वाद्य वाद्याध्याय में नहीं है। सामान्य रूप से करधनी या घुँघरूदार पायल या पैंजनी को किंकिणी कहा जाता है। लेकिन किङ्किणी का वादन कहा इसलिये संभवतः घर्घर (घुँघरू) अपेक्षित है।

यह चारण है।

(कोल्हाटिकः)

भारस्य भूयसो वोढा प्रौढो भ्रमरिकादिषु।
रज्जुसंचारचतुरश्छुरिकानर्तने कृती॥ १३३०॥

शस्त्रसंकटसंपातपटुः कोल्हाटिको मतः।

इति कोल्हाटिकलक्षणम्

कोल्हाटिक

१३३०-१३३१ ख. (अ०) **भूयसः भारस्य वोढा** बहुत भार वहन करने वाला, **भ्रमरिक-आदिषु प्रौढः** भ्रमरी आदि में प्रौढ, **रज्जुसंचारचतुरः** रस्सी पर चलने में चतुर, **छुरिकानर्तनेकृती** छुरी पर (अथवा छुरी चलाते-फिराते हुए) नर्तन में कुशल, **शस्त्रसंकटसंपातपटुः** शस्त्रों के कठिन प्रहार में पटु **कोल्हाटिकः मतः** कोल्हाटिक माना गया है।

यह कोल्हाटिक का लक्षण है।

(सभासदः)

मध्यस्थाः सावधानाश्च वाग्मिनो न्यायवेदिनः॥ १३३१॥

त्रुटितात्रुटिताभिज्ञा विनयानम्रकंधराः।
अगर्वा रसभावज्ञास्तौर्यत्रितयकोविदाः॥ १३३२॥

असद्वादनिषेद्धारश्चतुरा मत्सरच्छिदः।
अमन्दरसनिष्यन्दिहृदयाः स्युः सभासदः॥ १३३३॥

इति सभासदो लक्षणम्

सभासद

१३३१ ग-१३३३. (अ०) **मध्यस्थाः** तटस्थ/निष्पक्ष, **सावधानाः च** सावधान, **वाग्मिनः** वाक्पटु, **न्यायवेदिनः** न्यायवेत्ता, **त्रुटित-अत्रुटित-अभिज्ञाः** त्रुटित और अत्रुटित को जानने वाले, **विनय-आनम्रकंधराः** विनय से झुके कंधों वाले, **अगर्वाः** गर्वरहित, **रसभावज्ञाः** रस-भाव के ज्ञान वाले, **तौर्यत्रितयकोविदाः** तौर्यत्रितय में निष्णात, **असत्-वादनिषेद्धारः** अनुचित उक्ति का निषेध करने वाले, **चतुराः** चतुर, **मत्सरच्छिदः** मत्सर रहित या मत्सर को काटने वाले, **अमन्दरसनिष्यन्दिहृदयाः** प्रबल रसप्रवाह युक्त हृदय वाले **सभासदः स्युः** सभासद होते हैं।

यह सभासद का लक्षण है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सभापतिलक्षणम्)

श‍ृङ्गारी भूरिदो मान्यः पात्रापात्रविवेचकः।
श्रीमान्गुणलवस्यापि ग्राहकः कौतुके रतः॥ १३३४॥

वाग्मी निर्मत्सरो नर्मनिर्माणनिपुणः सुधीः।
गम्भीरभावः कुशलः सकलासु कलासु च॥ १३३५॥

समस्तशास्त्रविज्ञानसंपन्नः कीर्तिलोलुपः।
प्रियवाक्परचित्तज्ञो मेधावी धारणान्वितः॥ १३३६॥

तूर्यत्रयविशेषज्ञः पारितोषिकदानवित्।
सर्वोपकरणोपेतो देशीमार्गविभागवित्॥ १३३७॥

हीनाधिकविवेकज्ञः प्राज्ञो मध्यस्थधीरधीः।
स्वाधीनपरिवारश्च भावको रसनिर्भरः॥ १३३८॥

सत्यवादी कुलीनश्च प्रसन्नवदनोत्तरः।
स्थिरप्रेमा कृतज्ञश्च करुणावरुणालयः॥ १३३९॥

धर्मिष्ठः पापभीरुश्च विद्वद्बन्धुः सभापतिः।

इति सभापतिलक्षणम्

सभापति का लक्षण

१३३४-१३४० ख. (अ०) **श‍ृङ्गारी** श‍ृंगाररसयुक्त, **भूरिदः** बहुत देने वाला (अर्थात् उदार दाता), **मान्यः** माननीय, **पात्र-अपात्रविवेचकः** पात्र और अपात्र का विवेक करने वाला, **श्रीमान्** श्रीयुक्त, **गुणलवस्य-अपि ग्राहकः** गुण के लेश का भी ग्रहण करने वाला, **कौतुकेरतः** कौतुक करने में आनन्द लेने वाला, **वाग्मी** वाक्पटु, **निर्मत्सरः** मत्सर (ईर्ष्या) रहित, **नर्मनिर्माण-निपुणः** श‍ृंगार में विनोदमय स्थिति उत्पन्न करने में निपुण, **सुधीः** बुद्धिमान्, **गम्भीरभावः** गंभीर भाव वाला, **सकलासु कलासु च कुशलः** सब कलाओं में कुशल, **समस्तशास्त्रविज्ञानसंपन्नः** सब शास्त्रों के विशेष ज्ञान से संपन्न, **कीर्तिलोलुपः** यशप्रिय, **प्रियवाक्** प्रिय वाणी बोलने वाला, **परचित्तज्ञः** दूसरों के मन को जानने वाला, **मेधावी** मेधावी, **धारणा-अन्वितः** धारण शक्ति से युक्त, **तूर्यत्रयविशेषज्ञः** गीत, वाद्य, नृत्त इन तीनों का विशेष ज्ञान रखने वाला, **पारितोषिकदानवित्** पारितोषिक देने का बोध रखने वाला, **सर्व-उपकरण-उपेतः** सब उपकरणों से युक्त, **देशीमार्गविभागवित्** देशी और मार्ग के विभाग को जानने वाला, **हीन-अधिकविवेकज्ञः** कम और अधिक के विवेक का ज्ञाता, **प्राज्ञः** प्रज्ञा संपन्न, **मध्यस्थधीरधीः** मध्यस्थ (और) धीर बुद्धि वाला **स्वाधीनपरिवारः** च और स्वाधीन परिवार वाला, **भावकः** भाव पैदा करने वाला, **रसनिर्भरः** रस से परिपूर्ण, **सत्यवादी** सत्यवादी **कुलीनः** च और कुलीन, **प्रसन्नवदन-उत्तरः** प्रसन्न मुख से उत्तर देने वाला, **स्थिरप्रेमा** स्थिर प्रेम वाला **कृतज्ञः** च और कृतज्ञ, **करुणावरुण-आलयः** करुणा का सागर, **धर्मिष्ठः** धर्मनिष्ठ, **पापभीरुः** पापभीरु **विद्वत्-बन्धुः** च और विद्वानों का बन्धु (ऐसा) **सभापतिः** सभापति (होता है)।

(सर०) आनन्द० में १३३४ क-ख में 'मान्यो मान्यपात्रविवेचकः' है। पादटिप्पणी में 'मान्यामान्य' पाठभेद दिया है। आड्यार० में 'मान्यो गात्रपात्रविवेचकः' और सिंह० की टीका में भी 'गात्रपात्रविवेचक' है। लेकिन इनमें से किसी की भी अर्थसंगति नहीं है। सं० राज में **पात्रापात्रविवेचक** पाठ है जिसका अर्थ है पात्र-अपात्र का विवेचक। यही संगत है इसलिये

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इसी का ग्रहण ऊपर हुआ है। (सं० राज, प्रथम भाग, नृत्यरत्नकोश, उल्लास १, परीक्षण १, पृ० १०, राजस्थान ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, जयपुर, १९५७)

यह सभापति का लक्षण है।

(सभासंनिवेशः)

विचित्रा नृत्यशाला स्यात्पुष्पप्रकरशोभिता॥ १३४०॥

नानावितानसंपन्ना रत्नस्तम्भविभूषिता।
तस्यां सिंहासनं रम्यमध्यासीनः सभापतिः॥ १३४१॥

वामतोऽन्तःपुराणि स्युः प्रधाना दक्षिणेन तम्।
पृष्ठभागे प्रधानानां कोशः श्रीकरणाधिपः॥ १३४२॥

तत्संनिधौ तु विद्वांसो लोकवेदविशारदाः।
रसिकाः कवयोऽप्यत्र चतुराः सर्वरीतिषु॥ १३४३॥

मान्याञ्ज्योतिर्विदो वैद्यान्विद्वन्मध्ये निवेशयेत्।

सभा का संनिवेश

१३४० ग-१३४४ ख. (अ०) पुष्पप्रकरशोभिता फूलों के गुच्छों से शोभित, **नानावितानसंपन्ना** अनेक चँदोवों से युक्त, **रत्नस्तम्भविभूषिता** रत्न जड़े खंभों से शोभित **विचित्रा नृत्यशाला स्यात्** सुंदर नृत्यशाला हो, **तस्याम्** उसमें **सभापतिः** सभापति **सिंहासनं रम्यमध्य-आसीनः** रमणीय सिंहासन पर आसीन (बैठे)। **वामतः अन्तःपुराणि** बाईं ओर अन्तःपुर की स्त्रियाँ **स्युः** हों। **तं दक्षिणेन प्रधानाः** उसके दाहिनी ओर प्रधान (लोग), **प्रधानानां पृष्ठभागे** प्रधानों के पीछे के भाग में **कोशः श्रीकरणाधिपः** कोश के श्रीकरणाधिप (अधिकारी), **तत् संनिधौ तु** उनके पास में तो **लोकवेदविशारदाः विद्वांसः** लोक और वेद में निपुण विद्वान्, **रसिकाः** रसिक **सर्वरीतिषु चतुराः कवयः अपि** और सब रीतियों में चतुर कवि, **मान्यान् ज्योतिर्विदः** मान्य ज्योतिषशास्त्रियों (और) **वैद्यान्** वैद्यों को **विद्वन्-मध्ये निवेशयेत्** विद्वानों के बीच में आसन दें।

(सर०) १३४२ घ में आड्० का पाठ 'कोणः' है लेकिन यहाँ उसकी संगति नहीं है। आनन्द० का **कोशः** पाठ **श्रीकरणाधिपः** के साथ संगत है इसलिये उसी का ग्रहण ऊपर हुआ है।

स्याद्वामेतरभागे तु मन्त्रिणां परिमण्डलम्॥ १३४४॥

तत्रैव सैन्यमान्यानामन्येषामुपवेशनम्।
विलासिनो विलासिन्यः परितोऽन्तःपुराणि च॥ १३४५॥

पुरतोऽपि नृपस्य स्युः पृष्ठभागे तु भूपतेः।
चारुचामरधारिण्यो रूपयौवनसंभृताः॥ १३४६॥

स्वकङ्कणझणत्कारनिर्वाणजनमानसाः।
आसीना वामभागे स्युरग्रे वाग्गेयकारकाः॥ १३४७॥

१३४४ ग-१३४७. (अ०) वामे इतरभागे तु बायें से अन्य (दाहिने) भाग में तो **मन्त्रिणां परिमण्डलं** मंत्रिमंडल **स्यात्**

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रहे। **तत्र एव** वहीं **सैन्यमान्यानाम् अन्येषाम् उपवेशनं** सेना के मान्य (और) अन्यों को बिठायें। **अन्तःपुराणि च परितः** अन्तःपुर की स्त्रियों के चारों ओर **नृपस्य पुरतः अपि** और राजा के आगे भी **विलासिनः विलासिन्यः** विलासी पुरुष (और) विलासिनी स्त्रियाँ **स्युः** बैठें। **भूपतेः पृष्ठभागे तु** राजा के पीछे **रूपयौवनसंभृताः** रूप और यौवन से संपन्न **स्वकङ्कणझणत्कारनिर्वाणजनमानसाः** (और) अपनी कंगनों की झनकार से लोगों के मन को आनन्द देने वाली **चारुचमरधारिण्यः** सुंदर चँवर धारण की हुई (सेविकाएँ) **आसीना** आसीन हों। **वामभागे** बाईं ओर **अग्रे वाग्गेयकारकाः स्युः** आगे वाग्गेयकार होते हैं।

(सर०) वाग्गेयकार धातु (स्वर-ताल योजना) और मातु (शब्द रचना) का रचयिता होता है जिसका लक्षण सं०र०, खण्ड २, अ० ३ में दिया गया है।

कथका बन्दिनश्चात्र विद्यावन्तः प्रियंवदाः।
प्रशंसाकुशलाश्चान्ये चतुराः सर्वमातुषु॥ १३४८॥

ततः परं च परितः परिवारोपवेशनम्।
अधिष्ठितं सदः कार्यं दक्षैर्वेत्रधरैर्नरैः॥ १३४९॥

अङ्गरक्षास्तु तिष्ठेयुः सर्वतः शस्त्रपाणयः।
संनिवेश्य सभामेवं नेता संगीतमीक्षते॥ १३५०॥

इति सभासंनिवेशः

१३४८-१३५०. (अ०) **अत्र च** यहीं पर **कथकाः बन्दिनः** कथक, स्तुतिवाचक, **विद्यावन्तः प्रियंवदाः** विद्यावान्, प्रिय बोलने वाले **प्रशंसाकुशलाः च** और प्रशंसा करने में कुशल, **सर्वमातुषु चतुराः अन्ये** सब मातुओं (काव्य रचना) में चतुर अन्य लोग (हों), **ततः परं च** उनके बाद **परितः परिवार-उपवेशनं** चारों ओर अनुचरों की बैठक हो (अर्थात् बिठायें)। **सदः** सभास्थल **दक्षैः वेत्रधरैः नरैः** दक्ष लाठीधारी पुरुषों के द्वारा **अधिष्ठितं कार्यम्** अधिष्ठित किया जाय। **सर्वतः** चारों ओर **शस्त्रपाणयः अङ्गरक्षाः तु** हाथों में शस्त्र धारण किये हुए अंगरक्षक **तिष्ठेयुः** खड़े रहें। **सभाम् एवं संनिवेश्य** सभा का ऐसा संनिवेश करके **नेता** नेता **संगीतम् ईक्षते** संगीत देखता (आनन्द लेता) है।

(सर०) **चतुराः सर्वमातुषु** में 'मातु' शब्दरचना यानी काव्य के प्रकारों का सूचक है। **संगीतम्** अर्थात् गीत, वाद्य और नृत्त। इसमें नृत्त दृश्य है इसीलिये **ईक्षते** (देखता है) कहा है जिसका तात्पर्य आँख, कान और मन के पूरे योग से प्रस्तुति का आनन्द लेना है। 'संनिवेश' का अर्थ है सभा में विभिन्न लोगों के बैठने की व्यवस्था।

यह सभा का संनिवेश है।

(रसनिरूपणम्)

(नवरसलक्षणम्)

अथ नवरसलक्षणम्—

रसप्रधानमिच्छन्ति तौर्यत्रिकमिदं विदः।
तत्सामान्यविशेषाभ्यामधुनाभिदधे रसम्॥ १३५१॥

रसनिरूपण

नौ रसों के लक्षण

१३५१. (अ०) **अथ नवरसलक्षणम्** अब नौ रसों के लक्षण—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विदः विद्वान् **इदं तौर्यत्रिकम्** इस तौर्यत्रिक को **रसप्रधानम् इच्छन्ति** रसप्रधान (रूप में) चाहते हैं। **तत् रसम्** उस रस को **अधुना** अब **सामान्यविशेषाभ्याम् अभिदधे** सामान्य और विशेष रूप से कहता हूँ।

(सर०) कल्लि० ने **सामान्यविशेषाभ्यां** को स्पष्ट करते हुए कहा कि रस शब्द के अर्थ का स्वरूपनिरूपण सामान्य रूप से और शृंगार इत्यादि शब्दों से समझाये जाते हुए विभिन्न प्रकारों का स्वरूप निरूपण विशेष रूप से अभिप्रेत है।

विभावैरनुभावैश्च नटस्थैर्व्यभिचारिभिः।
जनितात्मपरामित्रमित्राद्याश्रयतां विना॥ १३५२॥

अवस्थादेशकालादिभेदसंभेदवर्जितम्।
केवलं रतिहासादिस्थायिरूपं प्रगृह्णती॥ १३५३॥

अतो निरन्तरायत्वात्परां विश्रान्तिमाश्रिता।
प्रतिभानुभवस्मृत्याद्यन्यबोधविलक्षणा॥ १३५४॥

ब्रह्मसंविद्विसदृशी नानारत्यादिसङ्गमात्।
सुखरूपा स्वसंवेद्या संविदास्वादनाभिधा॥ १३५५॥

रसः स्यादथवा स्थायी रसस्तद्गोचरीभवन्।

१३५२-१३५६ ख. (अ०) **नटस्थैः** नट में स्थित **विभावैः अनुभावैः व्यभिचारिभिः च** विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी (भावों) के द्वारा **जनिता** (सामाजिकों में) उत्पन्न हुई, **आत्मपर-मित्र-अमित्र-आदि-आश्रयतां विना** मैं और पर (दूसरा), मित्र और अमित्र आदि के आश्रय के बिना (किसी व्यक्ति सीमा से न जुड़ी हुई), **अवस्थादेशकाल-आदिभेदसंभेदवर्जितम्** अवस्था, देश, काल आदि भेदों के संपर्क से रहित, **केवलं** केवल **रतिहास-आदिस्थायिरूपं प्रगृह्णती** रति, हास आदि स्थायी (भावों) के स्वरूप को ही पकड़ती हुई, **अतः** इसलिये **निर्-अन्तरायत्वात् परां विश्रान्तिम् आश्रिता** विघ्नों से रहित होने के कारण उत्कृष्ट विश्रान्ति में पहुँची हुई, **प्रतिभा-अनुभवस्मृति-आदि-अन्यबोध-विलक्षणा** प्रतिभा, अनुभव, स्मृति आदि दूसरे (किसी प्रकार के) ज्ञानस्वरूप से विलक्षण (भिन्न) **नानारति-आदिसङ्गमात्** अनेक रति आदि (स्थायी भावों) के संबन्ध के कारण **ब्रह्मसंवित्-विसदृशी** ब्रह्मज्ञान से (भी) भिन्न, **सुखरूपा** सुख स्वरूप वाली **स्वसंवेद्या** स्वयं (अपने आप में, अपने आप से) अनुभूत होने वाली, **आस्वादन-अभिधा संवित्** आस्वाद नाम वाली अनुभूति ही **रसः स्यात्** 'रस' होती है। **अथवा** अथवा **तत् गोचरीभवन्** उस (अनुभूति) के (विषय-वस्तु के रूप में) गोचर होने वाला **स्थायी** स्थायी (भाव) ही **रसः** रस (होता है)।

(सर०) **विभावैरनुभावैश्च** से व्याख्या शुरू करते हुए कल्लि० ने कहा कि विभाव यानी लोक में स्थायी आदि भावों के उत्पत्ति के कारणरूप; अनुभाव यानी भावों के कार्य और व्यभिचारी अर्थात् अनेक विभावों से अनेक रसों में उत्पन्न होने वाले—यह लक्षण ग्रन्थकार आगे देने वाले हैं। **नटस्थैः** यानी नट में स्थित, जिसके द्वारा लौकिक रस का व्यावर्तन (निरास) किया है। **आत्मपरात्म** ··· इत्यादि में 'आत्म' का अर्थ 'मैं' ज्ञान का यह विषय, 'परात्म' यानी दूसरा और उसमें भी यह शत्रु यह मित्र और 'आदि' यानी उदासीन। इन सबके बिना होने वाली (इनसे न बँधी हुई) अनुभूति से तात्पर्य है।

अवस्था भेद यानी जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति, **देश भेद** अर्थात् गाँव, नगर आदि, **काल भेद** दिन, रात, **'आदि'** में कल्लि० ने ब्राह्मण आदि वर्णभेद, ग्रहस्थ आदि आश्रय भेद, पाचक, पाठक आदि के भेद का ग्रहण किया है। इन सबके बिना होने वाली केवल स्थायी भावों के स्वरूप वाली अनुभूति को 'रस' वस्तु बताया है।

प्रतिभा का अर्थ है सूक्ष्म विषयों का ग्रहण करने वाला ज्ञान और भविष्य में होने वाली वस्तु का ज्ञान, **अनुभव** यानी वर्तमान से संबन्धित ज्ञान, **स्मृति** यानी अतीत से संबन्धित ज्ञान। इनसे होने वाले ज्ञान से भिन्न।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कल्लि० ने **ब्रह्मसंविद्विसदृशी** पर कहा कि प्रतिभा आदि से भिन्नता ब्रह्मानुभूति में भी होती है, रस की उससे भी भिन्नता दिखाने की दृष्टि से रति आदि स्थायी भावों का संगम कहा। लेकिन सत्, चित्, आनन्दरूप अंशों से ब्रह्मसंवित् से सादृश्य भी दिखाया। **सुखरूपा** के द्वारा आनन्दस्वरूप, **स्वसंवेद्या** के द्वारा चैतन्यस्वरूप और **आस्वादनाभिधा** के द्वारा सरूपता (सद्रूपता सत् स्वरूप) दिखाया है। ऐसी संवित् 'रस' है।

अथवा इत्यादि उस मत को ध्यान में रख कर ग्रन्थकार ने कहा है जिसके अनुसार स्थायी भाव को रस माना जाता है।

दध्यादिव्यञ्जनैश्चैव हरिद्रादिभिरौषधैः ॥ १३५६ ॥

मधुरादिरसोपेतैर्यद्वद् द्रव्यैर्गुडादिभिः।
युक्तैः पाकविशेषेण षाडवाख्यापरो रसः ॥ १३५७ ॥

उत्पाद्यते विभावाद्यैः प्रयोगेण तथा रसः।

१३५६ ग–१३५८ ख. (सर०) **दधि–आदिव्यञ्जनैः** दही इत्यादि व्यंजनों से **हरिद्रा–आदिभिः औषधैः** हल्दी आदि वनस्पतियों से, **मधुर–आदिरस–उपेतैः** मधुर आदि रसों से युक्त (और) **गुड–आदिभिः द्रव्यैः युक्तैः** गुड़ आदि वस्तुओं से युक्त **पाकविशेषेण** विशेष पाक (आग पर पकाने से अन्त में सीझने और परिपक्व होने की विशेष स्थिति) के द्वारा **यत्–वत्** जैसे **षाडव–आख्य** षाडव नाम वाला **अपरः रसः उत्पाद्यते** (उन सबसे) अलग रस उत्पन्न हो जाता है (होता है) **तथा** उसी तरह **विभाव–आद्यैः प्रयोगेण** विभाव आदि के प्रयोग से (विभिन्न भावों से अलग कुछ अनोखा) **रसः** रस (उत्पन्न होता है)।

(सर०) कारिका १३५२–५३ में ग्रन्थकार ने कहा कि नट में स्थित विभावादि से उत्पन्न स्व–पर, मित्र–अमित्र के आश्रय के बिना और देश, काल आदि के भेद से रहित केवल रति, हास आदि स्थायी भावों के स्वरूप को धारण करने वाली जो उत्कृष्ट, विलक्षण और आस्वादन नामक सुखरूपा अनुभूति (संवित्) होती है वह रस है। यहाँ अत्यन्त संक्षेप में ग्रन्थकार ने ना०शा० में कहे गये रस के स्वरूप को रखा है। संगीत और काव्यशास्त्र के प्रायः सभी आचार्यों की रसचर्चा का आधार ना०शा० के छठे अध्याय का 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' सूत्र, उसके बाद दिये गये भोज्यपदार्थ से प्राप्त होने वाले रस से संबन्धित दृष्टान्त में आये 'आस्वाद्यत्व', 'सुमनसः पुरुषः' और इस पूरे अंश पर अभि० टीका रहे हैं।

भरत ने उदाहरण दिया कि जैसे गुड़ आदि द्रव्यों, व्यंजनों और औषधियों के संयोग से छ प्रकार के रस (खट्टा, मीठा, नमकीन, तीता, कषाय अर्थात् कसैला और कड़वा) से भिन्न स्वाद उत्पन्न होता है उसी तरह विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी आदि विभिन्न भावों के संयोग से स्थायी भाव रस की स्थिति को प्राप्त हो जाता है। जैसे नाना व्यंजन आदि से संस्कार किया हुआ अन्न खाकर 'सुमनस्' (अच्छे मन वाला) व्यक्ति हर्षित होता है उसी तरह नाना भाव और अभिनय प्रकारों से व्यंजित स्थायी भावों का आस्वादन करते हुए सुमनस् (स्वच्छ चित्त वाला) प्रेक्षक हर्ष प्राप्त करता है।

अभिनवगुप्त ने ना०शा० के रससूत्र और दृष्टान्त पर लम्बी व्याख्या में रसास्वादन की पूरी प्रक्रिया को स्पष्ट किया है। इसमें रससूत्र पर शंकुक, भट्टलोल्लट और भट्टनायक के मतों की और उनकी व्याख्याओं का उल्लेख करते हुए अपने मत की स्थापना की है। इन व्याख्याकारों के ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं और अभि० से ही इनका पता चलता है।

अभिनव ने रसास्वादन की स्थिति को अपूर्व कहा है। उसने यह भी कहा कि लौकिक अनुभव से रसानुभव में यह विलक्षणता है कि यहाँ दुःखात्मक भाव भी सुखात्मक हो जाते हैं—'सामाजिकानां हर्षैकफलं नाटयं न शोकादिफलं' अर्थात् सामाजिकों (प्रेक्षकों) के लिये नाट्य केवल हर्षदायक होता है, दुःख फल देने वाला नहीं। (ना०शा०, अ० ६, पृ० २८९)

सं०र० के प्रस्तुत श्लोक में जो दृष्टान्त दिया है उसमें, कल्लि० ने कहा कि, विभाव दही आदि व्यंजनस्थानीय है, संचारी इमली, हल्दी आदि औषधिस्थानीय, अनुभाव गुड़ आदि द्रव्यस्थानीय और पाकविशेषस्थानीय एक अन्य उत्कृष्ट अनुभूति है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आशय यह है कि पाक में जो स्थान व्यंजन, औषधि, द्रव्य का होता है वही स्थान रसानुभूति में विभाव, संचारी, अनुभाव का होता है।

(रसानामुद्देशः)

श्रृङ्गारहास्यौ करुणो रौद्रो वीरो भयानकः॥ १३५८॥

बीभत्सश्चाद्भुतः शान्तो नवधेति रसो मतः।
शान्तस्य शमसाध्यत्वान्नटे च तदसंभवात्॥ १३५९॥

अष्टावेव रसा नाट्येष्विति केचिदचूचुदन्।

रसों का उद्देश

१३५८ ग-१३६० ख. (अ०) शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त इति नवधा रसः मतः यों नौ प्रकार का रस माना गया है। शान्तस्य शमसाध्यत्वात् शान्त का शम से साध्यत्व होने से नटे च और नट में तत् असंभवात् वह (शम) संभव न होने से नाट्येषु नाट्यों में अष्टौ एव रसाः आठ ही रस (होते हैं) इति ऐसा केचित् किन्हीं (आचार्यों) ने अचूचुदन् युक्ति, तर्कसहित निश्चय किया है।

तदचोद्यं यतः किंचिन्न रसं स्वदते नटः॥ १३६०॥

सामाजिकास्तु लिहते रसान् पात्रं नटो मतः।
ते शुद्धहृदयाः शान्तं स्वविभावविभावितम्॥ १३६१॥

एकाग्रचेतसः सन्तोऽनुभवन्तीति युज्यते।

१३६० ग-१३६२ ख. (अ०) तत् अचोद्यं (किन्तु) वह स्वीकार करने योग्य नहीं है यतः क्योंकि नटः नट (स्वयं) किंचित् रसं न स्वदते किसी भी रस का आस्वादन नहीं करता (नहीं चखता)। सामाजिकाः तु सामाजिक ही रसान् लिहते रसों को चाटते (चखते) हैं। नटः पात्रं मतः नट (केवल) पात्र माना गया है। ते वे शुद्धहृदयाः निर्मल मन वाले सामाजिक एकाग्रचेतसः सन्तः एकाग्र चित्त वाले होकर स्वविभावविभावितं शान्तम् अपने विभाव से निष्पन्न हुए शान्त (रस) का अनुभवन्ति अनुभव करते हैं इति युज्यते यह उपपन्न होता है।

(सर०) ना०शा० में रसों के नाम गिनाते समय उनमें शान्त संमिलित नहीं है, नाट्य में आठ रस कहे गये हैं और उनके स्थायी भाव भी आठ ही दिये हैं। यथा—

श्रृङ्गारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः॥

एते ह्यष्टौ रसाः प्रोक्ता द्रुहिणेन महात्मना।

(ना०शा०, ६/१५-१६ क-ख)

यद्यपि बड़ौदा सं० की पादटिप्पणी में भिन्न पाण्डुलिपियों के आधार पर यह पाठ दिया है—'बीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव नाट्यरसाः'। अगली पंक्ति में भी 'अष्टौ' के स्थान पर 'नव' दिया है।

ना०शा० के आठ रससंबन्धी कथन के आधार पर आठ रस के समर्थन में अनेक तर्क दिये जाते रहे हैं और शान्त रस

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

को भरतसम्मत नहीं माना गया। ना०शा० के छठे अध्याय के अन्त में शान्त रससंबन्धी जो अंश दिया गया है उसे ये आचार्य प्रक्षिप्त मानते हैं। लेकिन अभिनव ने नाट्य में नवें शान्त रस का प्रबल समर्थन किया। उनकी स्थापना का मुख्य तर्क यह है कि मोक्ष भी एक पुरुषार्थ है और स्मृति, इतिहास आदि में भी माना गया है। जैसे कवि और नट के व्यापार यानी काव्यरचना और अभिनयरूप कर्मों से सामाजिकों को शृंगारादि आठ रसों की प्रतीति होती है, उसी तरह मोक्ष जैसे परम पुरुषार्थ के योग्य चित्तवृत्ति रसत्व को प्राप्त क्यों नहीं हो सकती? वह चित्तवृत्ति ही यहाँ स्थायी भाव होती है। स्थायी और संचारियों में इसीलिये निर्वेद को कहा गया है। अभिनव ने तत्त्वज्ञान से उत्पन्न निर्वेद को 'परम स्थायिशील' कहा है। (ना०शा०, अ० ६, पृ० ३३३, अभि०)

शार्ङ्गदेव नौ रसों के समर्थक हैं। अभिनवगुप्त के 'नट के व्यापार से सामाजिकों को रसप्रतीति'—इस कथन को ग्रन्थकार ने यहाँ इस प्रकार अधिक स्पष्ट किया है। रस की प्रतीति नट को नहीं सामाजिक को होती है। नट तो केवल पात्र है यानी जैसे लोक में चषक (प्याला) आदि पानक आदि रसों के लिये आधार (पात्र) है, आस्वाद लेने वाला नहीं उसी तरह निर्मल मन वाले और नाट्य देखने में ही जिनका मन अवहित (एकाग्र) है ऐसे सामाजिकों को शृंगारादि की तरह शान्त की भी नाट्य में अनुभूति होती ही है।

(स्थायिभावानामुद्देशः)

रतिहासशुचः क्रोधोत्साहौ भयजुगुप्सने॥ १३६२॥

विस्मयश्चाथ निर्वेदः स्थायिभावा नवेत्यमी।
जुगुप्सां स्थायिभावं तु शान्ते केचिद्बभाषिरे॥ १३६३॥

उत्साहमाहुरन्येऽन्ये शमं सर्वान्परे जगुः।

स्थायी भावों का उद्देश

१३६२ ग-१३६४ ख. (अ०) **रतिहासशुचः** रति, हास और शोक, **क्रोध-उत्साहौ** क्रोध और उत्साह, **भयजुगुप्सने** भय और जुगुप्सा **विस्मयः च** और विस्मय **अथ निर्वेदः** फिर निर्वेद **इति अमी नव स्थायिभावाः** यों ये नौ स्थायी भाव (होते हैं)। **केचित्** किन्हीं (आचार्यों) ने **शान्ते तु** शान्त में तो **जुगुप्सां स्थायिभावं** जुगुप्सा को स्थायी भाव **बभाषिरे** कहा है, **अन्ये** दूसरे **उत्साहम् आहुः** उत्साह को कहते हैं, **अन्ये शमम्** अन्य कोई शम (को शान्त में स्थायी भाव कहते हैं)। **परे** अन्यों ने **सर्वान् जगुः** (निर्वेद, जुगुप्सा, उत्साह और शम—ये) सब (स्थायी भाव शान्त रस में) कहे हैं।

(सर०) कल्लि० ने भिन्न मतों के आधार पर शान्त रस के विभिन्न स्थायी भावों का औचित्य दिखाया है।

उद्दिश्य स्थायिनः प्राप्ते समये व्यभिचारिणाम्॥ १३६४॥

अमङ्गलमपि ब्रूते पूर्वं निर्वेदमेव यत्।
मुनिर्मेनेऽस्य तन्नूनं स्थायिताव्यभिचारिते॥ १३६५॥

पूर्वापरान्वयो ह्यस्य मध्यस्थस्यानुषङ्गतः।
स्थायी स्याद्विषयेष्वेव तत्त्वज्ञानोद्भवो यदि॥ १३६६॥

इष्टानिष्टवियोगाप्तिकृतास्तु व्यभिचार्यसौ।

१३६४ ग-१३६७ ख. (अ०) **स्थायिनः उद्दिश्य** स्थायी (भावों) का उद्देश करने के बाद **व्यभिचारिणां** व्यभिचारियों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का **समये प्राप्ते** अवसर प्राप्त होने पर **यत्** जिस कारण से **अमङ्गलम् अपि** अमंगल (सूचक होते हुए) भी **मुनिः** (भरत) मुनि **निर्वेदम् एव** निर्वेद को ही **पूर्वं ब्रूते** पहले कहता है **तत्** उसी कारण से **अस्य** इस (निर्वेद) का (अर्थात् इसे) **नूनं** निःसंदेह **स्थायिताव्यभिचारिते मेने** स्थायी और व्यभिचारी स्वरूप माना है। **मध्यस्थस्य अस्य अनुषंगतः** (स्थायी और संचारी के) बीच में आए हुए इस (निर्वेद) का अनुषंग (साहचर्य) से **हि पूर्व-अपर-अन्वयः** पूर्व और पर (क्रम) का अन्वय (संबन्ध) होता है। **यदि** यदि **एषः** यह (निर्वेद) **विषयेषु तत्त्वज्ञान-उद्भवः** विषयों में (विषयों के बारे में) तत्त्वज्ञान से उत्पन्न हुआ (हो तो) **स्थायी स्यात्** स्थायी (भाव होता है)। **इष्ट-अनिष्टवियोग-आप्तिकृताः तु** इष्ट के वियोग या अनिष्ट के प्राप्त होने से उत्पन्न हुआ (हो) तो **असौ** यह **व्यभिचारी** व्यभिचारी (होता है)।

(सर०) ग्रन्थकार की शान्तरस से संबन्धित पूरी चर्चा में अभि० की स्पष्ट छाया है।

कल्लि० ने **मध्यस्थस्यानुषंगतः** की व्याख्या में देहलीप्रदीपन्याय से पूर्व-पर का संबन्ध कहा है। इस न्याय के अनुसार देहली पर रखा दीपक जैसे कमरे के भीतर और बाहर दोनों ओर को प्रकाशित करता है उसी तरह यहाँ स्थायी और संचारी के बीच में रखा निर्वेद भी दोनों ओर संबद्ध होता है।

(व्यभिचारीणामुद्देशः)

निर्वेदग्लानिशङ्कौग्र्यदैन्यासूयामदश्रमाः॥ १३६७॥

चिन्ता धृतिः स्मृतिर्व्रीडामोहालस्यानि चापलम्।
हर्षामर्षविषादाश्चापस्मारो जडता तथा॥ १३६८॥

वितर्कसुप्तमौत्सुक्यमवहित्थं तथा मतिः।
विबोधो व्याधिरुन्मादो गर्वावेगौ मृतिस्तथा॥ १३६९॥

त्रासो निद्रा त्रयस्त्रिंशदिति स्युर्व्यभिचारिणः।

व्यभिचारी भावों का उद्देश

१३६७ ग-१३७० ख. (अ०) निर्वेद, ग्लानि, शंका, उग्रता, दैन्य, असूया, मद, श्रम, चिन्ता, धृति, स्मृति, व्रीडा, मोह, आलस्य, चपलता, हर्ष, अमर्ष, विषाद, अपस्मार, जड़ता, वितर्क, सुप्ति, औत्सुक्य, अवहित्थ, मति, विबोध, व्याधि, उन्माद, गर्व, आवेग, **मृतिः** मरण, त्रास और निद्रा **इति** ये (कुल) **त्रयस्त्रिंशत्** तैंतीस **व्यभिचारिणः स्युः** व्यभिचारी (भाव) हैं।

(सात्त्विकानामुद्देशः)

स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभेदोऽथ वेपथुः॥ १३७०॥
वैवर्ण्यमश्रु प्रलयोऽष्टौ भावाः सात्त्विका इति।

सात्त्विक (भावों) का उद्देश

१३७० ग-१३७१ ख. (अ०) स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभेद, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय **इति अष्टौ** ये आठ **सात्त्विकाः भावाः** सात्त्विक भाव (हैं)।

(रसानां परस्परजन्यजनकभावम्)

विभावाद्यैरनुचितस्थानत्वाद्विकृतिं गतैः॥ १३७१॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शृङ्गारादिरसाभासाः कृता हास्यस्य हेतवः।
फलं बन्धुवधो रौद्रे विभावः करुणे च सः॥ १३७२॥

जगदुस्तद्विदो रौद्रमतः करुणकारणम्।
रौद्रं भयानके हेतुमत एव प्रचक्षते॥ १३७३॥

रसों का परस्पर जन्य-जनक भाव

१३७१ ग-१३७३. (अ०) **अनुचितस्थानत्वात्** अनुचित स्थान पर होने से (या) **विकृतिं गतैः विभावाद्यैः** विकृत हुए विभाव आदि के कारण **शृङ्गारादि-रसाभासाः** शृंगार आदि रसाभास (तथा) **हास्यस्य** हास्य (रस) के **हेतवः कृताः** कारण बन जाते हैं। **रौद्रे** रौद्र (रस) में **बन्धुवधः फलं** बन्धुजनों का वध फल (होता है) **सः च** और वही **करुणे विभावः** करुण (रस) में विभाव (होता है)। **अतः** इसलिए **तत् विदः** उसके (रस के) वेत्ताओं ने **रौद्रं** रौद्र को **करुणकारणं जगदुः** करुण का कारण कहा है। **एव** इसीलिये **रौद्रं** रौद्र को **भयानके** भयानक में (भी) **हेतुं प्रचक्षते** कारण कहते हैं।

(सर०) आड्यार और आनन्द० दोनों संस्करणों में 'अनुचितः स्थानत्वात्' पाठ है। अर्थसंगति की दृष्टि से उसके स्थान पर **अनुचितस्थानत्वात्** रखना आवश्यक है। इसलिये हमने वही रखा है।

शृङ्गाराद्विप्रलम्भाख्यात्करुणोत्पत्तिरिष्यते।
भयानकेऽद्भुते हेतुं वीरं धीरा बभाषिरे॥ १३७४॥

विदूषकस्य हासस्तु नायके हास्यकारणम्।

१३७४-१३७५ ख. (अ०) **विप्रलम्भात् शृङ्गारात्** विप्रलंभ शृंगार से **करुण-उत्पत्तिः** करुण की उत्पत्ति **इष्यते** मानी जाती है। **भयानके अद्भुते** भयानक (और) अद्भुत में **धीराः** विद्वानों ने **वीरं** वीर (रस) को **हेतुं बभाषिरे** कारण कहा है। **विदूषकस्य हासः तु** विदूषक का हँसना तो **नायके** नायक में **हास्यकारणं** हास्य का कारण (होता है)।

साम्याद्रुधिरमोहादिविभावाद्व्यभिचारिणाम्॥ १३७५॥
बीभत्से सति भीरूणामुत्पद्येत भयानकः।

अन्योन्यजन्यजनका भवन्त्येवमिमे रसाः॥ १३७६॥

१३७५ ग-१३७६. (अ०) **रुधिरमोह-आदिविभावात्** रक्त, मूर्छा आदि विभावों से (और) **व्यभिचारिणां साम्यात्** व्यभिचारी (भावों) के साम्य से **बीभत्से सति** बीभत्स में होने पर **भीरूणां** भीरूओं (डरपोकों) को **भयानकः उत्पद्येत** भयानक (रस) उत्पन्न होता है। **एवम् इमे रसाः** इस प्रकार ये रस **अन्योन्यजन्यजनकाः भवन्ति** एक दूसरे के जन्यजनक (से उत्पन्न होने और एक दूसरे को उत्पन्न करने वाले) होते हैं।

(रसानां वर्णाः देवताश्च)

श्यामः सितो धूसरश्च रक्तो गौरोऽसितस्तथा।
नीलः पीतस्ततः श्वेतो रसवर्णाः क्रमादिमे॥ १३७७॥

विष्णुमन्मथकीनाशरुद्रेन्द्राः कालसंज्ञकः।
महाकालः क्रमाद् ब्रह्मा बुधश्च रसदेवताः॥ १३७८॥

शृङ्गारे देवतामाहुरपरे मकरध्वजम्।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रसों के रंग और देवता

१३७७-१३७९ ख. (अ०) श्याम, सित (शुभ्र), धूसर, रक्त, गौर, असित, (काला), नीला, पीला और श्वेत **क्रमात्** क्रम से **इमे रसवर्णाः** ये रसों के रंग (होते हैं)।

विष्णु, मन्मथ (कामदेव), कीनाश (यम), रुद्र, इन्द्र, काल, महाकाल, ब्रह्मा और बुध **क्रमात्** क्रम से **रसदेवताः** रसों के देवता (हैं)। **अपरे** दूसरे (आचार्य) **शृङ्गारे** शृंगार में **मकरध्वजं देवताम् आहुः** कामदेव देवता कहते हैं।

(सर०) क्रम से शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्‌भुत और शान्त—इस क्रम से इनके रंग और देवता कहे हैं। सित का अर्थ श्वेत है। शान्त का भी श्वेत रंग कहा गया है। ना०शा० में करुण का कपोत वर्ण कहा है।

(रसादेः विशेषलक्षणानि)

वक्ष्ये विशेषलक्ष्माणि रसादेरधुना क्रमात्॥ १३७९॥

रस आदि के विशेष लक्षण

१३७९ ग-घ. (अ०) **अधुना** अब **क्रमात्** क्रम से **रस-आदेः** रस आदि के **विशेषलक्ष्माणि** विशेष लक्षण **वक्ष्ये** कहूँगा।

(सर०) **रसादेः** में **आदेः** से स्थायी, व्यभिचारी, सात्त्विक भावों का ग्रहण और इन सबका समुदाय कहने की इच्छा से **रसादेः** में एक वचन का प्रयोग किया गया, यह कल्लि० ने कहा।

(तत्र शृङ्गाररसः—१)

विभावैर्वरकान्ताद्यैः स्वकाव्ये कविगुम्फितैः।
साक्षात्कारमिवानीतैर्नटेन स्वप्रयोगतः॥ १३८०॥

नीतो रतिस्थायिभावः सदस्यरसनीयताम्।
नटेन कान्तदृष्ट्याद्यैरनुभावैः प्रदर्शितैः॥ १३८१॥

आवेशातिशयं नीतश्चित्रितो व्यभिचारिभिः।
हर्षचिन्तादिभिः प्रोक्तः शृङ्गारः सूरिशार्ङ्गिणा॥ १३८२॥

संभोगविप्रलम्भौ वावस्थे द्वे तस्य कीर्तिते।
कान्तासंयोगविरहौ लक्षणे च तयोः क्रमात्॥ १३८३॥

शृंगाररस—१

१३८०-१३८३. (अ०) **स्वकाव्ये** अपने काव्य में **कविगुम्फितैः** कवि द्वारा निबद्ध (विषयवस्तु) और **नटेन** नट के द्वारा **स्वप्रयोगतः** अपने प्रयोग (अर्थात् अभिनय) से **साक्षात्कारम् इव आनीतैः** (मानों) साक्षात्कार जैसी (स्थिति तक) लाये हुए **वरकान्ता-आद्यैः विभावैः** वर (प्रिय) और प्रिया आदि विभावों से **सदस्यरसनीयतां नीतः** सामाजिकों की आस्वाद्यता तक लाकर (अर्थात् आस्वाद्य बना कर) **नटेन प्रदर्शितः** नट के द्वारा प्रदर्शित **कान्तदृष्टि-आद्यैः अनुभावैः** कमनीय दृष्टि आदि अनुभावों से **आवेश-अतिशयं नीतः** अत्यन्त आवेशयुक्त बना कर **हर्षचिन्ता-आदिभिः** हर्ष, चिन्ता आदि **व्यभिचारिभिः चित्रितः** व्यभिचारी भावों से चित्रित हुआ **रतिस्थायिभावः** रति स्थायी भाव (जिसमें हो वह) **शार्ङ्गिसूरिणा** विद्वान् शार्ङ्गदेव के द्वारा **शृङ्गारः प्रोक्तः** शृंगार (रस) कहा गया है। **तस्य** उसकी **संभोग-विप्रलम्भौ वा** संभोग और विप्रलंभ **द्वे अवस्थे कीर्तिते**

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दो अवस्थाएँ कही गई हैं। **तयोः लक्षणे च** और उनके लक्षण **क्रमात्** क्रम से **कान्ता-संयोगविरहौ** कान्ता का संयोग और विरह (होते हैं)।

(रतिलक्षणम्)

स्त्रीपुंसयोरुत्तमयोर्यूनोः पूर्णसुखोदया।
प्रारम्भात्फलपर्यन्तव्यापिनी स्मरसंभृता॥ १३८४॥

संविदोरैक्यसंपत्त्या क्रीडात्र स्थायिनी रतिः।

रति का लक्षण

१३८४-१३८५ ख. (अ०) **उत्तमयोः यूनोः स्त्रीपुंसयोः** उत्तम और युवा स्त्री तथा पुरुष की **पूर्णसुख-उदया** पूर्ण सुख उत्पन्न करने वाली, **प्रारम्भात् फलपर्यन्तव्यापिनी** आरंभ से फल तक व्याप्त रहने वाली, **स्मरसंभृता** काम से भरी हुई, **संविदोः ऐक्यसंपत्त्याः** अनुभूति की एकरूपता से (उत्पन्न) **क्रीडा** केलि **रतिः** रति **अत्र** यहाँ (शृंगार में) **स्थायिनी** स्थायी (भाव होती है)।

(सर०) अत्र पर कल्लि० ने कहा कि अन्यत्र यानी देव आदि विषयक रति संचारी भाव होती है।

(विभावस्य सामान्यलक्षणम्)

लोके स्थाय्यादिभावानां दृष्टा ये जन्महेतवः॥ १३८५॥

उपनीताः कविवरैर्नटैः साक्षात्कृता इव।
रसान्प्रसुवन्ते ते स्युर्विभावास्तद्विभावनात्॥ १३८६॥

विभाव का सामान्य लक्षण

१३८५ ग-१३८६. (अ०) **लोके** लोक में **स्थायि-आदिभावानां** स्थायी आदि भावों के **ये** जो **जन्महेतवः दृष्टाः** उत्पत्ति के कारण देखे जाते हैं, **कविवरैः नटैः** श्रेष्ठ कवियों और नटों के द्वारा **साक्षात्कृता इव** साक्षात् किये हुए के समान **उपनीताः** पास ले जाए गए (अर्थात् प्रदर्शित किये गये और) **रसान् प्रसुवन्ते** रसों को निचोड़ते/चुआते (प्रवाहित) करते हैं **ते** वे **तत् विभावनात्** उन (रसों) को उत्पन्न करने वाले होने से **विभावाः स्युः** विभाव होते हैं।

(सर०) ग्रन्थकार ने यहाँ विभाव शब्द की व्युत्पत्ति दी है।

(शृङ्गारस्य विभावाः)

कान्तौ तीव्रस्मराक्रान्तौ दूतीसख्यादयो जनाः।
तत्तद्योग्योऽप्यलंकारः किरीटकटकादिकः॥ १३८७॥

समयोऽपि वसन्तादिर्विषयाश्चन्दनादयः।
गीतादयश्च देशोऽपि रम्यहर्म्यवनादिकः॥ १३८८॥

कान्तानुकरणं हंसयुग्मचित्रादिदर्शनम्।
जलकेलीत्येवमाद्याः श्रुता यद्वा विलोकिताः॥ १३८९॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विभावत्वेन विख्याता रसे शृङ्गारनामनि।

शृंगार के विभाव

१३८७-१३९० ख. (अ०) तीव्रस्मर-आक्रान्तौ कान्तौ तीव्र काम से भरे हुए कान्ता और कान्त, दूतीसखी-आदयः जनाः दूती, सखी आदि जन तत् तत् योग्यः अपि और उस-उसके योग्य किरीटकटक-आदयः मुकुट, कड़े आदि अलंकारः आभूषण, वसन्त-आदिः समयः अपि वसन्त आदि समय (ऋतु) भी, चन्दन-आदयः चन्दन आदि गीत-आदयः च विषयाः और गीत आदि विषय, रम्यहर्म्यवन-आदिकः देशः अपि सुन्दर प्रासाद, वन आदि स्थान भी, कान्त-अनुकरणं कान्त (अथवा कान्ता) का अनुकरण, हंसयुग्मचित्र-आदिदर्शनं हंसों के जोड़े (और) चित्र आदि का दर्शन, जलकेलि-इति एवम् आद्याः जलक्रीड़ा आदि ये श्रुताः यत् वा विलोकिताः सुनने या देखने पर शृङ्गारनामनि रसे शृंगार नाम वाले रस में विभावत्वेन विख्याताः विभाव के रूप में जाने गये हैं।

(सर०) दोनों टीकाकारों ने कहा कि कान्ता और कान्त आलंबन विभाव और रति आदि इतर उद्दीपन विभाव हैं।

विभाव के दो भेद हैं—आलम्बन और उद्दीपन। जो रस के आश्रय होते हैं वे आलंबन विभाव होते हैं और जो आलंबन में उत्पन्न हुए भाव को उद्दीप्त करते हैं, तीव्र बनाते हैं वे उद्दीपन।

(अनुभावानां सामान्यलक्षणम्)

भावानां यानि कार्याणि नाट्यन्ते कुशलैर्नटैः॥ १३९०॥

अनुभावा हेतवस्ते स्वहेत्वनुभवे यतः।
ते भावानाभिमुख्येन नयन्ति गमयन्ति हि॥ १३९१॥

अतोऽभिनयशब्देनाप्युच्यन्ते कृत्रिमा नटैः।

अनुभावों का सामान्य लक्षण

१३९० ग-१३९२ ख. (अ०) भावानां भावों के यानि कर्माणि जो कार्य कुशलैः नटैः कुशल नटों के द्वारा नाट्यन्ते अभिनीत होते हैं ते अनुभावाः वे अनुभाव (होते हैं) यतः क्योंकि स्वहेतु-अनुभवे अपने कारण के अनुभव में (वे) हेतवः हेतु (कारणीभूत होते हैं)। ते वे भावान् भावों को अभिमुख्येन नयन्ति सामने ले आते हैं गमयन्ति हि (और उनका) निश्चित ज्ञान कराते हैं। अतः इसलिये कृत्रिमाः कृत्रिम होते हुए (वे) नटैः नटों के द्वारा अभिनयशब्देन अपि अभिनय शब्द से भी उच्यन्ते कहे जाते हैं।

(सर०) कल्लि० ने कहा कि 'अनुभावयन्ति इति अनुभावाः'—इस रूप में अनुभाव शब्द की व्युत्पत्ति दिखाई गई है। कृत्रिमाः को उसने यों स्पष्ट किया कि अनुकरण के रूप में नट द्वारा आरोपित होकर रहने से अभिनय शब्द से भी कहा जाता है। अनुकार्य (जिसका अनुकरण किया जाय) से संबन्धित होने से अनुभाव कहा जाता है। आशय यह है कि कटाक्ष आदि ही अनुकर्ता (अर्थात् नट) में निष्ठ होने से अभिनय कहा जाता है।

(शृङ्गारानुभावाः)

(तत्र संभोगशृङ्गारानुभावाः)

कान्ता दृष्टिः कटाक्षाख्यं तारकाकर्म शर्मकृत्॥ १३९२॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चतुरे च भ्रुवौ चारुगोचरा मधुरा गिरः।
रोमाञ्चमुखरागादिरचितः सात्त्विकोत्करः॥ १३९३॥

अनुभावा भवन्त्येते शृङ्गाररसपोषिणः।
आलस्यौग्र्यजुगुप्साभ्योऽन्येऽत्र स्युर्व्यभिचारिणः॥ १३९४॥

आलस्यादित्रयं वर्ज्यं स्वविभावैकगोचरम्।
एष संभोगशृङ्गारगतः परिकरो मतः॥ १३९५॥

विप्रलम्भे नानुभावः कान्तदृष्ट्यादिरिष्यते।

शृङ्गार के अनुभाव

संभोग शृंगार के अनुभाव

१३९२ ग-१३९६ ख. (अ०) **कान्ता दृष्टिः** मनोहर दृष्टि, **शर्मकृत्** आनन्ददायक **कटाक्ष-आख्यं तारकाकर्म** कटाक्ष नाम वाली पुतली की क्रिया, **चारुगोचरा** सुन्दर दिखने वाली **चतुरे च भ्रुवौ** चतुर भौंहें, **मधुरा गिरः** मधुर वाणी, **रोमाञ्चमुखराग-आदिरचितः** रोमांच, मुखराग (चेहरे पर दिखने वाला भीतरी भाव का सूचक रंग—गुलाबी, पीला पड़ना आदि) आदि से योजित **सात्त्विक-उत्करः** सात्त्विक (भावों) का समूह **एते शृङ्गाररसपोषिणः अनुभावाः** ये शृंगार रस के पोषक अनुभाव **भवन्ति** होते हैं।

अत्र इसमें (संभोग शृंगार में) **आलस्य-औग्र्यजुगुप्साभ्यः** आलस्य, उग्रता और जुगुप्सा से अन्य (अर्थात् इन्हें छोड़ कर) **व्यभिचारिणः स्युः** व्यभिचारी (भाव) होते हैं। **आलस्य-आदित्रयम्** आलस्य आदि तीन **स्वविभाव-एकगोचरं वर्ज्यं** केवल अपने विभावों में ही दिखाई दें तो वर्ज्य (होते हैं)। **एषः** यह **संभोगशृङ्गारगतः** संभोग शृंगार में रहने वाले (भावों का) **परिकरः मतः** समूह माना गया है। **विप्रलम्भे** विप्रलंभ में **कान्तदृष्टि-आदिः** कान्त दृष्टि आदि **अनुभावः न इष्यते** अनुभाव नहीं माना जाता।

(सर०) कल्लि० ने मुखराग का अर्थ वैवर्ण्य (अर्थात् रंग में परिवर्तन होना) कहा। मुखराग से जुड़े आदि से स्वरभेद आदि को ग्राह्य कहा। रोमांच, मुखराग आदि के रूप में योजित का अर्थ यह है कि लौकिक रस की तरह अपने आप उत्पन्न नहीं हो जाता बल्कि नट के द्वारा अपने में आरोपित किया जाता है। **सात्त्विकोत्करः** में **उत्करः** से आठों सात्त्विक समझने चाहियें। **स्वविभावैकगोचरं** पर कल्लि० की व्याख्या का सार यह है कि एक ही भाव रसविशेष में स्थायी और अन्य रस में संचारी हो सकता है। उसी तरह आलस्य आदि तीन अपने विभावों में ही दिखाई देते हों तो संभोग शृंगार में वर्ज्य होते हैं।

विप्रलंभ शृंगार दुःखात्मक होने से उसमें कान्त दृष्टि आदि अनुभाव नहीं माने जाते।

(विप्रलम्भे संचारिणः)

शङ्कासूयाश्रमौत्सुक्यनिर्वेदग्लानिमृत्यवः॥ १३९६॥

उन्मादव्याध्यपस्मारविबोधजडतास्तथा।
दैन्यं निद्रा तथा स्वप्नसुप्तचिन्तादयश्च ये॥ १३९७॥

तदीयैरनुभावैस्तु विप्रलम्भोऽभिनीयते।
उन्मादादिदशां चातिकष्टां नात्र प्रदर्शयेत्॥ १३९८॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

न चात्र मरणं साक्षाद्दर्शयेत्तस्य सूचिकाम्।
तदनन्तरजातां तु दर्शयेत्सुखिनीं दशाम्॥ १३९९॥
वाचा वाभिनयं तस्य सूचयेत्कृत्रिमं वदेत्।

विप्रलंभ के संचारी

१३९६ ग- १४०० ख. (अ०) शंका, असूया, श्रम, औत्सुक्य, निर्वेद, ग्लानि, मृत्यु (मरण), उन्माद, व्याधि, अपस्मार, विबोध, जड़ता, दैन्य, निद्रा, स्वप्न, सुप्त (निद्रा) और चिन्ता आदि ये जो (संचारी भाव हैं) **तदीयैः अनुभावैः तु** उनके अनुभावों से तो **विप्रलम्भः अभिनीयते** विप्रलंभ अभिनीत किया जाता है। **अत्र** इसमें **उन्माद-आदिदशां च अतिकष्टाम्** उन्माद आदि अत्यन्त कष्ट वाली दशा को **न प्रदर्शयेत्** नहीं दिखाना चाहिये। **न च अत्र** और न इसमें **मरणं साक्षात् दर्शयेत्** मरण को साक्षात् दिखाना चाहिये। **तस्य सूचिकाम्** उसकी सूचक **तत्-अनन्तरजाताम्** उसके बाद होने वाली **सुखिनीं दशां तु** सुखदायक दशा तो (अवश्य) **दर्शयेत्** दिखायें। **वा** अथवा **तस्य कृत्रिमम् अभिनयम्** उसका कृत्रिम अभिनय **वाचा सूचयेत्** वाणी से सूचित करायें **वदेत्** (वाक् रूपी सूची अभिनय से) बुलवायें (स्पष्ट बोलें या बुलवायें नहीं)।

(सर०) दोनों संस्करणों में 'चिन्तासूया …' पाठ है। लेकिन सिंह० की टीका और आनन्द० की पादटिप्पणी में **शङ्कासूया** है। यों भी १३९७ घ में अन्त में चिन्ता संचारी आ जाने से चिन्ता की पुनरावृत्ति हो रही है। इसलिये चिन्ता के स्थान पर '**शङ्का**' का ग्रहण करके अन्वय किया है।

इसी तरह १३९८ में 'चातिकृष्टां' पाठ आड्यार० में है लेकिन सिंह० की टीका और आनन्द० के आधार पर **अतिकष्टां** का ग्रहण किया है।

१४०० क-ख का आड्यार० में **वाचा वाभिनयं तस्य सूचयेत्कृत्रिमं वदेत्** पाठ है और यही कल्लि० की टीका का आधार भी है इसलिये हमने यही रखा है।

कल्लि० ने कहा कि मरण का अभिनय वाक्रूप सूची अभिनय से करने का अर्थ यह है कि आंगिक, सात्त्विक, आहार्य से मरण का अभिनय कभी नहीं करना चाहिए।

(विप्रलम्भस्य रसत्वे आक्षेपः)

ननु दुःखात्मकः कस्माद्विप्रलम्भो रसो मतः॥ १४००॥

मैवं रत्यनुसंधानं विप्रलम्भेऽपि दृश्यते।
विप्रलम्भोद्भवा शङ्का संभोगे दुस्त्यजा ध्रुवम्॥ १४०१॥

इतरेतरचित्रत्वाद्रसत्वं सुलभं तयोः।
नैकरूपे चिरास्वाद्यः शर्करावद्भवेदसौ॥ १४०२॥

संभोगेऽपि न निद्रास्ति नन्वन्योन्याभिलाषिणोः।
विबोधस्त्वस्त्यसौ कस्माद्विप्रलम्भैकगोचरः॥ १४०३॥

नैतन्निद्राविनाशो हि विबोधस्तामृते कुतः।
रतिश्रमकृता निद्रा संभोगेऽप्यस्ति चेन्न तत्॥ १४०४॥

भवन्त्यपि न सोद्भाव्या रत्युत्कर्षविरोधिनी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विप्रलंभ के रस होने पर आक्षेप

१४०० ग-१४०५ ख. (अ०) **ननु** प्रश्न यह है कि **दुःखात्मकः विप्रलम्भः** दुःख स्वरूप वाला विप्रलम्भ **कस्मात्** कैसे **रसः मतः** रस माना गया? **मा एवम्** ऐसा नहीं है। **रति-अनुसंधानं** रति का अनुसंधान (संयोग) **विप्रलम्भे अपि दृश्यते** विप्रलम्भ में भी दिखाई देता है। **विप्रलम्भ-उद्भवा शङ्का** विप्रलंभ से उत्पन्न होने वाली शंका **संभोगे** संभोग में (भी) **ध्रुवं दुस्त्यजा** पूरी तरह छोड़ देना कठिन (है)। **इतर-इतरचित्रत्वात्** परस्पर चित्रित स्वरूप होने से **तयोः** उन दोनों का **रसत्वं सुलभं** रसस्वरूप सुलभ (होता है)। **असौ** यह **एकरूपे** एक ही स्वरूप का होने से **शर्करावत्** शक्कर के समान **चिर-आस्वाद्यः न भवेत्** लंबे समय तक स्वाद लेने योग्य नहीं होता।

ननु अन्योन्य-अभिलाषिणोः फिर परस्पर अभिलाषा वाले दोनों (प्रिय और प्रिया) में **संभोगे** सभोग में **निद्रा अपि न अस्ति** नींद भी नहीं होती। **विबोधः तु** (उसका) विबोध (नींद का विनाश) **कस्मात् अस्ति** (भला) कैसे हो सकता है? **असौ** यह (बोध) **विप्रलम्भ-एकगोचरः** केवल विप्रलंभ में ही अनुभूत होता है। **न तत्** ऐसा नहीं है। **निद्राविनाशः हि विबोधः** नींद का नाश ही विबोध है। **ताम् ऋते कुतः** (वह नींद का विनाश) उसके (नींद के) बिना (संभोग में) कैसे (हो सकता है)? **रतिश्रमकृता निद्रा चेत्** यदि (यह कहें कि) रति के श्रम से उत्पन्न हुई निद्रा **संभोगे अपि अस्ति** संभोग में भी होती है (तो) **न तत्** ऐसा नहीं है। **सा भवन्ती अपि** वह होते हुए भी **रति-उत्कर्ष-विरोधिनी** रति के उत्कर्ष की विरोधी होने से (कवि द्वारा) **न उद्भाव्या** उद्भावित नहीं करनी चाहिये।

(सर०) विप्रलंभ को रस माना जाय या नहीं इस पर पूर्वपक्ष और उसके समाधान के रूप में ग्रन्थकार ने कई प्रश्न उठा कर उनका उत्तर दिया है। कल्लि० ने इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है।

पहला आक्षेप यह है कि विप्रलंभ दुःखात्मक होता है उसे रस कैसे माना जाय (क्योंकि रस तो सुखस्वरूप ही होता है)। समाधान यों किया कि विप्रलंभ में भी रति का अनुसंधान होता है। अपि शब्द से रति का अनुसंधान सिद्ध ही है, यह कहा गया है। फिर संभोग के समय में भी भावी विरह का भय अवश्य होने से, उसका भी दुःखात्मक स्वरूप संभव होता है इसलिये संभोग में भी मिश्र स्वरूप होता है। विप्रलंभ दुःखात्मक होते हुए भी भावी समागम की आशा से उत्पन्न सुख से वह भी मिश्र स्वरूप वाला होता है। इसलिये संभोग और विप्रलंभ दोनों का रसत्व यानी आस्वाद्यमान स्वरूप सुलभ होता है।

इस रूप में उसमें दोष नहीं है, इसके लिये ग्रन्थकार ने उदाहरण दिया कि शक्कर के स्वाद में एकरूपता होने से बहुत देर तक उसका स्वाद नहीं लिया जा सकता। कल्लि० ने स्पष्ट किया कि उसके साथ खट्टी वस्तु भी हो तो लंबे समय तक शक्कर आस्वाद्य होती है। उसी तरह सुखस्वरूप संभोग में भी निर्वेद आदि विभिन्न भाव हों तभी देर तक आस्वाद्य होता है।

फिर आक्षेप किया कि पहले यह कहा गया था कि आलस्य आदि तीन को छोड़ कर शेष व्यभिचारी भाव संभोग शृंगार में योजित करें। इसमें निद्रा और विबोध भी सम्मिलित हैं और वे संभोग शृंगार में संभव नहीं हैं क्योंकि प्रिय और प्रिया में परस्पर अखंड अभिलाषा बनी रहने से निद्रा भी नहीं होती। नींद ही नहीं तो विबोध कैसे हो सकता है? इसलिये विबोध केवल विप्रलंभ में ही होता है।

इसका उत्तर यह दिया कि यह कहना ठीक है क्योंकि विबोध यानी नींद का नाश नींद के बिना हो नहीं सकता और जब संभोग में नींद ही नहीं तो विबोध कैसे हो सकता है? कल्लि० ने उदाहरण देते हुए कहा कि जैसे तेज का अभाव यानी अंधकार, उसी तरह नींद के बोध का अभाव यानी विबोध का यह अर्थ है।

फिर यह शंका उठाई कि रति के श्रम से संभोग में भी नींद होती है। उत्तर दिया कि अगर ऐसा हो तो रति के उत्कर्ष के विरुद्ध होने से उसे कवि उद्भावित न करे।

(करुणविप्रलम्भयोरभेदशङ्का)

करुणे विप्रलम्भे च चिन्तादिव्यभिचारिणाम्॥ १४०५॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

साधारण्यात्तयोर्भेदो नास्ति चेत्तदसांप्रतम्।
शोको ही करुणे स्थायी विप्रलम्भे रतिर्मता॥ १४०६॥

करुण और विप्रलंभ में अभेद की शंका

१४०५ ग-१४०६. (अ०) **करुणे विप्रलम्भे च** करुण (रस) और विप्रलंभ (शृंगार रस) में **चिन्ता-आदिव्यभिचारिणां साधारण्यात्** चिन्ता आदि व्यभिचारी (भावों) का साधारण्य (समानता) होने से **तयोः भेदः न अस्ति चेत्** यदि (यह कहें कि) उन दोनों में भेद नहीं है **तत् असांप्रतं** (तो) वह उचित नहीं (है) **करुणे हि** (क्योंकि) करुण में **शोकः स्थायी** शोक स्थायी (भाव और) **विप्रलम्भे** विप्रलंभ में **रतिः मता** रति (स्थायी भाव) मानी गई है।

(सर०) ग्रन्थकार ने अब एक नई शंका उठाई कि करुण और विप्रलंभ दोनों में चिन्ता आदि व्यभिचारी होते हैं इसलिये उनमें भेद नहीं है। उत्तर यह दिया कि यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि दोनों के स्थायी भाव भिन्न हैं। कल्लि० ने कहा कि इस कारण दोनों का भेद सिद्ध है।

स्थायिभेदाद्विभागोऽतस्तयोरुत्तमपूरुषे।
ननु नीचे तु माल्यादिविभावानामसंभवात्॥ १४०७॥

रत्यभावे विप्रलम्भः शृङ्गारो जायते कथम्।
अतः स्यात्करुणः स्पष्टस्तत्रेष्टविरहोद्भवः॥ १४०८॥

१४०७-१४०८. (अ०) **अतः** इससे **तयोः** उन दोनों में **स्थायिभेदात्** स्थायी के भेद के कारण **विभागः** भिन्नता (है)। **उत्तमपूरुषे** (यह भेद), उत्तम पुरुषों में (है)। **ननु नीचे तु** लेकिन नीचों में तो **माल्य-आदि विभावानाम् असंभवात्** माला आदि विभावों के संभव न होने से **रति-अभावे** रति के अभाव में **विप्रलम्भः शृङ्गारः** विप्रलंभ शृंगार **कथं जायते** कैसे उत्पन्न होगा? **अतः** इसलिये **तत्र** वहाँ **इष्टविरह-उद्भवः करुणः** इष्ट विरह से उत्पन्न होने वाला करुण **स्पष्टः स्यात्** स्पष्ट होता है।

(सर०) यहाँ ग्रन्थकार ने एक और शंका उठाई। कल्लि० ने उसे इस प्रकार स्पष्ट किया। विषय विशेष में स्थायी का भेद संभव होने से करुण और विप्रलंभ में विभाग मान्य करके दूसरे विषय में स्थायी भेद न होने से उन दोनों में अभेद की शंका को ग्रन्थकार ने यहाँ लिया है। शंका यह है कि उत्तम पुरुष में कुल, धन आदि से संपन्नता होने से करुण और विप्रलंभ में भेद होता है। लेकिन कुल, धन आदि से रहित नीच पुरुषों में माला आदि उद्दीपन विभाव न होने से रति के अभाव के कारण उससे होने वाला विप्रलंभ शृंगार कैसे हो सकता है? अर्थात् शृंगार ही नहीं होता। इस कारण उस विषय में इष्ट के विरह से उत्पन्न होने वाला करुण स्पष्ट होता है—यों अभेद का प्रतिपादन होता है।

माल्याद्यसंभवान्नीचे संभोगासंभवेऽपि चेत्।
तन्न नीचरतिर्यस्मान्नारीमात्रविभावजा॥ १४०९॥

वियोगेऽपि तथा माल्याद्यभावेन कथं रतिः।
आशाबन्धश्लथीभूतचिन्तादिव्यभिचारिकः॥ १४१०॥

विरहः करुणाद्भिन्नः प्रियनैराश्यकारितात्।

१४०९-१४११ ख. (अ०) **नीचे माल्य-आदि-असंभवात् चेत्** यदि नीच (पुरुषों) में माला आदि संभव न होने से **संभोग-असंभवे** संभोग संभव न होना (प्रतिपादित करें तो) **तत् अपि न** वह भी नहीं (हो सकता)। **यस्मात्** कारण **नीचरतिः** नीच की रति **नारीमात्रविभावजा** केवल नारी विभाव से उत्पन्न होने वाली (होती है)। **तथा** उसी तरह **वियोगे अपि** वियोग

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में भी माल्य-आदि-अभावेन माला आदि के अभाव से रतिः कथं रति क्यों (न स्वीकारें)? आशाबन्धश्लथीभूतचिन्ता-आदिव्यभिचारिकः विरहः आशा का बन्धन ढीला होने पर चिन्ता आदि व्यभिचारी (भावों) वाला विरह प्रियनैराश्यकारितात् प्रिय संबन्धी निराशा से उत्पन्न करुणात् भिन्नः करुण से भिन्न (होता है)।

(सर०) नारीमात्रविभावजा वियोगेऽपि में 'मात्र' का आशय, कल्लि० के अनुसार, यह है कि माला आदि की अपेक्षा के बिना ही संभोग में प्रवृत्ति दिखाई देती है। 'वियोगेऽपि' का अर्थ यह है कि जैसे संभोग में माला आदि के बिना भी रति स्वीकार की जाती है उस तरह वियोग में मालादि के बिना क्यों स्वीकार न की जाय? अर्थात् अवश्य करनी चाहिये।

प्रिय व्यक्ति से संगम होने की आशा शिथिल होने से उत्पन्न चिन्तादि से युक्त विरह इष्ट व्यक्ति संबन्धी निराशा से उत्पन्न करुणा से अलग है।

आङ्० में 'प्रियनैराश्यकारितं' पाठ है लेकिन आनन्द० और कल्लि० की टीका में ...... कारितात् है। यही संगत होने से हमने इसी का ग्रहण किया है।

(शृङ्गारस्य दशावस्थाः)

कामशास्त्रे च शृङ्गारो दशावस्थः प्रकीर्तितः॥ १४११॥

अभिलाषस्ततश्चिन्तानुस्मृतिर्गुणकीर्तनम्।
उद्वेगोऽथ विलापः स्यादुन्मादो व्याधिसंभवः॥ १४१२॥

जडता मरणं चेति दशावस्थाः प्रकीर्तिताः।

इति शृङ्गारः

शृंगार की दस अवस्थाएँ

१४११ ग-१४१३ ख. (अ०) कामशास्त्रे कामशास्त्र में शृङ्गारः शृंगार (रस) दश अवस्थः दस अवस्था वाला प्रकीर्तितः कहा गया है। अभिलाष, चिन्ता, अनुस्मृति (स्मरण), गुणकीर्तन, उद्वेग, विलाप, उन्माद, व्याधिसंभव, जड़ता (और) मरण इति ये दश-अवस्थाः प्रकीर्तिताः दस अवस्थाएँ कही गई हैं।

(सर०) आङ्० में 'शृङ्गारे दशावस्थः' पाठ है। पुल्लिंग प्रकीर्तितः के साथ आनन्द० का शृङ्गारो दशावस्थः पाठ संगत होने से हमने उसी का ग्रहण किया है।

कामशास्त्र से आशय वात्स्यायन का कामसूत्र है।

भोक्ता प्रधानो भोग्या तु कान्ता तदुपसर्जनम्॥ १४१३॥

अतो नरान्तरासक्तिस्तस्याः शृङ्गारभङ्गकृत्।
भोक्तुस्त्वपरतन्त्रत्वात्कान्तान्तरमभञ्जकम्॥ १४१४॥

वाङ्नेपथ्याङ्गचेष्टाभिः शृङ्गारस्त्रिविधो मतः।
रामादिव्यञ्जको वेषो नटे नेपथ्यमिष्यते॥ १४१५॥

इति शृङ्गारः (१)

१४१३ ग-१४१५. (अ०) भोक्ता प्रधानः (शृंगार में) भोक्ता प्रधान (होता है) कान्ता तु भोग्या कान्ता तो भोग्या

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(होती है इसलिये) **तत्** उसका **उपसर्जनं** गौण स्थान (है)। **अतः** इसलिये **तस्याः** उसकी **नर-अन्तर-आसक्तिः** दूसरे पुरुष में आसक्ति **शृङ्गारभङ्गकृत्** शृंगार (रस) का भंग करती है। **भोक्तुः तु** लेकिन भोक्ता का **अ-परतन्त्रत्वात्** परतंत्रत्व न होने (अर्थात् स्वतन्त्र होने) से **कान्ता-अन्तरम् अभञ्जकं** दूसरी कान्ता में (उसकी आसक्ति शृंगार रस की) भंजक नहीं (है)।

वाङ्नेपथ्य-अङ्गचेष्टाभिः वाणी, नेपथ्य (वेशभूषा) और आंगिक चेष्टाओं से **शृङ्गारः** शृंगार (रस) **त्रिविधः मतः** तीन प्रकार का माना गया है। **नटे** नट में **राम-आदिव्यञ्जकः वेषः** राम आदि का व्यंजक वेष **नेपथ्यम् इष्यते** नेपथ्य माना जाता है।

(सर०) कल्लि० ने व्याख्या की कि स्त्री-पुरुष का परस्पर आलंबन होना अविशेष है। फिर भी प्रधानता-गौणता से विषमता होती है। स्त्री गौण होने से उसकी परपुरुष में आसक्ति से रसाभास होता है लेकिन पुरुष स्वतन्त्र होता है इसलिये परस्त्री में उसकी आसक्ति से रसाभास नहीं होता।

शृंगाररस समाप्त (१)

(हास्यरसः—२)

वेषालंकारगमनगदितानां विकारिता।
एतेषा च परस्थानामनुकारो विलज्जता॥ १४१६॥

विषयेऽरुचिता दृष्ट्याप्यसंगतविभाषणम्।
हासनीयस्य कक्षादिसंस्पर्शः कुहनावहः॥ १४१७॥

इत्यादयो विभावाः स्युः,

हास्य रस—२

१४१६-१४१८ क. (अ०) **वेष-अलंकारगमनगदितानां** वेष, अलंकार, चलने, बोलने में **विकारिता** विकार, **एतेषां च** इनका **परस्थानाम् अनुकारः** दूसरों (की वेष, भूषा, चलने, बोलने आदि) का अनुकरण, **विलज्जता** निर्लज्जता, **विषये अरुचिता** विषयों में सुरुचि न होना, **दृष्ट्या अपि असंगत-विभाषणं** दृष्टि से भी असंगत बोलना, **हासनीयस्य** जिसे हँसाने की इच्छा हो उसकी **कुहन-आवहः** हँसा देने वाले उपाय से **कक्ष-आदि-संस्पर्शः** काँख आदि का स्पर्श करना **इति-आदयः** ये **विभावाः स्युः** विभाव होते हैं।

(सर०) **परस्थानाम् अनुकारः** पर कल्लि० ने कहा कि दूसरों में वेश आदि विकृत न होने पर भी उनका अनुकरण हास्य का विभाव होता है। कक्षादि में 'आदि' से पार्श्व (बाजू) आदि का ग्रहण होता है।

अनुभावास्तु नेत्रयोः।
कपोलयोरोष्ठयोश्च स्पन्दो दृष्ट्योर्विकासनम्॥ १४१८॥

अत्यन्तमीलनं किंचित्कुञ्चनं पार्श्वपीडनम्।
प्रस्वेदमुखरागाद्या यस्याथ व्यभिचारिणः॥ १४१९॥

स्वप्नोऽवहित्थमालस्यनिद्रातन्द्रादयोऽपरे।
एते स्मितादिभेदेषु यथायोगं व्यवस्थिताः॥ १४२०॥

स्थायिभावश्च हासः स्यादसौ हास्यः प्रकीर्तितः।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१४१८ ख-१४२१ ख. (अ०) **नेत्रयोः कपोलयोः ओष्ठयोः च** आँखों, गालों और होठों का **स्पन्दः** स्पंदन, **दृष्ट्योः विकासनं** दृष्टियों (आँखों) का विकास होना (और) **अत्यन्तमीलनं** पूरी तरह बन्द होना, **किंचित् कुञ्चनं** कुछ सिकुड़ना, **पार्श्वपीडनं** बाजू दबाना, **प्रस्वेदमुखराग-आद्याः** पसीना, मुखराग आदि **यस्य अनुभावाः** जिसके अनुभाव (होते हैं); **अथ** और **स्वप्नः अवहित्थं** स्वप्न, अवहित्थ, **आलस्यनिद्रातन्द्रा-आदयः** आलस्य, निद्रा, तन्द्रा आदि **व्यभिचारिणः** व्यभिचारी **एते अपरे** (और) ये दूसरे **स्मित-आदिभेदेषु** स्मित आदि भेदों में **यथायोगं व्यवस्थिताः** यथोचित व्यवस्थित होने वाले (व्यभिचारी होते हैं) **स्थायिभावः च** और स्थायी भाव **हासः स्यात्** हास होता है **असौ** यह (वह) **हास्यः प्रकीर्तितः** हास्य (रस) जाना गया है।

आत्मस्थः परसंस्थश्चेत्यस्य भेदद्वयं मतम्॥ १४२१॥

आत्मस्थो द्रष्टुरुत्पन्नो विभावेक्षणमात्रतः।
हसन्तमपरं दृष्ट्वा विभावांश्चोपजायते॥ १४२२॥

योऽसौ हास्यरसस्तज्ज्ञैः परस्थः परिकीर्तितः।
उत्तमानां मध्यमानां नीचानामप्यसौ भवेत्॥ १४२३॥

त्र्यवस्थः कथितः,

१४२१ ग-१४२४ क. (अ०) **आत्मस्थः परसंस्थः च इति** आत्मस्थ (अपने में स्थित) और परस्थ (दूसरे में स्थित) **इति** ऐसे **अस्य** इसके **भेदद्वयं मतं** दो भेद माने गये हैं। **विभाव-ईक्षणमात्रतः** विभाव को देखते ही **द्रष्टुः उत्पन्नः** देखने वाले में उत्पन्न हुआ **आत्मस्थः** आत्मस्थ (होता है)। **अपरं हसन्तं विभावान् च दृष्ट्वा** दूसरे को हँसते हुए देख कर और विभावों को देख कर **यः** जो **हास्यरसः उपजायते** हास्यरस उत्पन्न होता है **असौ** वह **तत्-ज्ञैः** उसके ज्ञाताओं के द्वारा **परस्थः परिकीर्तितः** परस्थ कहा गया है। **असौ** यह **उत्तमानां मध्यमानां नीचानाम् अपि भवेत्** उत्तम, मध्यम और नीच (प्रकृति के पात्रों) में भी होता है। **त्रि-अवस्थः कथितः** (इसलिये) तीन अवस्था वाला कहा गया है।

तस्य षड्भेदाः सन्ति चापरे।
स्मितं च हसितं प्रोक्तमुत्तमे पुरुषे बुधैः॥ १४२४॥

भवेद्विहसितं चोपहसितं मध्यमे नरे।
नीचेऽपहसितं चातिहसितं परिकीर्तितम्॥ १४२५॥

१४२४ क-१४२५. (अ०) **तस्य अपरे च** उसके दूसरे भी **षट्-भेदाः सन्ति** छ भेद होते हैं। **बुधैः** विद्वानों के द्वारा **स्मितं च हसितं** स्मित और हसित **उत्तमे पुरुषे प्रोक्तम्** उत्तम पुरुष में कहे गये हैं। **विहसितम् उपहसितं च** विहसित और उपहसित **मध्यमे नरे भवेत्** मध्यम पुरुष में होता है। **अपहसितं च अतिहसितम्** अपहसित और अतिहसित **नीचे परिकीर्तितं** नीच (पुरुष) में कहे गये हैं।

ईषत्फुल्लकपोलाभ्यां कटाक्षैरप्यनुल्बणैः।
अदृश्यदशनो हास्यो मन्थरस्मितमुच्यते॥ १४२६॥

वक्त्रनेत्रकपोलैश्चेदुत्फुल्लैरुपलक्षितः।
किंचिल्लक्षितदन्तश्च तदा हसितमिष्यते॥ १४२७॥

१४२६-१४२७. (अ०) **ईषत् फुल्लकपोलाभ्यां** कुछ फूले हुए गालों से, **अनुल्बणैः कटाक्षैः अपि** अस्पष्ट कटाक्षों से, **अदृश्यदशनः** दाँत दिखाई न देने वाला **हास्यः** हास्य **मन्थरस्मितम् उच्यते** मन्द स्मित कहा जाता है। **उत्फुल्लैः चेत्** यदि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विकसित वक्त्रनेत्रकपालैः मुँह, आँख और गालों से उपलक्षितः प्रकट हुआ (हो) किंचित् लक्षितदन्तः च और कुछ दिखाई देते हुए दाँत वाला (हो) तदा तब (वह) हसितम् इष्यते हसित माना जाता है।

सशब्दं मधुरं कालागतं वदनरागवत्।
आकुञ्चिताक्षिगण्डं च विदुर्विहसितं बुधाः॥ १४२८॥

निकुञ्चितांसशीर्षश्च जिह्मदृष्टिविलोकनः।
उत्फुल्लनासिको हास्यो नाम्नोपहसितं मतः॥ १४२९॥

१४२८-१४२९. (अ०) सशब्दं ध्वनिसहित, मधुरं मधुर, काल-आगतं (उचित) काल (अवसर) में आया (उत्पन्न) हुआ, वदनरागवत् मुखरागयुक्त आकुञ्चितअक्षिगण्डं च आकुंचित (सिकुड़े हुए) आँख और गाल वाले (हास्य) को बुधः विद्वान् विहसितं विदुः विहसित (नाम से) जानते हैं। निकुञ्चित-अंसशीर्षः च (जिसमें) नीचे झुके हुए कंधे और सिर (हों), जिह्मदृष्टिविलोकनः तिरछी दृष्टि से देखना (और) उत्फुल्लनासिकः हास्यः विकसित नाक (हो उस) हास्य को उपहसितं नाम्ना मतः उपहसित नाम से माना गया है।

अस्थानजः साश्रुदृष्टिराकम्प्रस्कन्धमूर्धकः।
शार्ङ्गदेवेन गदितो हास्योऽपहसिताह्वयः॥ १४३०॥

स्थूलकर्णः कटुध्वानो बाष्पपूरप्लुतेक्षणः।
करोपगूढपार्श्वश्च हास्योऽतिहसितं मतः॥ १४३१॥

१४३०-१४३१. (अ०) यः जो अस्थानजः अस्थान पर उत्पन्न हुआ, स-अश्रुदृष्टिः आँसू से भरी दृष्टि वाला, आकम्प्रस्कन्धमूर्धकः कंपित कन्धे और सिर वाला (हो वह) हास्यः हास्य शार्ङ्गदेवेन शार्ङ्गदेव के द्वारा अपहसित-आह्वयः गदितः अपहसित नाम से कहा गया है। स्थूलकर्णः स्थूल हुए (फड़कते) कान वाला, कटुध्वानः कटु ध्वनि वाला, वाष्पपूरप्लुत-ईक्षणः अश्रुओं के पूर से भरी आँखों वाला कर-उपगूढपार्श्वः च और हाथ से दबाई हुई बाजुओं वाला हास्यः हास्य अतिहसितं मतः अतिहसित माना गया है।

पूर्वाणि स्वसमुत्थानि स्मितादियुगलत्रये।
पराणि त्वपरस्थानि पूर्वसंक्रान्तिजत्वतः॥ १४३२॥

हास्यरौद्रावपि त्रेधा वाङ्नेपथ्याङ्गचेष्टितैः।
उपलक्षणमेतत्तु तेषां सर्वेषु संभवात्॥ १४३३॥

इति हास्यः (२)

१४३२-१४३३. (अ०) स्मित-आदियुगलत्रये स्मित आदि तीन जोड़ियों में (से) पूर्वाणि पहले(-पहले) स्वसमुत्थानि स्वयं में उत्पन्न होने वाले (आत्मस्थ होते हैं)। पूर्वसंक्रान्तिजत्वतः पहले वालों के संक्रमण से उत्पन्न होने के कारण पराणि तु बाद वाले अपरस्थानि परस्थ (होते हैं)। वाङ्नेपथ्य-अङ्गचेष्टितैः वाणी, नेपथ्य (वस्त्र, अलंकार आदि) और अंग के व्यापार (चेष्टाओं) से हास्यरौद्रौ अपि हास्य और रौद्र (रस) भी त्रेधा तीन प्रकार के (होते हैं)। तेषां सर्वेषु संभवात् उनके (अर्थात् वे) सब (रसों) में संभव (विद्यमान) होने से एतत् तु यह तो उपलक्षणं प्रदर्शित करने (दिखा देने) वाला चिन्ह (माना जाता है)।

(सर०) कल्लि० ने पूर्वसंक्रान्तिजत्वतः की व्याख्या करते हुए यह स्पष्ट किया कि पहले वाले स्मित आदि बाद वाले हसित आदि में संक्रमित होने से पहले-पहले आत्मस्थ और दूसरे-दूसरे (बाद) वाले परस्थ होने का अर्थ यह है कि उत्तम

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पुरुष के स्मित को देख कर दूसरे उत्तम पुरुष में हसित उत्पन्न होता है। एक मध्यम पुरुष के विहसित से दूसरे मध्यम में उपहसित और एक नीच पुरुष के अपहसित से दूसरे नीच पुरुष में अतिहसित उत्पन्न होता है। कहा भी गया है कि आत्मस्थ की अपेक्षा परस्थ में आधिक्य होता है।

हास्य रस समाप्त (२)

(करुणरसः—३)

इष्टबन्धुवियोगश्च श्रीनाशो वधबन्धने।
व्यसनप्रभवोऽनर्थः सुतादिनिधनं तथा॥ १४३४॥

देशभ्रंशादयश्चैते श्रुता यद्वा विलोकिताः।
विभावाः संमता पुंसामुत्तमानां पराश्रिताः॥ १४३५॥

मध्यमाधमपुंसां तु ते स्युरात्मैक्यगोचराः।

करुण रस—३

१४३४-१४३६ ख. (अ०) **इष्टबन्धुवियोगः** (जिसमें) प्रिय बान्धवों का वियोग **श्रीनाशः च** और संपत्ति का नाश, **वधबन्धने** वध और बंधन, **व्यसनप्रभवः अनर्थः** व्यसन से उत्पन्न हुआ अनर्थ, **सुत-आदिनिधनं** पुत्र आदि का निधन **तथा** और **देशभ्रंश-आदयः च** स्वदेश से भ्रष्ट होना आदि **एते** ये **श्रुता यत् वा विलोकिताः** सुने हुए या देखे हुए **विभावाः संमताः** विभाव माने गये हैं; **उत्तमानां पुंसानां पराश्रिताः** उत्तम पुरुषों में (वे स्वगत और) पर-आश्रित (होते हैं); **मध्यम-अधमपुंसां तु ते** मध्यम और अधम पुरुषों में तो वे **आत्म-ऐक्यगोचराः स्युः** स्वयं में ही दिखाई देने वाले (अर्थात् केवल आत्मस्थ) होते हैं।

(सर०) व्यसन यानी मद्यपान, जुआ आदि। दोनों टीकाकारों ने उत्तम पुरुषों में स्वगत के साथ पराश्रित भी कहा है अर्थात् उत्तम व्यक्ति केवल अपने दुःख से ही नहीं दूसरों के दुःख देख कर भी करुण का अनुभव करते हैं। **आत्मैक्यगोचराः** का अर्थ यह है कि मध्यम-अधमों में पराश्रित विभाव नहीं होते।

अश्रुपातो मुखे शोषो विलापः परिदेवनम्॥ १४३६॥

स्तम्भो विवर्णता स्त्रस्तगात्रता प्रलयस्तथा॥
श्वासोच्छ्वासौ देहपातघातोरस्ताडनादयः॥ १४३७॥

एते यत्रानुभावास्युरथ ग्लानिः श्रमो भयम्।
मोहो विषादनिर्वेदौ चिन्तौत्सुक्ये च दीनता॥ १४३८॥

जडता व्याधिरुन्मादालस्यापस्मारमृत्यवः।
स्तम्भकम्पाश्रुवैवर्ण्यस्वरभङ्गादयस्तथा॥ १४३९॥

यत्र संचारिणः स्थायी शोकः स करुणो मतः।
व्यवस्थात्रानुभावानां योग्यत्वादुत्तमादिषु॥ १४४०॥

१४३६ ग-१४४०. (अ०) **अश्रुपातः** आँसू गिरना, **मुखे शोषः** मुँह में सूखापान, **विलापः परिदेवनं** विलाप, बिलखना,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्तम्भः विवर्णता स्तंभ, वैवर्ण्य **स्त्रस्तगात्रता** शरीर (अंगों) का ढीला पड़ना, **प्रलयः** मूर्छा **तथा** और **श्वास-उच्छ्वासौ** (गहरे) श्वास और उच्छ्वास, **देहपातघात-उरः-ताडन-आदयः** अंग पटकना, उन पर आघात करना, छाती पीटना आदि **यत्र** जहाँ **एते अनुभावाः स्युः** ये अनुभाव हों; **अथ** फिर **ग्लानिः श्रमः भयं** ग्लानि, श्रम, भय **मोहः विषादनिर्वेदौ** मूर्च्छित होना, विषाद और निर्वेद, **चिन्ता-औत्सुक्ये** चिन्ता और औत्सुक्य, **दीनता च** दैन्य, **जडता व्याधिः** जड़ता, व्याधि **उन्माद-आलस्य-अपस्मारमृत्यवः** उन्माद, आलस्य, अपस्मार और मृत्यु (जैसी दशा), **स्तम्भकम्प-अश्रुवैवर्ण्यस्वरभङ्ग-आदयः** तथा स्तंभ कम्प, अश्रु, वैवर्ण्य, स्वरभंग आदि **यत्र संचारिणः** जिसमें संचारी (होते हैं और) **शोकः स्थायी** शोक स्थायी भाव (होता है) **सः करुणः मतः** वह करुण रस माना गया है। **अत्र** इसमें **अनुभावानां व्यवस्था** अनुभावों की व्यवस्था **उत्तम-आदिषु** उत्तम आदि (पुरुषों) में **योग्यत्वात्** योग्यता के अनुसार (करनी चाहिए)।

(सर०) कल्लि० ने शंका उठाई कि स्तंभ आदि सात्त्विक भाव भी अनुभाव लक्षण से युक्त होने से (ग्रन्थकार द्वारा) उनकी गणना अनुभावों में करना ठीक है लेकिन संचारी भावों में उनकी गणना उचित कैसे है? उत्तर यह दिया कि सत्त्व की प्रधानता से प्रवृत्त होते हुए भी स्तंभ आदि अनुभाव का यह जो लक्षण पहले दिया गया कि कुशल नटों के द्वारा भावों के जो कार्य अभिनीत होते हैं वे अपने कारणों के अनुभव में हेतु होने से अनुभाव होते हैं—इसके अनुसार जैसे अनुभावत्व उपपन्न होता है उसी तरह विशेष रूप से आभिमुख्यत्व से संचार करने वाले व्यभिचारी होते हैं। इस अस्थिरता वाले लक्षण के द्वारा ग्लानि आदि का संचारी रूप भी उचित ही है।

योग्यत्वात् पर कल्लि० ने कहा कि उत्तम आदि प्रकृति के अनुसार अश्रुपात आदि अनुभावों की योजना करनी चाहिये।

विलापो रोदनं शोच्यगुणस्तवपुरःसरम्।
स्याद्दैवात्मपराणां यदुपालम्भेन रोदनम्॥ १४४१॥

परिदेवनमित्युक्तं तदिदं शब्दकोविदैः।

१४४१-१४४२ ख. (अ०) **शोच्यगुणस्तवपुरःसरं रोदनं** शोचनीय (व्यक्ति) के गुणों का स्तवन (स्तुति) करते हुए रोना **विलापः** विलाप (कहा जाता है) **यत् दैव-आत्मपराणाम् उपालम्भेन रोदनं** (और) जो भाग्य को, अपने आप को और दूसरों को उपालंभ से (दोष देते हुए) रोना **तत् इदं शब्दकोविदैः** इस (रोदन) को शब्द के विद्वानों के द्वारा **परिदेवनम् इति उक्तं** परिदेवन शब्द से कहा गया है।

धर्मोपघातजो वित्तनाशजो बन्धुनाशजः॥ १४४२॥

करुणस्त्रिविधस्तेषामुत्तमेष्वेव पूर्वजः।
त्रेधा रुदितमानन्दार्तीर्ष्याहेतुकृतं भवेत्॥ १४४३॥

१४४२ ग-१४४३. (अ०) **धर्म-उपघातजः** धर्म पर प्रहार (धर्म के विपरीत कार्य करने) से उत्पन्न, **वित्तनाशजः** संपत्ति के नाश से उत्पन्न (और) **बन्धुनाशजः** बन्धु के नाश से उत्पन्न **करुणः त्रिविधः** (यों) करुण तीन प्रकार का (होता है)। **तेषां पूर्वजः** उनमें से पहले उत्पन्न हुआ (धर्मोपघातज) **उत्तमेषु एव** उत्तम (पुरुषों) में ही (होता है)। **आनन्द-आर्ति-ईर्ष्याहेतुकृतं रुदितम्** आनन्द, पीड़ा और ईर्ष्या (इन) कारणों से हुआ रोदन **त्रेधा भवेत्** तीन प्रकार का होता है।

(सर०) **उत्तमेष्वेव** पर दोनों टीकाकारों ने स्पष्ट किया कि पहले वाले करुण के लिये ही उत्तम का नियम है शेष दोनों में अनियम है अर्थात् धर्म के विपरीत आचरण से शोक उत्तम व्यक्तियों को अवश्य ही होता है; मध्यम और अधम को प्रायः नहीं होता, कभी हो भी सकता है।

दुःखस्मृतियुतानन्दाज्जातं फुल्लकपोलकम्।
सरोमाञ्चमपाङ्गस्थबाष्पमानन्दजं मतम्॥ १४४४॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उच्चैः स्वरविलापं च सभ्रूप्रान्तविवर्तितम्।
स्रुताश्रुधारमस्वस्थचेष्टाङ्गं चार्तिजं मतम्॥ १४४५॥

शिरःकम्पितनिश्वासं स्फुरदोष्ठकपोलकम्।
कटाक्षभ्रुकुटीवक्रं स्त्रीणामीर्ष्याकृतं भवेत्॥ १४४६॥

धैर्यादुत्तममध्यानां नाश्रु स्वव्यसने स्रवेत्।
परस्थे तु स्रवेन्नारीनीचानां तूभयत्र तत्॥ १४४७॥

इति करुणः (३)

१४४४-१४४७. (अ०) **दुःखस्मृतियुत-आनन्दात् जातं** दुःख की याद से युक्त आनन्द से उत्पन्न, **फुल्लकपोलं** विकसित गाल वाला, **स-रोमाञ्चं** रोमांचयुक्त **अपाङ्गस्थबाष्पम्** आँखों की बाहरी कोरों में आये आँसुओं वाला **आनन्दजं मतम्** आनन्द से उत्पन्न माना गया है। **उच्चैः स्वरविलापम्** ऊँची आवाज़ से विलाप वाला, **सभ्रूप्रान्तविवर्तितं** मुड़ी हुई भौंहों वाला, **स्रुता-अश्रुधारं** बहती हुई आँसुओं की धारा वाला **अस्वस्थचेष्ट-अङ्गं च** और अस्वस्थ चेष्टाओं वाले (शरीर के) अंगों वाला **आर्तिजं मतं** पीड़ा से उत्पन्न (आर्तिज) माना गया है। **शिरःकम्पितनिश्वासं** सिर के कंपित हुए निःश्वासों वाला, **स्फुरत् ओष्ठकपोलं** फड़कते/थरथराते होठ और गालों वाला, **कटाक्षभ्रुकुटीवक्रं** कटाक्ष और टेढ़ी भौंहों से युक्त (करुण) **स्त्रीणां** स्त्रियों में **ईर्ष्याकृतं भवेत्** ईर्ष्या से उत्पन्न हुआ होता है। **धैर्यात्** धैर्य के कारण **उत्तममध्यानाम्** उत्तम और मध्यम (पुरुषों) को **स्वव्यसने** अपने कष्ट/संकट में **अश्रुः न स्रवेत्** आँसू नहीं गिरते **परस्थे तु स्रवेत्** दूसरे के कष्ट में तो गिरते हैं। **नारीनीचानां तु** स्त्री और नीच (पुरुषों) का तो वह (आँसू गिरना) **उभयत्र** दोनों में (होता है)।

(सर०) आड्० में 'शिरः कल्पित ⋯' पाठ है। आनन्द० तथा कल्लि० की टीका में दिया **कम्पित ⋯** पाठ संगत होने से इसी को हमने रखा है।

करुणरस समाप्त (३)

(रौद्ररसः—४)

हन्तृप्रकृतयो रक्षोदैत्याद्यन्यायकारिणः।
युद्धं क्रोधोऽनृतं वाक्यं परदारादिधर्षणम्॥ १४४८॥

देशजातिकुलाचारविद्यानिन्दा परस्य च।
वधान्यदारयात्रादिप्रतिज्ञापरुषोक्तयः॥ १४४९॥

गृहादिभञ्जनं राज्यहरणं मत्सरस्तथा।
जिघांसाद्याश्च यत्र स्युर्विभावाः परिकीर्तिताः॥ १४५०॥

भ्रुकुटीनेत्ररक्तत्वं कपोलस्फुरणं तथा।
दन्तोष्ठपीडनं हस्तनिष्पेषोऽथान्यविग्रहे॥ १४५१॥

तालाद्यैस्ताडनं छेदो मर्दः पाटनमोटने।
शस्त्राणां ग्रहणं पातः प्रहारो रुधिरस्रुतिः॥ १४५२॥

एतेऽनुभावास्तेषां तु कर्म यत्ताडनादिकम्।
न तत्साक्षात्प्रयोक्तव्यं कीर्तनीयं परं नटैः॥ १४५३॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उत्साहसम्यग्बोधौ चामर्षावेगौग्र्यचापलम्।
स्वेदवेपथुरोमाञ्चगद्गदस्वरतादयः॥ १४५४॥

भावाः संचारिणः स्थायी क्रोधो रौद्राभिधो रसः।
साक्षात्स्वेदोऽभिनेयो वा व्यजनग्रहणादिना॥ १४५५॥

रौद्र रस—४

१४४८-१४५५. (अ०) **हन्तृप्रकृतयः** वध करने की प्रकृति वाले (और) **अन्यायकारिणः** अन्याय करने वाले **रक्षोदैत्य-आदि** राक्षस, दैत्य आदि, **युद्धं** युद्ध, **क्रोधः** क्रोध, **अनृतं वाक्यम्** असत्य बोलना, **परदारा-आदिधर्षणं** परस्त्री आदि का अपहरण और शीलनाश, **परस्य** दूसरे के **देशजातिकुल-आचारविद्यानिन्दा च** देश, जाति, कुल, आचार और विद्या की निन्दा, **वध-अन्यदारयात्रा-आदिप्रतिज्ञा** वध तथा परस्त्रीगमन (दूसरे की स्त्री का भोग) आदि की प्रतिज्ञा, **परुष-उक्तयः** कठोर कथन, **गृह-आदिभञ्जनं** घर आदि तोड़ना, **राज्यहरणं** राज्य का हरण, **मत्सरः** मत्सर **तथा** और **जिघांसा-आद्याः च** मारने की इच्छा आदि **यत्र** जिसमें **विभावाः परिकीर्तिताः स्युः** विभाव कहे गये हैं; **भ्रुकुटीनेत्ररक्तत्वं** भौंह और आँखों का लाल होना, **कपोलस्फुरणं** गालों का थरथराना **तथा दन्त-ओष्ठपीडनं** तथा दाँत (और) होठ दबाना, **हस्तनिष्पेषः** हाथों को परस्पर रगड़ना (हाथ मलना) **अथ** और **अन्यविग्रहे** दूसरे के शरीर पर **तल-आद्यैः ताडनं** (हाथ और पैरों के) तल आदि से मारना, **छेदः** (नख आदि से) छेदना (या शस्त्र आदि से काटना), **मर्दः** (अंग) मलना, **पाटनमोटने** दो टुकड़े करना और (अंग) तोड़ना, **शस्त्राणां ग्रहणं** शस्त्रों का ग्रहण, **पातः प्रहारः** पात और प्रहार करना, **रुधिरस्रुतिः** रक्त बहना **एते अनुभावाः** ये अनुभाव; **तेषां तु** उनके तो **यत् ताडन-आदिकं कर्म** जो ताडन आदि कार्य **तत्** वे **साक्षात् न प्रयोक्तव्यं** साक्षात् प्रयुक्त नहीं करने चाहियें। **परं नटैः कीर्तनीयं** केवल नटों के द्वारा कहलाना (वर्णन करना) चाहिये; **उत्साहसम्यक्बोधौ च** उत्साह और सही बोध, **अमर्ष-आवेग-औग्र्यचापलम्** अमर्ष, आवेग, उग्रता, चपलता, **स्वेदवेपथुरोमाञ्चगद्गदस्वरता-आदयः** स्वेद (पसीना छूटना), वेपथु (काँपना), रोमांच, गद्गद स्वर (आवाज़) होना आदि **संचारिणः भावाः** संचारी भाव (और) **क्रोधः स्थायी** क्रोध स्थायी (भाव हो, वह) **रौद्र-अभिधः रसः** रौद्र नाम वाला रस (होता है)। **स्वेदः साक्षात् अभिनेयः** स्वेद साक्षात् अभिनीत करें **वा** या **व्यजनग्रहण-आदिना** पंखा पकड़ने आदि से (दिखायें)।

(सर०) ······· **दैत्यादि** ········ में आदि में चोर आदि का ग्रहण होता है। **क्रोधः** यानी दूसरे के द्वारा किया गया क्रोध। **परदारादि** ··· में आदि से क्षेत्र, संपत्ति आदि का अपहरण ग्रहण होता है। भौंह, आँखों का लाल होना अपने शरीर में होता है। तल आदि से मारना दूसरे के शरीर में किया जाता है। **तलाद्यैः** में तल से हाथ और पैरों के तल यानी हथेली और तलुए से आशय है।

(वीररौद्रयोः साङ्कर्यशङ्का)

उत्साहस्त्वत्र संचारी न चास्माद्वीरसंकरः।
ननु चाव्यभिचारेण भावस्य स्थायिता मता॥ १४५६॥

स्थायी तत्कथमुत्साहो वीरेऽप्येष भविष्यति।
मैवं क्षणिकविद्योता विद्युद्वद्व्यभिचारिणः॥ १४५७॥

स्थिराः स्युः स्थायिनस्तेन द्विरूपोऽयं रसद्वये।

वीर और रौद्र में संकरता की शंका

१४५६-१४५८ ख. (अ०) **अत्र** यहाँ (रौद्र में) **उत्साहः तु संचारी** उत्साह तो संचारी (भाव होता है) **अस्मात्** इस कारण **न च वीररससंकरः** (इसका) वीर रस से मिश्रण नहीं (होता)। **ननु च** प्रश्न यह है कि **अव्यभिचारेण** व्यभिचार न

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

होने से **भावस्य स्थायिता मता** भाव की स्थायिता मानी गई है (अर्थात् रस में जो निश्चित हो उस भाव को स्थायी माना गया है)। **एष उत्साहः** यह (व्यभिचारी कहा गया) उत्साह **वीरे अपि** वीर रस में भी **स्थायी कथं भविष्यति** स्थायी कैसे होगा? **मा एवम्** ऐसा नहीं है। **व्यभिचारिणः** व्यभिचारी (भाव) **विद्युत्वत्** बिजली की तरह **क्षणिकविद्योताः** क्षण भर के लिये प्रकाशित होने वाले (होते हैं); **स्थायिनः** स्थायी (भाव) **स्थिराः स्युः** स्थिर होते हैं। **तेन** इस कारण से **अयं** यह (उत्साह) **रसद्वये** (इन) दो रसों में **द्विरूपः** दो रूप का (होता है)।

(सर०) यद्यपि रौद्र और वीर दोनों रसों में उत्साह का अस्तित्व समान है लेकिन दोनों में उनका स्वरूप भिन्न होने से दोनों रसों में मिश्र स्वरूप नहीं होता। इस प्रकार एक शंका का समाधान करके ग्रन्थकार ने दूसरी शंका यह उठाई कि एक ही भाव का व्यभिचारी और स्थायी स्वरूप, परस्पर विरोधी होने से, संगत नहीं है क्योंकि अव्यभिचार (व्यभिचार न होना) यानी नियत स्वरूप होना इसलिये स्थायी स्वरूप माना गया। रौद्र में कहा गया उत्साह व्यभिचारी होने से वीर रस में उसका नियत स्वरूप नहीं है इसलिये उसमें वह स्थायी होता ही नहीं। फिर उत्साह वीर का स्थायी भाव कैसे हो सकता है?

इसका ग्रन्थकार ने यह उत्तर दिया कि (आकाशीय) बिजली के क्षणिक प्रकाश की तरह व्यभिचारी भी अस्थिर होता है जब कि स्थायी स्थिर होते हैं। कल्लि० ने इस पर स्पष्टीकरण दिया कि व्यभिचारित्व अस्थिरता के कारण होता है, अनियमितता के कारण नहीं। स्थायी क्षणिक नहीं होते इसलिये उनका स्थायित्व होता है, एक रस में नियतता के कारण नहीं। इस प्रकार उत्साह का दोनों रसों में भिन्न स्वरूप होने से दोनों रसों में सांकर्य नहीं होता।

ननु स्थाय्यपि भावत्वान्निसर्गात्क्षणिको भवेत्॥ १४५८॥

सत्यं किंतु स संस्काररूपेण स्थायितां गतः।
तत्तिरस्कृतसंस्कारास्त्वन्ये न स्थैर्ययोगिनः॥ १४५९॥

आविर्भावतिरोभावधर्माणश्चात्र यन्त्रिताः।

१४५८ ग-१४६० ख. (अ०) ननु स्थायि-अपि लेकिन (प्रश्न यह है कि) स्थायी भी **भावत्वात्** भाव स्वरूप वाला होने से **निसर्गात्** स्वभाव से **क्षणिकः भवेत्** क्षणिक होता है (इसलिये स्थायी कैसे माना जाय)? **सत्यं** सही है। **किंतु सः** लेकिन वह **संस्काररूपेण** संस्कार रूप से **स्थायितां गतः** स्थायिता (स्थिरता) को गया हुआ (प्राप्त हुआ) है। **तिरस्कृत-संस्काराः** दबे हुए संस्कार वाले **तत् अन्ये तु** वे दूसरे (भाव) तो **न स्थैर्ययोगिनः** स्थिरता से युक्त (अर्थात् स्थायी) नहीं (होते)। **अत्र** यहाँ (स्थायी, संचारी स्वरूप के संबन्ध में) **आविर्भावतिरोभावधर्माणः च** आविर्भाव (और) तिरोभाव धर्म से युक्त (रूप से) **यन्त्रिताः** (वे) नियंत्रित (होते हैं)।

(सर०) ग्रन्थकार द्वारा यहाँ फिर शंका उठाई गई है। शंका यह है कि स्थायी भाव भी भाव होने के कारण क्षणिक होता है तब उसे स्थायी कैसे माना जाय? समाधान यों किया कि संस्कार द्वारा स्थायी माना जाता है। इसे कल्लि० ने यों स्पष्ट किया। **भावत्वात्** का अर्थ है मनोविकार होने से। **क्षणिकः** तीन क्षणों तक रहना क्षणिक होता है। भावमात्र क्षणिक होने से उसका व्यभिचारित्व होता है। यों ग्रन्थकार ने आक्षेप आधा अंगीकार करके परिहार इस प्रकार किया। रस का आविर्भाव भावना नामक संस्कार से स्थायिता प्राप्त करता है। इस प्रकार परिहार यह किया कि संस्कार की स्थायिता से स्थायी भाव स्थायी कहलाता है।

फिर शंका उठी कि अगर ऐसा है तो संस्काररूपता तो सभी भावों में होती है फिर निर्वेद आदि स्थायी क्यों नहीं होते? इस शंका को मन में रख कर ग्रन्थकार ने कहा कि उनमें स्थिरता नहीं होती। कल्लि० ने स्पष्ट किया कि रति आदि प्रबल स्थायी भावों की अपेक्षा निर्वेद आदि दूसरे भावों में संस्कार दब जाने से दुर्बल होकर संस्कारों में व्यवधान आ जाने से स्थायी नहीं होते। कहा भी गया है कि संस्कार रूप से जो प्रबल हो वह स्थायी और जो दुर्बल हो वह व्यभिचारी होता है। आविर्भाव (प्रकट होना) धर्म होने से स्थायी और तिरोभाव (ढक जाना) धर्म होने से व्यभिचारी होता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आनन्द० और आड्० में 'तत्स्थैर्ययोगिनः' पाठ है जो संगत नहीं है। कल्लि० ने इसकी व्याख्या में 'स्थायिनः न भवन्ति' कहा है। इस आधार पर न स्थैर्ययोगिनः पाठ बनता है और इसी से सही अर्थ प्राप्त होता है इसलिये हमने यही रखा है।

गुरौ प्रिये रिपौ भृत्ये भवेत्क्रोधश्चतुर्विधः॥ १४६०॥

गुरावव्यक्तचेष्टः स्यात्क्रोधो विनययन्त्रितः।
अपाङ्गनिर्गताल्पास्रो भ्रुकुटीकुटिलाननः॥ १४६१॥

स्फुरितोष्ठो मृगाक्षीणां कोपः प्रणयजः प्रिये।
दष्टोष्ठो हस्तनिष्पेषी विकटभ्रुकुटीपुटः॥ १४६२॥

स्वभुजप्रेक्षणैः शत्रौ भवेत्क्रोधो निरर्गलः।
विकृतप्रेक्षणैरक्षिविस्तारैर्भूरिभर्त्सनैः॥ १४६३॥

भृत्ये कार्यवशात्कोपः कृत्रिमः क्रूरतोज्झितः।

इति रौद्ररसः (४)

१४६० ग-१४६४ ख. (अ०) गुरौ प्रिये रिपौ भृत्ये गुरु, प्रिय, शत्रु और सेवक मैं (से संबन्धित) **क्रोधः** क्रोध **चतुर्विधः भवेत्** चार प्रकार का होता है। **गुरौ** गुरु के प्रति **विनयनियंत्रितः** विनय से संयमित (और) **अव्यक्तचेष्टः** अव्यक्त चेष्टा वाला (होता है)। **अपाङ्गनिर्गत-अल्प-अस्रः** आँखों की कोरों से निकलते कुछ आँसुओं वाला, **भ्रुकुटीकुटिल-आननः** टेढ़ी हुई भौंहों से युक्त चेहरे वाला, **स्फुरित-ओष्ठः** थरथराते हुए होठों वाला **प्रणयजः** प्रणय से उत्पन्न **मृग-अक्षीणां कोपः** मृगनयनियों का क्रोध **प्रिये** प्रिय के प्रति (होता है)। **दष्ट-ओष्ठः** चबाते हुए होठ वाला, **हस्तनिष्पेषी** रगड़ते हुए हाथ वाला, **विकट-भ्रुकुटीपुटः** भीषण भौंहों वाला, **स्वभुजप्रेक्षणैः** अपनी भुजाओं को देखने के द्वारा **निरर्गलः क्रोधः** अनियंत्रित क्रोध **शत्रौ** शत्रु के प्रति **भवेत्** होता है। **विकृतप्रेक्षणैः** विकृत दृष्टि से, **अक्षिविस्तारैः** आँखों के फैलने से, **भूरिभर्त्सनैः** बहुत धमकाने से (व्यक्त किन्तु) **क्रूरता-उज्झितः** क्रूरता से रहित, **कृत्रिमः कोपः** बनावटी क्रोध **कार्यवशात्** कार्य के वश से **भृत्ये** सेवक के प्रति (होता है)।

रौद्र रस समाप्त (४)

(वीररसः—५)

अविस्मयादसंमोहादविषादाच्च यः सताम्॥ १४६४॥

धर्माद्यर्थविशेषेषु कार्यतत्त्वविनिश्चयः।
नयश्च विनयः कीर्तिः पराक्रमणशक्तता॥ १४६५॥

प्रतापः प्रभुशक्तिश्च दुर्धर्षप्रौढसैन्यता।
मन्त्रशक्तिश्च संपन्नधनाभिजनमन्त्रिता॥ १४६६॥

इत्यादयो विभावाः स्युर्नटे काव्यसमन्विताः।
सामादीनामुपायानां यथास्वं विनियोजने॥ १४६७॥

विज्ञत्वं स्थैर्यधैर्ये च शौर्यं त्यागो यथोचितम्।
भाषणं भावगम्भीरवाक्यस्येत्येवमादयः॥ १४६८॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सर्वे गर्वानुभावाश्चानुभावाः स्युरथ स्मृतिः।
औग्र्यमावेगरोमाञ्चावमर्शाश्च धृतिर्मतिः॥ १४६९॥

एवंप्रभृतयो भावा यत्र स्युर्व्यभिचारिणः।
उत्साहः स्थायिभावश्च धीरा वीरं तमूचिरे॥ १४७०॥

उत्तमप्रकृतिष्वेव पुरुषेष्वेष जायते।

वीर रस—५

१४६४ ग-१४७१ ख. (अ०) **अविस्मयात्** गर्व के अभाव से, **असंमोहात्** अज्ञान के अभाव से **अविषादात् च** और विषाद के न होने से **सतां** सज्जनों को **धर्म-आदि-अर्थविशेषेषु** धर्म आदि (धर्म, अर्थ, काम) पुरुषार्थों में **यः कार्य-तत्त्वविनिश्चयः** जो कार्यों के तत्त्व का निश्चय (होता है), **नयः** नीति, **विनयः** इन्द्रियों पर जय, **कीर्तिः** कीर्ति, **पर-आक्रमणशक्तता** दूसरों पर आक्रमण करने की सामर्थ्य, **प्रतापः** प्रताप, **प्रभुशक्तिः च** प्रभुत्व की शक्ति, **दुर्धर्षप्रौढसैन्यता** (बहुत) पराक्रमी (जिससे लड़ना कठिन हो) और प्रौढ़ (युद्ध विद्या में मँजी हुई) सेना होना, **मन्त्रशक्तिः** मंत्रशक्ति, **संपन्नधन-अभिजनमन्त्रिता** धन और ऊँचे कुल से संपन्न मंत्रियों से युक्त होना **इति आदयः** आदि ये (और लोक में वीरता को सूचित करने वाले जो अन्य विभाव दिखाई दें वे) **नटे** नट में **काव्यसमन्विताः** वाचिक अभिनय से युक्त **विभावाः स्युः** विभाव होते हैं, **साम-आदीनाम्-उपायानां** साम आदि (साम, दाम, दंड, भेद) उपायों के **यथास्वं विनियोजने विज्ञत्वं** यथायोग्य योजना में कुशलता, **स्थैर्यधैर्ये च** स्थिरता और धीरज, **शौर्यं** शौर्य, **यथा-उचितं त्यागं** यथोचित त्याग, **भावगम्भीरवाक्यस्य भाषणं** भावगंभीर वाक्य बोलना **इति एवम् आदयः सर्वे** इत्यादि ये सब **गर्व-अनुभावाः च** और गर्व के अनुभाव **स्युः** होते हैं; **अथ** इसके बाद **स्मृतिः** स्मृति, **औग्र्यम्** उग्रता, **आवेगरोमाञ्च-अवमर्षाः च** आवेग, रोमांच और अवमर्ष, **धृतिः मतिः** धृति मति **एवं प्रभृतयः** इत्यादि **यत्र** जिसमें **व्यभिचारिणः भावाः स्युः** व्यभिचारी भाव होते हैं **उत्साहः स्थायिभावः च** और उत्साह स्थायी भाव (होता है) **तम्** उसे **धीराः** विद्वानों ने **वीरम् ऊचिरे** वीर (रस) कहा है। **एषः** यह **उत्तमप्रकृतिषु पुरुषेषु एव** उत्तम प्रकृति के पुरुषों में ही **जायते** उत्पन्न होता है।

सम्यग्विज्ञाय षाड्गुण्यप्रयोगो गीयते नयः॥ १४७१॥

संधिश्च विग्रहो यानमासनं संश्रयस्तथा।
द्वैधीभाव इति प्रोक्ता नीतिशास्त्रेषु षड्गुणाः॥ १४७२॥

इन्द्रियाणां जयं प्राह विनयं शंकरप्रियः।
प्रतापः पौरुषोद्भूता प्रसिद्धिः शत्रुतापिनी॥ १४७३॥

कीर्तिः सुहृदुदासीनजनानन्दप्रदं यशः।
सामदाने भेददण्डावित्युपायचतुष्टयम्॥ १४७४॥

स्थैर्यं त्वचलचित्तत्वं धैर्यं गाम्भीर्यशालिता।
शौर्यं भवेदनुद्भूतभयं युद्धप्रवर्तनम्॥ १४७५॥

१४७१ ग-१४७५. (अ०) **सम्यक् विज्ञाय** अच्छी तरह जान कर **षाड्गुण्यप्रयोगः** षाड्गुण्य का प्रयोग **नयः गीयते** नय कहा गया है। **संधिः च विग्रहः** संधि और युद्ध, **यानम् आसनं संश्रयः** यान (चढ़ाई करना), आसन (पड़ाव), संश्रय (आश्रय स्थल ढूँढना) **तथा द्वैधीभावः** और द्वैधीभाव (शत्रुओं में फूट डालना) **इति** ये **नीतिशास्त्रेषु** नीतिशास्त्रों में **षद्-गुणाः**

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रोक्ताः छ गुण कहे गये हैं। शंकरप्रियः शंकर प्रिय (शार्ङ्गदेव) इन्द्रियाणां जयः इन्द्रियों पर विजय को विनयं प्राह विनय कहता है। पौरुष-उद्भूता पौरुष से उत्पन्न हुई शत्रुतापिनी प्रसिद्धिः शत्रु को ताप देने वाली प्रसिद्धि प्रतापः प्रताप (है)। सुहृत्-उदासीनजन-आनन्दप्रदं यशः मित्र और तटस्थ जनों को आनन्द देने वाला यश कीर्तिः कीर्ति (होती है)। सामदाने साम और दान, भेददण्डौ भेद और दंड इति उपायचतुष्टयं ये चार उपाय हैं। स्थैर्यं तु स्थैर्य तो अचलचित्तत्वं चित्त की अचलता (और) धैर्यं गाम्भीर्यशालिता धैर्य गंभीरता से युक्त होना (है)। अन्-उद्भूतभयं युद्धप्रवर्तनं भय उत्पन्न हुए बिना (निर्भयता से) युद्ध आरंभ करना शौर्यं भवेत् शौर्य होता है।

(सर०) कुछ विभावों का स्वरूप यहाँ ग्रन्थकार ने बताया है।

वीरः स्यादुचिते युद्धे रौद्रस्त्वनुचिते भवेत्।
दानवीरो धर्मवीरो युद्धवीर इति त्रिधा॥ १४७६॥

वीरो दानादयस्तत्र विभावाः प्रतिनायके।
नायके त्वनुभावाः स्युर्वीरस्येति विदां मतम्॥ १४७७॥

(इति वीररसः—५)

१४७६-१४७७. (अ०) उचिते युद्धे वीरः उचित युद्ध में वीर (और) अनुचिते तु अनुचित युद्ध में रौद्रः भवेत् रौद्र (रस) होता है। दानवीरः धर्मवीरः युद्धवीर दानवीर, धर्मवीर (और) युद्धवीर इति यों वीरः त्रिधा वीर तीन प्रकार का (होता है)। तत्र उसमें दान-आदयः दान आदि प्रतिनायके विभावाः प्रतिनायक में विभाव नायके तु नायक में तो वीरस्य अनुभावाः स्युः वीर (रस) के अनुभाव होते हैं इति विदां मतं यह वेत्ताओं का मत (है)।

(सर०) उचित और अनुचित को स्पष्ट करते हुए कल्लि० ने कहा कि समान बल वाले नायक और प्रतिनायक हों तो वह उचित युद्ध होता है जैसे राम और रावण में। वह वीर होगा। जहाँ एक प्रबल और दूसरा दुर्बल हो वह अनुचित युद्ध है जैसे भीम और दु:शासन में, वह रौद्र होगा।

प्रतिनायके विभावाः का अर्थ है कि प्रतिनायक द्वारा किया गया दान नायक के आश्रित दानवीर का, प्रतिनायक द्वारा किया गया धर्म नायकाश्रित धर्मवीर का और प्रतिनायक द्वारा किया गया युद्ध नायकाश्रित युद्धवीर का विभाव होता है। नायक द्वारा किया गया दान, धर्म और युद्ध नायकनिष्ठ वीर रस के अनुभाव होते हैं।

वीर रस समाप्त (५)

(भयानकरसः—६)

रक्षःपिशाचभल्लूकप्रभृतेर्भीषणाकृतेः।
दर्शनं श्रवणं शून्यागारारण्यप्रवेशयोः॥ १४७८॥

विकृतस्य ध्वनेस्त्रासोद्वेगयोः परसंस्थोः।
श्रवणं चानुसंधानं बन्धूनां वधबन्धयोः॥ १४७९॥

एवमाद्या विभावाः स्युरथ नेत्रकराङ्घ्रिणः।
मध्ये मध्ये स्तम्भकम्पौ रोमाञ्चनिचयस्तथा॥ १४८०॥

शुष्कोष्ठतालुता कम्पहृदयत्वं विवर्णता।
मुखस्य स्वरभेदश्च गात्रस्रंसो विलक्षता॥ १४८१॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कांदिशीकतया दृष्टेरनुभावा भवन्त्यमी।
अथ स्तम्भादयोऽप्यष्टौ दैन्यमावेगचापले॥ १४८२॥

शङ्कामोहावपि त्रासापस्मारमरणादयः।
यत्र संचारिणः स्थायि भयं स स्याद्भयानकः॥ १४८३॥

भयानक रस—६

१४७८-१४८३. (अ०) **रक्षः पिशाचभल्लूकप्रभृतेः भीषण-आकृतेः** राक्षस, पिशाच, भालू आदि भीषण आकृतियों का **दर्शनं** दर्शन, **शून्य-आगारा-अरण्य-प्रवेशयोः** सूने घर और जंगल में प्रवेश का (दर्शन या) **विकृतस्य ध्वनेः श्रवणं** विकृत ध्वनि का श्रवण, **परसंस्थः त्रास-उद्वेगयोः श्रवणं** दूसरों के भय और उद्वेग का श्रवण, **बन्धूनां वधबन्धयोः** बान्धवों के वध या बन्दी बनने का **श्रवणम् अनुसंधानं च** श्रवण तथा स्मरण **एवम् आद्याः विभावाः स्युः** इत्यादि विभाव होते हैं; **अथ** फिर **नेत्रकर-अङ्घ्रिणः** आँख, हाथ और पैरों का **मध्ये मध्ये स्तम्भकम्पौ** बीच-बीच में रुक जाना और काँपना **तथा** तथा **रोमाञ्चनिचयः** बहुत रोमांच, **शुष्क-ओष्ठतालुता** होठ और तालू सूखना, **कम्पहृदयत्वं** हृदय का काँपना, **मुखस्य विवर्णता** चेहरा फीका पड़ना **स्वरभेदः च** और स्वरभेद (आवाज़ बदल जाना), **गात्रस्रंसः** शरीर ढीला हो जाना, **कांदिशीकतया** भय से **दृष्टेः विलक्षता** दृष्टि का लक्ष्य पर स्थिर न रहना **अमी अनुभावाः सन्ति** ये अनुभाव होते हैं; **अथ** फिर **स्तम्भ-आदयः अष्टौ अपि** स्तंभ आदि आठों (सात्त्विक भाव), **दैन्यं** दीनता, **आवेगचापले** आवेग और चपलता, **शङ्कामोहौ अपि** शंका और मोह भी, **त्रास-अपस्मारमरण-आदयः** त्रास, अपस्मार, मरण आदि **यत्र संचारिणः** जिसमें संचारी (भाव होते हैं) **स्थायि भयं** (और) स्थायी (भाव) भय (होता है) **सः भयानकः स्यात्** वह भयानक (रस) होता है।

वास्तवं कृत्रिमं चेति भयं द्वेधा निगद्यते।
स्त्रीणां च नीचप्रकृतेः पुंसः स्याद्वास्तवं भयम्॥ १४८४॥

मध्यमे चोत्तमे पुंसि कृत्रिमं तदुदाहृतम्।
स्वभावादभयौ तौ हि स्वामिनं च गुरुं प्रति॥ १४८५॥

भयं विनयबोधाय दर्शयेतामतात्त्विकम्।
नीचैः स्वभावबोधार्थं तत्कार्यं मृदुचेष्टितैः॥ १४८६॥

स्वहेतूत्थः कृत्रिमश्च वित्रासितकमित्यपि।
भयानकस्त्रिधा तत्र प्रथमोऽन्वर्थनामकः॥ १४८७॥

कृत्रिमस्तूत्तमकृतो गुर्वादीन् प्रत्यवास्तवः।
विभीषिकार्थो बालादेर्वित्रासितकमिष्यते॥ १४८८॥

(इति भयानकरसः—६)

१४८४-१४८८. (अ०) **वास्तवं कृत्रिमं च इति** वास्तविक और कृत्रिम (बनावटी) यों **भयं द्वेधा निगद्यते** भय दो प्रकार का कहा जाता है। **स्त्रीणां** स्त्रियों में **नीचप्रकृतेः पुंसः च** और नीच प्रकृति के पुरुष का **वास्तवं भयं स्यात्** वास्तविक भय होता है। **मध्यमे च उत्तमे पुंसि** मध्यम और उत्तम (प्रकृति के) पुरुषों में **तत्** वह **कृत्रिमम् उदाहृतं** कृत्रिम कहा गया है। **तौ हि** वे दोनों ही **स्वभावात् अभयौ** स्वभाव से भयरहित (होते हैं)। **स्वामिनं गुरुं च प्रति** (लेकिन) स्वामी और गुरु के प्रति **विनयबोधाय** विनय के बोध के लिये **अतात्त्विकं भयं** कृत्रिम भय **दर्शयेतां** दिखायें। **नीचैः** नीचों के द्वारा **स्वभावबोध-**

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अर्थं स्वभाव (की नीचता) के बोध के लिये तत् वह (कृत्रिम भय) मृदुचेष्टितैः कार्यं मृदु चेष्टाओं से (व्यक्त) किया जाना चाहिये। स्वहेतु-उत्थः अपने कारण से उत्पन्न (स्वहेतूत्थ) कृत्रिमः च और कृत्रिम वित्रासितकम् अपि और वित्रासितक इति भयानकः त्रिधा यों भयानक (रस) तीन प्रकार का (होता है)। तत्र उनमें से प्रथमः पहला अन्वर्थनामकः अन्वर्थ नाम वाला (है)। गुरु-आदीन् प्रति गुरु आदि के प्रति उत्तमकृतः उत्तम (पुरुषों के) द्वारा (प्रकट) किया गया अवास्तवः तु अवास्तविक (भय) कृत्रिमः कृत्रिम (होता है)। बाल-आदेः विभीषिका-अर्थः बालक आदि को डराने के लिये वित्रासितकम् इष्यते वित्रासितक माना जाता है।

भयानक रस समाप्त (६)

(बीभत्सरसः—७)

स्वभावाद्धातुदोषाद्वा वस्त्वत्यन्ताप्रियात्मकम्।
निषिद्धमतितृप्तेश्चारुचिरं मलमिश्रितम्॥ १४८९॥

अनिष्टफलदानेन मुहुरुद्वेगदायकम्।
स्याद्विभावोऽथानुभावा हृत्कम्पो गात्रधूननम्॥ १४९०॥

संकोचनं च नासोष्ठहनूनां ष्ठीवनं तथा।
पदन्यासोऽप्यनियतः पिधानं नासयोर्दृशोः॥ १४९१॥

अथ संचारिणो मोहावेगापस्मारमृत्यवः।
व्याधिश्च यत्र बीभत्सः स स्थायिन्या जुगुप्सया॥ १४९२॥

शुद्धोऽशुद्धोऽत्यन्तशुद्धो बीभत्सस्त्रिविधो मतः।
आद्यौ रुधिरविष्ठादिशुद्धाशुद्धविभावजौ॥ १४९३॥

शुद्धधर्मोद्भवोऽत्यन्तशुद्धः संसारगोचरः।

(इति बीभत्सरसः—७)

बीभत्स रस—७

१४८९-१४९४ ख. (अ०) स्वभावात् धातुदोषात् वा स्वभाव अथवा धातु दोष के कारण अत्यन्त-अप्रियात्मकं वस्तु अत्यन्त अप्रिय स्वरूप वाली (कोई) वस्तु, निषिद्धं निषिद्ध (वस्तु), अतितृप्तेः च अरुचिरम् अत्यधिक तृप्ति के कारण अरुचिकर, मलमिश्रितं मलमिश्रित, अनिष्टफलदानेन अनिष्ट फल देने के कारण मुहुः उद्वेगदायकं बार-बार उद्वेग देने वाली (वस्तु) विभावः स्यात् विभाव होती है; अथ फिर (जहाँ) हृत्कम्पः हृदय काँपना, गात्रधूननं शरीर हिलना, नासा-ओष्ठहनूनां संकोचनं च नाक, होठ और ठोडी का सिकुड़ना तथा ष्ठीवनम् और थूकना, पदन्यासः अपि अनियतः पैरों के डग भी अनियमित (होना), नासयोः दृशोः पिधानं नाक के नथुने और आँखें बन्द करना—ये अनुभावाः अनुभाव (हों); अथ फिर मोह-आवेग-अपस्मारमृत्यवः मोह, आवेग, अपस्मार, मरण व्याधिः च और व्याधि यत्र जिसमें संचारिणः संचारी (हों) सः वह जुगुप्सया स्थायिन्या जुगुप्सा स्थायी (भाव) से (युक्त) बीभत्सः बीभत्स (रस होता है)। बीभत्सः शुद्धः अशुद्धः अत्यन्तशुद्धः बीभत्स (रस) शुद्ध, अशुद्ध और अत्यन्त शुद्ध त्रिविधः मतः (यों) तीन प्रकार का माना गया है। आद्यौ शुरू के दो रुधिरविष्ठा-आदिशुद्ध-अशुद्धविभावजौ रक्त, विष्ठा आदि (के क्रम से) शुद्ध और अशुद्ध विभाव से उत्पन्न होने वाले (और) शुद्धधर्म-उद्भवः शुद्ध धर्म से उत्पन्न होने वाले संसारगोचरः (हेयस्वरूप होने से) संसार विषयक अत्यन्तशुद्धः अत्यन्तशुद्ध (होते हैं)।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) रुधिर आदि शुद्ध विभाव होते हैं, इनसे उत्पन्न शुद्ध बीभत्स और विष्ठा आदि अशुद्ध विभाव होने से उनसे उत्पन्न अशुद्ध बीभत्स होता है।

आनन्द० और आड्० दोनों संस्करणों में 'उत्कम्पः' पाठ है। कल्लि० की टीका में भी यही है लेकिन सिंह० का हृत्कम्पः है जो आनन्द० की पादटिप्पणी में भी दिया गया है। अर्थ की दृष्टि से यही संगत है इसलिये हमने इसी का ग्रहण किया है।

बीभत्स रस समाप्त (७)

(अद्भुतरसः—८)

दुर्लभाभीष्टसंप्राप्तिः खेचराणां विलोकनम्॥ १४९४॥

विमानानां च मायानामिन्द्रजालस्य दर्शनम्।
प्रासादोपवनादेरप्यपूर्वस्यातिशायिनः॥ १४९५॥

दृष्ट्वा तु पुरुषं विद्याशिल्पाद्यतिशयान्वितम्।
एते यत्र विभावाः स्युरनुभावास्तु नेत्रयोः॥ १४९६॥

विस्तारणं निर्निमेषमीक्षणं पुलकोद्गमः।
साधुवादोल्लुकसने चानन्दाद्धारवस्तथा॥ १४९७॥

गद्गदं वचनं स्वेदवेपथू हर्षगोचरौ।
स्पर्शग्रहाश्रिताश्चानुभावाः संचारिणस्त्वमी॥ १४९८॥

स्तम्भः स्वेदश्च रोमाञ्चः प्रलयो गद्गदं वचः।
आवेगसंभ्रमौ जाड्यमिति यत्राथ विस्मयः॥ १४९९॥

स्थायी तमद्भुतं प्राह श्रीमत्सोढलनन्दनः॥

अद्भुत रस—८

१४९४ ग-१५०० ख. (अ०) **दुर्लभ-अभीष्टसंप्राप्तिः** दुर्लभ (और) बहुत चाही हुई वस्तु की प्राप्ति, **खेचराणां विमानानां च विलोकनं** आकाश में चलने वाले विमानों (दिव्यरथों) का देखना, **मायानाम् इन्द्रजालस्य दर्शनं** माया (और) इन्द्रजाल का दर्शन, **अपूर्वस्य अतिशायिनः** अपूर्व (और) श्रेष्ठ **प्रासाद-उपवन-आदेः अपि** प्रासाद, उपवन आदि का देखना भी **विद्याशिल्प-आदि-अतिशय-अन्वितम्** अत्यधिक विद्या, शिल्प आदि से युक्त **पुरुषं तु दृष्ट्वा** पुरुष को देख कर (चकित होना) **यत्र** जिसमें **एते विभावाः स्युः** ये विभाव हों; **अनुभावाः तु** और अनुभाव **नेत्रयोः विस्तारणं** आँखों का फैलना, **निर्निमेषम् ईक्षणं** पलक झपके बिना देखना, **पुलक-उद्गमः** रोमांच पैदा होना, **साधुवाद-उल्लुकसने** साधुवाद और उल्लुकसन (आनन्द से अंग हिलाना), **आनन्दात् हा-रवः** आनन्द से हा(-हा) ध्वनि करना तथा **गद्गदं वचनम्** और गद्गद् (होकर) बोलना, **हर्षगोचरौ स्वेदवेपथू** हर्ष से दिखाई देने वाले स्वेद और कम्प **स्पर्शग्रह-आश्रिताः च अनुभावाः** और स्पर्श तथा ग्रहण से होने वाले सभी अनुभाव हों; **संचारिणः तु अमी** और संचारी ये हों **स्तम्भः स्वेदः रोमाञ्चः** स्तंभ, स्वेद, रोमांच, **प्रलयं गद्गद वचः** मूर्च्छा, गद्गद् बोलना, **आवेगसंभ्रमौ** आवेग और संभ्रम, **जाड्यम् इति** जड़ता ये **यत्र** जिसमें हों **अथ** और **विस्मयः स्थायी** विस्मय स्थायी (भाव हो) **तम्** उसे **श्रीमत्सोढलनन्दनः** श्रीमान् सोढल का पुत्र (शार्ङ्गदेव) **अद्भुतं प्राह** अद्भुत कहता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

माया मिथ्याप्रकटितं रूपादिपरिवर्तनम्॥ १५००॥

असंभाव्यस्य सत्त्वस्य दर्शनं विविधौषधैः।
हस्तलाघवतो मन्त्रैरिन्द्रजालं प्रकीर्तितम्॥ १५०१॥

गात्रोद्धूननमाह्लादादत्रोल्लुकसनं मतम्।
किंचिदाकुञ्चिते नेत्रे स्पर्शः स्कन्धकपोलयोः॥ १५०२॥

भ्रूक्षेपणं चानुभावा नूला स्पर्शग्रहाश्रिताः।
आनन्दजस्तथा दिव्यो द्विविधोऽभिदधेऽद्भुतः॥ १५०३॥

आद्यो मनोरथावाप्तेर्दिव्यस्तूद्भवोऽपरः।

(इत्यद्भुतरसः—८)

१५०० ग-१५०४ ख. (अ०) **मिथ्याप्रकटितं** मिथ्या प्रकट किये गये **रूप-आदिपरिवर्तनं** रूप आदि का परिवर्तन **माया** माया (है)। **विविध-औषधैः** विविध औषधियों से, **हस्तलाघवतः** हाथ की सफ़ाई (चालाकी) से (और) **मन्त्रैः** मंत्रों से **असंभाव्यस्य सत्त्वस्य दर्शनम्** असंभाव्य प्राणी का दिखाया जाना **इन्द्रजालं प्रकीर्तितम्** इन्द्रजाल कहा गया है। **आह्लादात्** आह्लाद से **गात्र-उद्धूननं** अंग हिलाना **उल्लूकसनं मतम्** उल्लुकसन माना गया है। **स्पर्शग्रह-आश्रिताः** स्पर्शग्रह के आश्रित **नूला अनुभावाः** नये अनुभाव **नेत्रे किंचित् आकुञ्चिते** आँखें कुछ आकुंचित होना, **स्कन्धकपोलयोः स्पर्शः** कन्धे और गालों को छूना **भ्रूक्षेपणं च** और भौंह चलाना (होते हैं)। **आनन्दजः तथा दिव्यः** आनन्द से उत्पन्न और दिव्य (यों) **द्विविधः अद्भुतः** दो प्रकार का अद्भुत **अभिदधे** कहा गया है। **आद्यः** पहला **मनोरथ-अवाप्तेः** मनोरथ प्राप्ति से (और) **परः** दूसरा **दिव्यवस्तु-उद्भवः** दिव्य वस्तु से उत्पन्न होने वाला (होता है)।

अद्भुत रस समाप्त (८)

(शान्तरसः—९)

संसारभीरुता दोषदर्शनं विषयेषु च॥ १५०४॥

योगिसङ्गो मुनीनां च श्रुताः शमदमक्षमाः।
अध्यात्मविषया गोष्ठी तापसास्तापसाश्रमाः॥ १५०५॥

भूरिनिर्झरझांकारि वारि तीर्थानि तैर्थिकाः।
सरितः पुण्यपयसो नीवाराङ्कितसैकताः॥ १५०६॥

शैवं च वैष्णवं क्षेत्रं विजनानि वनानि च।
भक्ता भक्तिरसोन्मत्ताः शंकरस्य हरेरपि॥ १५०७॥

विष्णुभक्तिप्रभावाद्या विभावा यत्र संमताः।
मन्दस्पन्दो बहिश्चित्तमानन्दाश्रुप्लुते दृशौ॥ १५०८॥

रोमाञ्चकञ्चुका मूर्तिर्मोक्षशास्त्रार्थचिन्तनम्।
ब्रह्मविद्योपदेशश्च संवादस्तत्त्वगोचरः॥ १५०९॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नासाग्रानुगते नेत्रे ज्ञानमुद्राप्रदर्शनम्।
इत्यादयोऽनुभावाः स्युरिमे तु व्यभिचारिणः॥ १५१०॥

उन्मादः परमानन्दरसपानसमुद्भवः।
हर्षो धृतिः समीचीनो विबोधश्च स्मृतिर्मतिः॥ १५११॥

निर्वेदस्तत्त्वबोधोत्थः स्थायी शान्तो भवेदसौ।

शान्त रस—९

१५०४ ग-१५१२ ख. (अ०) संसारभीरुता संसार से भीरुता, विषयेषु च दोषदर्शनं विषयों में दोष दिखाई देना, योगिसङ्गः योगियों का संग, मुनीनां च श्रुता मुनियों के (बारे में) सुने हुए शमदमक्षमाः शम, दम और क्षमा, अध्यात्मविषया गोष्ठी अध्यात्म विषयक संवाद (चर्चा), तापसाः तापस-आश्रमाः तपस्वी और तपस्वियों के आश्रम, भूरिनिर्झरझांकारिः वारिः झरने का विपुल खलखल नाद करता हुआ पानी, तीर्थानि तैर्थिकाः तीर्थ और तीर्थयात्री, पुण्यपयसः पवित्र जलयुक्त (और) नीवार-अङ्कितसैकताः सरितः नीवार (बिना जोते और बोये उत्पन्न हुए जँगली चावल) युक्त बालू के तट वाली नदियाँ, शैवं वैष्णवं च क्षेत्रं शैव और वैष्णव क्षेत्र, विजनानि वनानि च निर्जन वन भक्तिरस-उन्मत्ताः भक्ति रस से उन्मत्त हुए शंकरस्य हरेः अपि भक्ताः शंकर और विष्णु के भक्त, विष्णुभक्तिप्रभाव-आद्याः विष्णु की भक्ति का प्रभाव आदि यत्र जिसमें विभावाः संमताः विभाव माने गये हैं; बहिः चित्तं मन्दस्पन्दः बाहर उन्मुख हुआ चित्त, मन्द स्पंदन, आनन्द-अश्रुप्लुते दृशौ आनन्दाश्रुओं से भरी हुई आँखें, रोमाञ्चकञ्चुका मूर्तिः रोमांच भरा शरीर, मोक्षशास्त्रार्थचिन्तनं मोक्ष संबन्धी शास्त्र के अर्थ का चिंतन, ब्रह्मविद्या-उपदेशः च ब्रह्मविद्या का उपदेश, तत्त्वगोचरः संवादः तत्त्व विषयक संवाद, नासा-अग्र-अनुगते नेत्रे नाक की नोक पर टिकी हुई आँखें, ज्ञानमुद्राप्रदर्शनं ज्ञानमुद्रा दिखाना इति-आदयः इत्यादि इमे ये अनुभावाः स्युः अनुभाव होते हैं; परमानन्दरसपानसमुद्भवः उन्मादः परम आनन्द रस के पान से उत्पन्न उन्माद, हर्षः धृतिः हर्ष, धैर्य, समीचीनः विबोधः समुचित विबोध, स्मृतिः मतिः च स्मृति और मति इमे तु व्यभिचारिणः ये व्यभिचारी (भाव और) तत्त्वबोध-उत्थः निर्वेदः स्थायी तत्त्वज्ञान से उत्पन्न निर्वेद स्थायी (भाव होता है) असौ यह शान्तः भवेत् शान्त (रस) होता है।

रत्यादिभेदविधुरो विषयोपप्लवोज्झितः॥ १५१२॥

परानन्दघनैकात्मनिर्भासः शान्त उच्यते।
स्वतो विषयवैमुख्यं शमः स्थाय्यथवा भवेत्॥ १५१३॥

नाट्यनिर्वाहको मध्ये मध्ये संचारिसंभवः।
स्वभावाभिनयाः पूर्वमाङ्गिका ये निरूपिताः॥ १५१४॥

ते शान्तविषया यस्माच्छान्तः प्रकृतिरात्मनः।
विहाय विषयौन्मुख्यं निजानन्दस्थितिर्यतः॥ १५१५॥

आत्मनः कथ्यते शान्तः स्वभावोऽसौ मतस्ततः।

(इति शान्तरसः—९)

१५१२ ग-१५१६ ख. (अ०) रति-आदिभेदविधुरः रति आदि भेदों से रहित, विषय-उपप्लव-उज्झितः विषयों के बहाव (/उपद्रव) से छूटा हुआ, पर-आनन्दघन-एक-आत्मनिर्भासः परमानन्द से घन (भरे) अभिन्न आत्मस्वरूप के ज्ञान रूपी प्रकाश वाला शान्तः उच्यते शान्त (रस) कहा जाता है। स्वतः विषयवैमुख्यं स्वतः (अपने आप) विषयों से विमुखता अथवा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

या शमः शम (यहाँ) स्थायी भवेत् स्थायी होता है। मध्ये मध्ये बीच-बीच में नाट्यनिर्वाहकः नाट्य का निर्वाह करने वाले संचारिसंभवः संचारी (भावों) से प्रकट होता है। पूर्वं पहले ये जो स्वभाव-अभिनयाः आङ्गिकाः निरूपिताः स्वाभाविक अभिनय वाले आंगिक निरूपित किये गये, ते वे शान्तविषयाः शान्त (रस) विषयक (होते हैं)। यस्मात् क्योंकि शान्तः शान्त (रस) आत्मनः प्रकृतिः आत्मा का स्वभाव (है)। यतः क्योंकि विषय-औन्मुख्यं विहाय विषयों की ओर झुकाव छोड़ कर आत्मनः निज-आनन्दस्थितिः कथ्यते आत्मा की निजानन्द स्थिति कही जाती है ततः उस कारण असौ यह शान्तः स्वभावः शान्त (आत्मा का) स्वभाव मन्वते माना जाता है।

शान्त रस समाप्त (९)

(मतान्तरेण रसान्तरशङ्का)

भक्तिं स्नेहं तथा लौल्यं केचित्त्रीन् मन्वते रसान्॥ १५१६॥

श्रद्धार्द्रताभिलाषांश्च स्थायिनस्तेषु ते विदुः।
तदसद्रतिभेदौ हि भक्तिस्नेहौ नृगोचरौ॥ १५१७॥

व्यभिचारित्वमनयोर्नृनार्योः स्थायिनौ तु तौ।
अयुक्तविषया तृष्णा लौल्यं तद्धास्यकारणम्॥ १५१८॥

अतो रसा नवैवेति मुनिना संप्रधारितम्॥

मतान्तर से अन्य रस की शंका

१५१६ ग-१५१९ ख. (अ०) केचित् कोई (आचार्य) भक्तिं स्नेहं तथा लौल्यं भक्ति, स्नेह और लौल्य (चंचलता, चपलता) त्रीन् रसान् (इन) तीन रसों को (अर्थात् ये तीन रस) मन्वते मानते हैं। ते तेषु वे उनमें श्रद्धा-आर्द्रता-अभिलाषान् च श्रद्धा, आर्द्रता और अभिलाषा को स्थायिनः विदुः स्थायी (भाव) जानते हैं। तत् असत् वह सत्य नहीं है। भक्तिस्नेहौ भक्ति और स्नेह नृगोचरौ मनुष्यों में दिखाई देने वाले रतिभेदौ हि रति के भेद ही (होते हैं)। अनयोः इन दोनों का व्यभिचारित्वं व्यभिचारी स्वरूप (है)। तौ तु लेकिन वे नृनार्योः पुरुष और स्त्रियों के स्थायिनौ स्थायी (भाव) होते हैं। अयुक्तविषया तृष्णा अनुचित विषय की तृष्णा लौल्यं लौल्य (होता है)। तत् वह हास्यकारणं हास्य का कारण (होता है)। अतः इसलिये रसाः नव एव इति रस नौ ही (होते हैं) यह मुनिना संप्रधारितं मुनि (भरत) के द्वारा निश्चित किया गया।

(सर०) भक्ति, स्नेह और लौल्य को (अन्य) रस और श्रद्धा, आर्द्रता और अभिलाषा को उनके स्थायी भाव मानने वाले मत को शंका के रूप में उठा कर उसके उत्तर के रूप में उसका यह दोष दिखाया कि भक्ति और स्नेह रति के ही भेद हैं जो व्यभिचारी होते हैं और स्त्री, पुरुषों में परस्पर स्थायी होते हैं। कल्लि० ने उदाहरण दिया कि जैसे सीता की राम विषयक भक्ति और राम का सीता के प्रति स्नेह रति के ही भेद हैं इसलिये स्थायी ही माने जाएँगे। लौल्य का अन्तर्भाव हास्य में हो जाता है और लौल्य हास्य का कारण यानी विभाव होता है। जैसे रावण की सीता विषयक तृष्णा श्रोताओं में हास्य उत्पन्न करती है। इसलिये उनका पृथक् अस्तित्व नहीं है और रस नौ ही हैं।

(रत्यादीनां स्थायिसंचारित्वव्यवस्था)

रत्यादयः स्थायिनश्चेत्स्युर्भूयिष्ठविभावजाः॥ १५१९॥

स्तोकैर्विभावैरुत्पन्नास्त एव व्यभिचारिणः।
रसान्तरेष्वपि तदा यथायोगं भवन्ति ते॥ १५२०॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यथा हि हासः शृङ्गारे रतिः शान्ते च दृश्यते।
वीरे क्रोधो भयं शोके जुगुप्सा च भयानके॥ १५२१॥

उत्साहविस्मयौ सर्वरसेषु व्यभिचारिणौ॥
शमः सर्वरसेष्वस्ति स्थैर्यात्त्वव्यभिचार्यसौ॥ १५२२॥

(इति नवरसलक्षणम्)

रति आदि में स्थायी और संचारी की व्यवस्था

१५१९ ग-१५२२. (अ०) **रति-आदिनः चेत्** यदि रति आदि **भूयिष्ठविभावजाः** बहुत विभावों से उत्पन्न (हों तो) **स्थायिनः स्युः** स्थायी होते हैं। **ते एव** वही **स्तोकैः विभावैः उत्पन्नाः** थोड़े विभावों से उत्पन्न (हों तो) **व्यभिचारिणः** व्यभिचारी (होते हैं)। **तदा ते** तब वे **रस-अन्तरेषु अपि** दूसरे रसों में भी **यथायोगं भवन्ति** यथासंभव होते हैं। **यथा हि** जैसे **शृङ्गारे हासः** शृंगार में हास **शान्ते रतिः च दृश्यते** और शान्त में रति दिखाई देते हैं; **वीरे क्रोधः** वीर (रस) में क्रोध, **शोके भयं** शोक में भय **भयानके च जुगुप्सा** और भयानक में जुगुप्सा (दिखाई देती है)। **उत्साहविस्मयौ** उत्साह और विस्मय **सर्वरसेषु** सब रसों में **व्यभिचारिणौ** व्यभिचारी (होते हैं)। **शमः** शम **सर्वरसेषु अस्ति** सब रसों में होता है। **असौ** यह **स्थैर्यात् तु** स्थिर होने से तो **अव्यभिचारी** अव्यभिचारी (होता है अर्थात् व्यभिचारी नहीं होता)।

(सर०) दोनों टीकाओं से यह स्पष्ट होता है कि रति आदि में किसे स्थायी और किसे संचारी माना जाय इस व्यवस्था में कारण का भेद यहाँ ग्रन्थकार ने बताया है। भूयिष्ठविभावजाः में 'भूयिष्ठ' यानी आलंबन और उद्दीपन दोनों प्रकार के विभाव जिनमें बहुत हों उनसे उत्पन्न स्थायी भाव होते हैं।

कल्लि० ने पूर्वोक्त 'दृढसंस्कार' और 'अभिभूत संस्कार' की याद दिलाते हुए कहा कि दृढ़ संस्कार वाले स्थिर होने से रति आदि स्थायी होते हैं और अभिभूत संस्कार वाले क्षणिक होने से व्यभिचारी होते हैं। तब वे रति आदि ही व्यभिचारी हो जाते हैं। **सर्वरसेषु व्यभिचारिणौ** का स्पष्टीकरण यह दिया कि 'सर्व' का अर्थसंकोच होता है कि उत्साह वीर रस में ही स्थायी होता है, शेष आठ में योग्यतानुरूप व्यभिचारी होता है और विस्मय का अद्‌भुत रस में ही स्थायी स्वरूप होता है, शेष में योग्यता के अनुसार व्यभिचारी होता है।

शमः सर्वरसेषु को कल्लि० ने यों स्पष्ट किया कि शृंगार आदि आठ रसों में से व्यक्ति जिस रस का अनुभव करता है, पूर्वजन्म के विशिष्ट सत्कार्यों के वश से उस व्यक्ति में उस रस से संबन्धित शम उत्पन्न होता है। इस रूप में शम का अस्तित्व सब रसों में होता है। लेकिन शान्त रस में शम स्थायी भाव और दूसरे रसों में व्यभिचारी होता है, यह शंका उत्पन्न होने से ग्रन्थकार ने कहा कि शम स्वतः विषयों से विमुख स्वरूप वाला उत्पन्न होता है। स्थिर स्वरूप से फिर से विषयों की इच्छा नष्ट होने से अव्यभिचारी ही होता है अर्थात् शान्त रस में नित्य स्थायी ही होता है।

नौ रसों का लक्षण समाप्त

(व्यभिचारिलक्षणम्)

अथ व्यभिचारिणां निर्वेदादीनां हि लक्षणम्।

व्यभिचारी भावों के लक्षण

१५२३ क-ख. (अ०) **अथ** अब **निर्वेद-आदीनां व्यभिचारिणां हि लक्षणं** निर्वेद आदि व्यभिचारी (भावों) का लक्षण (कहा जा रहा है)।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) कल्लि० ने कहा कि रस के लक्षण देते समय निमित्त कारण के रूप में विभाव कहे गये। रस के कार्य के रूप में अनुभाव भी कहे। रस के उपादान कारण के रूप में स्थायी भी कहे। लेकिन रस के सहकारी के रूप में संचारी तो केवल नाम देकर कह दिये, हरेक के लक्षण नहीं दिये। ग्रन्थकार अब निर्वेद आदि के विशेष लक्षण दे रहे हैं। निर्वेद आदि भाव रस की तरह विशिष्ट मनोविकार स्वरूप वाले होने से उस-उस के विभाव और अनुभाव कह कर लक्षण दे रहे हैं।

उपादान कारण यानी वह द्रव्यरूप कारण जिसके बिना वस्तु का स्वरूप निष्पन्न नहीं होता; जैसे—घड़े के लिये मिट्टी। निमित्त कारण अर्थात् वह कारण जो वस्तु के निर्माण का निमित्त होता है; जैसे—कुम्हार। सहकारी कारण वह कारण जो कार्य के निष्पन्न होने में सहायक होता है; जैसे—कुम्हार का चाक और दंड।

(निर्वेदः—१)

आक्रोशनमधिक्षेपो व्याधिक्रोधौ च ताडनम्॥ १५२३॥

दारिद्र्यमिष्टविरहः परवृद्धेश्च दर्शनम्।
नीचेष्विति विभावाः स्युरुत्तमे त्वपमाननम्॥ १५२४॥

तत्त्वबोधश्च यत्र स्यादनुभावास्तु रोदनम्।
निश्वासोच्छ्वसिते दीनमुखता संप्रधारणम्॥ १५२५॥

इत्यादयः स निर्वेदो भावः सूरिभिरिष्यते।

इति निर्वेदः (१)

निर्वेद—१

१५२३ ग-१५२६ ख. (अ०) **आक्रोशनम् अधिक्षेपः** आक्रोश, अपमान, **व्याधिक्रोधौ** व्याधि और क्रोध **ताडनं च** तथा ताड़न, **द्रारिद्र्यम् इष्टविरहः** दरिद्रता, प्रिय व्यक्ति का वियोग, **परवृद्धेः च दर्शनं** दूसरे की बढ़ोतरी देखना **इति** ये **नीचेषु** नीच (पुरुष) में **विभावाः स्युः** विभाव होते हैं। **उत्तमे तु** उत्तम (पुरुष) में तो **अपमाननं तत्त्वबोधः च** अपमान और तत्त्वबोध (विभाव हों); **यत्र** जिसमें **अनुभावाः तु** अनुभाव तो **रोदनं** रोना, **निश्वास-उच्छ्वसिते** निश्वास और उच्छ्वास, **दीनमुखता** चेहरा दीन होना, **संप्रधारणम् इति आदयः** संप्रधारण (उचित-अनुचित का विचार करना) इत्यादि होते हैं **सः** वह **सूरिभिः** विद्वानों के द्वारा **निर्वेदः भावः इष्यते** निर्वेद भाव माना जाता है।

(सर०) इत्यादयः में 'आदि' से लोक में सिद्ध दूसरे अनुभाव भी समझने चाहियें।

यह निर्वेद है। (१)

(ग्लानिः—२)

व्याधिर्वान्तिर्विरेकश्चोपवासो नियमस्तपः॥ १५२६॥

मनस्तापोऽतिपानातिव्यायामसुरतानि च।
निद्राछेदोऽध्वगमनं क्षुत्पिपासादयस्तथा॥ १५२७॥

विभावाः स्युरथ स्रस्ताधरनेत्रकपोलता।
मन्दावुत्क्षेपनिक्षेपौ पादयोस्तनुगात्रता॥ १५२८॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विवर्णशिथिलाङ्गत्वं कम्पानुत्साहतादयः।
यत्र भावेऽनुभावाः स्युः सा ग्लानिरभिधीयते॥ १५२९॥

इति ग्लानिः (२)

ग्लानि—२

१५२६ ग-१५२९. (अ०) यत्र भावे जिस भाव में व्याधिः वान्तिः विरेकः च व्याधि, वमन और विरेचन, उपवासः नियमः तपः उपवास, नियम, तप, मनस्तापः मनस्ताप, अतिपान-अतिव्यायामसुरतानि च अधिक मद्यपान, अतिव्यायाम और अतिसंभोग, निद्राछेदः नींद भंग होना, अध्वगमनं पथ पर चलना तथा क्षुत्पिपासा-आदयः और भूख, प्यास आदि विभावाः स्युः विभाव होते हैं; अथ फिर स्रस्त-अधरनेत्रकपोलता होठ, आँख और गालों का ढीला पड़ना, पादयोः पैरों का मन्दौ उत्क्षेपनिक्षेपौ मन्दता से ऊपर उठना और नीचे आना, तनुगात्रता शरीर का कृश होना, विवर्णशिथिल-अङ्गत्वं अंग तेजहीन, शिथिल होना, अनुत्साह-आदयः उत्साह न रहना आदि अनुभावाः स्युः अनुभाव होते हैं सा वह ग्लानिः अभिधीयते ग्लानि कही जाती है।

यह ग्लानि है। (२)

(शङ्का—३)

चौर्यराजापराधादेरकार्याद्ग्रहणं नृणाम्।
अन्येषु तत्सहायेषु विभावश्चेदथात्मनः॥ १५३०॥

अन्येनादर्शने यत्र पार्श्वयोर्मुहुरीक्षणम्।
कण्ठोष्ठमुखशोषश्च जिह्वायाः परिलेहनम्॥ १५३१॥

वेपथुर्मुखवैवर्ण्यं गुरुविह्वलजिह्वता।
उन्मुखेक्षणमित्यादिरनुभावगणो यदा॥ १५३२॥

नीचेषूत्तममध्येषु नरेषु मृदुचेष्टितैः।
सोत्तमानामपि स्त्रीणां भीरुत्वाद्भयकृद्भवेत्॥ १५३३॥

शंका—३

१५३०-१५३३. (अ०) चौर्यराज-अपराध-आदेः अकार्यात् चोरी, राज अपराध आदि अनुचित या अपराधपूर्ण कार्य के कारण नृणां ग्रहणं (अपराधी) मनुष्यों को पकड़ना, तत् अन्येषु सहायेषु उसके अन्य सहायकों (के बारे) में (भी शंका उत्पन्न होना) विभावः चेत् यदि विभाव हों; अथ फिर यत्र जिसमें आत्मनः अपने को अन्येन अदर्शने दूसरों के द्वारा देखा न जाने पर (भी) मुहुः पार्श्वयोः ईक्षणं बार-बार (अपनी) दोनों बाजुओं पर देखना, कण्ठ-ओष्ठमुखशोषः च गला, होठ और मुँह का सूखना, जिह्वायाः परिलेहनं जीभ को चाटना, वेपथुः शरीर काँपना, मुखवैवर्ण्यं चेहरे का रंग फीका पड़ना, गुरुविह्वलजिह्वता जीभ बहुत विह्वल होना, उन्मुख-ईक्षणम् इत्यादिः मुँह ऊपर उठा कर देखना इत्यादि यदा अनुभावगणः जब अनुभाव समुदाय (हो तो वह) नीचेषु नीच (पुरुषों) में (यह शंका का भाव होता है)। उत्तममध्येषु नरेषु उत्तम और मध्यम पुरुषों में (यह) मृदुचेष्टितैः मृदु चेष्टाओं से (अभिनीत करायें)। सः वह (शंका) उत्तमानां अपि उत्तम (पुरुषों) में भी (और) स्त्रीणां स्त्रियों में भीरुत्वात् भीरु स्वभाव के कारण भयकृत् भवेत् भयकारी (भयानक रस का विभाव) होती है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) कल्लि० ने कहा कि जब ये (उन्मुख ईक्षण आदि) अनुभाव होते हैं तब नीचों में असंदेहरूपा शंका होती है। लेकिन शंका वास्तव में संदेहरूपा ही होती है, असंदेह रूप वाली नहीं। ना०शा० के शंका के लक्षण में भी कहा गया है— 'शङ्का नाम सन्देहात्मिका स्त्रीनीचप्रभवा।' (ना०शा०, अ० ७, पृ० ३५७)

प्रियविप्रियजा शङ्का शृङ्गारे शार्ङ्गिणोदिता।
चौर्यराजापराधादिप्रभवा तु भयानके॥ १५३४॥

परस्था स्वसमुत्था च द्वेधा शङ्का निगद्यते।
नृषु भीरुस्वभावेषु तरलालोकनादिभिः॥ १५३५॥

सापराधत्वशङ्का यान्येषां सा परसंस्थिता।
स्वसमुत्था परे ज्ञास्यन्त्यपराधं ममेत्यसौ॥ १५३६॥

स्वशङ्कायां परज्ञानशङ्का या स्वसमुत्थिता।
सहभावोऽवहित्थेन शङ्काया दृश्यते रसे॥ १५३७॥

इति शङ्का (३)

१५३४-१५३७. (अ०) **प्रियविप्रियजा** प्रिय का (कुछ) विप्रिय (अप्रिय) होने से उत्पन्न शंका **शार्ङ्गिणा** शार्ङ्गदेव के द्वारा **शृङ्गारे उदिता** शृंगार में कही गई है। **चौर्यराज-अपराध-आदिप्रभवा तु** चोरी और राज अपराध आदि से उत्पन्न होने वाली तो **भयानके** भयानक (रस) में (होती है)। **परस्था स्वसमुत्था च** परस्थ (दूसरे में उत्पन्न) और स्वसमुत्थ (स्वयं में उत्पन्न) **शङ्का द्वेधा निगद्यते** (यों) शंका दो प्रकार की कही जाती है। **भीरुस्वभावेषु नृषु** भीरु स्वभाव वाले पुरुषों में **तरल-आलोकन-आदिभिः** चंचलता से देखने आदि के द्वारा **अन्येषां** दूसरों में **या स-अपराधत्वशङ्का** जो अपराध होने की शंका **सा** वह **परसंस्थिता** परस्थ (होती है)। **परे** दूसरे **मम अपराधं ज्ञास्यन्ति** मेरा अपराध जान जाएँगे **इति असौ** ऐसी यह **स्वसमुत्था** स्वसमुत्था (होती है)। **स्वशङ्कायाम्** (अपने में उत्पन्न) अपनी शंका में **या** जो **परज्ञानशङ्का** परज्ञान (दूसरों के द्वारा जान लिये जाने की) शंका **स्वसमुत्थिता** (वह) स्वसमुत्थिता (होती है)। **रसे** रसों में **शङ्कायाः** शंका का **अवहित्थेन समभावः** अवहित्था के साथ साहचर्य (दिखाई देता है)।

यह शंका है। (३)

(औग्र्यम्—४)

नृपापराधोऽसद्दोषकीर्तनं चोरधारणम्।
विभावाः स्युरथो बन्धो वधस्ताडनभर्त्सने॥ १५३८॥

एते यत्रानुभावास्तदौग्र्यं निर्दयतात्मकम्।

इत्यौग्र्यम् (४)

उग्रता—४

१५३८-१५३९ ख. (अ०) **नृप-अपराधः** राजा के प्रति अपराध, **असत् दोषकीर्तनं** बुरे दोष का बखान, **चोरधारणं** चोर को पकड़ना, **विभावाः स्युः** (ये जिसमें) विभाव होते हैं **अथ** और **बन्धः** कारावास, **वधः** वध, **ताडनभर्त्सने** मारना और धमकी देना **एते** ये **यत्र अनुभावाः** जहाँ अनुभाव (हों) **तत्** वह **निर्दय-आत्मकं** निर्दय स्वरूप वाला (भाव) **औग्र्यम्** औग्र्य (उग्रता, होता है)।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) दोनों संस्करणों में 'चोपधारणं' पाठ है जिसकी कोई संगति दिखाई नहीं देती। सिंह० की टीका में चोरधारणं है जिसकी पुष्टि ना०शा० के 'चौर्याभिग्रहण (खण्ड १, पृ० ३७०) से भी होती है। हमने सिंह० का पाठ लिया है।

यह औग्र्य है। (४)

(दैन्यम्—५)

चिन्तौत्सुक्यान्मनस्तापाद्दौर्गत्याच्च विभावतः॥ १५३९॥

अनुभावात्तु शिरसो व्यावृत्तेर्गात्रगौरवात्।

देहोपस्कारणत्यागाद्दैन्यं भावं विभावयेत्॥ १५४०॥

इति दैन्यम् (५)

दैन्य—५

१५३९ ग-१५४०. (अ०) विभावतः विभाव रूप चिन्ता-औत्सुक्यात् मनस्तापात् चिन्ता से, उत्सुकता से, मनस्ताप से दौर्गत्यात् च और दुर्गति या कठिन परिस्थिति से; (तथा) शिरसः व्यावृत्तेः सिर घुमाने, गात्रगौरवात् अंगों के भारी पड़ने, देह-उपस्करणत्यागात् शरीर के आभूषण के त्याग अनुभावात् तु अनुभावों से दैन्यं भावं विभावयेत् दैन्य (नामक व्यभिचारी) भाव को प्रकट करना चाहिये।

यह दैन्य है। (५)

(असूया—६)

नानापराधो विद्वेषः परस्यैश्वर्यसंपदाम्।
सौभाग्यमेधाविद्यादेर्दर्शनं च विभावकम्॥ १५४१॥

अनुभावास्त्वमर्षादिदोषोक्तिर्गुणनिह्नवः।
गुणस्य दोषीकरणमप्रेक्षणमधोमुखम्॥ १५४२॥

अवज्ञाभ्रुकुटीत्याद्या यत्रासूयाममूं विदुः।

इत्यसूया (६)

असूया—६

१५४१-१५४३ ख. (अ०) नाना अपराधः अनेक अपराध, विद्वेषः विद्वेष, परस्य-ऐश्वर्यसंपदां दूसरे का ऐश्वर्य और संपत्ति, सौभाग्यमेधाविद्यादेः दर्शनं च सौभाग्य, मेधा और विद्या आदि का दर्शन विभावकं विभाव वाला; (और) अमर्ष-आदिदोष-उक्तिः असहनशीलता आदि दोष बताना, गुणनिह्नवः गुण छिपाना, गुणस्य दोषीकरणं गुण को दोष बनाना, अप्रेक्षणं न देखना, अधोमुखं मुँह नीचा करना, अवज्ञा अवज्ञा, भ्रुकुटी भौंह (टेढ़ी करना) इति आद्याः इत्यादि यत्र जिसमें अनुभावाः तु अनुभाव (हों) अमूम् उसे असूयां विदुः असूया (के नाम से) जानते हैं।

यह असूया है। (६)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(मदः—७)

मद्यपानं विभावोऽथानुभावाः पञ्च येत्र च॥ १५४३॥

शयनं हसनं गानं रोदनं परुषोक्तयः।
उत्तमे पुरुषे स्वापो हासगाने तु मध्यमे॥ १५४४॥

रोदनं परुषोक्तिश्च भवतः पुरुषेऽधमे।
स स्यान्मदः स च त्रेधा तरुणो मध्यमोऽधमः॥ १५४५॥

मद—७

१५४३ ग-१५४५. (अ०) **यत्र** जिसमें **मद्यपानं विभावः** मद्यपान विभाव (होता है) **अथ** और **शयनं हसनं गानं रोदनं** सोना, हँसना, गाना, रोना **परुष-उक्तयः च** और कठोर बोलना **पञ्च अनुभावाः** (ये) पाँच अनुभाव (होते हैं उनमें से) **स्वापः उत्तमे पुरुषे** नींद उत्तम पुरुष में, **हासगाने तु मध्यमे** हँसना और गाना मध्यम में (और) **रोदनं परुष-उक्तिः च** रोना और कठोर बोलना **अधमे पुरुषे भवतः** अधम पुरुष में होता है **सः मदः स्यात्** (ऐसा) यह मद होता है। **सः च** और वह **तरुणः मध्यमः अधमः** तरुण, मध्यम (और) अधम **त्रेधा** तीन प्रकार का (होता है)।

तरुणोऽल्पोऽधमस्त्वत्र प्रवृद्धोऽधमसंश्रयात्।
सर्वेषां तरुणः प्रोक्तो मध्यमो मध्यनीचयोः॥ १५४६॥

पुमांसोऽधमसत्त्वा ये तेषामेवाधमो मदः।
अव्यक्तासंगतैर्वाक्यै रोमाञ्चनिचयैस्तनोः॥ १५४७॥

सुकुमारस्खलद्गत्याभिनयेत्तरुणं मदम्।
स्त्रस्तव्याकुलविक्षिप्तौ भुजौ स्खलितघूर्णिते॥ १५४८॥

नेत्रे गतिश्च कुटिलानुभावा मध्यमे मदे।
गतिभङ्गः स्मृतेर्नाशो हिक्का छर्दिः कफस्नुतिः॥ १५४९॥

गुर्वी जिह्वा ष्ठीवनं चानुभावाः स्युर्मदेऽधमे।

१५४६-१५५० ख. (अ०) **अत्र** इनमें (से) **अल्पः तरुणः** थोड़ा (मद) तरुण (होता है)। **अधमसंश्रयात्** अधम के आश्रय से **अधमः तु** अधम तो **प्रवृद्धः** बहुत बढ़ा हुआ (मद होता है)। **तरुणः** तरुण (मद) **सर्वेषां प्रोक्तः** सबमें कहा गया है। **मध्यमः** मध्यम (मद) **मध्यनीचयोः पुमांसः** मध्य और नीच पुरुषों में, **ये** जो **अधमसत्त्वाः** अधम प्रकृति वाले (पुरुष हैं)। **तेषाम् एव** उन्हीं में **अधमः मदः** अधम मद (होता है)। **अव्यक्त-असंगतैः वाक्यैः** अस्पष्ट (और) असंगत वाक्यों से, **तनोः रोमाञ्चनिचयैः** शरीर में बहुत रोमांचों से (और) **सुकुमारस्खलत् गत्या** सुकुमार और लड़खड़ाती चाल से **तरुणं मदं अभिनयेत्** तरुण मद का अभिनय करना चाहिये। **स्त्रस्तव्याकुलविक्षिप्तौ भुजौ** ढीली, व्याकुल और इधर-उधर फेंकी जाती हुई सी भुजाएँ, **स्खलितघूर्णिते नेत्रे** अस्थिर और घूमती हुई आँखें **गतिः च कुटिला** और चाल टेढ़ी-मेढ़ी **मध्यमे मदे** मध्यम मद में **अनुभावाः** अनुभाव (होते हैं)। **गतिभङ्गः** (बीच-बीच में) रुक जाने वाली चाल, **स्मृतेः नाशः** स्मृति का नाश, **हिक्का** हिचकी, **छर्दिः** वमन, **कफस्नुतिः** कफ गिरना, **गुर्वी जिह्वा** मोटी जीभ **ष्ठीवनं च** और थूकना **अधमे मदे** अधम मद में **अनुभावाः स्युः** अनुभाव होते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रङ्गे विधाय पानं तु नाटयेन्मदवर्धनम्॥ १५५०॥

पीत्वा रङ्गप्रवेशे तु मदक्षैण्याय बुद्धिमान्।
हर्षशोकभयोपायान्युगपद्दर्शयेद्बहून्॥ १५५१॥

इति मदः (७)

१५५० ग-१५५१. (अ०) रङ्गे रंगभूमि पर पानं विधाय तु मद्यपान योजित करके तो मदवर्धनं नाटयेत् मद का चढ़ना अभिनीत करें (और) पीत्वा (मद्य) पीकर रङ्गप्रवेशे तु रंगभूमि में प्रवेश करने में मदक्षैण्याय मद क्षीण होने के लिये बुद्धिमान् बुद्धिमान् (नट) हर्षशोकभय-उपायान् बहून् हर्ष, शोक, भय (आदि) बहुत उपायों को युगपत् दर्शयेत् एक साथ दिखायें।

यह मद है। (७)

(श्रमः—८)

अध्वव्यायामसेवाद्यैर्विभावैरनुभावकैः।
गात्रसंवाहनैरास्यसंकोचैरङ्गमोटनैः॥ १५५२॥

निश्वासैर्जृम्भितैर्मन्दैः पादक्षेपैः श्रमो यतः।

इति श्रमः (८)

श्रम—८

१५५२-१५५३ ख. (अ०) अध्वव्यायामसेवा-आद्यैः विभावैः रास्ता चलने, व्यायाम, सेवा आदि विभावों से (और) गात्रसंवाहनैः शरीर (हाथ-पैर) मलने, आस्यसंकोचैः मुँह के संकोच, अङ्गमोटनैः अंग मरोड़ने, निश्वासैः निश्वासों, जृम्भितैः जँभाइयों (और) मन्दैः पादक्षेपैः धीरे-धीरे डग भरने यतः अनुभावकैः इन अनुभावों से श्रमः श्रम (दिखाया जाता है)।

यह श्रम है। (८)

(चिन्ता—९)

विभावा यत्र दारिद्र्यमैश्वर्यभ्रंशनं तथा॥ १५५३॥

इष्टार्थापहृतिश्चाथ श्वासोच्छ्वासाधोमुखम्।
संतापः स्मरणं ध्यानं कार्श्यं देहानुपस्कृतिः॥ १५५४॥

अधृतिश्चानुभावाः स्युः सा चिन्ता परिकीर्तिता।
वितर्कोऽस्याः क्षणे पूर्वे पाश्चात्ये वोपजायते॥ १५५५॥

इति चिन्ता (९)

चिन्ता—९

१५५३ ग-१५५५. (अ०) यत्र जिसमें दारिद्र्यम् ऐश्वर्यभ्रंशनं दरिद्रता, ऐश्वर्य का नाश तथा और इष्ट-अर्थ-अपहृतिः इष्ट वस्तु का अपहरण विभावाः विभाव (होते हैं) अथ और श्वास-उच्छ्वासौ (जल्दी-जल्दी) श्वास-उच्छ्वास (उसाँसें भरना), अधोमुखं नीचे मुँह करना, संतापः स्मरणं ध्यानं संताप, स्मरण, ध्यान, कार्श्यं दुबलापन, देह-अनुपस्कृतिः शरीर को

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सँवारा न होना अधृतिः च और धैर्य न रहना अनुभावाः स्युः अनुभाव होते हैं सा चिन्ता परिकीर्तिता वह चिन्ता कही गई है। अस्याः पूर्वे पाश्चात्ये वा क्षणे इसके पहले या बाद वाले क्षण में वितर्कः उपजायते वितर्क उत्पन्न होता है।

(सर०) दोनों संस्करणों में 'ऐश्वर्यं भ्रंशनं' पाठ है। अर्थसंगति की दृष्टि से सिंह० का ऐश्वर्यभ्रंशनं पाठ सही है। ना०शा० में भी 'ऐश्वर्यभ्रंश …' ही है।

यह चिन्ता है। (९)

(धृतिः—१०)

विवेकः श्रुतिसंपत्तिर्गुरुभक्तिस्तपस्विता।
एते विषयभावेन करणत्वेन च स्थिताः॥ १५५६॥

इष्टाधिकानामिष्टानां लाभस्तु विषयत्वतः।
क्रीडा करणभावेन विभावा यत्र संमताः॥ १५५७॥

प्राप्तभोग्योपभोगस्य त्वप्राप्तातीतभोगयोः।
जीर्णे नष्टे चाविषादो न तु शोचनमित्यपि॥ १५५८॥

अनुभावद्वयं यत्र धृतिं तां ब्रुवते बुधाः।

इति धृतिः (१०)

धृति—१०

१५५६-१५५९ ख. (अ०) यत्र जहाँ विवेकः विवेक, श्रुतिसंपत्तिः वेद (या शास्त्र सुनने से उत्पन्न) ज्ञान की संपन्नता, गुरुभक्तिः गुरुभक्ति, तपस्विता तपस्विता एते ये विषयभावेन विषय के रूप में करणत्वेन च स्थिताः और साधन के रूप में स्थित (हों), विषयत्वतः विषय रूप से इष्ट-अधिकानाम् इष्टानां लाभः तु इष्ट से अधिक इष्टों की प्राप्ति (और) करणभावेन क्रीडा साधन रूप से क्रीडा विभावाः संमताः विभाव माने गये हैं; प्राप्तभोग्य-उपभोगस्य तु प्राप्त भोग्य के उपभोग का (और) अप्राप्त-अतीतभोगयोः अप्राप्त (न मिले हुए) और अतीत के भोगों के जीर्णे नष्टे च जीर्ण या नष्ट होने पर भी अविषादः विषाद न होना, न तु शोचनम् न ही शोक करना इति अपि ये भी अनुभावद्वयं दो अनुभाव यत्र जहाँ (हों) ताम् उसे बुधाः विद्वान् धृतिं ब्रुवते धृति कहते हैं।

(सर०) आड्० में 'क्रीडाकरणभावेन' है और आनन्द० में क्रीडा करणभावेन यों प्राप्त है। यही अर्थसंगत पाठ है इसलिये हमने यही रखा है।

दोनों संस्करणों में 'प्राप्तभाग्योप …' है। सिंह० की टीका में प्राप्तभोग्योप … है। ना०शा० में भी 'प्राप्तानामुपभोगः' है। इसी से संगत अर्थ प्राप्त होता है इसलिये हमने इसी का ग्रहण किया है।

यह धृति है। (१०)

(स्मृतिः—११)

पश्चिमप्रहरे रात्रेः स्वास्थ्यं निद्राक्षयस्तथा॥ १५५९॥

ध्यानं च मुहुरभ्यासः सदृशः श्रुतिदर्शने।
एते यत्र विभावाः स्युरनुभावास्तु कम्पितम्॥ १५६०॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उद्वाहितं च शीर्षस्य सदृशस्यावलोकनम्।
भ्रूनतिश्च स्मृतिः सा स्यात्सुखदुःखप्रदायिनाम्॥ १५६१॥

चिरविस्मृतवस्तूनां स्मरणं स्मृतिरुच्यते।

इति स्मृतिः (११)

स्मृति—११

१५५९ ग-१५६२ ख. (अ०) रात्रेः पश्चिमप्रहरे रात के अन्तिम पहर में स्वास्थ्यं स्वस्थता, निद्राक्षयः नींद टूटना तथा ध्यानं और ध्यान (का) मुहुः अभ्यासः बार-बार अभ्यास, सदृशः श्रुतिदर्शने सदृश का श्रवण और दर्शन यत्र जहाँ एते विभावाः स्युः ये विभाव होते हैं; अनुभावाः तु अनुभाव शीर्षस्य कम्पितं सिर का काँपना उद्वाहितं च और डोलना, सदृशस्य विलोकनं सदृश (वस्तु) को देखना, भ्रूनतिः च भौहों का झुकना (हों) सा वह स्मृतिः स्यात् स्मृति होती है। सुखदुःखप्रदायिनां चिरविस्मृतवस्तूनां स्मरणं सुख-दुःख देने वाली लंबे समय से भूली हुई वस्तु की याद को स्मृतिः उच्यते स्मृति कहा जाता है।

(सर०) दोनों संस्करणों में 'शीर्षस्यासदृशस्य' पाठ है। सिंह० की टीका में इसका अर्थ 'तादृशावलोकनं' दिया है। आनन्द० की पाटिप्पणी में शीर्षं स्यात्सदृशस्य पाठभेद दिया है। ना०शा० में 'समानदर्शन' है। इनके आधार पर शीर्षस्य सदृशस्यावलोकनं पाठ ही संगत है।

यह स्मृति है। (११)

(व्रीडा—१२)

गुरुव्यतिक्रमोऽवज्ञा कृते त्यागेऽनुतापिता॥ १५६२॥

प्रतिज्ञातार्थानिर्वाहो विभावैरेभिरुद्गता।
मुखावनमनं गूढवचनं च विचिन्तनम्॥ १५६३॥

वस्त्राङ्गुलीयकस्पर्शो नखानां कर्तनं मुहुः।
भुवि लेखनमित्याद्यैर्व्रीडाभावोऽनुभाव्यते॥ १५६४॥

व्रीडानुतापशुचिभिर्दृष्टाऽकार्ये कृते सति।

इति व्रीडा (१२)

व्रीडा—१२

१५६२ ग-१५६५ ख. (अ०) गुरुव्यतिक्रमः गुरु की अवहेलना, अवज्ञा कृते त्यागे अवज्ञा से किये गये त्याग में अनुतापिता पश्चात्ताप, प्रतिज्ञात-अर्थ-अनिर्वाहः प्रतिज्ञा की हुई बात का निर्वाह न करना, एभिः विभावै उद्गता इन विभावों से उत्पन्न मुख-अवनमनं चेहरा नीचे झुकाना, गूढवचनं गूढ़ बोलना विचिन्तनं च विशेष चिन्तन, वस्त्र-अङ्गुलीयकस्पर्शः वस्त्र और अँगूठी का स्पर्श करना, मुहुः बार-बार नखानां कर्तनं नाखूनों को कुतरना, भुवि लेखनं भूमि पर लिखना (रेखाएँ बनाना) इति-आद्यैः आदि के द्वारा व्रीडा भावः व्रीडा भाव अनुभाव्यते अनुभावित होता है। अकार्ये कृते सति न करने योग्य कार्य करने पर (अर्थत् अकार्य किये हुओं में) अनुतापशुचिभिः पश्चात्ताप से पवित्र हुओं के द्वारा व्रीडा दृष्टा व्रीडा दिखाई देती है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) दोनों संस्करणों में 'प्रतिज्ञातार्थनिर्वाहः' पाठ है और सिंह० ने भी 'प्रतिज्ञातार्थनिर्वहणं' कहा है। जो असंगत है क्योंकि प्रतिज्ञात अर्थ का निर्वाह करने से व्रीडा नहीं होती, निर्वाह न करने से होती है। ना०शा० में इसीलिये इसे 'अकार्यकरणात्मिका' कह कर 'प्रतिज्ञातानिर्वहणपश्चात्तापादिभिः' कहा है (खण्ड १, पृ० ३६३) अर्थात् प्रतिज्ञात अर्थ का निर्वाह न करने के बाद उत्पन्न पश्चात्ताप से होती है। प्रतिज्ञातार्थानिर्वाहः से उचित अर्थ प्राप्त होने से हमने यही रखा है।

सं०र० के मूल पाठ में '... शुचिभिर्दृष्टा कार्ये कृते सति' है। इसमें 'कार्ये कृते सति' का अर्थ है 'कार्य करने पर' जो संगत नहीं है। 'कार्ये' के स्थान पर 'अकार्ये' से यह संगत अर्थ प्राप्त हो जाता है कि अकार्य किये हुए होने पर (उनमें) पश्चात्ताप से पवित्र हुओं के द्वारा व्रीडा दिखाई देती है। इसलिये हमने दृष्टाऽकार्ये रखा है। ना०शा० में भी 'किञ्चिदकार्यं कुर्वन्' में 'अकार्य' ही है। (वही, पृ० ३६४)

(मोहः—१३)

देवजोपद्रवाद्देहपीडेष्टविरहादिकम्॥ १५६५॥

मर्मप्रहारोऽप्यस्थाने घोरचोरादिजं भयम्।
तत्प्रतीकारशून्यस्य वैरानुस्मरणादयः॥ १५६६॥

विभावाः सन्ति यत्राथ पतनं देहघूर्णनम्।
हृदयस्थानवस्थानमिन्द्रियाणामचेष्टता॥ १५६७॥

इत्यादयोऽनुभावास्तं मोहमाहुर्मनीषिणः।
पश्यतो भीतिहेतुं तत्प्रतीकारमपश्यतः॥ १५६८॥

कार्यानिश्चयिनी चित्तवृत्तिर्मोहोऽभिधीयते॥

इति मोहः (१३)

मोह—१३

१५६५ ग-१५६९ ख. (अ०) यत्र जहाँ देवज-उपद्रवात् दैवी उपद्रव से उत्पन्न देहपीडा शरीर की पीड़ा, इष्टविरह-आदिकं प्रिय (व्यक्ति) का विरह आदि, मर्मप्रहारः मर्म पर प्रहार, अस्थाने अपि अस्थान पर भी (प्रहार), घोरचोर-आदिजं भयं घोर चोर आदि से उत्पन्न भय, तत् प्रतीकारशून्यस्य उसका (वैर का) प्रतिकार करने में असमर्थ व्यक्ति का (व्यक्ति द्वारा) वैर-अनुस्मरण-आदयः वैर का स्मरण आदि विभावाः सन्ति विभाव होते हैं। अथ फिर पतनं गिर पड़ना, देहघूर्णनं शरीर में चक्कर आना, हृदयस्य-अन्-अवस्थानं हृदय की अस्थिरता, इन्द्रियाणाम् अचेष्टता इन्द्रियों का निष्चेष्ट होना इति-आदयः अनुभावाः इत्यादि अनुभाव (होते हैं) तम् उसे मनीषिणः बुद्धिमान् मोहम् आहुः मोह कहते हैं। भीतिहेतुं पश्यतः भय का कारण देखते हुए तत् प्रतीकारम् अपश्यतः उसका प्रतिकार दिखाई न देने पर कार्य-अनिश्चयिनी चित्तवृत्तिः कार्य का निश्चय न कर पाने वाली चित्तवृत्ति मोहः अभिधीयते मोह कही जाती है।

यह मोह है। (१३)

(आलस्यम्—१४)

अतितृप्तिः स्वभावश्च गर्भव्याधिश्रमादयः॥ १५६९॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विभावा अनुभावास्तु निद्रातन्द्रासनाशनात्।
ऋते सर्वक्रियाद्वेषो यत्रालस्यं तदुच्यते॥ १५७०॥

इत्यालस्यम् (१४)

आलस्य—१४

१५६९ ग-१५७०. (अ०) यत्र जहाँ अतितृप्तिः अत्यधिक तृप्ति स्वभावः च और स्वभाव गर्भव्याधिश्रम-आदयः गर्भ, व्याधि, श्रम आदि विभावाः विभाव (हों); अनुभावाः तु और अनुभाव निद्रातन्द्रा-आसन-अशनात् ऋते नींद, ऊँघ, बैठने, खाने के सिवा सर्वक्रियाद्वेषः सब क्रियाओं से द्वेष (अर्थात् न करना, हो) तत् आलस्यम् उच्यते वह आलस्य कहा जाता है।

यह आलस्य है। (१४)

(चापलम्—१५)

अमर्षप्रातिकूल्येर्ष्यारागद्वेषाश्च मत्सरः।
इति यत्र विभावाः स्युरनुभावास्तु भर्त्सनम्॥ १५७१॥

वाक्पारुष्यं प्रहारश्च ताडनं वधबन्धने।
तच्चापलमनालोच्याकार्यकारित्वमिष्यते॥ १५७२॥

इति चापलम् (१५)

चपलता—१५

१५७१-१५७२. (अ०) यत्र जहाँ अमर्षप्रातिकूल्य-ईर्ष्यारागद्वेषाः अमर्ष, प्रतिकूलता, ईर्ष्या, राग, द्वेष मत्सरः च और मत्सर इति विभावाः स्युः ये विभाव होते हैं (और) अनुभावाः तु अनुभाव तो भर्त्सनं धमकाना, वाक्पारुष्यं बोली में कठोरता, प्रहारः ताडनं च प्रहार करना और मारना, वधबन्धने वध और कारावास, अन्-आलोच्य अकार्यकारित्व बिना विचारे अनुचित काम करना तत् वह चापलम् इष्यते चपलता माना जाता है।

यह चपलता है। (१५)

(हर्षः—१६)

देवभर्तृगुरुस्वामिप्रसादः प्रियसंगमः।
मनोरथाप्तिरप्राप्यमनोरथधनागमः॥ १५७३॥

समुत्पत्तिश्च पुत्रादेर्विभावो यत्र जायते।
नेत्रवक्त्रप्रसादश्च प्रियोक्तिः पुलकोद्गमः॥ १५७४॥

अश्रुस्वेदादयश्चानुभावा हर्षं तमादिशेत्।

इति हर्षः (१६)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हर्ष—१६

१५७३-१५७५ ख. (अ०) **यत्र** जहाँ **देवभर्तृगुरुस्वामिप्रसादः** देव, पति, गुरु, स्वामी का प्रसाद, **प्रियसंगमः** प्रिय (व्यक्ति) का संगम, **मनोरथ-अवाप्तिः** मनोरथ की प्राप्ति, **अप्राप्यमनोरथधन-आगमः** अप्राप्य मनोरथ (और) धन का आना (प्राप्त होना) **पुत्र-आदेः समुत्पत्तिः च** और पुत्र आदि का उत्पन्न होना **विभावः जायते** विभाव उत्पन्न होते हैं (और) **नेत्रवक्त्र-प्रसादः** आँख और चेहरे की प्रसन्नता, **प्रिय-उक्तिः** प्रिय बोलना, **पुलक-उद्गमः** रोमांच पैदा होना, **अश्रुस्वेद-आदयः च अनुभावाः** अश्रु, स्वेद आदि अनुभाव (हों) **तं हर्षम् आदिशेत्** उसे हर्ष निर्धारित किया जाता है।

यह हर्ष है। (१६)

(अमर्षः—१७)

विद्याधनबलैश्वर्याधिकैर्मध्येसभं नृभिः॥ १५७५॥

अधिक्षेपादमर्षः स्यात्प्रतीकारस्पृहात्मकः।
नृणामुत्साहिनामेव स स्यात्तस्यानुभावकः॥ १५७६॥

स्वेदोऽधोमुखता मूर्धकम्पो निर्लक्षचित्तता।
उपायान्वेषणं चित्तोत्साहस्तस्यानुभावकाः॥ १५७७॥

इत्यमर्षः (१७)

अमर्ष—१७

१५७५ ग-१५७७. (अ०) **विद्याधनबल-ऐश्वर्य-अधिकैः नृभिः** विद्या, धन, बल, ऐश्वर्य के आधिक्य वाले मनुष्यों के द्वारा **सभं मध्ये** सभा के बीच **अधिक्षेपात्** अपमान के कारण **प्रतीकारस्पृहा-आत्मकः** प्रतिकार करने की इच्छा के स्वरूप वाला **अमर्षः स्यात्** अमर्ष होता है। **सः** वह **उत्साहिनां नृणाम् एव** उत्साही पुरुषों में ही **तस्य अनुभावकः स्यात्** उसका अनुभव कराने वाला होता है। **स्वेदः** स्वेद, **अधोमुखता** नीचे मुख होना, **मूर्धकम्पः** सिर काँपना, **निर्लक्षचित्तता** मन लक्ष्यहीन होना, **उपाय-अन्वेषणम्** उपाय ढूँढ़ना, **चित्त-उत्साहः** मन का उत्साह **तस्य अनुभावकाः** उसके अनुभाव (होते हैं)।

यह अमर्ष है। (१७)

(विषादः—१८)

सत्युपायेऽपि कार्यस्यासिद्धिर्दुर्दैवकारिता।
नृपापराधश्चौर्यादिग्रहणं च विभावकाः॥ १५७८॥

सहायान्वेषणोपायचिन्तने विमनस्कता।
उत्तमे मध्यमे चानुभावाश्चोत्साहसंश्रयाः॥ १५७९॥

अधमे धावनं ध्यानं मुखशोषविलोकने।
निद्रा निःश्वसितं सृक्कलेहनं चानुभावकाः॥ १५८०॥

सन्ति यत्र विषादोऽसौ भावो भावविदां मतः।

इति विषादः (१८)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विषाद—१८

१५७८-१५८१ ख. (अ०) यत्र जहाँ उपाये सति अपि उपाय होने पर भी कार्यस्य असिद्धिः कार्य सिद्ध न होना, दुर्दैवकारिता दुर्भाग्य होना, नृप-अपराधः राजा के प्रति अपराध चौर्य-आदि च ग्रहणम् और चोरी आदि का पकड़ा जाना विभावकाः विभाव (होते हैं); सहाय-अन्वेषणम्-उपायचिन्तने सहायक खोजना और उपाय का विचार करना, विमनस्कता अनमनापन, उत्साहसंश्रयाः (ये) उत्साह के आश्रय वाले अनुभावाः अनुभाव उत्तमे मध्यमे च उत्तम और मध्यम (पुरुषों) में (तथा) अधमे अधम (पुरुषों) में धावनं दौड़ना, ध्यानं, ध्यान, मुखशोषविलोकने मुँह सूखना, देखना, निद्रा नींद, निःश्वसितं निःश्वास सृक्कलेहनं च और मुँह के किनारे चाटना अनुभावकाः सन्ति अनुभाव होते हैं असौ भावः यह भाव भावविदां भाव के वेत्ताओं का विषादः मतः विषाद माना गया है।

यह विषाद है। (१८)

(अपस्मारः—१९)

देवैर्नागैस्तथा यक्षैः पिशाचैर्ब्रह्मराक्षसैः॥ १५८१॥
भूताद्यैश्च ग्रहैरुग्रैरावेशस्तत्स्मृतिस्तथा।
अशुचेश्चिरसंस्थानं शून्यागारस्य सेवनम्॥ १५८२॥
धातुवैषम्यमित्याद्यैर्विभावैरनुभावकैः।
स्पन्दनं कम्पनिःश्वासौ धावनं पतनं भुवि॥ १५८३॥
जिह्वाया लेहनं स्वेदः स्तम्भो वक्त्रं च फेनिलम्।
निःसंज्ञतेत्यादिभिश्चापस्मारमुपलक्षयेत्॥ १५८४॥

इत्यपस्मारः (१९)

अपस्मार—१९

१५८१ ग-१५८४. (अ०) देवैः नागैः देव, नाग तथा और यक्षैः पिशाचैः यक्ष, पिशाच, ब्रह्मराक्षसैः ब्रह्मराक्षस भूत-आद्यैः च और भूत आदि उग्रैः ग्रहैः आवेशः उग्र ग्रहों से ग्रस्त होना, तत् स्मृतिः उनकी याद तथा अशुचेः चिरसंस्थानं तथा अपवित्र (स्थिति या दशा वाले व्यक्ति) का देर तक रहना, शून्य-आगारस्य सेवनं सूने भवन में रहना, धातुवैषम्यं (वात, पित्त आदि या रक्त आदि) धातुओं की विषमता इत्यादि विभावैः इत्यादि विभावों से (और) स्पन्दनं स्पंदन, कम्पनिःश्वासौ कंप और निःश्वास, धावनं दौड़ना, भुवि पतनं भूमि पर गिरना, जिह्वायाः लेहनं जीभ को चाटना, स्वेदः स्तम्भः स्वेद, स्तम्भ, फेनिलं वक्त्रं झागयुक्त मुँह निःसंज्ञता च और बेसुध होना इत्यादिभिः अनुभावकैः इत्यादि अनुभावों के द्वारा अपस्मारम् उपलक्षयेत् अपस्मार को दिखायें।

यह अपस्मार है। (१९)

(जडता—२०)

कार्याविवेको जडता पश्यतः शृण्वतोऽपि वा।
तद्विभावाः प्रियानिष्टदर्शनश्रवणे रुजा॥ १५८५॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अनुभावास्तु चैवास्याः प्रतिवादावभाषणे।
इष्टानिष्टापरिज्ञानं चानिमेषेक्षणादयः॥ १५८६॥

सा पूर्वं परतो वा स्यान्मोहादिति विदां मतम्।

इति जडता (२०)

जड़ता—२०

१५८५-१५८७ ख. (अ०) पश्यतः शृण्वतः अपि वा देखते या सुनते हुए भी कार्य-अविवेकः जडता कार्य का विवेक न रहना जड़ता (है)। तत् विभावाः उसके विभाव प्रिय-अनिष्टश्रवणदर्शने प्रिय का अनिष्ट देखना और सुनना रुजा च एव और रोग (होते हैं)। अस्याः अनुभावाः तु इसके अनुभाव तो प्रतिवाद-अवभाषणे पलट कर जवाब देना और बुरा बोलना, इष्ट-अनिष्ट-अपरिज्ञानम् इष्ट, अनिष्ट को न समझना अनिमेष-ईक्षण-आदयः च और पलक झपके बिना देखना आदि (होते हैं)। सा वह मोहात् पूर्वं परतः वा मोह से पहले या बाद में स्यात् होती है इति विदां मतं यह विद्वानों का मत है।

यह जड़ता है। (२०)

(वितर्कः—२१)

यत्र विप्रतिपत्तिः स्यात्संशयोऽपि विमर्शनम्॥ १५८७॥

पक्षयोरुभयोरुक्ते माने साधकबाधके।
विभावाः स्युरिमे चानुभावाः शीर्षस्य कम्पनम्॥ १५८८॥

भ्रूक्षेपश्चतुरो हस्तस्तं वितर्कं प्रचक्षते।
यो वितर्कान्वितस्थायी सोऽवहित्थेन युज्यते॥ १५८९॥

इति वितर्कः (२१)

वितर्क—२१

१५८७ ग-१५८९. (अ०) यत्र जहाँ विप्रतिपत्तिः (युक्तिसंगति न होने से परस्पर) सहमति न हो, संशयः अपि संशय भी हो, उभयोः पक्षयोः उक्ते दोनों पक्षों की उक्ति में साधकबाधके माने साधक और बाधक प्रमाण में विमर्शनं विपरीत समझ हो, इमे विभावाः स्युः ये विभाव होते हैं अनुभावाः च और अनुभाव शीर्षस्य कम्पनं सिर हिलना, भ्रूक्षेपः भौंहें टेढ़ी करना, चतुरः हस्तः चतुर हस्त (मुद्रा हो) तं वितर्कं प्रचक्षते उसे वितर्क कहते हैं। यः जो वितर्क-अन्वितस्थायी वितर्क से युक्त स्थायी (भाव होता है) सः वह अवहित्थेन युज्यते अवहित्था (संचारी भाव) के साथ योजित होता है।

यह वितर्क है। (२१)

(सुप्तम्—२२)

निद्राविभावजं सुप्तं सुप्तावस्थात्मकं मतम्।
तस्यानुभावा निभृतं गात्रं नेत्रनिमीलितम्॥ १५९०॥

स्वप्नप्रलापनं श्वासोच्छ्वासौ बाह्याक्षलीनता।

इति सुप्तम् (२२)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सुप्त—२२

१५९०-१५९१ ख. (अ०) **निद्राविभावजं** निद्रा विभाव से उत्पन्न **सुप्त-अवस्था-आत्मकं** नींद की अवस्था के स्वरूप वाला **सुप्तं मतं** सुप्त माना गया है। **तस्य अनुभावाः** उसके अनुभाव **निभृतं गात्रं** निष्चेष्ट शरीर, **नेत्रनिमीलितम्** आँखें मुँदना, **स्वप्नप्रलापनं** स्वप्न में बड़बड़ाना, **श्वास-उच्छ्वासौ** गहरी लंबी साँसें (और) **बाह्य-अक्षलीनता** बाहरी इन्द्रियों का शान्त होना (होते हैं)।

यह सुप्त है। (२२)

(औत्सुक्यम्—२३)

संजातमिष्टविरहादुद्दीप्तं प्रियसंस्मृतेः॥ १५९१॥

निद्रया तन्द्रया गात्रगौरवेण च चिन्तया।
अनुभावितमाख्यातमौत्सुक्यं भावकोविदैः॥ १५९२॥

इत्यौत्सुक्यम् (२३)

औत्सुक्य—२३

१५९१ ग-१५९२. (अ०) **इष्टविरहात् संजातं** प्रिय (व्यक्ति) के वियोग से उत्पन्न (और उस) **प्रियसंस्मृतेः उद्दीप्तं** प्रिय (व्यक्ति) की स्मृति से उद्दीप्त (विभावों वाला), **निद्रया तन्द्रया** नींद, ऊँघ, **गात्रगौरवेण चिन्तया च** शरीर के भारीपन और चिन्ता के द्वारा **अनुभावितम्** अनुभव कराया गया (अर्थात् अनुभाव वाला भाव) **भावकोविदैः** भाव के निष्णातों के द्वारा **औत्सुक्यम् आख्यातम्** औत्सुक्य कहा गया है।

यह औत्सुक्य है। (२३)

(अवहित्थम्—२४)

अनुभावपिधानार्थोऽवहित्थं भाव उच्यते।
तद्विभाव्यं भयव्रीडाधाष्ट्र्यकौटिल्यगौरवैः॥ १५९३॥

गर्वादगणनेनापि तस्येते त्वनुभावकाः।
प्रियादिगोचरकथाभङ्गो धैर्यं च कृत्रिमम्॥ १५९४॥

अन्यथाकथनं तद्वदन्यथावेक्षणादयः।

इत्यवहित्थम् (२४)

अवहित्थ—२४

१५९३-१५९५ ख. (अ०) **अनुभावपिधान-अर्थः** अनुभाव ढकने के प्रयोजन वाला **अवहित्थं भावः उच्यते** अवहित्थ भाव कहा जाता है। **तत्** वह **भयव्रीडाधाष्ट्र्यकौटिल्यगौरवैः** भय, व्रीडा, ढिठाई, कुटिलता, गौरव **गर्वात् अगणनेन अपि** और गर्व के कारण न गिनने (अर्थात् किसी को कुछ न समझने) के द्वारा **विभाव्यं** विभावित करना चाहिये (अर्थात् उसमें ये विभाव होते हैं)। **प्रिय-आदि-गोचरकथाभङ्गः** प्रिय (व्यक्ति) आदि विषयक बातों को अचानक रोक देना, **कृत्रिमं धैर्यं** बनावटी धैर्य, **अन्यथाकथनं** बात बदल कर बोलना, **तत्-वत्** उसी तरह **अन्यथा-अवेक्षण-आदयः** दूसरी ओर देखना आदि **एते तु** ये **तस्य अनुभावकाः** उसके अनुभाव (होते हैं)।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) दोनों संस्करणों के 'अन्यथा वेक्षणादयः' के बजाय सिंह० की टीका के आधार पर **अन्यथावेक्षणादयः** पाठ रखा है जो संगत अर्थ देता है।

यह अवहित्थ है। (२४)

(मतिः—२५)

अपूर्वप्रतिभानं स्यान्मतिस्तां तु विभावयेत्॥ १५९५॥

अन्वयव्यतिरेकोत्थैः प्रत्ययैः शास्त्रचिन्तनैः।
ऊहापोहैश्च विविधैरथ तामनुभावयेत्॥ १५९६॥

संदंशचतुराद्यैश्च करैरुत्क्षेपणैर्भ्रुवोः।
नानाशास्त्रार्थविषयैः शिष्याणामुपदेशनैः॥ १५९७॥

तर्काख्यौ प्रत्ययावूहापोहौ विधिनिषेधयोः।

इति मतिः (२५)

मति—२५

१५९५ ग-१५९८ ख. (अ०) **अपूर्वप्रतिभानम्** अपूर्व प्रतिभा से (वस्तु या विषय का) भान (ज्ञान) होना **मतिः स्यात्** मति होती है। **तां तु** उसे **अन्वयव्यतिरेक-उत्थैः प्रत्ययैः** अन्वय-व्यतिरेक से उत्पन्न निश्चित ज्ञानों से, **शास्त्रचिन्तनैः** शास्त्रों के चिन्तन से **विविधैः ऊह-अपोहैः च** और विविध तर्क-प्रतितर्कों से **विभावयेत्** विभावित करें। **अथ** और **संदंशचतुर-आद्यैः च करैः** संदंश व चतुर आदि हस्तों से, **भ्रुवोः उत्क्षेपणैः** भौंहों को ऊपर उठाने से (उठा कर), **शिष्याणां** शिष्यों के प्रति **नानाशास्त्रार्थविषयैः उपदेशनैः** अनेक शास्त्रार्थ विषयक उपदेशों से **ताम् अनुभावयेत्** उसे अनुभावित करना चाहिये। **विधिनिषेधयोः** विधि और निषेध के **तर्क-आख्यौ** तर्क नाम वाले **प्रत्ययौ** ज्ञान **ऊहापोहौ** ऊह और अपोह (होते हैं)।

(सर०) अन्वय और व्यतिरेक तर्कशास्त्र में ज्ञानप्राप्ति के प्रमाण हैं। अन्वय में साहचार्य के द्वारा बोध कराया जाता है; जैसे धुएँ का आग से साहचर्य होता है यानी जहाँ धुआँ है वहाँ आग अवश्य है, यह स्वीकारात्मक विधि है। इसके विपरीत निषेधात्मक रूप से होने वाला ज्ञान व्यतिरेक कहलाता है; जैसे जहाँ आग नहीं है वहाँ धुआँ नहीं होता। सामान्य दृष्टि से इन्हीं को विधि और निषेध कह सकते हैं। यह तर्क और विपरीत तर्क अर्थात् पहली युक्ति से सुझाई गई बात को हटा कर नई युक्ति देना—इसे ऊह और अपोह कहते हैं।

यह मति है। (२५)

(विबोधः—२६)

स्वप्नान्तनिद्राछेदाभ्यामाहारपरिणामतः॥ १५९८॥

शब्दस्पर्शादिभिः स्वप्नैः स्मृतैर्वा जाग्रति स्थितैः।
विभाव्यतेऽथ जृम्भाक्षिमर्दनैः शयनोद्गमैः॥ १५९९॥

अङ्गुलित्रोटनैरङ्गवलनैर्योऽनुभाव्यते।
भुजविक्षेपणैः श्वासैर्विबोधप्रतिबोधनम्॥ १६००॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सम्यग्बोधोऽथवा लोकात्तद्विभावानुभावधीः।

इति विबोधः (२६)

विबोध—२६

१५९८ ग-१६०१ ख. (अ०) **स्वप्न-अन्तनिद्राछेदाभ्यां** स्वप्न के अन्त और नींद टूटने से, **आहारपरिणामतः** आहार के परिणाम से, **शब्दस्पर्श-आदिभिः** शब्द, स्पर्श आदि से, **स्वप्नैः** स्वप्नों से जाग्रति **स्थितैः स्मृतैः वा** अथवा जागते हुए स्मरण करने से **विभाव्यते** (विबोध) विभावित किया जाता है **अथ** फिर **जृम्भा-अक्षिमर्दनैः** जँभाई, आँखें मसलने, **शयन-उद्गमैः** बिस्तर से उठने, **अङ्गुलित्रोटनैः** उँगलियाँ चटकाने, **अङ्गवलनैः** शरीर घुमाने से **यः अनुभाव्यते** जो अनुभावित किया जाता है (वह विबोध होता है)। **भुजविक्षेपणैः** बाँहें इधर-उधर झटकाने से (और) **श्वासैः** (लंबी) साँसों से **विबोधप्रतिबोधनं** विबोध का ज्ञान (होता है) **अथवा** अथवा **लोकात्** लोक से **तत् विभाव-अनुभावधीः** उसके विभाव, अनुभाव की समझ का **सम्यक् बोधः** सही ज्ञान (होता है)।

यह विबोध है। (२६)

(व्याधिः—२७)

एकैकशो द्वन्द्वशो वा त्रयाणां वा प्रकोपतः॥ १६०१॥

वातपित्तकफानां स्युर्व्याधयो ये ज्वरादयः।
इह तत्प्रभवो भावो व्याधिरित्यभिधीयते॥ १६०२॥

स्तम्भाङ्गस्त्रंसविक्षिप्तगात्रसंकुचिताननैः।
उत्क्रोशकम्पस्तनितैश्चाभिनेयो ज्वरः पुनः॥ १६०३॥

कामजोऽप्यस्ति स द्वेधा शीतदाहप्रवर्तनात्।
हनुचालेन सर्वाङ्गकम्पेन मुखशोषतः॥ १६०४॥

परिदेवनरोमाञ्चमुखसंकोचनादिभिः।
शीतज्वरोऽभिनेयोऽथ दाहकोऽम्बुपिपासया॥ १६०५॥

कराङ्गगात्रविक्षेपाद् भूमिशय्याभिलाषतः।
शीतानुलेपनाकाङ्क्षाविकृष्टपरिदेवनैः॥ १६०६॥

इति व्याधिः (२७)

व्याधि—२७

१६०१ ग-१६०६. (अ०) **एक-एकशः** एक-एक **द्वन्द्वशः वा** या दो-दो **त्रयाणां वा** या तीन-तीन **वातपित्तकफानां** वात, पित्त और कफ के **प्रकोपतः** प्रकोप (अर्थात् मात्रा बढ़ जाने) से **ये** जो **ज्वर-आदयः व्याधयः स्युः** ज्वर आदि (रोग) उत्पन्न होते हैं **तत् प्रभवः भावः** उससे उत्पन्न होने वाला भाव **इह** यहाँ **व्याधिः इति अभिधीयते** व्याधि कहा जाता है। **स्तम्भ-अङ्गस्त्रंसविक्षिप्तगात्रसंकुचित-आननैः** स्तंभ, अंग ढीले पड़ने, इधर-उधर अंगों के गिरने, संकुचित चेहरे, **उत्क्रोशकम्पः तनितैः च** चिल्लाने, काँपने और अँगड़ाइयाँ लेने से **अभिनेयः** अभिनय करना चाहिये। **पुनः ज्वरः** फिर ज्वर **कामजः अपि अस्ति** काम से उत्पन्न हुआ भी होता है। **सः** वह **शीतदाह-प्रवर्तनात्** ठंड और दाह के लक्षण दिखाने से **द्वेधा** दो प्रकार का

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(होता है)। **हनुचालेन** ठोडी हिलाने, **सर्व-अङ्गकम्पेन** सारे अंगों के काँपने, **मुखशोषतः** मुँह सूखने, **परिदेवनरोमाञ्चमुखसंकोचन-आदिभिः** बिलखने, रोमांच, मुँह सिकोड़ने आदि से **शीतज्वरः अभिनेयः** शीत ज्वर अभिनीत करें। **अथ** और **दाहकः** दाहक (ज्वर) **अम्बुपिपासया** पानी की प्यास, **कर-अङ्गगात्रविक्षेपात्** हाथ, अंग और शरीर को इधर-उधर फेंकना, **भूमिशय्या-अभिलाषतः** भूमि पर सोने की इच्छा, **शीत-अनुलेपन-आकांक्षाविकृष्टपरिदेवनैः** ठंडा लेप लगाने की इच्छा और विलाप करने से (इनका अभिनय करें)।

(सर०) ना०शा० में भी ज्वर के 'सशीत' और 'सदाह' ये भेद तो कहे हैं लेकिन काम भाव से कोई संबन्ध नहीं बताया है (खण्ड १, अ० ७, पृ० ३७१)।

यह व्याधि है। (२८)

(उन्मादः—२९)

उत्तमानां विप्रलम्भे भवेत्प्रियवियोगतः।
नीचानां विभवभ्रंशात्सर्वेषां संनिपाततः॥ १६०७॥

अभिघातात्तथोन्मादस्तमेभिरनुभावयेत्।
विना निमित्तं हसितं रुदितं पठितं तथा॥ १६०८॥

नृत्तं गीतं च शयनोपवेशोत्थानधावनम्।
असंबद्धप्रलपनं चोद्वृत्तिर्धूलिभस्मनोः॥ १६०९॥

कपालचीरनिर्माल्याद्यलंकरणमित्यपि।
उन्मादः पृथगुक्तोऽयं व्याधिष्वन्तर्भवन्नपि॥ १६१०॥

अयं हि विप्रलम्भादौ वैचित्र्यं कुरुतेतमाम्।
अपस्मारोऽप्येवमेव बीभत्से च भयानके॥ १६११॥

इत्युन्मादः (२८)

उन्माद—२८

१६०७-१६११. (अ०) **उन्मादः** उत्तमानाम् उन्माद उत्तम (पुरुषों) में **प्रियवियोगतः** प्रिय (व्यक्ति) के वियोग से **विप्रलम्भे भवेत्** विप्रलंभ (शृंगार) में (उत्पन्न) होता है, **नीचानां** नीचों में **विभवभ्रंशात्** वैभव के नष्ट होने से **सर्वेषाम्** (और) सबमें **संनिपाततः** संनिपात (सब धातुओं के एक साथ प्रकोप) से **तथा** और **अभिघातात्** आघात के कारण (होता है)। **तम्** उसे **निमित्तं विना** अकारण **हसितं रुदितं तथा पठितं** हँसने, रोने तथा पढ़ने, **नृत्तं गीतं च** नाचने और गाने, **शयन-उपवेश-उत्थानधावनं** बिछौने पर (कभी) लेटने, (कभी) बैठने, (कभी) उठने, दौड़ पड़ने, **असंबद्धप्रलपनम्** असंबद्ध बड़बड़ाने, **धूलिभस्मनोः उद्वृत्तिः च** धूल और भस्म लगाने, **कपालचीरनिर्माल्य-आदि-अलंकरणम् इति अपि** कपाल (खप्पर), फटे वस्त्र, निर्माल्य आदि से अलंकरण करना **एभिः अनुभावयेत्** इन (क्रियाओं) से अनुभावित करायें। **अयम् उन्मादः** यह उन्माद **व्याधिषु अन्तर्भवन् अपि** व्याधियों में अन्तर्भूत होने पर भी **पृथक् उक्तः** अलग कहा गया है। **अयं हि** यह **विप्रलम्भ-आदौ** विप्रलंभ आदि में **वैचित्र्यं कुरुतेतमां** अत्यधिक वैचित्र्य करता है (लाता है)। **एवम् एव** इसी तरह **अपस्मारः** अपस्मार **बीभत्से च भयानके अपि** बीभत्स और भयानक (रसों) में भी (वैचित्र्य लाता है)।

यह उन्माद है। (२८)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(गर्वः—२९)

कुलरूपबलैश्वर्यविद्याद्रविणयौवनैः।
नीचानां जायते गर्वः प्राधान्येन मुहुर्मुहुः॥ १६१२॥

विद्युद्वदुत्तमानां तु बाहुल्यात्त्वेष योषिताम्।
उद्ग्रीवावेक्षणावज्ञासूयानुत्तरदानतः॥ १६१३॥

अभाषणादमर्षाच्च पारुष्याद्विभ्रमादपि।
अङ्गनेत्रविकाराच्चाधिक्षेपातिक्रमाद्गुरोः॥ १६१४॥

तस्याभिनयनं कार्यमित्याह करणाग्रणीः।
वागङ्गसात्त्विकाहार्यक्रियाव्यत्यासनं भवेत्॥ १६१५॥

विभ्रमो योषितां हर्षानुरागमदगर्वजः।

इति गर्वः (२९)

गर्व—२९

१६१२-१६१६ ख. (अ०) **कुलरूपबल-ऐश्वर्यविद्याद्रविणयौवनैः** कुल, रूप, बल, ऐश्वर्य, विद्या, संपत्ति और यौवन से **प्राधान्येन नीचानां** मुख्यतः नीच (व्यक्तियों) में **गर्वः** गर्व **मुहुः मुहुः जायते** बार-बार उत्पन्न होता है। **उत्तमानां तु** उत्तमों में तो **विद्युत्-वत्** बिजली की तरह (क्षणिक होता है)। **एष** यह **बाहुल्यात् तु** बहुलता से तो **योषितां** स्त्रियों में (होता है)। **उद्ग्रीव-अवेक्षण-अवज्ञा-असूया-अनुत्तरदानतः** गर्दन ऊँची करके देखने, अवज्ञा, असूया, उत्तर न देने, **अभाषणात् अमर्षात् च** न बोलने और अमर्ष (दर्पभरा क्रोध), **पारुष्यात्** कठोरता **विभ्रमात् अपि** और विभ्रम, **अङ्गनेत्रविकारात् च** अंग और आँखों के विकार, **गुरोः अधिक्षेपात्** गुरु के अपमान, **अतिक्रमात्** उल्लंघन के द्वारा **तस्य अभिनयनं कार्यम्** उसका अभिनय करना चाहिये **इति** ऐसा **करणाग्रणीः आह** करणाग्रणी (शार्ङ्गदेव) कहता है। **योषितां** स्त्रियों में (यह) **हर्ष-अनुरागमदगर्वजः** हर्ष, अनुराग, मद (और) गर्व से उत्पन्न होने वाला **विभ्रमः** विभ्रम (होता है जो) **वाक्-अङ्ग-सात्त्विक-आहार्यक्रियाव्यत्यासनं भवेत्** वाचिक, आंगिक, सात्त्विक और आहार्य (अभिनयों) की क्रिया के व्यत्यास (उलट पुलट) स्वरूप वाला होता है।

यह गर्व है। (२९)

(आवेगः—३०)

अधीराणां जातमात्रे शोकेऽनन्तरमुद्भवेत्॥ १६१६॥

आवेगः प्रबलोऽयं तु धीरैर्धैर्यान्निरूप्यते।
असौ प्रतिविभावं च पृथक्चित्रानुभावभाक्॥ १६१७॥

अतो विभावरूपानां हेतूनां भेदतोऽष्टधा।
उत्पातवातवर्षाग्निकुञ्जरभ्रमणानि च॥ १६१८॥

प्रियाप्रियश्रुतिर्वैरिव्यसनं चेति हेतवः।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आवेग—३०

१६१६ ग-१६१९ ख. (अ०) **अधीराणाम्** अधीर लोगों में **शोके जातमात्रे अनन्तरं** शोक उत्पन्न होने के तुरन्त बाद **प्रबलः आवेगः** प्रबल आवेग **उद्भवेत्** उत्पन्न होता है। **अयं तु** लेकिन इसे **धीरैः** धैर्यवानों के द्वारा **धैर्यात् निरूप्यते** धैर्य से अभिनीत किया जाता है। **असौ** यह **प्रतिविभावं च** हर विभाव में **पृथक् चित्र-अनुभावभाक्** अलग विविध अनुभाव वाला (होता है)। **अतः** इसलिये **विभावरूपानां हेतूनां भेदतः** विभाव रूप कारणों के भेद से **अष्टधा** आठ प्रकार का (होता है)। **उत्पातवातवर्षा-अग्निकुञ्जरभ्रमणानि च** उत्पात, वात (आँधी), वर्षा, आग और हाथी का घूमना, **प्रिय-अप्रियश्रुतिः** प्रिय व अप्रिय (बात) सुनना **वैरिव्यसनं च** और शत्रु का संकट **इति हेतवः** ये हेतु (हैं)।

विद्युदुल्कानिपाताभ्यां निर्घाताद्भूमिकम्पनात्॥ १६१९॥

सूर्यचन्द्रोपरागाभ्यामावेगः केतुदर्शनात्।
उत्पातजोऽस्यानुभावो वैवर्ण्यं स्रस्तगात्रता॥ १६२०॥

विषादविस्मयगतानुभावाश्चेह संमताः।

१६१९ ग-१६२१ ख. (अ०) **विद्युत्-उल्कानिपाताभ्यां** बिजली और उल्का गिरने, **निर्घातात्** प्रचण्ड ध्वनि, **भूमिकम्पनात्** भूकंप, **सूर्यचन्द्र-उपरागाभ्यां** सूर्य और चन्द्र के ग्रहण, **केतुदर्शनात्** धूमकेतु देखने (इत्यादि) से (होने वाला) **उत्पातजः आवेगः** उत्पात से उत्पन्न आवेग (होता है)। **अस्य अनुभावः** इसका अनुभाव **वैवर्ण्यं** वैवर्ण्य, **स्रस्तगात्रता** शरीर ढीला पड़ना **विषादविस्मयगत-अनुभावाः च** और विषाद, विस्मय में होने वाले अनुभाव भी **इह संमताः** इसमें माने गये हैं।

वातजे त्वत्र वस्त्रेण पिधानं नेत्रमर्दनम्॥ १६२१॥

त्वरितागमनं चानुभावाः स्युर्वर्षजे पुनः।
सर्वाङ्गपीडनं गेहाद्याश्रयः शीघ्रधावनम्॥ १६२२॥

अग्निजे धूतिरङ्गानां धूमाकुलितनेत्रता।
चार्यातिक्रान्तया चापक्रान्तया चरणं भवेत्॥ १६२३॥

कुञ्जराणां निरवधिभ्रमणाद्यस्तु जायते।
सरणापसृती तत्र त्वरिते भयवेपथुः॥ १६२४॥

विस्मयो वीक्षणं पश्चात्,

१६२१ ग-१६२५ क. (अ०) **अत्र वातजे तु** यहाँ वातज (आँधी से उत्पन्न) में तो **वस्त्रेण पिधानं** वस्त्र से (चेहरा आदि) ढकना, **नेत्रमर्दनम्** आँखें मलना **त्वरित् आगमनं च** और जल्दी-जल्दी (लौट) आना **अनुभावाः स्युः** अनुभाव होते हैं। **पुनः वर्षजे** फिर वर्षा से उत्पन्न में **सर्व-अङ्गपीडनं** सारे अंग दबाना, **गेह-आदि-आश्रयः** घर आदि का आश्रय लेना, **शीघ्रधावनं** जल्दी दौड़ना (अनुभाव होते हैं)। **अग्निजे** आग से उत्पन्न में **अङ्गानां धूतिः** अंगों को हिलाना, **धूम-आकुलितनेत्रता** धुएँ से भरे नेत्र, **अतिक्रान्तया अपक्रान्तया चार्या च** अतिक्रान्ता और अपक्रान्ता चारी से **चरणं भवेत्** चलना (अनुभाव) होता है। **यः तु** और जो **कुञ्जराणां** हाथियों के **निरवधिभ्रमणात् जायते** अमर्यादित घूमने से उत्पन्न होता है **तत्र** उसमें **त्वरिते सरण-अपसृती** तेज़ी से चल कर दूर जाना, **भयवेपथुः** भय, काँपना, **विस्मयः** विस्मय (और) **पश्चात् वीक्षणं** पीछे देखना (अनुभाव होते हैं)।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रियश्रवणजे पुनः।
वस्त्राभरणदानं चाभ्युत्थानं परिरम्भणम्॥ १६२५॥

कथायामश्रुरोमाञ्चाश्चाप्रियश्रुतिजे त्वमी।
विलापः पतनं भूमौ चलनं परिवर्तनम्॥ १६२६॥

परिभावनमित्याद्याः,

१६२५ ख-१६२७ क. (अ०) पुनः प्रियश्रवणजे फिर प्रिय (बात) सुनने से उत्पन्न (आवेग) में वस्त्र-आभरणदानं वस्त्र, अलंकार देना, अभ्युत्थानम् उठ कर खड़े होना, परिरम्भणम् आलिंगन कथायाम् अश्रुरोमाञ्चाः च और (कुछ) कहने में अश्रु और रोमांच होना (अनुभाव होते हैं)। अप्रियश्रुतिजे तु अप्रिय सुनने से उत्पन्न (आवेग) में तो विलापः विलाप, भूमौ पतनं भूमि पर गिरना, चलनं डोलना, परिवर्तनम् इधर-उधर घूमना, परिभावनं तिरस्कार करना इति आद्याः अमी इत्यादि ये (अनुभाव होते हैं)।

वैरिव्यसनजे त्वमी।
सहसापसृतिः शस्त्रचर्मवर्मादिधारणम्॥ १६२७॥

गजानां तुरगाणां चारोहणं संप्रधारणम्।
पृथगित्यनुभावाः स्युरावेगे संभ्रमात्मके॥ १६२८॥

इत्यावेगः (३०)

१६२७ ख-१६२८. (अ०) वैरिव्यसनजे तु शत्रु के संकट से उत्पन्न (आवेग) में सहसा-अपसृतिः उतावली से दूर जाना, शस्त्रचर्मवर्म-आदिधारणं शस्त्र, ढाल, कवच आदि धारण करना, गजानां तुरगाणाम् आरोहणं हाथी (या) घोड़े पर चढ़ना संप्रधारणं च और औचित्य का विचार करना इति अमी इत्यादि ये (और) संभ्रम-आत्मके आवेगे संभ्रम स्वरूप वाले आवेग में पृथक् अलग-अलग अनुभावाः स्युः अनुभाव होते हैं।

यह आवेग है। (३०)

(मरणम्—३१)

मरणं द्विविधं प्रोक्तं व्याधिजं चापघातजम्।
दोषवैषम्यजैर्गण्डज्वराद्यैर्व्याधिजं भवेत्॥ १६२९॥

वातपित्तकफा दुष्टा दोषत्वेनेह संमताः।
शस्त्रादिविषतोयेभ्यः श्वापदात्तुरगाद्गजात्॥ १६३०॥

अग्न्युच्चपतनादिभ्यो जातं स्यादभिघातजम्।

मरण—३१

१६२९-१६३१ ख. (अ०) मरणं मरण द्विविधं प्रोक्तं दो प्रकार का कहा गया है—व्याधिजम् अपघातजं च व्याधि से उत्पन्न और अपघात से उत्पन्न। दोषवैषम्यजैः (शरीर के) दोषों की विषमता से उत्पन्न गण्डज्वर-आद्यैः गण्ड (गाँठ, फोड़ा), ज्वर आदि से व्याधिजं भवेत् व्याधि से उत्पन्न (मरण) होता है। वातपित्तकफाः दुष्टाः वात, पित्त, कफ के दूषित

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

होने पर इह यहाँ दोषत्वेन संमताः दोष रूप से माने गये हैं। शस्त्र-आदि-विषतोयेभ्यः शस्त्र आदि, विष, पानी, श्वापदतुरगात् गजात् श्वापद (जंगली जानवर), घोड़े, हाथी, अग्नि-उच्चपतन-आदिभ्यः जातम् आग, ऊँची जगह से नीच गिरने आदि से उत्पन्न अभिघातजं स्यात् अभिघातज (मरण) होता है।

निश्चेष्टप्रसृतैरङ्गैर्मीलनेन च नेत्रयोः॥ १६३१॥

हिक्कोर्ध्वश्वासवमनजनतापरिवारणैः।
अव्यक्ताक्षरभाषाद्यैर्व्याधिजस्यानुभावनम्॥ १६३२॥

१६३१ ग-१६३२. (अ०) निष्चेष्टप्रसृतैः अङ्गैः निष्चेष्ट फैले हुए अंगों, नेत्रयोः च मीलनेन आँखें मूँद लेने, हिक्का-ऊर्ध्वश्वासवमनजनतापरिवारणैः हिचकी, ऊर्ध्व श्वास, वमन, जुट आये लोगों को दूर करने, अव्यक्त-अक्षरभाषा-आद्यैः अस्पष्ट भाषा बोलने आदि से व्याधिजस्य अनुभावनं व्याधि से उत्पन्न (मरण) का अनुभावन (होता है, अर्थात् ये अनुभाव होते हैं)।

शस्त्रजे सहसा भूमौ पतनं च विकम्पनम्।
स्फुरणादि प्रयोक्तव्यमथाहिविषपानजे॥ १६३३॥

अनुभावा भवन्त्यष्टौ विषवेगात्क्रमादिमे।
कार्ष्ण्यवेपथुदाहाश्च हिक्काफेनश्च पञ्चमः॥ १६३४॥

स्कन्धभङ्गश्च जडता मरणं चेति संमताः।

१६३३-१६३५ ख. (अ०) शस्त्रजे शस्त्र (प्रहार) से उत्पन्न (मरण) में सहसा भूमौ पतनम् अचानक भूमि पर गिरना, विकम्पनं च काँपना, स्फुरणं-आदि फड़कना आदि प्रयोक्तव्यं प्रयुक्त करना चाहिये। अथ और अहिविषपानजे साँप (द्वारा काटने) और विषपान से उत्पन्न (मरण) में विषवेगात् क्रमात् विष के (चढ़ने के) वेग के क्रम से कार्ष्ण्यवेपथुदाहाः च (शरीर का) कालापन, काँपना, दाह, हिक्का फेनः च पञ्चमः हिचकी और पाँचवाँ (मुँह से) फेन (आना) स्कन्धभङ्गः च और कंधे लटक जाना, जडता मरणं च इति जड़ता और मरण ये इमे ऐसे अष्टौ अनुभावाः आठ अनुभाव संमताः भवन्ति माने हुए हैं।

(सर०) सिंह० ने 'काष्ण्यं' के बजाय 'कार्श्यं' रखा है। लेकिन विष चढ़ते समय कार्ष्ण्यं यानी शरीर काला पड़ना ज़्यादा संगत है।

अभिघातान्तरोद्भूतेऽनुभावाः शस्त्रजातवत्॥ १६३५॥

व्याध्यादेरनिवर्त्यत्वान्निश्चिते मरणे सति।
अत्र प्राङ्निधनाच्चित्तवृत्तिर्मरणमिष्यते॥ १६३६॥

इति मरणम् (३१)

१६३५ ग-१६३६. (अ०) अभिघात-अन्तर-उद्भूते अभिघात के बाद उत्पन्न होने वाले (मरण) में शस्त्रजातवत्-अनुभावाः शस्त्र से उत्पन्न (मरण) के जैसे ही अनुभाव (होते हैं)। व्याधि-आदेः अनिवर्त्यत्वात् व्याधि आदि के असाध्य (ठीक न होने वाला) होने से मरणे निश्चिते सति मरण निश्चित होने पर निधनात् प्राक् चित्तवृत्तिः निधन से पहले की चित्रवृत्ति अत्र यहाँ मरणम् इष्यते मरण मानी जाती है।

यह मरण है। (३१)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(त्रासः—३२)

गात्रोत्कम्पी चमत्कारः सहसा त्रास उच्यते।
तस्योत्पाताद्घोरनादश्रुतेर्भीषणदर्शनात्॥ १६३७॥

उत्पत्तिरनुभावास्तु गात्रसंकोचकम्पने।
स्तम्भो गद्गदशब्दश्च रोमाञ्चाः स्रस्तगात्रता॥ १६३८॥

निमीलनं लोचनयोः प्रलयश्चेति कीर्तिताः।
पूर्वापरविचारोत्थं भयं त्रासात्पृथग्भवेत्॥ १६३९॥

इति त्रासः (३२)

त्रास—३२

१६३७-१६३९. (अ०) सहसा गात्र-उत्कम्पी चमत्कारः अचानक शरीर को कँपा देने वाला चमत्कार (असाधारणता) **त्रासः उच्यते** त्रास कहा जाता है। **उत्पातात्** उत्पात, **घोरनादश्रुतेः** घोर ध्वनि सुनने **भीषणदर्शनात्** भीषण (वस्तु, दृश्य) देखने से **तस्य उत्पत्तिः** उसकी उत्पत्ति (होती है)। **अनुभावाः तु** (इसके) अनुभाव तो **गात्रसंकोचकम्पने** अंगों का सिकुड़ना और काँपना, **स्तम्भः** अचलता **गद्गदशब्दः च** और गद्गद ध्वनि, **रोमाञ्चाः** रोमांच, **स्रस्तगात्रता** शरीर ढीला पड़ना, **लोचनयोः निमीलनं** आँखें मुँद जाना **प्रलयः च इति** और प्रलय (मूर्छा) ये **कीर्तिताः** कहे गये हैं। **पूर्व-अपरविचार-उत्थं भयं** पहले और बाद के (अर्थात् पहले यह हुआ, उसका परिणाम यह होगा) विचारों से उत्पन्न भय **त्रासात् पृथक् भवेत्** त्रास से अलग होता है।

यह त्रास है। (३२)

(निद्रा—३३)

निद्रेन्द्रियाणां प्रथमा निवृत्तिः स्वस्वगोचरात्।
अत्याहारः स्वभावश्च चिन्तालस्ये मदः क्लमः॥ १६४०॥

व्याख्यानादिप्रयासेन वैलक्षण्यं च हेतवः।
निद्रायामनुभावाः स्युर्जृम्भावदनगौरवम्॥ १६४१॥

शरीरलोलनं नेत्रघूर्णनं गात्रमोटनम्।
निःश्वासोच्छ्वसिते स्रस्तगात्रताक्षिनिमीलनम्॥ १६४२॥

इति निद्रा (३३)

निद्रा—३३

१६४०-१६४२. (अ०) इन्द्रियाणाम् इन्द्रियों का **स्वस्वगोचरात्** अपने-अपने विषयों से **प्रथमा निवृत्तिः निद्रा** पहले दूर होना निद्रा (है)। **अति-आहारः** अधिक भोजन **स्वभावः च** और स्वभाव, **चिन्ता-आलस्ये** चिन्ता और आलस्य, **मदः क्लमः** मद, थकान, **व्याख्यान-आदि प्रयासेन** व्याख्यान आदि (दिमाग के श्रम) के प्रयास से **वैलक्षण्यं च** और विलक्षण (न जागने न सोने जैसी) दशा (में पहुँच जाना) **हेतवः** कारण (होते हैं)। **निद्रायां** निद्रा में **जृम्भा वदनगौरवं** जँभाई, मुख भारी होना,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शरीरलोलनं शरीर हिलना, नेत्रघूर्णनम् आँखें घूमना, गात्रमोटनं अंग मरोड़ना, निःश्वास-उच्छ्वसिते निःश्वास और उच्छ्वास, स्रस्तगात्रता शरीर ढीला पड़ना, अक्षिनिमीलनम् आँखें मुँद जाना (ये) अनुभावाः स्युः अनुभाव होते हैं।

यह निद्रा है। (३३)

त्रयस्त्रिंशद्विचित्रत्वकारित्वात्स्थायिनं रसम्।
कुर्वन्तीति मया प्रोक्ताः सन्ति त्वन्ये सहस्त्रः॥ १६४३॥

अन्तर्भावोऽस्ति केषांचिदभिलाषस्य वा रतौ।
अवहित्थे तु दम्भस्य ग्लानौ क्षुत्तृष्णयोर्यथा॥ १६४४॥

उद्वेगस्य तु निर्वेदेऽन्येषामप्येवमूह्यताम्।

इति त्रयस्त्रिंशद्व्यभिचारिभावाः

१६४३-१६४५ ख. (अ०) त्रयस्त्रिंशत् विचित्रत्वकारित्वात् तैंतीस (व्यभिचारी भाव) विविधता लाने के कारण स्थायिनं स्थायी (भावों) को रसं कुर्वन्ति रस बनाते हैं इति मया प्रोक्ताः ऐसा (इसलिये) मेरे द्वारा (उन्हें) कहा गया। अन्ये तु सहस्त्रः भवन्ति अन्य तो सहस्त्रों (भाव) होते हैं। केषांचित् (उनमें से) कुछ का अन्तर्भावः अस्ति (इन्हीं में) अन्तर्भाव (होता) है। यथा जैसे अभिलाषस्य वा रतौ अभिलाष का रति में, दम्भस्य तु अवहित्थे दंभ का अवहित्थ में, क्षुत्-तृष्णयोः ग्लानौ भूख और प्यास का ग्लानि में उद्वेगस्य तु निर्वेद और उद्वेग का निर्वेद में। अन्येषाम् अपि दूसरों में भी एवम् ऊह्यताम् इसी तरह तर्क से समझें।

(सर०) कल्लि० ने स्पष्ट किया कि यहाँ ग्रन्थकार ने यह दिखाया है कि व्यभिचारी भाव रसपरिपाक में किस तरह सहायक होते हैं। रसविशेष में सहकारी के रूप में उत्पन्न एक रूप वाले निर्वेद आदि भाव रस में प्रवेश से अनेक रूप होकर फिर उन्हीं में अन्तर्भूत हो जाते हैं, जैसे सागर से लहरें उठ कर उसी में लीन हो जाती हैं, और उसी रस को स्थायी स्वरूप से पुष्ट करते हैं। इस रूप में व्यभिचारी भाव रस के सहायक बनते हैं।

ये तैंतीस व्यभिचारी भाव हैं।

(सात्त्विकलक्षणम्)

अथ सात्त्विकलक्षणम्—

उक्तै रत्यादिभिर्भावैः संविद्विक्रियते यदा॥ १६४५॥

प्राणेऽध्यस्यति सात्मानं देहं प्राणस्तनोति सः।
तदा स्तम्भादयो देहे विकाराः प्रभवन्त्यमी॥ १६४६॥

एवं सति स्वाद्यमानरत्यादिस्वैर्विभावकैः।
विभाविता देहसंस्थैः स्तम्भाद्यैरनुभाविताः॥ १६४७॥

अध्यस्तसंविदि प्राणे प्रकाशन्तेऽन्तरे भवाः।
एते स्युः सात्त्विका भावाः सत्त्वप्राणप्रकाशनात्॥ १६४८॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सात्त्विक (भावों) के लक्षण

अथ सात्त्विकलक्षणम् अब सात्त्विक (भावों) का लक्षण—

१६४५ ग-१६४८. (अ०) **यदा** जब **उक्तैः** (पहले) कहे गये **रति-आदिभिः भावैः** रति आदि भावों के द्वारा **संविद् विक्रियते** संविद् (विषयों के प्रति अभिमुख न हुआ ज्ञान) विकारयुक्त होती है (विषयविशेष की ओर उन्मुख होती है) **सा** (और) वह **आत्मानं** स्वयं को **प्राणे अध्यस्यति** प्राण में आरोपित करती है, **सः प्राणः** वह प्राण **देहं तनोति** (स्थूल) देह को (अपने स्वरूप से) विस्तारित करता है **तदा** तब **देहे** शरीर में **अमी** ये **स्तम्भ-आदयः विकाराः** स्तंभ आदि विकार (परिवर्तन) **प्रभवन्ति** उत्पन्न होते हैं। **एवं सति** ऐसा होने पर **स्वाद्यमानरति-आदिस्वैः विभावकैः विभाविता** आस्वाद्य होने वाले रति आदि अपने विभावों के द्वारा उत्पन्न हुए (और) **देहसंस्थैः स्तम्भ-आद्यैः अनुभाविता** शरीर संबन्धी स्तंभ आदि के द्वारा अनुभावित (प्रकट हुए, सात्त्विक भाव) **अध्यस्तसंविदि** संविद में आरोपित हुए **प्राणे प्रकाशन्ते** प्राण में प्रकाशित होते हैं, **अन्तरे भवाः एते** (उक्त प्रकार से) अन्तरात्मा में उत्पन्न होने वाले ये (भाव) **सत्त्वप्राणप्रकाशनात्** सत्त्व (चित्त) प्राण में प्रकाशित होने से **सात्त्विकाः स्युः** सात्त्विक (भाव) होते हैं।

सांख्योक्तो वा गुणः सत्त्वं साधुत्वं वा तदुच्यते।
निर्मलप्राणदेहत्वं साधुत्वमिह संमतम्॥ १६४९॥

तत्र सत्त्वे भवा भावाः सात्त्विकाः संमताः सताम्।

१६४९-१६५० ख. (अ०) **वा** अथवा **सांख्य-उक्तः** सांख्य द्वारा कहा गया **गुणः सत्त्वं** (सत्त्व) गुण सत्त्व (होता है)। **वा तत्** अथवा वह (सत्त्व) **साधुत्वम् उच्यते** साधुत्व कहा जाता है। **इह** यहाँ **निर्मलप्राणदेहत्वं** निर्मल प्राणयुक्त देहस्वरूप **साधुत्वं संमतं** साधुत्व माना गया है। **तत्र सत्त्वे भवाः भावाः** उस सत्त्व में उत्पन्न होने वाले भाव **सतां** सज्जनों का (के द्वारा) **सात्त्विकाः संमताः** सात्त्विक माने गये हैं।

चत्वारि क्ष्मादिभूतानि प्राधान्येनावलम्बते॥ १६५०॥

कदाचित्स्वप्रधानः सन्देहे प्राणश्चरत्ययम्।
यदाध्यास्ते धरां स्तम्भं भावं भावयते तदा॥ १६५१॥

प्राणाज्जलस्थादश्रूणि तेजःस्थात्तु विवर्णता।
स्वेदश्चाकाशनिष्ठात्तु प्रलयो जायते ततः॥ १६५२॥

स्वतन्त्रोऽसौ क्रमान्मन्दमध्यतीव्रत्वभेदभाक्।
रोमाञ्चं वेपथुमथ स्वरभेदं च भावयेत्॥ १६५३॥

१६५० ग-१६५३. (अ०) **चत्वारि क्ष्मा-आदिभूतानि** (यह प्राण) पृथ्वी आदि चार (पृथ्वी, जल, अग्नि और आकाश—महा)भूतों का **प्राधान्येन** मुख्य रूप से **अवलम्बते** आश्रय लेता है। **कदाचित्** कभी **अयं प्राणः** यह प्राण **स्वप्रधानः सन्** स्वयं प्रधान होकर (प्राणवायुरूप होकर) **देहे चरति** शरीर में चलता रहता है। **यदा** जब **धराम् अध्यास्ते** पृथ्वी का अवलंबन लेता है **तदा** तब **स्तम्भं भावं भावयते** स्तंभ भाव उत्पन्न होता है। **जलस्थात् प्राणात्** जल में स्थित (आश्रित) प्राण से **अश्रूणि** अश्रु, **तेजःस्थात् तु** तेज (अग्नि) के आश्रय से तो **विवर्णता** विवर्णता **स्वेदः च** और स्वेद **ततः** और **आकाशनिष्ठात् तु** आकाश के आश्रित (प्राण) से तो **प्रलयः जायते** प्रलय उत्पन्न होता है। **असौ स्वतन्त्रः** यह स्वतन्त्र (होने पर) **क्रमात्** क्रम से **मन्दमध्यतीव्रत्वभेदभाक्** मन्द, मध्यम और तीव्र भेद वाला (होता है) **अथ** (और) तब **रोमाञ्चं वेपथुं स्वरभेदं च** रोमांच, वेपथु और स्वरभेद को **भावयेत्** उत्पन्न करता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(सर०) क्रमात् का यह अर्थ है कि प्राणवायु मन्द होने पर रोमांच, मध्यम होने पर वेपथु और तीव्र होने पर स्वरभेद को प्रकट करता है।

बाह्याः स्तम्भादयो देहे नृणां देहात्ममानिनाम्।
सुलभा दुर्लभास्त्वेते सतामनभिमानिनाम्॥ १६५४॥

१६५४. (अ०) देह-आत्ममानिनां नृणां देह को (ही) आत्मा मानने वाले मनुष्यों को बाह्याः स्तम्भ-आदयः बाह्य स्तंभ आदि (भाव) देहे सुलभाः देह में सुलभ (होते हैं)। अन्-अभिमानिनां सताम् (ऐसा) अभिमान न रखने वाले सज्जनों को एते तु दुर्लभाः ये दुर्लभ (होते हैं)।

(सर०) कल्लि० ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा कि उक्त प्रकार से स्तम्भ आदि सात्त्विक भाव आभ्यन्तर ही होते हैं और उनके विकाररूप यानी बाह्य परिणामरूप स्तंभ आदि बाह्य होते हैं।

(स्तम्भः—१)

हर्षाद्रागाद्भयाद्दुःखाद्विषादाद्विस्मयाद्रुषः।
विक्षेपाच्च भवेत्स्तम्भोऽनुभावा जाड्यशून्यते॥ १६५५॥

निःसंज्ञस्तब्धगात्रत्वे निश्चेष्टत्वाप्रकम्पने।

इति स्तम्भः (१)

स्तंभ—१

१६५५-१६५६ ख. (अ०) हर्षात् रागात् भयात् दुःखात् हर्ष, रोग, भय, दुःख विषादात् विस्मयात् रुषः विषाद, विस्मय, रोष विक्षेपात् च और विक्षेप (व्याकुलता) से स्तम्भः भवेत् स्तंभ होता है। अनुभावाः (इसके) अनुभाव जाड्यशून्यते जड़ता और शून्यता, निःसंज्ञः स्तब्धगात्रत्वे चेतनाहीन और शरीर जड़ होना, निश्चेष्टत्व-अप्रकम्पने निश्चेष्टता और कंपन न होना (होते हैं)।

(सर०) स्तंभ आदि सात्त्विक भावों के लक्षणों में अनुभाव के रूप में भी स्वेद आदि कहे हैं। एक ही भाव सात्त्विक भी और अनुभाव भी कैसे हो सकता है? यह मन में रख कर कल्लि० ने यह स्पष्टीकरण दिया कि पहले कहे गये सात्त्विक शब्द से भीतर उत्पन्न होने वाले स्तंभ आदि भाव ही यहाँ अभिप्रेत हैं और जो शरीर पर बाहर स्तंभ आदि दिखाई देते हैं वे अनुभाव रूप में कहे गये हैं।

यह स्तंभ है। (१)

(स्वेदः—२)

मनस्तापो रुजा हर्षो लज्जा क्रोधो भयं श्रमः॥ १६५६॥

पीडाघातातपौ मोहव्यायामौ च विभावकाः।
व्यजनग्रहणं स्वेदोऽप्यरालो भालमार्जकः॥ १६५७॥

इत्येतेऽभिनया यत्र तं स्वेदं जगदुर्बुधाः।

इति स्वेदः (२)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्वेद—२

१६५६ ग-१६५८ ख. (अ०) **मनस्तापः** मनस्ताप, **रुजा** रोग, **हर्षः** हर्ष, **लज्जा** लज्जा, **क्रोधः भयः श्रमः** क्रोध, भय, श्रम, **पीडाघात-आतपौ** पीड़ायुक्त आघात और धूप, **मोहव्यायामौ** मोह और व्यायाम **च विभावकाः** विभाव (हों); **व्यजनग्रहणं** पंखा हाथ में लेना, **स्वेदः** पसीना, **भालमार्जकः अरालः अपि** माथा पोंछने वाला अराल हस्त (अर्थात् अराल हस्त से भाल का पसीना पोंछना) **इति एते** ये **यत्र** जहाँ **अभिनयाः** अभिनय (हों) **तं बुधाः** उसे विद्वानों ने **स्वेदं जगदुः** स्वेद कहा है।

यह स्वेद है। (२)

(रोमाञ्चः—३)

आलिङ्गनाच्छुरितके शीतहर्षभयक्रुधः॥ १६५८॥

विभावयन्ति रोमाञ्चं व्यक्तस्याभिनयास्त्वमी।
गात्रस्पर्शोल्लुकसने मुहुः कण्टकिता तनुः॥ १६५९॥

इति रोमाञ्चः (३)

रोमांच—३

१६५८ ग-१६५९. (अ०) **आलिङ्गन-आच्छुरितके** आलिंगन और आच्छुरित, **शीतहर्षभयक्रुधः** ठंड, हर्ष, भय, क्रोध **रोमाञ्चं विभावयन्ति** रोमांच को विभावित (उत्पन्न) करते हैं। **गात्रस्पर्श-उल्लुकसने** अंगों का स्पर्श और उल्लुकसन, **मुहुः कण्टकिता तनुः** बार-बार काँटेदार (खड़े रोंगटे वाला) शरीर **अमी तु व्यक्तस्य** ये तो व्यक्त (रोमांच) के **अभिनयाः** अभिनय (होते हैं)।

(सर०) आच्छुरित का लक्षण कारिका १२७-१२८ ख में और उल्लुकसन का १५०२ में दिया गया है।

यह रोमांच है। (३)

(स्वरभेदः—४)

औग्र्यरोगजराक्रोधभयहर्षमदादयः।
विभावा विस्वरो भिन्नो गद्गदश्च ध्वनिर्भवेत्॥ १६६०॥

अनुभावस्तदा भावः स्वरभेदोऽभिधीयते।
स्थानभ्रष्टो विस्वरः स्याद्विच्छिन्नो भिन्नसंज्ञकः॥ १६६१॥

अव्यवस्थिततानोच्चनीचभावस्तु गद्गदः।

इति स्वरभेदः (४)

स्वरभेद—४

१६६०-१६६२ ख. (अ०) **औग्र्यरोगजराक्रोधभयहर्षमद-आदयः** उग्रता, रोग, बुढ़ापा, क्रोध, भय, हर्ष, मद आदि **विभावाः** विभाव (होते हैं); **विस्वरः** विस्वर **भिन्नः गद्गदः ध्वनिः च** टूटी (फूटी) और गद्गद ध्वनि **अनुभावः भवेत्**

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अनुभाव होता है **तदा** तब (उसे) **स्वरभेदः भावः अभिधीयते** स्वरभेद भाव कहा जाता है। **स्थानभ्रष्टः विस्वरः स्यात्** स्थान से हटा हुआ विस्वर होता है। **विच्छिन्नः भिन्नसंज्ञकः** विच्छिन्न (टूटा फूटा) भिन्न नाम वाला (और) **अव्यवस्थितता-अन्-उच्चनीचभावः तु** अव्यवस्थितता से युक्त ऊँचे-नीचेपन से रहित तो **गद्गदः** गद्गद होता है।

यह स्वरभेद है। (४)

(वेपथुः—५)

आलिङ्गनाच्छुरितके हर्षो रोषो भयं जरा॥ १६६२॥

विभावाः शीतरोगौ च यत्रैते त्वनुभावकाः
वेपनं स्फुरणं कम्पो वेपथुं कथयन्ति तम्॥ १६६३॥

वेपनाद्याः कम्पभेदाः पूर्वात्सातिशयः परः।

इति वेपथुः (५)

वेपथु—५

१६६२ ग-१६६४ ख. (अ०) **आलिङ्गन-आच्छुरितके** आलिंगन और आच्छुरित, **हर्षः रोषः भयं जरा** हर्ष, रोष, भय, वृद्धावस्था **शीतरोगौ च** व ठंड और रोग **यत्र एते विभावाः** जहाँ ये विभाव (हों और) **अनुभावाः तु** अनुभाव तो **वेपनं स्फुरणं कम्पः** वेपन (थरथराहट), स्फुरण (फड़कना), कंप (होते हैं) **तम्** उसे **वेपथुं कथयन्ति** वेपथु कहते हैं। **वेपन-आद्याः** वेपन आदि **कम्पभेदाः** कंप के भेद हैं (और) **पूर्वात् परः** पहले वाले से बाद वाला **स-अतिशयः** अधिक (तीव्र होता है)।

(सर०) **पूर्वात् परः** यानी वेपथु से स्फुरण और स्फुरण से कंप अधिक तीव्रता वाले होते हैं।

यह वेपथु है। (५)

(वैवर्ण्यम्—६)

रोगमोहभयक्रोधशीततापश्रमैर्भवेत्॥ १६६४॥

वैवर्ण्यमस्याभिनयो नाडीपीडनयोगतः।
सिन्दूराद्येन वा वर्णान्तरसंचारणं मुखे॥ १६६५॥

इति वैवर्ण्यम् (६)

वैवर्ण्य—६

१६६४ ग-१६६५. (अ०) **रोगमोहभयक्रोधशीततापश्रमैः** रोग, मूर्छा, भय, क्रोध, ठंड, गर्मी और श्रम से **वैवर्ण्यं भवेत्** वैवर्ण्य होता है। **अस्य अभिनयः** इसका अभिनय **नाडीपीडनयोगतः** नाडी दबाने के योग से (अर्थात् दबा कर) **वा** अथवा **मुखे** चेहरे पर **सिन्दूर-आद्येन** सिन्दूर आदि से **वर्ण-अन्तरसंचारणं** दूसरा रंग लगा कर (होता है)।

(सर०) ना०शा० में कहा गया है कि प्रयत्न से वैवर्ण्य लाना दुष्कर (बहुत कठिन) होता है इसलिये नाडी दबा कर करना चाहिये। (ना०शा०, ७/१०५)

चेहरे का रंग बदल जाना वैवर्ण्य होता है।

यह वैवर्ण्य है। (६)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(अश्रु—७)

हर्षामर्षाञ्जनाद्धूमाद्भयाच्छोकाच्च जृम्भणात्।
अनिमेषेक्षणाच्छीताद्रोगाद्भावोऽश्रु जायते॥ १६६६॥

तं चानुभावयेदश्रुस्त्रवणैर्नेत्रमार्जनैः।

इत्यश्रु (७)

अश्रु—७

१६६६-१६६७ ख. (अ०) हर्ष-अमर्ष-अञ्जनात् हर्ष, अमर्ष, अंजन से, धूमात् भयात् शोकात् च धुएँ, भय और शोक से, अनिमेष-ईक्षणात् अपलक देखने से, शीतात् रोगात् ठंड से (और) रोग से अश्रु भावः जायते अश्रु भाव उत्पन्न होता है तं च और उसे अश्रुस्त्रवणैः आँसू बहने नेत्रमार्जनैः (और) आँखें पोंछने से अनुभावयेत् अनुभावित (प्रकट) करना चाहिये।

ये अश्रु है। (७)

(प्रलयः—८)

मदमूर्छाभिघातेभ्यो निद्रामोहश्रमादिभिः॥ १६६७॥

प्रलयः स्यादभिनयेन्महीनिपतनेन तम्।

इति प्रलयः (८)

(इत्यष्टौ सात्त्विकभावाः)

प्रलय—८

१६६७ ग-१६६८ ख. (अ०) मदमूर्छा-अभिघातेभ्यः मद, मूर्छा और प्रहार से निद्रामोहश्रम-आदिभिः निद्रा, मोह और श्रम आदि से प्रलयः स्यात् प्रलय (भाव उत्पन्न) होता है। तं महीनिपतनेन उसे भूमि पर गिरने से अभिनयेत् अभिनीत करें।

यह प्रलय है। (८)

ये आठ सात्त्विक भाव हैं।

इत्युक्तास्त्रिविधा भावाः स्थायिनो व्यभिचारिणः॥ १६६८॥

सात्त्विकाश्च रसेषु स्युः सर्वे सर्वेषु सात्त्विकाः।
एकः कार्यो रसः स्थायी रसानां नाटके सदा॥ १६६९॥

रसास्तदनुयायित्वादन्ये तु व्यभिचारिणः।
विरोधिनो रसास्तेषु संदर्भ्यः पृथगाश्रयः॥ १६७०॥

गुम्फश्चित्रो रसानां स्यान्नाट्ये कुसुमगुम्फवत्।
स्थायी तु सूत्रस्थानीयो रसो रसविदां मतः॥ १६७१॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१६६८ ग-१६७१. (अ०) **स्थायिनः व्यभिचारिणः सात्त्विकाः च** स्थायी, व्यभिचारी और सात्त्विक **इति यों भावाः त्रिविधाः उक्ताः** भाव तीन प्रकार के कहे गये। **सर्वे सात्त्विकाः** सारे सात्त्विक (भाव) **सर्वेषु रसेषु स्युः** सारे रसों में होते हैं। **नाटके** नाटक में **रसानां** रसों में (से) **सदा** सदा **एकः रसः** एक रस **स्थायी कार्यः** स्थायी (प्रधान) करना (योजित होना) चाहिये। **अन्ये रसाः तु** दूसरे रस तो **तत् अनुयायित्वेन** उसके अनुयायी स्वरूप से **व्यभिचारिणः** व्यभिचारी (होते हैं)। **तेषु विरोधिनः रसाः** उन (व्यभिचारियों) में विरोधी रस **पृथक् आश्रयः संदर्भ्यः** भिन्न आश्रय वाले संदर्भ में (योजित) करने चाहियें। **कुसुमगुम्फवत्** फूलों को गूँथने के समान **नाट्ये** नाट्य में **रसानां** रसों का **चित्रः गुम्फः** विविधतायुक्त (सुन्दर) गुँथाव (करना चाहिये)। **स्थायी रसः तु** स्थायी रस तो **रसविदां** रस के वेत्ताओं के द्वारा **सूत्रस्थानीयः मतः** (उस गुम्फन में) धागे के स्थानीय माना गया है।

(सर०) **एकः कार्यः रसः स्थायी** की पुष्टि कल्लि० ने भरत का श्लोक उद्धृत करते हुए की है।

विरोधिनः रसाः की व्याख्या में उसने कहा कि शृंगार और बीभत्स आदि विरोधी रसों का एक आश्रयत्व हो तो विरोध निश्चय है लेकिन विरोधी रसों में भिन्न आश्रय होने पर उसी तरह विरोध नहीं रहता जैसे विभिन्न वर्ण, गन्ध वाले फूलों की माला में विरोध नहीं रहता।

आड्० के मूल पाठ और कल्लि० की टीका में 'गुम्भ' शब्द है लेकिन कोश के अनुसार 'गुम्फ' होना चाहिये और यही आनन्द में भी है।

(ग्रन्थस्योपसंहारः)

सूरिश्रीशार्ङ्गदेवेन नाट्यवेदाम्बुधेरिदम्।
समस्तमुद्धृतं सारं धीरैरातृप्ति सेव्यताम्॥ १६७२॥

ग्रन्थ का उपसंहार

१६७२. (अ०) **सूरिश्रीशार्ङ्गदेवेन** विद्वान् श्रीशार्ङ्गदेव के द्वारा **नाट्यवेद-अम्बुधेः** नाट्यवेदरूपी सागर से **इदं समस्तं सारम् उद्धृतं** यह संपूर्ण सार बाहर निकाला गया। **धीरैः** विद्वानों के द्वारा **आतृप्तिः सेव्यतां** पूरी तृप्ति होने तक (उसका) सेवन करना चाहिये।

(सर०) ग्रन्थ के आरम्भ में (१/१/१५-२१ ख) ग्रन्थकार ने पूर्वाचार्यों के नाम देकर कहा था कि अगाध बोध की मथानी से उन आचार्यों के मतरूपी 'पयोनिधि' (दूध के सागर) को मथ कर उनके साररूप 'नवनीत' (मक्खन) का उन्होंने उद्धार किया है। उन आचार्यों में नाट्यशास्त्र के रचयिता भरत मुनि और उनके टीकाकार अभिनवगुप्त आदि के नाम भी हैं। संगीत (गीत, वाद्य, नृत्त) संबन्धी विषयों के निरूपण का मुख्य आधार नाट्यशास्त्र ही है। नाट्य को नाट्यवेद माना गया है जिसकी चर्चा नर्तनाध्याय के आरम्भ में ग्रन्थकार ने की है।

सं०र० के पहले अध्याय के ऊपर उल्लिखित अंश और नर्तनाध्याय के अंशों को जोड़ते हुए ग्रन्थकार के प्रस्तुत श्लोक में नाट्यवेद का सार निकाल कर देने के कथन को समझना चाहिये।

ग्रन्थे मदीये यदि कश्चिदस्ति
गुणस्ततस्तस्य परिग्रहाय।
नाभ्यर्थये वः सुधियः परेषां
गुणोऽणुरप्यद्रिसमो भवत्सु॥ १६७३॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१६७३. (अ०) मदीये ग्रन्थे मेरे ग्रन्थ में **यदि कश्चित् गुणः अस्ति** यदि कोई गुण है **ततः तस्य परिग्रहाय** तो उसका ग्रहण करने के लिये **सुधियः** बुद्धिमान **वः** आप सबको **न अभ्यर्थये** मैं प्रार्थना नहीं करता। **परेषां** दूसरों का **अणुः गुणः अपि** अणु (के समान) गुण भी **भवत्सु अद्रिसमः** आप सब (की दृष्टि) में पर्वत के समान हो जाता है (अर्थात् आप सुधीजन दूसरे के ज़रा से भी गुण को पर्वत जैसा बड़ा देखते हैं)।

> **सावद्यता वा निरवद्यतास्तु**
> **ग्रन्थे मयात्र ग्रथिते तया किम्।**
> **आराधने वः प्रवणा मतिर्मे**
> **सन्तो गुणः कं ननु नातिशेते॥ १६७४॥**

१६७४. (अ०) मया ग्रथिते अत्र ग्रन्थे मेरे द्वारा रचित इस ग्रन्थ में **सावद्यता वा निरवद्यता अस्तु** दोषयुक्तता अथवा दोषरहितता हो (सकती है) **तया किम्** उससे (मुझे) क्या? **वः आराधने** आप सबकी आराधना (करने) में **मे मतिः प्रवणा** मेरी बुद्धि तत्पर (है)। **ननु** निःसंदेह **सन्तः** हे सज्जनों! **गुणः कं न अधिशेते** गुण किसे बड़ा नहीं बना देता?

> **युष्मत्क्षोदक्षमं वस्तु किमत्रास्ति जगत्त्रये।**
> **किं तु मत्प्रेमतः सन्तः पुरस्कुरुत मे कृतिम्॥ १६७५॥**

> **यद्वा पुराणं पन्थानं मुनीनामहमन्वगाम्।**
> **स्निह्यन्ति च निसर्गेण सन्तः सन्मार्गगामिनि॥ १६७६॥**

१६७५-१६७६. (अ०) युष्मत् क्षोदक्षमं वस्तु आपकी जाँच पड़ताल (आलोचना) को सहन करने वाली वस्तु **अत्र जगत्-त्रये** इस त्रिलोकी में **किम् अस्ति** क्या है (अथवा है क्या)? **किं तु** लेकिन **सन्तः** हे सन्तों! **मत् प्रेमतः** मुझ पर प्रेम से **मे कृतिं पुरस्कुरुत** मेरी कृति को सम्मानित करें। **यत् वा** अथवा **अहं** मैंने **मुनीनां पुराणं पन्थानं** मुनियों के प्राचीन मार्ग का **अन्वगाम्** अनुसरण किया है **सन्तः च** और सज्जन **सन्मार्गगामिनि** सन्मार्ग पर जाने वाले (पथिक) पर **निसर्गेण स्निह्यन्ति** स्वभावतः स्नेह करते हैं।

> **आरिराधयिषोः साधून् किं प्रज्ञाविभवेन मे।**
> **राममानन्दयन्ति स्म तिर्यञ्चोऽपि कपीश्वराः॥ १६७७॥**

१६७७. (अ०) साधून् आरिराधयिषः मे साधुओं की आराधना करना चाहने वाले मुझे **प्रज्ञाविभवेन किं** प्रज्ञा के वैभव से क्या (प्रयोजन)? **तिर्यञ्चः अपि कपीश्वराः** आड़ा चलने वाले (पशु) होते हुए भी वानरश्रेष्ठ **रामम् आनन्दयन्ति स्म** राम को आनन्दित करते थे।

> **न विद्यादर्पतो ग्रन्थप्रवृत्तिर्मम किं त्विदम्।**
> **विद्वन्मानसवासाय गन्तुं पाथेयमास्थितम्॥ १६७८॥**

१६७८. (अ०) विद्यादर्पतः विद्या के दर्प (अहंकार) के कारण **मम न ग्रन्थप्रवृत्तिः** मेरी ग्रन्थ में प्रवृत्ति नहीं (है) **किं तु इदं** लेकिन यह **विद्वन्मानस-आवासाय गन्तुं** विद्वानों के मानस में आवास करने जाने के लिये **पाथेयम् आस्थितं** (मैंने) पाथेय बनाया है।

(सर०) यात्रा में आहार के लिए यात्री जो खाने की वस्तु लेकर चलता है उसे पाथेय कहा जाता है।

ग्रन्थकार ने पूरे ग्रन्थ में जिस गर्व, आत्मविश्वास और विभिन्न मतों के खंडन तथा अपने मत के समर्थन में पक्षपातरहित

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

होकर बिना किसी बनाव (लागलपेट) के जिस दृढ़ता के साथ निरूपण किया है, उससे बिल्कुल भिन्न भाषा में ग्रन्थ के समापन के इन अन्तिम छ श्लोकों में विद्वानों के प्रति विनय भी प्रकट किया है।

केवल दोष दर्शन करने वालों के प्रति बड़ा सूक्ष्म कटाक्ष इस पंक्ति में है—'युष्मत्क्षोदक्षमं वस्तु किमत्रास्ति जगत्त्रये'। आप तो दोष निकालने में सक्षम हैं इसलिये तीनों लोकों में आपके सामने कौनसी वस्तु टिक सकती है? लेकिन अत्यन्त विनय के साथ विद्वानों से निवेदन भी किया है कि सच्चे विद्वान् दूसरों के अणु के समान गुणों को भी पहाड़ समझते हैं— **'गुणोऽणुरप्यद्रिसमो भवत्सु'**। संतों द्वारा प्रेमपूर्वक किसी ग्रन्थ का पठन-पाठन ही ग्रन्थरचयिता के लिए सच्चा पुरस्कार होता है और मुनियों के मार्ग—'सन्मार्ग' का अनुगमन करने वाले व्यक्ति पर तो संत का 'निसर्गतः' स्नेह होता है। ग्रन्थकार ने इसके द्वारा परोक्ष रूप से स्वयं को सन्मार्ग का अनुगामी कह कर विद्वानों का स्नेहपात्र बनने का निवेदन व्यक्त किया है। भगवान् राम 'प्रज्ञा के वैभव' से नहीं बल्कि सेवा और भक्ति के कारण कपीश्वर हनुमान से आनन्दित होते थे। इसलिये अन्त में ग्रन्थकार ने कहा कि संगीतरत्नाकर के लेखन की प्रवृत्ति 'विद्यादर्प' के कारण नहीं हुई बल्कि विद्वज्जनों के मन में उनका आवास हो इसके लिये यह ग्रन्थ तो पाथेयमात्र है। और यह सत्य है कि इस ग्रन्थ के द्वारा ग्रन्थकार शार्ङ्गदेव विद्वानों के मानस में अमर हो गये।

इति श्रीमदनवद्यविद्याविनोदश्रीकरणाधिपतिश्रीसोढलदेवनन्दन-
निःशङ्कश्रीशार्ङ्गदेवविरचिते संगीतरत्नाकरे
सप्तमो नर्तनाध्यायः समाप्तः॥७॥

श्रीमत् अनवद्य-विद्याविनोद श्रीकरणाधिपति
श्री सोढलदेवनन्दन निःशङ्क श्रीशार्ङ्गदेव द्वारा विरचित
संगीतरत्नाकर का
सातवाँ नर्तनाध्याय समाप्त

॥ ग्रन्थ पूर्ण हुआ॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संदर्भग्रन्थ-सूची

१. अभिनवभारती, ना० शा० बड़ौदा सं० में प्रकाशित।

२. काव्यप्रकाश,

३. नाट्यशास्त्र, भरत (अभि० सहित), ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, चार खण्ड; चौखम्बा, द्वितीय सं०, संवत् २०३७।

४. भावप्रकाशन, शारदातनय, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, १९६८

५. मानसोल्लास, भाग ३, सोमेश्वर, संपा० जी०के० श्रीगोंडेकर, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, १९६१।

६. संगीतरत्नाकर, शार्ङ्गदेव, (१) (कलानिधि टीका सहित) संपा० मंगेश रामकृष्ण तेलंग, आनन्दाश्रम, पुणे, १९४२

(२) आड्यार लाइब्रेरी, मद्रास, संपा० ऍस्० सुब्रह्मण्य शास्त्री, प्रथम खण्ड, १९४३।
द्वितीय खण्ड, संपा० ऍस्० सुब्रह्मण्य शास्त्री और वी० कृष्णमाचार्य, १९५९
तृतीय खण्ड, संपा० ऍस्० सुब्रह्मण्य शास्त्री १९५१ और १९८६
चतुर्थ खण्ड, संपा० पं० ऍस्० सुब्रह्मण्य शास्त्री, १९५३

(३) (कलानिधि टीका के अनुवाद/सार और सं० र० के मराठी अनुवाद सहित), ग०हा० तारळेकर, महाराष्ट्र राज्य साहित्य संस्कृति मण्डल, मुंबई, द्वितीय खण्ड, १९७९

(४) प्रथम खण्ड, हिन्दी अनुवाद और व्याख्या, सुभद्रा चौधरी, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, २०००।
द्वितीय खण्ड, हिन्दी अनुवाद और व्याख्या, सुभद्रा चौधरी, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, २००२।
तृतीय खण्ड, हिन्दी अनुवाद और व्याख्या, सुभद्रा चौधरी, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, २००६।

७. संगीतराज, कुम्भा, (१) प्रथम भाग, नृत्यरत्नकोश, राजस्थान ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, जयपुर, १९५७।
(२) अप्रकाशित, डॉ० प्रेमलता शर्मा द्वारा संपादित संस्करण।

८. Transformation As Creation, Vol. I, Mukund Lath,Aditya Prakashan, Delhi, 1998.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रोफ़ेसर सुभद्रा चौधरी (जन्म १९३६, मृत्यु २००८)। बनार
हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीतशास्त्र (म्यूज़िकॉलोजी) विभाग से एं
म्यूज़िकॉलोजी, पीएँच्.डी.। पं० ओंकारनाथ ठाकुर से 5 साल त
गायन की शिक्षा।

विभागाध्यक्षा, संगीतशास्त्र विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्याल
१९९३-१९९६। विभागाध्यक्षा, संगीत शास्त्र विभाग, इंदिरा क
संगीत विश्वविद्यालय १९७५-१९९३।

संगीत की ३० से अधिक विचारगोष्ठियों में शोधपत्र प्रस्तु
यू.जी.सी. के अनुदान से 'भारतीय संगीत में अनुसंधान की समस्
और क्षेत्र' विषय पर विचारगोष्ठी का आयोजन। कई विश्वविद्याल
के संगीत विभागों में और रिफ़्रेशर कोर्सेज़ में व्याख्यान। हॉलेण्ड
सप्रयोग व्याख्यान। रेडियो से वार्ता एवं फ़ीचर प्रसारण।

पुस्तक प्रकाशन। प्रमुख—१. भारतीय संगीत में ताल और रू
विधान, २. संगीत संचयन, ३. Time Measure and Compositio
Types in Indian Music, ४. भारतीय संगीत में निबद्ध,
संगीतरत्नाकर, प्रथम खंड, 'सरस्वती' व्याख्या सहित हिंदी अनु
६. संगीतरत्नाकर, द्वितीय खंड, 'सरस्वती' व्याख्या सहित हि
अनुवाद, ७. संगीतरत्नाकर, तृतीय खंड, 'सरस्वती' व्याख्या स
हिंदी अनुवाद, ८. संगीतरत्नाकर, चतुर्थ खंड, 'सरस्वती' व्या
सहित हिंदी अनुवाद। संपादित—१. भारतीय संगीत में अनुसंधान
समस्याएँ और क्षेत्र, २,३. पं० ओंकारनाथ ठाकुर की 'प्रणवभार
और 'संगीताञ्जलि-भाग ५' का द्वितीय संस्करणों के लिए संशो
व संपादन।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Rs. 950/-

ISBN 81-7487-605-7
9 788174 876058

राधा पब्लिकेशन्स
4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002
फोन : 23247003, 23254306